21वीं सदी के हिन्दी कथा साहित्य में स्त्री-प्रतिरोध
(प्रारम्भिक दो दशकों के चयनित कथा साहित्य के संदर्भ में)

21VI SADI KE HINDI KATHA SAHITYA MEIN STRI-PRATIRODH.

(PRAARAMBHIK DO DASHKON KE CHAYANIT KATHA SAHITYA KE SANDARBH MEIN)

Thesis Submitted for the Award of the Degree of

DOCTOR OF PHILOSOPHY
in
(HINDI)

By

PRIYANKA SHRIVASTAVA

Registration Number : 42000541

Supervised By

Dr. REETA SINGH (22388)

ASSISTANT PROFESSOR, HINDI DEPARTMENT

LOVELY PROFESSIONAL UNIVERSITY, PUNJAB
2024

समर्पण

तमाम व्यस्तताओं में भी पूर्णत:
सस्नेह सहयोगी बने
माता -पिता
एवं
चुनौतियों के बीच सार्थक मार्गचयन को
प्रेरित करने वाले **गुरुजन**
के प्रति

घोषणा-पत्र

मैं, प्रियंका श्रीवास्तव, शोधार्थी, हिन्दी विभाग, लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी, फगवाड़ा, पंजाब घोषणा करती हूँ कि पीएच.डी. की उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबंध "21वीं सदी के हिन्दी कथा साहित्य में स्त्री-प्रतिरोध (प्रारम्भिक दो दशकों के चयनित कथा साहित्य के संदर्भ में)" मेरा मौलिक कार्य है। मेरे द्वारा प्रस्तुत यह शोध-प्रबंध डॉ० रीता सिंह, असिस्टेंट प्रोफेसर (हिन्दी संकाय) स्कूल ऑफ लिबरल एंड क्रिएटिव आर्ट्स (सोशल साइंस एण्ड लैंग्वेजेस) लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी, फगवाड़ा, पंजाब के निर्देशन में तैयार किया गया है। इस रूप में यह शोध-प्रबंध पूर्णत: अथवा आंशिक रूप में किसी भी विश्वविद्यालय अथवा संस्थान में किसी अन्य उपाधि के लिए प्रस्तुत नहीं किया गया है।

Priyanka Shrivastava

प्रियंका श्रीवास्तव

पंजीयन संख्या : **42000541**

हिन्दी संकाय, स्कूल ऑफ लिबरल एंड क्रिएटिव आर्ट्स (सोशल साइंस एण्ड लैंग्वेजेस)

लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी, फगवाड़ा, पंजाब, भारत

दिनांक : 10.05.2024

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि शोधार्थी प्रियंका श्रीवास्तव, पंजीयन संख्या **42000541** ने "21वीं सदी के हिन्दी कथा साहित्य में स्त्री-प्रतिरोध (प्रारम्भिक दो दशकों के चयनित कथा साहित्य के संदर्भ में)" विषय पर लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी, फगवाड़ा, पंजाब के अंतर्गत हिन्दी विषय की पीएच.डी. की उपाधि हेतु शोध-प्रबंध मेरे निर्देशन में स्वयं पूर्ण किया है। शोधकर्त्री का अनुसंधान कार्य इनके व्यक्तिगत परिश्रम एवं अनुशीलन पर आधारित पूर्णत: मौलिक कार्य है। मेरे संज्ञान में यह शोध-प्रबंध आंशिक या पूर्ण रूप से किसी अन्य उपाधि के लिए किसी अन्य विश्वविद्यालय या संस्थान को प्रस्तुत नहीं किया गया है। मैं, प्रस्तुत शोध-प्रबंध को पीएच. डी. (हिन्दी) की उपाधि हेतु मूल्यांकनार्थ प्रस्तुत करने की संस्तुति प्रदान करती हूँ।

डॉ० रीता सिंह

शोध-निर्देशिका

असिस्टेंट प्रोफेसर

हिन्दी संकाय, स्कूल ऑफ लिबरल एंड क्रिएटिव आर्ट्स (सोशल साइंस एण्ड लैंग्वेजेस)

लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी, फगवाड़ा, पंजाब, भारत

दिनांक : 10.05.2024

आभार स्वीकृति

शोध कार्य के लिए प्रेरित करने वालों से लेकर कार्य के दौरान प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से जिनका भी सहयोग बना रहा, उनके प्रति अपना आभार व्यक्त करने के क्रम में सबसे पहले मैं अपनी शोध-निर्देशिका आदरणीया डॉ० रीता सिंह के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ। शोध निर्देशिका के आत्मीय मार्गदर्शन से शोध में चयनित रचनाकारों से संपर्क एवं संवाद का पर्याप्त लाभ मिला। इसमें मैं विशेष रूप से गीताश्री, भूमिका द्विवेदी, कविता वर्मा, प्रियंका ओम, शिल्पी झा एवं संपादक-आलोचक राकेश बिहारी के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ, जिन्होंने पूरे शोध के दौरान न केवल अपना बहुमूल्य समय देकर शोध को गति प्रदान की, बल्कि शोध के लिए महत्वपूर्ण सामग्री के संकलन में भी मदद की। इसी के साथ लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी के हिन्दी विभाग के शिक्षकों से यथाअवसर सहयोग प्राप्त हुआ, विशेषकर विनोद सर द्वारा। अत: पूरे विभाग और विनोद सर के प्रति मैं अपना आभार व्यक्त करती हूँ। साथ ही विश्वविद्यालय के अन्य विभाग के शिक्षक, कर्मचारियों ने जो सहयोग प्रदान किया, उनकी भी तहे दिल से शुक्रगुजार हूँ। शोधकार्य के दौरान सिलीगुड़ी कॉलेज के एसोसिएट प्रोफेसर आदरणीय डॉ० अजय कुमार साव से भी पर्याप्त सहयोग और प्रोत्साहन मिलता रहा, उनके प्रति भी मैं अपना विशेष आभार व्यक्त कर रही हूँ।

शोध कार्य के दौरान यथाअवसर अवकाश प्रदान करने के लिए मैं पूरे 'टेक्नो इंडिया ग्रुप' और अपने विद्यालय की प्राचार्या श्रीमती नंदिनी दासगुप्ता का तहे दिल से आभार व्यक्त करती हूँ। इस शोध यात्रा में समय-समय पर प्रूफ रीडिंग में ज्योति भट्ट, रश्मि भट्ट, मुस्कान कुमारी राम, फाल्गुनी सरकार, अभिषेक श्रीवास्तव का भगीरथ सहयोग के लिए सस्नेह आभार। मैं अपने माता-पिता श्रीमती उषा श्रीवास्तव और श्री अनिल कुमार श्रीवास्तव, अपने छोटे भाई अतुल श्रीवास्तव, ममेरा भाई संदीप-मंदीप के प्रति अपना आभार व्यक्त करती हूँ, जिनके आत्मीय सहयोग के बिना शायद यह काम समय पर कर पाना संभव नहीं होता। अंत में मैं ईश्वर को धन्यवाद देते हुए मेरी स्वर्गीया दीदी अनामिका श्रीवास्तव का स्मरण करती हूँ, जो आज भले मेरे साथ नहीं है, लेकिन मुझे आगे बढ़ने के लिए हमेशा प्रेरित करती रही ।

मैं ऋणी रहूँगी उन सभी ग्रंथकारों की, जिनके ग्रंथों के संदर्भ मैंने अपने शोध कार्य में प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से लिए हैं।

Priyanka Shrivastava

प्रियंका श्रीवास्तव
शोधार्थी

भूमिका

विमर्श के शोर में प्रतिरोध की संरचनामूलक पहचान अनिवार्य है। प्रतिरोध सृजन कर्म की बुनियादी जरूरत है। यह ऐतिहासिक परिणति के साथ नवनोन्मेष का सृजनात्मक प्रस्थान भी है। इस दिशा में 21वीं सदी के कथा साहित्य में प्रतिरोध के स्त्री संदर्भ बीसवीं शताब्दी की तुलना में संतुलित एवं बहुआयामी हैं। 21वीं सदी अगर स्त्री-सशक्तीकरण के युग के रूप में घोषित है, तो इसका एक बड़ा कारण यह है कि इन दो दशकों में साहित्य में जितने भी विमर्श उभर कर आएं हैं, उनमें स्त्री-विमर्श सबसे अधिक नोटिस में लिया गया संवेदनशील मुद्दा रहा है। कारण यह भी है कि चाहे आदिवासी हो, दलित हो, बालक हो, वृद्ध हो, हर कोई अंतत: स्त्री और पुरुष में बटा हुआ है। ऐसे में अन्य विमर्शों के मूल में भी स्त्री-पक्ष विमर्श का एक मुद्दा बनता रहा है। 20वीं शताब्दी में स्त्री-प्रश्न पर संवेदना के स्तर पर ही विचार अधिक हुआ है, वहीं 21वीं शताब्दी के दो दशकों के कथा साहित्य में स्त्री-बोध कोरी संवेदना से आगे बढ़कर विचार तक पहुँच गया है। ऐसे में स्त्री-प्रतिरोध का स्वर भी 20वीं शताब्दी की तुलना में अधिक वैचारिक भूमि धारण करता है। 21वीं सदी में स्त्री की व्याप्ति यदि अंतरिक्ष में है, तो उनके समक्ष तमाम चुनौतियाँ भी हैं। महिला सशक्तिकरण का शंखनाद यदि चरम पर है, तो इसके अंतर्विरोध भी सक्रिय हैं। परिवार, समाज और राजनीति में स्त्री चेतना का विकास हुआ है, तो इनके सरोकार भी आत्मकेंद्रित होने को विवश हैं। ऐसी पृष्ठभूमि में 21वीं सदी के कथा-साहित्य में प्रतिरोध को बहुआयामी सृजनात्मकता उपलब्ध हुई है। इस दिशा में स्त्री-प्रतिरोध महज स्त्री के द्वारा स्त्री के हित में किए गए प्रतिरोध तक सीमित नहीं है, स्त्री के द्वारा मानव सभ्यता के हित में किया गया प्रतिरोध भी है, जिससे 21वीं सदी का कथा साहित्य समृद्धि को प्राप्त है। यही कारण है कि कथा साहित्य में 21वीं सदी के प्रारम्भिक दो दशकों के चयनित उपन्यास और कहानी को केंद्र में रखकर स्त्री-प्रतिरोध की मुकम्मल पहचान प्रस्तुत शोध-ग्रंथ का अभीष्ट है।

प्रस्तुत शोध का पहला अध्याय 'स्त्री प्रतिरोध : अवधारणा, परंपरा और प्रगति' शीर्षक से है। इसके दो भाग हैं, जिसमें सर्वप्रथम प्रतिरोध व स्त्री-प्रतिरोध के संरचनागत स्वरूप की पहचान की गई है, तो दूसरे भाग में परंपरा से प्रगति में स्त्री-प्रतिरोध के बदलते स्वरूप पर कथा साहित्य की बदलती पृष्ठभूमि में विचार किया गया है। विमर्श के नाम पर पक्ष विशेष द्वारा निर्मित स्वर समग्रता के अभाव में शोर में बदलने लग जाए, तब इसकी मौलिक संरचना के विकास में प्राण तत्व प्रतिरोध की मुकम्मल पहचान अनिवार्य हो जाती है। इस पहचान के तहत सहज स्वाभाविक प्रतिक्रिया-प्रतिकार, प्रतिशोध-प्रतिरोध, सत्ता-प्रतिसत्ता, शक्ति-प्रतिशक्ति, वर्चस्व-प्रतिवर्चस्व के परस्पर संबंधों की यथास्थिति को उसकी ऐतिहासिक परिणति के साथ 21वीं सदी में इसके बहुआयामी विकास को कथा-साहित्य के संदर्भ में विषय बनाया गया है। इस अध्याय में प्रतिरोध का तात्विक विवेचन करते हुए नैतिकता, मूल्य, परंपरा, संस्कृति, सत्ता, प्रतिसत्ता, प्रतिशक्ति, अस्मिता व अस्तित्व की पहचान की गई है और साहित्य में प्रचलित विभिन्न विचारधाराओं उग्र-स्त्रीवाद, उदार-स्त्रीवाद, मनोविश्लेषणवाद, समाजवाद, आधुनिकता व उत्तर आधुनिकतावाद के वैचारिक परिदृश्य में प्रतिरोध की

पहचान की गई है। वैदिक और उत्तर वैदिक काल, बौद्ध धर्म की थेरियाँ, जैन धर्म, आदिकाल, भक्तिकाल में कबीर, मीरा, तुलसी से लेकर रीतिकाल में बिहारी तक तथा कथा साहित्य में स्वतंत्रतापूर्व व स्वतंत्र्योत्तर कथा संसार में स्त्री-प्रतिरोध को विषय बनाया जाता रहा है। प्रेमचंद, जैनेंद्र, प्रसाद, यशपाल, कमलेश्वर, मन्नू भंडारी, उषा प्रियंवदा, मृदुला गर्ग के साहित्य में स्त्री-प्रतिरोध के स्वरूप की पहचान करते हुए 21वीं सदी में गीताश्री, अल्पना मिश्र, सुश्री शरद सिंह, अशफाक अहमद, कृष्ण बलदेव वैद, यादवेन्द्र शर्मा चंद्र, कमल कुमार, मनीषा कुलश्रेष्ठ, कविता वर्मा, किरण सिंह, उषा किरण खान, शिल्पी झा, जयंती रंगनाथन, मैत्रेयी पुष्पा, रजनीगुप्त, मनीषा पांडे, ज्योति सिंह, विभा रानी, ममता कालिया, चित्रा मुद्गल, जयश्री राय द्वारा प्रतिरोध को 'प्रतिशोध' के प्रचलित रूप से आगे संतुलित रूप में विषय बनाया गया है।

शोध का दूसरा अध्याय 'प्रेम-काम का द्वंद्वमूलक प्रतिरोध' शीर्षक से है। स्त्री-प्रतिरोध का सबसे नजदीकी और विवादास्पद मामला प्रेम-काम के संबंध को लेकर रहा है। ऐसे में प्रेम व काम के स्त्री व पुरुष अर्थ को इस अध्याय में प्रतिरोध की मुकम्मल पहचान की दिशा में देखा गया है। दांपत्य, दांपत्येतर, लिव-इन, जिगोल से सेल्फ सेक्स (आत्मरति) तक के संदर्भ का इस अध्याय में विवेचन करते हुए इसमें किसी एक पक्ष को दोषी ठहराने की जगह इसके मूल में निहित 'फैंटेसी निर्मित रूढ़ मन' की पहचान की गई है। सिर्फ स्त्री के यौनिक प्रतिरोध की दिशा में इन संदर्भों को नहीं देखा गया है, बल्कि प्रतिरोध के नाम पर नैतिकता के निजीकरण से प्रदूषित मनमर्जी व रूढ़ मन को विषय बनाया गया है। स्त्री-पुरुष के बीच प्रेम-काम का मामला अत्यंत संवेदनशील है। इसमें एक को दोषी ठहरा दूसरे को सुखी कर पाना संभव नहीं है, बल्कि स्वस्थ संबंध की दिशा में इसके कारणों की पड़ताल व संस्कार की जरूरत है, यह प्रयास 21वीं सदी में 'एक रात', 'लहरों की बांसुरी', 'ताप', 'कस्बाई सिमोन', 'तिनका तिनके पास', 'स्टॉरी- स्टॉरी नाइट्स', 'पिछला दरवाजा', 'कथा के गैरजरूरी प्रदेश में', 'विष्णु ही शिव है', 'सखी-सहेली', 'गोरिल्ला प्यार', 'महुआ मदन रस टपके रे', 'जी-मेल एक्सप्रेस', 'जूनियर जिगोलो', 'औरत जो नदी है' में किया गया है। इसके वाबजूद आज तक आलोचना, समीक्षा एवं शोध में प्रतिरोध को एकरेखीय दिशा प्रदान की गई है, जिसे प्रस्तुत शोध में समग्रता प्रदान की गई है।

शोध का तीसरा अध्याय 'घरेलू महिला कामगार का प्रतिरोध' शीर्षक से है। 'हाशिया' विमर्श का एक महत्वपूर्ण अध्याय है, लेकिन मुख्यधारा के बीच का हाशिया एक नया अध्याय है। हाशिये का प्रतिरोध स्थापित है, तो मुख्यधारा के बीच घरेलू महिला कामगार का प्रतिरोध सर्वाधिक द्वन्द्वमूलक। इसके साथ ही साहित्य, आलोचना, शोध में भी उपेक्षित ही रहा है। आज भूमंडलीकरण के बाद यह वर्ग मध्यवर्ग के बीच हवा-पानी की तरह जरूरी हो गया है, लेकिन ना तो इनकी समस्या कानूनी प्रश्न ही बन पाया है और न ही साहित्य में मौजूद होते हुए भी यह वर्ग शोध का विषय ही बन पाया है। स्त्री-विमर्श और इसी क्रम में इनका प्रतिरोध भी वर्ग विशेष के प्रतिरोध तक सीमित हो गया। फलत: स्त्री-प्रतिरोध को वर्गीय खाँचें से बाहर निकालकर समग्रता में देखने और कानूनी पटल पर इनके हित को केंद्र में लाने के उद्देश्य से इस शोध में इन्हें

अध्याय बनाया गया। इस अध्याय में घरेलू महिला कामगारों के काम के प्रतिरोध के विविध आयाम — काम के प्रति, मालिक के प्रति, मालकिन के प्रति व मध्यवर्गीय परिवार व कानून का ऐसे कामगारों के प्रति दैहिक, मानसिक व शारीरिक स्तर पर प्रतिरोधी आचरण को विषय बनाया है। मध्यवर्ग के बीच हाशियाकृत होने के कारण मध्यवर्गीय सुख-सुविधाओं के प्रति इनकी लालायित दृष्टि अपने आप में अपनी जीवनशैली के प्रति इनके प्रतिरोध को मजबूत करता है, तो इनके आचरण से प्रभावित, प्रताड़ित व मजबूर मध्यवर्ग की यथास्थिति मध्यवर्ग का इनके प्रति प्रतिरोधी पृष्ठभूमि तैयार कर रही है, जिसे 'एक नौकरानी की डायरी', 'लौट आओ तुम!', 'डाउनलोड होते हैं सपने', 'मोह,माया,मंडी', 'रोशनी के अच्छे दिन', 'बराबरी का खेल', 'उमा-महेश', 'नाम में बहुत कुछ रखा है', 'सुनंदा छोकड़ी की डायरी', 'निश्चय', 'माई री मैं टोना कारियो' में मूल्यांकित किया गया है।

शोध का चौथा अध्याय 'स्त्री का राजनीतिक प्रतिरोध' शीर्षक से हैं। स्त्री के मानवीय स्वरूप की संपूर्ण पड़ताल के लिए स्त्री के कर्ता पक्ष की पड़ताल जरूरी हो जाती है। इसे ही ध्यान में रखते हुए स्त्री-प्रतिरोध की दिशा में स्त्री के राजनीतिक प्रतिरोध को शोध में अध्याय बनाया गया है। जिसमें स्त्री-राजनीति के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए राजनीतिक रणनीति व आरक्षण के तहत राजनीति में आने वाली व लाई जाने वाली स्त्रियों के साथ महत्वाकांक्षा, जनकल्याण के उद्देश्यपरक आयाम और मजबूत पारिवारिक पृष्ठभूमि (सॉलिड बैकग्राउंड) के तहत आ रही स्त्रियों को प्रतिरोध की दिशा में देखा गया है। राजनीति में स्त्री के प्रवेश और प्रगति को लेकर परिवार, समाज के साथ-साथ पुरुष नेताओं के आचरण स्त्री-प्रतिरोध के विषय बनते हैं। परिवार और समाज की पुरुषवादी सोच बाधा बनती है, तो स्त्री देह के प्रति नेताओं की लोलुपता एक विडंबना बनकर सामने आती है, इससे आगे इसी देह को राजनीति में प्रगति का जरिया बनाने की व्यावहारिक पहल को भी विषय बनाया गया है। समग्रता में इन सब का शोधपरक मूल्यांकन 'हसीनाबाद', 'ये आम रास्ता नहीं', 'त्रिया हठ', 'अग्निलीक', 'तैंतीस परसेंट', 'दांव' ' यीशू की कीलें' के परिप्रेक्ष्य में हुआ है।

शोध का पांचवां अध्याय 'सभ्यता का संकट और स्त्री प्रतिरोध' शीर्षक से हैं। हंटिंगटन ने सभ्यता के संकट का विचार प्रस्तुत किया और आल्विन टॉफलर ने 'न्यू वेब', 'फ्यूचर शॉक' पुस्तक लिखकर स्पष्ट कर दिया कि कैसे भूमंडलीकरण के बाद जो नई सभ्यता आएगी उसमें हमारा परिवार, समाज, बाजार के अनुकूल स्वयं को 'ट्यून' करेगा। हम 'कंज्यूम कल्चर' के उपभोक्ता बन जाएंगे। जहां भौतिक स्तर पर तो समृद्ध होंगे, पर चेतना के स्तर पर शून्य होने लगेंगे। परिवार, समाज की इकाई न रहकर उसके परिणाम में बदल जाएगा और आज हम इस सभ्यता की चपेट में आ चुके हैं। कभी इसके अभिशप्त रहे और आज हम इसके अभ्यस्त हो चुके हैं। ऐसे में स्त्री लेखन ने ना केवल इस संकट को पहचाना, बल्कि बच्चे, युवा, वृद्ध, कामकाजी व घरेलू स्त्री, धर्म, विस्थापन, विज्ञापन संस्कृति, नशा, तस्करी, अपराधीकरण के संदर्भ में प्रतिरोधी स्वर को मजबूत भी किया। साथ ही हाशिये का समाज दलित, आदिवासी, किन्नर के प्रतिरोध को भी स्त्री-लेखन ने विषय बनाया।

परिणामत: 21वीं सदी स्त्री-प्रतिरोध का स्त्री के लिए किए गए प्रतिरोध से इतर संदर्भ को अपना प्रस्थान बना बहुआयामी भी हो गया है। इसे 'लेडी बॉस','एक ब्रेक के बाद','शेष कादंबरी','दो पन्ने की औरत','बेंच पर बूढ़े','गिलिगडु','काली कलूटी','सेज पर संस्कृति','कल्चर-वल्चर','मरंग गौड़ा नीलकंठ हुआ','तुम्हें बदलना ही होगा','अस्थि फूल','गुलाम मंडी','पोस्ट बॉक्स नंबर 203 नाला सोपारा','सांझा','लोड शेडिंग','अनझिप आंखे' रचनाओं के संदर्भ में इस अध्याय में देखा गया है।

शोध का छठा अध्याय 'स्त्री-भाषा में प्रतिरोध : विविध आयाम' शीर्षक से है। इसके अंतर्गत 21वीं सदी के चयनित कथा साहित्य में स्त्री-प्रतिरोध के भाषिक पक्ष को दो भाग में बांटकर देखा गया है। भाषाई प्रतिरोध का पहला संदर्भगत आयाम है, तो दूसरा संरचनागत। संदर्भगत आयाम के अंतर्गत स्त्री-प्रतिरोध के दैहिक, राजनीतिक, घरेलू महिला कामगार, सभ्यता का संकट शामिल हैं। इसमें प्रतिरोध की स्त्री भाषा, प्रतिक्रियावादी पुरुषभाषा, हाशिये की ठस्सेदार भाषा की पहचान की गई है, साथ ही भाषिक स्वरूपों के अंतर्गत प्रतीक, बिंब, मिथक, नए व पुराने मुहावरे व संकेत में प्रतिरोध को मजबूत करती 'डॉट्स' की भाषा की संरचनागत उपलब्धि को स्थापित किया गया है।

उपर्युक्त अध्याय के साथ शोध निष्कर्ष के रूप में उपसंहार लिखा गया है। इसके अंतर्गत शोध की उपलब्धियों के साथ इसकी सीमा की ओर दिशा निर्देश करते हुए संभावित शोध कार्य को रेखांकित भी किया गया है।

विषयानुक्रमणिका

शोध-सार

प्रस्तावना

समस्या कथन

समस्या औचित्य

शोध उद्देश्य

शोध-प्रविधियाँ

शोध ग्रंथावलोकन

शोध अंतराल

पहला अध्याय **1-69**

स्त्री-प्रतिरोध : अवधारणा, परंपरा और प्रगति

1. प्रतिरोध

1.1. प्रतिरोध : सामान्य अर्थ – शब्दकोश (हिन्दी, अंग्रेजी)

1.2. विशेष अर्थ – भारतीय चिंतक एवं पाश्चात्य चिंतक

1.3. प्रतिरोध : एक तात्विक विवेचन

1.3.1. नैतिकता

1.3.2. मूल्य

1.3.3. परंपरा और संस्कृति

1.3.4. सत्ता

1.3.5. प्रतिसत्ता

1.3.6. प्रतिशक्ति

1.3.7. अस्मिता और अस्तित्व

2. साहित्य और प्रतिरोध में संबंध

3. स्त्री-प्रतिरोध

3.1. विद्वानों के अनुसार स्त्री-प्रतिरोध

3.2. विचारधारा और स्त्री-प्रतिरोध

3.2.1. स्त्रीवादी विचारधारा में निर्मित स्त्री-प्रतिरोध का स्वरूप – क. उग्र स्त्रीवाद।
ख. उदारवादी स्त्रीवाद।
3.2.2 मार्क्सवादी विचारधारा में निर्मित स्त्री-प्रतिरोध का स्वरूप।
3.2.3 समाजवादी विचारधारा में निर्मित स्त्री-प्रतिरोध का स्वरूप।
3.2.4 अस्तित्ववादी व व्यक्तिवादी विचारधाराओं से निर्मित प्रतिरोध स्त्री-प्रतिरोध का स्वरूप।
3.2.5 मनोविश्लेषणवादी विचारधारा में निर्मित स्त्री-प्रतिरोध के स्वरूप।
3.2.6 आधुनिकतावादी विचारधारा से निर्मित स्त्री-प्रतिरोध का स्वरूप।
3.2.7 उत्तर-आधुनिकतावादी विचारधारा से निर्मित स्त्री-प्रतिरोध का स्वरूप।

3.3. स्त्री-प्रतिरोध के प्रकार

3.3.1 प्रेम-काम का द्वंद्वमूलक प्रतिरोध
3.3.2. घरेलू महिला कामगार का प्रतिरोध
3.3.3. स्त्री-प्रतिरोध का राजनीतिक संदर्भ
3.3.4. सभ्यता का संकट और स्त्री-प्रतिरोध
3.3. 5. स्त्री-प्रतिरोध का भाषाई संदर्भ

4. स्त्री-प्रतिरोध : परंपरा और प्रगति

4.1. वैदिक एवं उत्तर वैदिक काल में स्त्री-प्रतिरोध : परंपरा एवं प्रगति
4.2. बौद्ध धर्म में स्त्री- प्रतिरोध : परंपरा एवं प्रगति
4.3. जैन धर्म में स्त्री-प्रतिरोध : परंपरा और प्रगति
4.4. आदिकाल, भक्तिकाल और रीतिकाल में स्त्री-प्रतिरोध : परंपरा और प्रगति
4. 5. नवजागरणकाल में स्त्री-प्रतिरोध : परंपरा और प्रगति
4.6. कथा साहित्य में स्त्री-प्रतिरोध स्वतंत्रता पूर्व : परंपरा और प्रगति
4.7. स्वातंत्र्योत्तर कथा-साहित्य में स्त्री-प्रतिरोध : परंपरा और प्रगति
4.8. 21वीं सदी के कथा साहित्य में स्त्री-प्रतिरोध : परंपरा और प्रगति

- **निष्कर्ष**

दूसरा अध्याय **70 -134**

प्रेम-काम का द्वंद्वमूलक प्रतिरोध

- **भूमिका**

2.1. प्रेम की परिकल्पना

2.2. काम का आचरणमूलक अवधारणा

2.3. प्रेम-काम का स्त्री अर्थ

2.4. प्रेम-काम का पुरुष अर्थ

2.5. प्रेम-काम संबंध में फैंटेसी की भूमिका

2. 5.1. प्रेम-काम की फैंटेसी : स्त्री दृष्टि में

2.5.2. प्रेम-काम की फैंटेसी : पुरुष दृष्टि में

2.6. प्रेम-काम संबंध में परिवेश की भूमिका

2.7. प्रेम-काम संदर्भ में नारीवादी दृष्टिकोण

2.8. दांपत्य में प्रेम-काम का प्रतिरोधी स्वर

2.8.1. दांपत्य की अवधारणा

2.8.2. दांपत्य में पुरुष के प्रति स्त्री दृष्टि (प्रेम-काम के मामले में)

2.8.3. दांपत्य में स्त्री के प्रति पुरुष दृष्टि (प्रेम-काम के मामले में)

2.9. विवाहेतर संबंध

2.9.1. प्रेम या मन के अभाव में विवाहेतर संबंध का प्रस्थान

2.9.2. काम रहित प्रेम, विवाहेतर का प्रस्थान

2.9.3. प्रतिशोध प्रेरित विवाहेतर संबंध

2.9.4. लाभ प्रेरित व समझौता प्रेरित विवाहेतर संबंध

2.9.5. नए के प्रति आकर्षण व सभ्यता के संकट से उत्पन्न विवाहेतर संबंध

2.10. सहजीवन (लिव इन रिलेशन) और प्रतिरोध

2.10.1. लिव-इन रिलेशन को लेकर कानून

2.10.2 कथा-साहित्य में लिव-इन की परंपरा

2.10.3. लिव-इन संबंध की ओर बढ़ने के कारण

2.10.3.1 विवाह संस्थान की त्रुटियों और निरर्थकता के प्रतिरोध में लिव-इन

2.10.3.2 नए के प्रति आकर्षण और लिव-इन

2.10.3.3. महानगरों में आर्थिक बोझ कम करने के लिए लिव-इन

2.10. 4 लिव-इन संबंध के प्रति समाज का नजरिया

2.10.5. प्रेम-काम के लिव-इन मामले में स्त्री प्रतिरोध

2.11. जिगोलो : स्त्री प्रतिरोध का नया संदर्भ

2.11.1. पुरुष वेश्यावृत्ति की विडंबना और प्रतिरोध

2.11.2 पुरुष वेश्यावृत्ति और स्त्री-प्रतिरोध

2.12. आत्मरति (सेल्फ सेक्स) और स्त्री-प्रतिरोध

- **निष्कर्ष**

तीसरा अध्याय 135-181

घरेलू महिला कामगारों का प्रतिरोध

- **भूमिका**

3.1. घरेलू कामगार : आशय व स्थितियाँ

3.2. शहरीकरण, विकास और घरेलू कामगार का उदय

3.3. घरेलू कामगार : प्रकार और स्थितियाँ

3.4. काम के प्रति प्रतिरोधात्मक रवैया : मालकिन बनाम घरेलू कामगार

3.5. मध्यवर्गीय आचरण घरेलू कामगार के प्रति : प्रतिरोधमूलक

3.5.1. घरेलू कामगार बनाम मध्यवर्गीय सामाजिक नजरिया

3.5.2. घरेलू कामगार के प्रति मध्यवर्गीय गाली-गलौज व मारपीट का आचरण

3.5.3. मध्यवर्गीय अवसरवादी आचरण और घरेलू कामगार

3.5.4. घरेलू कामगारों के प्रति मध्यवर्गीय अच्छा आचरण

3.5.5. मध्यवर्गीय समझौतापरक आचरण

3.6. घरेलू महिला कामगार का आचरण मध्यवर्ग के प्रति

3.6.1 मालिक सदस्य के प्रति घरेलू महिला कामगार का आचरण

3.6.2 मालकिन सदस्य के प्रति घरेलू महिला कामगार का आचरण

3.7. घरेलू महिला कामगार का शोषण व प्रतिरोध

3.7.1. दैहिक शोषण

3.7.2. श्रम का शोषण

3.7.3. मानसिक शोषण

3.8. घरेलू महिला कामगार के प्रति पुलिस-प्रशासन का नजरिया

3.9. घरेलू महिला कामगारों का अस्मिता-बोध व प्रतिरोध

3.10. घरेलू महिला कामगार : परिवार व प्रतिरोध

3.10.1. कामगार का अपना परिवार व प्रतिरोध

3.10.2. मालिक वर्ग का परिवार व प्रतिरोध

3.10.2.1. मालिक बनाम घरेलू महिला कामगार

3.10.2.2. मालकिन बनाम घरेलू महिला कामगार

3.11. मध्यवर्ग के बीच हाशियाकृत : मध्यवर्ग के प्रति लालायित

3.12. घरेलू महिला कामगार से प्रभावित और प्रताड़ित मध्यवर्ग

- **निष्कर्ष**

चौथा अध्याय **182-212**

स्त्री का राजनीतिक प्रतिरोध

- **भूमिका**

4.1. स्त्री-राजनीति का स्वरूप

4.2. महिला आरक्षण व स्त्री-राजनीति

4.2.1. महिला आरक्षण बनाम पुरुष राजनेता का नजरिया

4.2.2. महिला आरक्षण बनाम महिला राजनेता का नजरिया

4.3. राजनीति में महिलाओं का आगमन

4.3.1. राजनीतिक रणनीति व स्त्री का राजनीतिक प्रवेश

4.3.2. महत्वाकांक्षा की पूर्ति हेतु राजनीतिक प्रवेश

4.3.3. जनकल्याण के उद्देश्यपरक आयाम के तहत आई स्त्रियाँ

4.3.4. मजबूत पारिवारिक पृष्ठभूमि (सॉलिड बैकग्राउंड) के तहत राजनीति में आई स्त्री

4.4. स्त्री-राजनीति : परिवार व समाज, प्रतिरोधमूलक

4.5. स्त्री देह की राजनीति

4.5.1. पुरुष राजनेता और स्त्री देह

4.5.2. स्त्री देह : सुरक्षाकवच बनाम स्त्री-राजनीति

4.6. चुनाव प्रचार सत्ता व व्यवस्था : पुरुष राजनीति बनाम महिला राजनीति ,

4.7. दलगत अनुशासन व स्त्री-राजनीति

4.8. स्त्री-राजनीति व वोटरों की अपेक्षा

4.9. स्त्री-राजनीति का भविष्य : समझौता व पलायन

- **निष्कर्ष**

पाँचवां अध्याय **213-263**

सभ्यता का संकट और स्त्री-प्रतिरोध

- **भूमिका**

5.1. सभ्यता का संकट : अवधारणा और स्वरूप

5.2. प्रतिरोध का परिदृश्य : परिवार एवं समाज

5.2.1. पारिवारिक संबंध और संकट

5.2.1.1. परिवार में बच्चे

5.2.1.2. परिवार में युवा

5.2.1.3. परिवार में वृद्ध

5.2.1.4. परिवार में स्त्री

5.2.2 प्रतिरोध के परिदृश्य में समाज

5.2.2.1 कामकाजी स्त्री और संकट

5.2.2.2 विकास विस्थापन व अकेलापन

5.2.2.3 शिक्षा व सांस्कृतिक संस्थान

5.2.2.4. धर्म और समाज

5.2.2.5. नैतिकता का निजीकरण और समाज में बदलते स्त्री-पुरुष संबंध

5.2.2.6. तनाव में युवा वर्ग

5.3. प्रतिरोध का बाजारवादी परिदृश्य

5.3.1. बाजार निर्मित समाज

5.3.2. विज्ञापन संस्कृति, प्रिंट मीडिया व जनसंचार माध्यम

5.3.3. सौंदर्य के बदलते प्रतिमान (सौंदर्य का विकृतिकरण)

5.3.4. नशा, मानव तस्करी व अपराधीकरण की ओर बढ़ता समाज

5.4. हाशिये का संकट और प्रतिरोधी स्वर

5.4.1. आदिवासी समाज और संकट

5.4.2. दलित संकट और संघर्ष

5.4.3. किन्नर संकट और संघर्ष

- **निष्कर्ष**

छठा अध्याय **264-291**

स्त्री-भाषा में प्रतिरोध : विविध आयाम

- **भूमिका**

6.1. भाषा का अर्थ

6.2. स्त्री-भाषा की अवधारणा

6.3. भाषाई प्रतिरोध के संदर्भगत आयाम

6. 3.1. भाषाई प्रतिरोध का दैहिक संदर्भ

6. 3.2. राजनीतिक संदर्भ में प्रतिरोध की भाषा

6.3.3. भाषा का घरेलू महिला कामगार संदर्भ

6.3.4. प्रतिरोध की भाषा में सभ्यता का संकट

6. 4. भाषाई प्रतिरोध के संरचनागत आयाम

6.4.1. डॉट्स की भाषा

6.4.2. भाषा में प्रतीक, बिंब व मिथक

6.4.2.1. प्रतीक

6.4.2.2. बिम्ब

6.4.2.3. मिथक

6. 5. मुहावरे और लोकोक्तियाँ

- **निष्कर्ष**

उपसंहार **292-303**

संदर्भ-ग्रंथ सूची **304-314**

परिशिष्ट **315**

शोध-सार

प्रस्तावना –

मनुष्य द्वारा प्राकृतिक एवं अर्जित अस्तित्व के स्वाभाविक विकास में उत्पन्न अवरोध के विरुद्ध किया गया विरोध प्रतिरोध कहलाता है। जीवन की यही प्रक्रिया सभ्यता के विकास के लिए प्राण तत्व के समान है। इस नाते प्रतिरोध नई अवधारणा नहीं होने के बावजूद युग-संदर्भ में नए स्वरूप अनिवार्यत: ग्रहण करता है। प्रस्तावित शोध शीर्षक '21वीं सदी के हिन्दी कथा साहित्य में स्त्री-प्रतिरोध (प्रारम्भिक दो दशकों के चयनित कथा साहित्य के संदर्भ में)' के अंतर्गत वर्षों से चले आ रहे प्रतिरोध के स्त्री-स्वर की पहचान भविष्य का प्रस्थान है, तो साथ ही उसकी बेहतर परिकल्पना को संभव बनाने का महत्वपूर्ण स्रोत भी। इस दिशा में प्रचलित नीति, धर्म, समाज, राष्ट्र, संस्कृति, सभ्यता संबंधी मान्यताओं के प्रति विरोध अनिवार्य चरण हैं, लेकिन इस विरोध के महज प्रतिशोध में बदल जाने की भी संभावना बनी रहती है। इससे बचने के लिए विरोध का 'प्रतिबोध' से समृद्ध होना जरूरी है। नारीवाद के नाम पर उग्र-नारीवाद का चलन जितना सुखद रहा, उतना ही विडंबनात्मक भी। पुरुष से बराबरी की सनक में स्त्री-स्वतंत्रता का मानक भावना और विचार के स्तर पर नैतिकता के निजीकरण से प्रदूषित होकर मनमर्जीपन के खेल में बदल गया। ऐसे में प्रतिरोध का स्वर निर्मित नहीं हो पाया और प्रतिरोध कहीं न कहीं प्रतिशोध बनकर रह गया।

स्त्री-प्रतिरोध का आशय स्त्री द्वारा ही स्त्री के हित में किया गया प्रतिरोध मात्र नहीं, बल्कि स्त्री द्वारा स्त्री से इतर तथा पुरुष रचनाकारों द्वारा भी स्त्री के हित में किया गया प्रतिरोध भी हमारा अभीष्ट है। इस प्रकार स्त्री-प्रतिरोध के तीन आयाम हैं — 1. स्त्री द्वारा स्त्री के हित में किया गया प्रतिरोध। 2.स्त्री द्वारा स्त्री से इतर मुद्दे पर किया गया प्रतिरोध और 3. पुरुष द्वारा स्त्री के हित में किया गया प्रतिरोध। स्त्री-पुरुष संबंध का पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक सहभागिता-प्रतिभागिता का मामला हो या व्यक्ति और समाज का वर्गीय संदर्भ में सामुदायिक पृष्ठभूमि पर राष्ट्रीय या वैश्विक संदर्भ ही क्यों ना हो, साहित्य में इन्हें सदा से विषय बनाया जाता रहा है। विशेष यह है कि 21वीं सदी में आकर स्त्री प्रश्न केवल संवेदना का विषय नहीं रह गया, बल्कि उसको वैचारिक भूमि भी प्रदान की गई और कोरी संवेदना से ऊपर उठकर निजीकृत नैतिकता से प्रदूषित होते प्रतिरोध को प्रतिबोध की भूमि मिली। 1980-85 से बन रही भूमंडलीकरण की पृष्ठभूमि के बाद इसके साथ हमारा अग्रसर होना जारी रहा और 2000 के बाद इसके प्रति हम नियतिबद्धता को विवश हो गए। इस विवशता के विरुद्ध पारंपरिक स्त्री-प्रतिरोध को समग्रता उपलब्ध हुई, तो साथ ही स्त्री अन्य सामाजिक, राष्ट्रीय एवं वैश्विक सरोकारों के प्रति सजग हो गई। इस सजगता के प्रति समग्र कथा-साहित्य संवेदित रहा। प्रस्तुत शोध में 21वीं सदी के प्रारंभिक दो दशकों की चयनित कहानियों और उपन्यासों के आलोक में स्त्री-प्रतिरोध के प्रतिबोध सहित नए स्वर का प्रेम-काम, राजनीति, घरेलू महिला कामगार, सभ्यता-संस्कृति एवं भाषाई संदर्भ के विविध आयामों में शोधपरक आकलन किया गया है।

समस्या कथन —

1. स्त्री-प्रतिरोध के स्वर को स्त्री द्वारा किया गया और स्त्री के पक्ष में किए गए प्रतिरोध के रूप में देखा जाता रहा है और दोनों ही पक्ष अधिकांश में पुरुष के प्रति प्रतिवादमूलक रहा। दूसरी ओर पुरुष रचनाकार स्त्री के पक्ष में संवेदना से आगे नहीं बढ़ पाए, जबकि आज 21वीं सदी का कथा-साहित्य केवल स्त्री के द्वारा पुरुष के प्रति ना तो प्रतिवादमूलक है और ना ही पुरुषों द्वारा संवेदनामात्र की मूसलाधार वृष्टि, बल्कि स्त्री-प्रतिरोध के स्वर को लैंगिक स्तर से ऊपर वैचारिक परिदृश्य में समग्रता उपलब्ध कराई गई है। स्त्री-पुरुष संबंध में नई नैतिकता के नाम पर निर्मित और स्थापित हो रही प्रतिक्रियात्मक, प्रतिशोधात्मक और अब प्रतिबोधात्मक प्रतिरोध की निर्मिति हो रही है, तो इसके पीछे निहित कारणों को शोध के अंतर्गत देखना जरूरी रहा।

2. आज घरेलू महिला कामगार मध्यवर्गीय परिवार में हवा-पानी की तरह जरूरी हो गए हैं, लेकिन इनके प्रति मध्यवर्गीय आचरण में बदलाव के स्वर और संवैधानिक प्रक्रिया में इनके अधिकार की बात संसद में नहीं टिक पा रही है, तो दूसरी ओर आज मध्यवर्ग भी अपनी नियतिबद्धता में इनसे उत्पन्न विवशता को झेलने को बाध्य है। हिन्दी कथा साहित्य में इसकी दिशा और दशा पर विचार जरूरी रहा।

3. क्या कारण है कि सत्ता और संवैधानिक प्रक्रिया में 'पात्र' से 'कर्ता' के रूप में स्त्री का प्रवेश हो रहा है, वहीं कथा-साहित्य में सकारण पलायन और नहीं तो शोषण से समझौता नियति के रूप में प्रस्तुत है। साहित्य और समाज के इस द्वन्द्वमूलक आयाम की पड़ताल के लिए शोध की प्रयोजनीयता स्वयं सिद्ध रही।

4. आज भूमंडलीकृत दौर में सभ्यता प्रदूषित हो रही है। संबंध अर्थ केंद्रित हो रहे हैं। बच्चे, बूढ़े, घर-परिवार में अकेले हो रहे हैं, तो युवक स्व-केंद्रित, इसके पीछे के कारणों की तलाश भारतीय परिप्रेक्ष्य में जरूरी रही।

5. बदलते समय और उसके साथ 21वीं सदी के बदलते संदर्भ में स्त्री-प्रतिरोध का स्वर जिस रूप में निर्मित हो रहा है, उसके साथ भाषा की संगति को देखना प्रतिरोध को मुकम्मल स्वरूप देने के लिए जरूरी रहा।

समस्या औचित्य —

स्त्री-पुरुष में प्रेम और काम का संबंध हो या स्त्री की राजनीतिक भागीदारी और उसकी राजनीति का सवाल, मध्यवर्गीय परिवार के घरेलू महिला कामगारों का संदर्भ या सभ्यता का संकट वर्तमान में साहित्य और समाज दोनों ही पक्षों के लिए इन विषयों पर विचार जरूरी रहा।

21वीं शताब्दी के प्रथम दो दशकों में प्रेम-काम में स्त्री-दृष्टि के साथ पुरुष-दृष्टि को स्त्री-लेखन में विषय बनाना इसलिए जरूरी रहा क्योंकि जब यह संबंध एकाकी नहीं हैं, तो विभाजन कर एक पक्ष में इसे देखने से न केवल स्त्री-विमर्श सतही और एकपक्षीय रह जाएगा, बल्कि इससे प्रतिरोध की जगह प्रतिशोध का ही जन्म होगा। 21वीं सदी के कथा साहित्य में इस स्थिति को समझने की न केवल समझ नजर आ रही है, बल्कि स्त्री-

लेखन में इस सतही दृष्टिकोण का प्रतिरोध भी नजर आ रहा है। स्त्री-मुक्ति अगर देह-मुक्ति है, तो पुरुष को भी इस देह से मुक्त करने का प्रयास स्त्री द्वारा करना जरूरी है। सिर्फ प्रतिशोध प्रेरित रह जाना कुंठित समाज का निर्माण ही करेगा। साथ ही अवांछित घटनाओं को बल मिलेगा। ऐसे में स्त्री-प्रतिरोध के लिए 'नैतिकता के निजीकरण' और 'मनमर्जीपन' से ऊपर स्त्री-पुरुष संबंध में समता की स्थापना जरूरी रही। घरेलू महिला कामगार मध्यवर्गीय कामकाजी महिलाओं के परिवार की संजीवनी बूटी है। इसके वाबजूद ना तो संविधान में इनके अधिकारों को लेकर कानून है, और ना ही विमर्श में इसके लिए अपेक्षित प्रयास किए गए हैं और शोध में तो यह समुदाय पूरी तरह से उपेक्षित ही है। अपने घर-परिवार में और कार्यस्थल में असुरक्षित, ऊपर से मध्यवर्गीय जीवन शैली के प्रति आकृष्ट हो उस जैसे जीवन जीने की लालसा और न पाने की कुंठा में जीने की विवशता है। दूसरी ओर आज मध्यवर्गीय कामकाजी महिलाओं का परिवार इनके कारण उत्पन्न समस्याओं को नियतिबद्ध तरीके से झेलने को विवश है। ऐसे में इन पर विचार जरूरी हो गया। राजनीति में स्त्री की नेत्री और मंत्री पक्ष की राजनीति के साथ घटित होने वाली राजनीति न केवल कथा साहित्य का विषय है, बल्कि समाजशास्त्र और राजनीति-शास्त्र के लिए भी जरूरी है। भूमंडलीकृत वातावरण में कुंठित होती पूरी सभ्यता के संकट को समझने के लिए और उसकी दिशा की पड़ताल के लिए '21वीं सदी के हिन्दी कथा साहित्य में स्त्री-प्रतिरोध' विषय पर प्रथम दो दशक को ध्यान में रखकर शोध करना समय की मांग रही, ताकि साहित्य के नए और जरूरी संदर्भ को समीक्षा और आलोचना से आगे शोध की नई दिशा मिल सके।

शोध उद्देश्य —

स्त्री-प्रतिरोध को एकाकी दृष्टिकोण से बाहर निकालकर 21वीं सदी के नए एवं जरूरी संदर्भों में मुकम्मल दिशाबोध के साथ शोध के निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किए गए है —

1. २१वीं सदी के संदर्भ में स्त्री-प्रतिरोध के स्वरूप एवं पक्षों की पहचान करना।

2. २१वीं सदी के हिंदी कथा साहित्य में स्त्री-प्रतिरोध के विभिन्न पक्षों को विश्लेषित करना।

3. स्त्री-प्रतिरोध के विभिन्न पक्षों पर संबंधित साहित्यकारों के दृष्टिकोण का मूल्यांकन करना।

4. स्त्री-प्रतिरोध की समसामयिक व्यावहारिक समस्याओं के निराकरण संबंधी निवारक बिंदुओं को स्पष्ट करना।

शोध प्रविधियाँ —

शोध कार्य की गुणवत्ता को बनाए रखने, संबंधित समस्या के कारण व परिणामों की तलाश और प्राप्त निष्कर्ष की विश्वसनीयता के लिए जरूरी है कि उचित शोध प्रविधि का चयन किया जाए। प्रस्तावित शोध कार्य को करने के लिए और इससे प्राप्त निष्कर्ष की विश्वसनीयता के लिए निम्नलिखित शोध प्रविधियों का प्रयोग आवश्यकतानुसार किया गया है —

1. **समाजशास्त्रीय शोध प्रविधि** — समाजशास्त्र घर-परिवार और समाज से संबंधित है, जिसमें व्यक्ति अपना जीवन व्यतीत करता है अर्थात् व्यक्ति के व्यक्तित्व के गठन में समाज की सबसे बड़ी भूमिका होती है। साहित्य का संबंध व्यक्ति और उससे निर्मित समाज से है। अत: साहित्य के अध्ययन के लिए समाज के संदर्भ में उसे देखते हुए अध्ययन अनिवार्य बन जाता है। शोध की समाजशास्त्रीय पद्धति के अंतर्गत घर-परिवार और समाज के आयामों का अध्ययन किया जाता है। प्रस्तावित शोध में स्त्री-प्रतिरोध के स्वर को भी समाजशास्त्रीय पद्धति के द्वारा घर-परिवार और सामाजिक संरचना के अंतर्गत देखते हुए अध्ययन किया गया है।

2. **मनोवैज्ञानिक शोध प्रविधि** — मनोविज्ञान मानव मन के विज्ञान से संबंध रखता है जिसके अंतर्गत मन: स्थितियों का अध्ययन किया जाता है। मन: स्थितियों का अध्ययन व्यक्ति के व्यवहार को निर्धारित करने के प्रमुख कारकों में से एक है। प्रस्तावित शोध में स्त्री-प्रतिरोध के स्वर के विविध आयाम प्रेम-काम का द्वन्द्व, राजनीतिक प्रतिरोध, घरेलू कामगारों का प्रतिरोध या प्रदूषित हो रही सभ्यता के संकट के खिलाफ मुखर हो रहे प्रतिरोध के स्वर को समझने के लिए मनोवैज्ञानिक पद्धति को आधार बनाया गया है।

3.**ऐतिहासिक शोध प्रविधि** — ऐतिहासिक शोध प्रविधि के अंतर्गत अतीत की सूचनाओं का प्रयोग वर्तमान की समस्या को समझने और उसके समाधान के लिए उपयोग किया जाता है। समस्या के कारण की ऐतिहासिक पड़ताल समस्या को सही तरीके से समझने और उसके समाधान को खोजने में सहायता प्रदान करती है। प्रस्तावित शोध में भी घर/परिवार व सामाजिक संरचना के उन आयामों की ऐतिहासिक पड़ताल की गई है, जो कथा साहित्य में स्त्री-प्रतिरोध के स्वर की पृष्ठभूमि तैयार करता है।

4. **तुलनात्मक शोध प्रविधि** — तुलनात्मक शोध पद्धति के अंतर्गत दो अलग-अलग समय, भाषा, लेखकों या परिवेश का आपस में तुलना करते हुए उनमें समानता और विषमता की खोज की जाती है। प्रस्तावित शोध में साहित्य में स्त्री-प्रतिरोध के स्वर के विभिन्न संदर्भों की 21वीं सदी की रचनाओं में पड़ताल के लिए, 21वीं शताब्दी के पहले के स्त्री-स्वर से उसकी तुलना की गई है।

<u>शोध ग्रंथावलोकन</u> —

1. छायावादयुगीन महिला गद्य लेखन में स्त्री चेतना का स्वरूप - ओमप्रकाश सिंह - जवाहरलाल नेहरू यूनिवर्सिटी, वर्ष 2006
2. आधुनिक हिंदी स्त्री लेखन में भाषा और स्त्री मुक्ति संघर्ष : प्रतिनिधि रचनाकारों और रचनाओं के संदर्भ में - कंचन भारद्वाज - जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, वर्ष 2006
3. महिला उपन्यासकारों में स्त्री मुक्ति चेतना - अनुपमा सिंह - वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय जौनपुर, वर्ष 2006

4. समकालीन स्त्री लेखन में स्त्री अस्मिता की तलाश – ऋतु त्रिपाठी - महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वर्ष 2007
5. आधुनिक नारी जीवन में संत्रास : महिला कथा लेखन के संदर्भ में - बबीता के - पांडिचेरी विश्वविद्यालय, वर्ष 2010
6. समकालीन हिंदी महिला कहानीकारों में स्त्री मुक्ति चेतना - शीला सिंह - पूर्वांचल यूनिवर्सिटी - वर्ष 2010
7. नारी विमर्श और अलका सरावगी का कथा साहित्य - प्रीति अवस्थी - सरदार पटेल यूनिवर्सिटी, वर्ष 2011
8. महिला कथाकारों के कथा साहित्य में स्त्री विमर्श (मैत्रेयी पुष्पा, मृदुला गर्ग, मृणाल पांडे के विशेष संदर्भ में)- श्रीमती सुमन वर्मा- वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय जौनपुर, वर्ष 2013
9. समकालीन महिला उपन्यास लेखन में स्त्री विमर्श से इतर सामाजिक सरोकार - रोहिणी अग्रवाल - महर्षि दयानंद युनिवर्सिटी - वर्ष 2013
10. वीं सदी के हिंदी उपन्यासों में स्त्री चिंतन का स्वरूप - पुष्पांजलि गुप्ता - महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ - वर्ष 2014
11. मधु कांकरिया के कथा साहित्य में स्त्री-विमर्श – रंजीता रा. परब - गोवा विश्वविद्यालय, वर्ष 2016
12. समकालीन हिंदी कहानी में स्त्री जीवन 1990- 2000 तक - पूनम कुमारी - त्रिपुरा युनिवर्सिटी , वर्ष 2017
13. समकालीन हिंदी उपन्यासों में अभिव्यक्ति के संकट और प्रतिरोधी चेतना - बाबू के विश्वनाथन - श्री शंकराचार्य यूनिवर्सिटी आफ संस्कृत, वर्ष 2018
14. समकालीन हिंदी-मलयालम महिला कहानीकारों की कहानियों में प्रतिरोधी चेतना (2000 से 2010 तक की कहानियों के विशेष संदर्भ में) – सजना बीगम के. एच - कोच्चि यूनिवर्सिटी ऑफ साइंस एंड टेक्नोलॉजी, वर्ष 2018
15. मृदुला गर्ग के कथा साहित्य में अस्मिता बोध - अजय कुमार साव - इंदिरा गांधी नेशनल ओपन यूनिवर्सिटी (इग्नू) - वर्ष 2018

<u>शोध अंतराल</u> —

अपने विषय से संबंधित शोध ग्रंथों का अवलोकन करने के उपरांत यह प्राप्त हुआ कि अब तक स्त्री-प्रतिरोध को लेकर जितने भी शोध ग्रंथ लिखे गए हैं, उनमें प्रेम-काम का संदर्भ हो, स्त्री-राजनीति हो, घरेलू महिला कामगार और सभ्यता-संस्कृति का स्वर हो प्रतिरोध की दिशा में एकपक्षीय वर्णन तक ही सीमित रहा। प्रेम-काम के संदर्भ में अब तक जितने भी शोध रहें, उसमें प्रतिरोध को स्त्री के प्रति संवेदनात्मक प्रतिरोध के रूप

में ही देखा गया है। यह विमर्श के अंतर्गत पुरुष/पति से प्रतिशोध में बदल गया है, जबकि आज की रचनाओं में लेखिकाओं द्वारा प्रेम-काम के संदर्भ में पुरुष-दृष्टि को लेकर भी विचार किया गया है। पुरुष-विनिर्माण और संस्कार की बात भी हो रही है, जिसपर अभी तक शोध-ग्रंथ में विचार नहीं किया गया है। राजनीतिक प्रतिरोध को जहाँ विषय बनाया गया है, वहाँ स्त्री-राजनीति के 'कर्ता' रूप का अभाव है। समीक्षा एवं आलोचना के अंतर्गत भी केवल यौन-संदर्भ पर ही विचार किया गया, जबकि 21वीं शताब्दी की रचनाओं में राजनीति में स्त्री 'पात्र' से 'कर्ता' की स्थिति में आ चुकी है। उसके द्वारा की जाने वाली राजनीति, दलीय प्रतिबद्धता, उसके चुनाव संबंधी मुद्दे, पुरुष राजनीति से कहाँ तक भिन्नता लिए हुए है, इस दिशा में एक भी शोध कार्य मेरी जानकारी में नहीं है। 21वीं सदी के संदर्भ में घरेलू कामगार को शोध का विषय नहीं बनाया गया है। डॉ0 अजय कुमार साव द्वारा इंदिरा गांधी नेशनल ओपन यूनिवर्सिटी (इग्नू) - वर्ष 2018' में 'मृदुला गर्ग के कथा साहित्य में अस्मिता बोध' शीर्षक से किए गए शोध कार्य में घरेलू कामगार पर एक अध्याय है, पर वह भी सिर्फ मृदुला गर्ग की रचनाओं पर केंद्रित है। अन्य रचनाकारों के लिए यहाँ अवसर संभव नहीं बन पाया। सभ्यता-संकट के अंतर्गत 21वीं सदी के नए संदर्भ वर्चुअल रिश्ते, जिगोलो (पुरुष वेश्यावृति), बाजार केंद्रित पारिवारिक-सामाजिक संरचना केन्द्रीय विषय रहे हैं। साथ ही किन्नर, आदिवासी, बालक, युवा, वृद्ध कथा-साहित्य में स्त्री-विमर्श के प्रतिरोधी स्वर के नए आयाम है। लेकिन इस दिशा में उनका यह प्रतिरोध शोधकार्य में उपेक्षित है, इस दिशा में मेरा शोध कार्य एक मौलिक प्रयास है।

मूलत: प्रचलित विमर्श का प्रस्थान एवं गंतव्य बिंदु अस्मिता है और अस्मिता का प्राणतत्व प्रतिरोध है। यह प्रतिरोध चलन में जितना आम है, परिणाम में उतना ही अंतर्विरोधी। इस दिशा में स्त्री-प्रतिरोध जितना स्वाभाविक और अनिवार्य है, उतना ही अपनी प्रकृति में चुनौतीपूर्ण भी। चुनौतीपूर्ण इस लिए कि प्रतिरोध के लिए प्रतिक्रिया जितना जरूरी है, प्रतिकार और प्रतिशोध से इसे बचाना उससे कहीं अधिक जरूरी है। इसके लिए स्त्री-प्रतिरोध के प्रचलित, अतिप्रचलित एवं किन्हीं अछूते आयामों को अध्याय बनाते हुए विमर्श के अस्मितामूलक परिदृश्य को समय व समाज सापेक्ष सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक उपयोगिता उपलब्ध कराना मेरा अभीष्ट है। इस दिशा में प्रेम-काम, घरेलू महिला कामगार, स्त्री-राजनीति, सभ्यता-संकट एवं स्त्री-भाषा संदर्भित प्रतिरोध के नियामक तत्व नैतिकता, मूल्य, परंपरा, अस्मिता की पृष्ठभूमि में सत्ता, प्रतिसत्ता, प्रतिशक्ति का शोधपरक मूल्यांकन किया गया है।

पहला अध्याय

स्त्री-प्रतिरोध : अवधारणा, परंपरा और प्रगति

1. प्रतिरोध

1.1. प्रतिरोध : सामान्य अर्थ – शब्दकोश (हिन्दी, अंग्रेजी)

1.2. विशेष अर्थ – भारतीय चिंतक एवं पाश्चात्य चिंतक

1.3. प्रतिरोध : एक तात्विक विवेचन

1.3.1. नैतिकता

1.3.2. मूल्य

1.3.3. परंपरा और संस्कृति

1.3.4. सत्ता

1.3.5. प्रतिसत्ता

1.3.6. प्रतिशक्ति

1.3.7. अस्मिता और अस्तित्व

2. साहित्य और प्रतिरोध में संबंध

3. स्त्री-प्रतिरोध

3.1. विद्वानों के अनुसार स्त्री-प्रतिरोध

3.2. विचारधारा और स्त्री-प्रतिरोध

3.2.1. स्त्रीवादी विचारधारा में निर्मित स्त्री-प्रतिरोध का स्वरूप —— क. उग्र स्त्रीवाद।

ख. उदारवादी स्त्रीवाद।

3.2.2 मार्क्सवादी विचारधारा में निर्मित स्त्री-प्रतिरोध का स्वरूप।

3.2.3 समाजवादी विचारधारा में निर्मित स्त्री-प्रतिरोध का स्वरूप।

3.2.4 अस्तित्ववादी व व्यक्तिवादी विचारधाराओं में निर्मित प्रतिरोध स्त्री-प्रतिरोध का स्वरूप।

3.2.5 मनोविश्लेषणवादी विचारधारा में निर्मित स्त्री-प्रतिरोध के स्वरूप।

3.2.6 आधुनिकतावादी विचारधारा में निर्मित स्त्री-प्रतिरोध का स्वरूप।

3.2.7 उत्तर-आधुनिकतावादी विचारधारा में निर्मित स्त्री-प्रतिरोध का स्वरूप।

3.3. स्त्री-प्रतिरोध के प्रकार

3.3.1 प्रेम-काम का द्वंद्वमूलक प्रतिरोध

3.3.2. घरेलू महिला कामगार का प्रतिरोध

3.3.3. स्त्री-प्रतिरोध का राजनीतिक संदर्भ

3.3.4. सभ्यता का संकट और स्त्री-प्रतिरोध

3.3. 5. स्त्री-प्रतिरोध का भाषाई संदर्भ

4. स्त्री-प्रतिरोध : परंपरा और प्रगति

4.1. वैदिक एवं उत्तर वैदिक काल में स्त्री-प्रतिरोध : परंपरा एवं प्रगति

4.2. बौद्ध धर्म में स्त्री- प्रतिरोध : परंपरा एवं प्रगति

4.3. जैन धर्म में स्त्री-प्रतिरोध : परंपरा और प्रगति

4.4. आदिकाल, भक्तिकाल और रीतिकाल में स्त्री-प्रतिरोध : परंपरा और प्रगति

4. 5. नवजागरणकाल में स्त्री-प्रतिरोध : परंपरा और प्रगति

4.6. कथा साहित्य में स्त्री-प्रतिरोध स्वतंत्रता पूर्व : परंपरा और प्रगति

4.7. स्वातंत्र्योत्तर कथा-साहित्य में स्त्री-प्रतिरोध : परंपरा और प्रगति

4.8. 21वीं सदी के कथा साहित्य में स्त्री-प्रतिरोध : परंपरा और प्रगति

- **निष्कर्ष**

पहला अध्याय
स्त्री-प्रतिरोध : अवधारणा, परंपरा और प्रगति

1. प्रतिरोध –

यथास्थिति से नकार और बेहतर को प्राप्त करने की स्थिति की दिशा सीधे-सीधे प्रतिरोध की जरूरत महसूस कराती है। मनुष्य हो या अन्य जीव, जब किसी के सामान्य जीवन में कोई भी अवरोध उत्पन्न होता है, तब उस अवरोध को दूर करने के लिए उसके विरोध में जो स्वर उत्पन्न होता है, वही स्वर प्रतिरोध का स्वर कहलाता है। मानव सभ्यता के विकास का मूल मंत्र भी प्रतिरोध ही रहा है। बहुत बारिश हुई तो छत बना लिया, ठंड लगी तो आग जला लिया, जानवर हमें न मार डाले, इसलिए उसे मार डाला। जानवर को डर लगा कि इंसान उसे न मार डाले, इसलिए वों इंसानों को मारने लगे। प्रतिरोध ने आविष्कारों को जन्म दिया। नए और बेहतर के तलाश की संधर्ष चेतना प्रतिरोध में निहित है। एक शब्द में कहा जाए तो जीवन है, जीवित है, तो प्रतिरोध भी रहेगा। जीवन में प्रतिरोध है और प्रतिरोध में ही जीवन का निवास है। इस प्रकार प्रतिरोध हमारी संस्कृति बन जाती है। सभ्यता के विकास के मूल में प्रतिरोध निहित है और प्रवाहमान संस्कृति प्रतिरोध का ही परिणाम है। एक समय हमारे समाज में शादी-ब्याह में घूँघट की प्रथा थी, आज घूँघट की जगह आँचल की प्रथा प्रचलन में है। घूँघट से आँचल तक पहुँचने की संस्कृति के मूल में प्रतिरोध है। मानव जीवन के प्रत्येक क्रिया-कलाप के मूल में प्रतिरोध है। साहित्य में भी इसकी अभिव्यक्ति समय-समय पर होती रही है, लेकिन यह शब्द प्रचलित हुआ 1966 में फिलिस्तीनी लेखक गासान कानाफानी के शोध शीर्षक 'अधिकृत फिलिस्तीन में प्रतिरोध का साहित्य:1948-1966' से।

संस्कृति निरंतर परिवर्तनशील और सतत् मूल्यांकन की प्रक्रिया है, मानवीय और सामाजिक धरातल पर जीवन को जीने की कला है। अपनी स्वतंत्रता को अपने अधिकार के साथ जीना हर कोई चाहता है, लेकिन इसे जीने का तरीका हर समय, हर किसी का एक जैसा नहीं रहता। अपने अधिकार को मानवीय और सामाजिक धरातल पर कैसे जीना है, इसका बोध ही संस्कृति है, लेकिन जहाँ ये बोध लुप्त होता है, वहीं अधिकारों का टकराव होता है और प्रतिरोध का जन्म। प्रतिरोध महज प्रतिक्रिया नहीं है और न ही केवल प्रतिशोध, बल्कि इसकी अवधारणा इनसे कहीं आगे की है।

प्रतिरोध की मानव सभ्यता के विकास में कैसी जरूरत रही और उसका आजतक में जो परिणाम रहा, उसे कला और साहित्य में सदा अभिव्यक्ति मिलती रही, इसी अभिव्यक्ति को एक वैचारिक पृष्ठभूमि में समग्रता

प्रदान करना यहाँ हमारा अभीष्ट है और इसके तहत सर्वप्रथम प्रतिरोध के सामान्य एवं विशेष अर्थ के साथ-साथ वैचारिक परिप्रेक्ष्य को भी विश्लेषित किया गया है।

1.1. प्रतिरोध का सामान्य अर्थ –

(शब्दकोश के अनुसार)

1. नूतन पर्यायवाची एवं विपर्यय कोश में 'प्रतिरोध' को इस प्रकार परिभाषित किया गया है –

"प्रतिरोध – पु0(सं0) बाधा, रोक, रूकावट, प्रतिबंध, तिरस्कार, डाका, चोरी, घेरा डालना, विरोध।'' (कपूर 103)

2. लोकभारती प्रामाणिक हिन्दी कोश में 'प्रतिरोध' का अर्थ इस प्रकार दिया गया है –

"प्रतिरोध – पु0(सं0) –1. विरोध 2. रुकावट 2. किसी आवेग, आक्रमण आदि को रोकने के लिए किया जाने वाला कार्य।'' (वर्मा 538)

3. राजपाल हिन्दी शब्दकोश, हिन्दी-हिन्दी डिक्शनरी में 'प्रतिरोध' के निम्न अर्थ दिए गए है –

"प्रतिरोध – पु0(सं0) 1. रोक, रूकावट, बाधा

2. प्रतिबंध, तिरस्कार

3. दुराव, छिपाव, डेरा डालना, विरोधी (वि0) प्रतिरोध के विरुद्ध'' (बाहरी 533-534)

4. ऑक्सफोर्ड इंग्लिस-इंग्लिस हिन्दी डिक्शनरी में 'प्रतिरोध' को इस प्रकार परिभाषित किया गया है –

"Resistance

1. कुछ घटित होने या किसी को कुछ करने से रोकने की क्रिया – व्यक्ति या वस्तु का प्रतिरोध या विरोध।

2. व्यक्ति की रोग-प्रतिरोधन क्षमता।

3.गरमी या बिजली का प्रतिरोध करने की शक्ति : ऐसी शक्ति की माप।'' (कुमार और सहाई 1090)

5. ऑक्सफोर्ड स्टूडेंट्स इंग्लिश हिन्दी डिक्शनरी (अंग्रेजी -हिन्दी शब्दकोश) में 'प्रतिरोध' को इस प्रकार समझाया गया है –

"Resistance 1. प्रतिरोध – प्रतिरोध करने की शक्ति

2. प्रतिरोधी शक्ति

3. योजना आदि के प्रति नापसंदगी या विरोध

4. बिना क्षति या चोट के सहने की शक्ति

5. (भौतिकी) गरमी अथवा बिजली का प्रतिरोध करने की शक्ति / ऐसी शक्ति का माप।'' (सहाय और वर्मा 472)

6. भार्गव आदर्श हिन्दी शब्दकोश के अनुसार प्रतिरोध का अर्थ इस प्रकार दिया गया है–

"प्रतिरोध (सं० पुं०) – विरोध, तिरस्कार, प्रतिबिंब" (पाठक 508)

7. CREA द्वारा अनुवादित JASS द्वारा प्रकाशित 'नारीवादी आंदोलन के कार्यकर्ताओं के लिए शब्दकोश' में प्रतिरोध (resistance) को इस प्रकार परिभाषित किया गया है–

"resistance प्रतिरोध : "सत्ता के हावी या प्रमुख ढांचों को चुनौती देने का काम।...प्रतिरोध निहित रूप से एक गतिशील, क्रांतिकारी और उग्रवादी काम है, जो कभी-कभी तब इस्तेमाल में लाया जाता है, जब सत्ता के प्रचलित माध्यमों व औपचारिक संस्थानों के साथ संपर्क-संवाद नाकाम हो जायें।" (CREA 16)

8. स्टैन्डर्ड इलस्ट्रेटेड एडवांस्ड डिक्शनरी, मानक हिन्दी कोश अंग्रेजी शब्दकोश के अनुसार प्रतिरोध का शाब्दिक अर्थ इस प्रकार दिया गया है —

"Obstruction, Hindrance, Opposition, Resistance." (शर्मा और शर्मा 295)

शब्दकोश के अनुसार प्रतिरोध के जिन अर्थों को सामने रखा गया है, इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि बाधा, रोक, रुकावट, प्रतिबंध, तिरस्कार, विरोध आदि अवरोधक शक्ति प्रतिरोध है, किन्तु प्रतिरोध का अर्थ यहीं तक सीमित नहीं है। इसमें विशेष नारीवादी आंदोलन के कार्यकर्ताओं ने प्रतिरोध को जिस तरह परिभाषित किया, उससे स्पष्ट है कि प्रतिरोध सत्ता को चुनौती देने वाला तत्व है। सत्ता का अर्थ ही इच्छित को प्राप्त करने की शक्ति है। सत्ता घर-परिवार की भी होती है, समाज की भी होती है, अर्थ की भी है, धर्म संस्थान की भी है। अत: सत्ता हमारी संस्कृति बनती जा रही है और आज इसे प्राप्त करने के लिए सत्ता, प्रतिसत्ता, प्रतिशक्ति का जो संघर्ष है, वहीं प्रतिरोध है।

1.2. प्रतिरोध का विशेष अर्थ –

(विद्वानों के अनुसार प्रतिरोध की परिभाषा)

शब्दकोशीय अर्थ के अलावा भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों ने प्रतिरोध को समय-समय पर स्पष्ट किया है। मैनेजर पाण्डेय भारतीय संस्कृति के संदर्भ में प्रतिरोध को परिभाषित करते हैं – "संस्कृति के समाजशास्त्र में भारतीय संस्कृति के अतीत और वर्तमान में मौजूद द्वंद्वों की पहचान है। इन द्वंद्वों के बीच से ही उभरती है प्रतिरोध की प्रक्रिया।''(पाण्डेय 15) मैनेजर पांडेय के अनुसार सांस्कृतिक चिंतन के बिना प्रतिरोध की प्रक्रिया को समझना संभव नहीं है। विचारणीय है कि संस्कृति कभी भी नकारात्मक नहीं होती। जब संस्कृति के इन्कार में बेहतर के स्वीकार का भाव रहता है, तभी संस्कृति अस्तित्व में आती है। अत: प्रतिरोध भी नकारात्मक अभिव्यक्ति नहीं हो सकता। साथ ही वे मानते हैं – "जब संस्कृति संबंधित सोच में केवल समरसता, समन्वय और सामंजस्य की खोज होती है और दमन, भेदभाव, अधीनता और अन्याय की उपेक्षा होती है, तब संस्कृति की आधी-अधूरी समझ पैदा होती है। यह भी सच है कि जहाँ भी संस्कृति में दमन, भेदभाव और अन्याय की प्रवृतियाँ होती हैं, वहाँ प्रतिरोध की प्रक्रिया भी चलती है। इस प्रतिरोध की प्रवृत्ति और प्रक्रिया को समझने से ही संस्कृति की पूरी समझ विकसित होती है।" (पाण्डेय 15) संस्कृति की पूरी समझ ही प्रतिरोध को समझने में मदद कर सकती है। संस्कृति अतीत की पृष्ठभूमि में एक संवेदनशील मामला है, तो साथ ही भविष्य की ओर निरंतर समृद्ध होता प्रतिबोध भी है। अत: मैनेजर पांडेय के अनुसार प्रतिरोध प्रतिशोध नहीं है, बल्कि प्रतिबोध से संपन्न विचार है।

संस्कृति की समझ के लिए प्रतिरोध जरूरी है, तो प्रतिरोध की भी अपनी एक संस्कृति होती है, जिसे स्पष्ट करते हुए 'प्रतिरोध की संस्कृति' नामक पुस्तक में कौशल किशोर लिखते हैं –

> "यदि एक तरफ दमनकारी स्थितियाँ हैं, तो वहीं इसका प्रतिरोध भी है। अन्याय है, तो उसका प्रतिकार भी है। यही आज का यथार्थ है, समय का द्वन्द्व है। देखा गया कि जब भी दमन-उत्पीड़न की कोई घटना घटित हुई, तो उसका प्रतिरोध भी उतना ही जबरदस्त हुआ है। इसका सार यही है कि अन्याय को स्वीकार करने के लिए लोग तैयार नहीं हैं। चाहे स्थितियाँ कितनी भी विकट व प्रतिकूल क्यों न हों, लेकिन दुनिया को बेहतर, सुंदर व मानवीय बनाने के स्वप्न कभी खत्म नहीं किए जा सकते। यही मानव स्वप्न 'प्रतिरोध की संस्कृति' का आधार है।" (किशोर 2)

मैनेजर पांडेय ने प्रतिरोध में संस्कृति को मुख्य तत्व बताया, तो दूसरी ओर प्रतिरोध संस्कृति का कैसे पर्याय बन जाती है, इसकी ओर कौशल किशोर ने संकेत किया है। प्रतिरोध की अपनी संस्कृति बड़ी ही सकारात्मक है, जिसमें अन्याय का प्रतिकार, दमन का प्रतिरोध एक बेहतर दुनिया के निर्माण के लिए जरूरी है। मानव का बेहतर समाज वाला स्वप्न अनपेक्षित दमन, शोषण, व्यभिचार आदि से अनिवार्यत: समय-समय पर जब बाधित होता

रहा है, तब-तब उसका विरोध मानव समाज की संस्कृति का एक अंग बन जाता है, इसी कारण प्रतिरोध की भी एक लंबी परंपरा हमें देखने को मिलती रही है और इससे सहमति बनती है कि प्रतिरोध भी एक संस्कृति है। इसके तहत साहित्य की पृष्ठभूमि में सिद्ध, नाथ से लेकर, जैन व भक्त कवियों से भी आगे विविध परिप्रेक्ष्य में आज तक प्रतिरोध की संस्कृति अपनी परंपरा और प्रगति में हमारे लिए एक गंभीर विषय है।

प्रतिरोध मानव के सभ्य होने की पहचान है, जिससे इसकी लंबी संस्कृति बनती है। इसमें एक ओर परिवर्तन की आकांक्षा को प्रवीण कुमार देखते हैं, तो दूसरी ओर परिवर्तन के लिए 'व्यवस्थित अव्यवस्था' के प्रति जवाबदेही के साथ नकार को डॉ० अजय कुमार साव देखते हैं। डॉ० प्रवीण कुमार लिखते हैं – "प्रतिरोध की संस्कृति सृजनात्मक होती है, उसमें परिवर्तन की आकांक्षा निहित रहती है। उसका सौंदर्य मानवीय और संवादात्मक होता है। व्यवस्था का विकल्प उसके पास होता है। किसी भी प्रकार की प्रतिक्रियावादी भावना नहीं होती है। आत्मसम्मान और मानवीय गरिमा से लैस विचारों का संचार करती है।"(कुमार 191) परिवर्तनकामी प्रयास प्रगति के लिए प्राणतत्व है। यहाँ परिवर्तन यथास्थिति से सदा बेहतर की दिशा है।

अत: प्रतिरोध परिवर्तन की आकांक्षा लिए हुए रहता है, लेकिन यह परिवर्तन केवल प्रतिक्रियावादी नहीं हो सकती, न ही प्रतिस्पर्धा इसका उद्देश्य है, क्योंकि प्रतिक्रिया केवल प्रतिशोध को जन्म देती है, जबकि प्रतिरोध एक सकारात्मक, सृजनात्मक, अभिव्यक्ति है, जो मानवीय गरिमा से लैस होती है।

व्यवस्था के विकल्प की दिशा में सृजनात्मक आत्मसम्मान एवं आत्मगौरव अस्मिता का बोध कराता है। इस दृष्टि से अपनी सृजनात्मकता में प्रतिरोध अस्मितामूलक सरोकार है। व्यवस्था और सत्ता के प्रतिरोधमूलक अंत: संबंध प्रतिरोध की संस्कृति के अंतर्गत है। इस बारे में वे आगे लिखते हैं –

> "प्रतिरोध की संस्कृति किसी भी समाज की सामाजिक व्यवस्था और उसकी सत्ता के उस स्वरूप के प्रति किया जाने वाला विद्रोह व संघर्ष है, जिसमें मानव या किसी भी प्राणी की अस्मिता व अस्तित्व को रौंदा जाता है। उसका दमन किया जाता है। यह सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों से निर्मित चेतना की उपज होती है। दूसरे शब्दों में प्रतिरोध की संस्कृति ब्राह्मणवादी व्यवस्था व मानसिकता के खिलाफ चेतना का प्रतिफलन है, जिसमें उनका संघर्ष और विजन दोनों निहित होता है।" (कुमार 191)

अस्मिता-बोध अपने आप में प्रतिरोध का सूचक है, तो प्रतिरोध के मूल में चेतना और मूल्य सम्पन्न अस्मिता। प्रतिरोध के मूल में स्वतंत्रता के नकार को माना गया है। व्यक्ति स्वतंत्रता या व्यक्ति अस्मिता जब बाधित होती है, तो उस बाधा के नकार में जो स्वर उत्पन्न होता है, वही प्रतिरोध है। इस प्रकार प्रतिरोध को एक नकारात्मक अभिव्यक्ति सहज ही मान लिया जाता है, लेकिन प्रतिरोध नकारात्मक अभिव्यक्ति नहीं है, बल्कि ये नकार और प्रतिकार के भाव जवाबदेही से जुड़ा होने के कारण चेतना से समृद्ध होते है। जिसे डॉ०अजय कुमार साव स्पष्ट करते हुए लिखते हैं – " बुनियादी अपेक्षाओं के मार्ग में 'व्यवस्थित अव्यवस्था' द्वारा अवरोधों के विरुद्ध किया

गया विरोध ही प्रतिरोध का सूचक है। यह महज नकार और प्रतिकार का भाव नहीं है, बल्कि वर्तमान विसंगतियों के प्रति बेहतर भविष्य के लिए एक सहज चेतना-सम्पन्न बुनियादी सरोकार है। सरोकार यानी जवाबदेही।'' (साव 45) 'व्यवस्थित अव्यवस्था' से तात्पर्य घर-परिवार का सामंती परिवेश हो या समाज की सत्ता-व्यवस्था, जब इस व्यवस्था में अव्यवस्था आ जाए, तो उसे 'व्यवस्थित अव्यवस्था' कहेंगे। कोई भी व्यवस्था प्रारम्भिक चरण में अव्यवस्था नहीं होती है, लेकिन आगे चलकर तमाम मूल्यगत विसंगतियों के कारण स्वीकार योग्य नहीं रहती, परंतु वर्षों तक बने रहने के कारण उसे एक बारगी छोड़ पाना संभव नहीं हो पाता और यहीं आकार वह अव्यवस्था होने के वाबजूद एक व्यवस्थित दिनचर्या के रूप में हमारे साथ चलती रहती है, जिसका विरोध किया जाना तय है। प्रतिरोध के साथ 'जवाबदेही' है, इसका मतलब अव्यवस्था के प्रति नकार से बेहतरी की ओर प्रस्थान ही प्रतिरोध है। व्यवस्थित अव्यवस्था का विरोध कैसे किया जाएगा, इसके बारे में राजेन्द्र कुमार लिखते हैं –

> "प्रतिरोध का आशय है – यथास्थितिवादी व्यवस्था को आदर्श मानने से इनकार करना, जो सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक स्तर पर मानवीय गरिमा के भौतिक विकास के अवसरों को सबके लिए सुलभ नहीं होने देना चाहती और प्रतिकार का आशय है सदियों के सामाजिक अपमान और उत्पीड़न को अपनी नियति मानने से इनकार करते हुए अपने 'स्व' के पक्ष में अपनी लड़ाई संगठित करते हुए खुद अपने बूते लड़ सकने की क्षमता अर्जित करना।" (कुमार 25)

और इस लड़ाई को लड़ने में पाश्चात्य विचारक ब्लेको के अनुसार प्रेस और प्रचार मददगार हो सकते है ताकि चेतना जगाया जा सके। हमारे यहाँ साहित्य को मनुष्य की सर्वोच्च कृति माना गया है। साहित्य भी चेतना जगाने का काम करता है। इसीलिए साहित्य में प्रतिरोध को देखना हमारा अभीष्ट है।

भारतीय चिंतक मैनेजर पांडेय प्रतिरोध को संस्कृति से जोड़ते है, वहीं पाश्चात्य विचारक रेमंड विलियम्स इसे परंपरा से जोड़ कर देखते हैं। मैनेजर पांडेय ने अपनी पुस्तक 'भारतीय समाज में प्रतिरोध की परंपरा' में रेमंड विलियम्स के प्रतिरोध की परंपरा के संबंध में विचार को प्रस्तुत किया है। रेमंड विलियम्स के अनुसार –

> "प्रत्येक समाज में प्रभुत्वशाली परंपरा के समानांतर प्रतिरोध और विकल्प की चिंता, चेतना और गतिविधियाँ भी होती हैं, जो दूसरी परंपराओं का निर्माण करती है। परंपरा की समग्रता में कुछ उदयीमान परंपराएँ होती हैं तो कुछ अवशिष्ट। समाज में निरंतर नए अर्थ और मूल्य, नए व्यवहार, नए अनुभव और नयी सार्थकताएँ निर्मित होती चलती हैं, जिसको अपने पक्ष में करने की कोशिश प्रभुत्वशाली परंपरा की ओर से होती है और प्रतिरोध की परंपरा की ओर से भी।" (पाण्डेय 16)

प्रभुत्वशाली परंपरा के समानांतर प्रतिरोध की परंपरा भी गतिशील रहती है। यद्यपि प्रभुत्व या सत्ता के विरुद्ध जो विरोध है, उसे दबाने के लिए सत्ता पक्ष भी प्रतिरोध करता है, लेकिन इसे हम मानवीय, सृजनात्मक नहीं कहेंगे। प्रतिरोध की सृजनात्मकता की पहचान के बारे में जॉन हॉलोवे के मतानुसार – "प्रभुत्व का एक अदम्य पहलू है, उसमें प्रतिरोध की अदृश्यता। प्रभुत्व में यह निहित होता है कि प्रतिरोध का दमन कर दिया गया है और यह भी कि कुछ न कुछ प्रतिरोध तो भूमिगत है ही। उत्पीड़न में उत्पीड़ित की अदृश्यता छिपी ही होती है।''(हॉलोवे 130) अर्थात् अगर उत्पीड़न होता है, तो प्रतिरोध भी रहेगा। कहीं दबा हुआ, तो कहीं उग्र भी होगा। इस प्रतिरोध का उद्देश्य प्रचलित व्यवस्था में बदलाव लाना होगा। सुधा सिंह ने अपनी पुस्तक 'ज्ञान का स्त्रीवादी पाठ' में मनोविश्लेषणवादी सिद्धांतकारों द्वारा प्रतिरोध का जो विश्लेषण किया गया है, उसके बारे में उल्लेख करती है। मनोविश्लेषणवादी सिद्धांतकारों के अनुसार – "किसी भी प्रकार की इच्छा मूलत: एक अतार्किक संवृति ही होती है जिनकी प्रकृति और अभिव्यक्ति का गठन अवचेतन के प्रतिरोध, दवाब और फंतासी से होता है।''(सिंह 119) मानव इच्छा के मूल में ही प्रतिरोध है, निर्माण की सारी प्रक्रिया प्रतिरोध से ही उत्पन्न होती है, इस प्रकार प्रतिरोध अंतत: एक निर्माणक शक्ति हैं।

उपर्युक्त विचारों से सहज ही यह उपलब्ध होता है कि प्रतिरोध केवल नकार, असहमति, विरोध नहीं, बल्कि एक संस्कृति है। प्रतिरोध कोई नई अवधारणा नहीं, बल्कि इसका संबंध हमारी परंपरा से है। प्रतिरोध दमन के खिलाफ विरोध की सृष्टि करता है। यही विरोध नैतिकता, मूल्य और चेतना से समृद्ध होकर प्रतिरोध कहलाता है। प्रतिरोध की संस्कृति सकारात्मक व सृजनात्मक है। प्रतिरोध केवल प्रतिक्रियावादी विचार ही नहीं है और न ही प्रतिशोध, बल्कि 'व्यवस्थित अव्यवस्था' के खिलाफ समानांतर चलने वाली प्रक्रिया है। प्रभुत्व और सत्ता की शक्ति की प्रतिशक्ति प्रतिरोध में निहित है। प्रतिरोध का लक्ष्य सत्ता हथियाना नहीं, सत्ता और प्रतिसत्ता से ऊपर प्रतिशक्ति की स्थापना हैं, जो सामाजिक व्यवस्था को अव्यवस्थित होने से बचाता है। व्यक्ति या समाज जब उसकी अस्मिता घायल होती है, तो वहीं से प्रतिरोध की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। इस प्रकार प्रतिरोध हमारी संस्कृति भी है और परंपरा भी और साथ समाज के विकास का प्रमुख तत्व भी।

1.3. प्रतिरोध : एक तात्विक विवेचन –

प्रतिरोध समग्रता में परिवर्तनकारी बोध है, जिसके बनने से लेकर मुकम्मल होने तक कई अनिवार्य घटक है, जिसे इसके तत्व के रूप में विवेचित किया जा सकता है। इस दृष्टि से सहज ही नैतिकता, परंपरा, संस्कृति, मूल्य, सत्ता, प्रतिसत्ता, प्रतिशक्ति, अस्मिता, अस्तित्व प्रतिरोध में अंतर्निहित तत्व है।

1.3.1.नैतिकता – प्रतिरोध में नैतिकता अंतर्निहित है। मानव जीवन की मान्यताएँ जब सामाजिकता को प्राप्त होती है, तो वह नैतिकता में बदलती हैं। किसी भी समाज की मान्यताओं की सामाजिकता में बदलने की पूरी

प्रक्रिया प्रतिरोध से होकर गुजरती है। एक ओर नैतिक मान्यता के निर्माण की प्रक्रिया प्रतिरोध की प्रक्रिया से होकर ही निर्मित होती है, तो दूसरी ओर नैतिकता प्रवाहमान प्रक्रिया है और ऐसे में प्रचलित नैतिकता का या रूढ़ नैतिकता का नई नैतिकता की दिशा में बदलाव भी प्रतिरोध है। जिसकी प्रकृति को स्पष्ट करते हुए एक तरफ राजकिशोर लिखते हैं – "वस्तुत नैतिकता कभी स्थिर रही नहीं है। उसका स्वरूप लगातार बदलता गया है। पुरानी नैतिकता को प्रश्न-बिद्ध कर नई नैतिकता का विकास लगभग अनवरत प्रक्रिया है। " (राजकिशोर 70) अर्थात् बदलती जरूरत के अनुसार समय अनुसार, समाज अनुसार नैतिकता में परिवर्तन घटित होता है लेकिन जब नई नैतिकता का निर्माण होता है, तो पुराना पूरी तरह छूटता नहीं, बल्कि पुराने में भी बहुत कुछ प्रासंगिक रहता है और वह आगे गतिमान रहता है। इसे स्पष्ट करते हुए दूसरी तरफ ज्ञान पाठक लिखते हैं – "नैतिकता में परिवर्तन के साथ ही कुछ नए सवालों का उभरना लाजमी है, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि पुरानी नैतिकताएँ पूरी तरह समाप्त हो गई है। उसमें से अनेक अब भी प्रासंगिक हैं। " (पाठक 103) जब 'अब भी प्रासांगिक है' की बात आती है, तो यहीं एक बोध काम करता है, यहीं प्रतिरोध एक नया बोध बन जाता है। नए और पुराने में जो द्वन्द्व रहता है, उसके बीच प्रतिरोध का निर्माण होता है। नैतिकता यद्यपि समाज द्वारा स्वीकृत मान्यता है, पर यह व्यक्ति की भी हो सकती है और समाज की भी। इसके बारे में आगे ज्ञान पाठक लिखते हैं – "नैतिकता का प्रसार एक से अनेक की ओर भी हो सकता है और अनेक से एक की ओर भी" (पाठक103) ऐसे में नैतिकता जब एक से अनेक की तरफ बढ़ती है और इस क्रम में जब 'नैतिकता का निजीकरण' होता है, तब समस्याओं का जन्म होता है, जिससे स्पष्ट करते हुए जॉन हॉलोवे लिखते हैं –

> "सम्मान (शक्ति विरोध) उस हर जगह मौजूद होता है जहाँ मनुष्य होता है। हम जो भी करते हैं – हमारी बीमारी, शिक्षा व्यवस्था, सेक्स, बच्चे, दोस्ती, गरीबी - हर चीज में सम्मानपूर्वक जीने का, चीजों को सही ढंग से करने का, संघर्ष निहित होता है। निश्चित ही क्या सही है क्या गलत के निर्णय में शक्ति का प्रभाव, हमारी भी विक्षत आत्मगतता का प्रभाव बना रहता है फिर भी सही करने, नैतिक जीवन बिताने का संघर्ष मरता नहीं। बहरहाल नैतिकता का निजीकरण हो जाता है और नैतिकता अनैतिक हो जाती है और निजी संपत्ति और निजी संबंधों के बारे में अलग मानक पेश करती है जो निकट है, उनके प्रति सही आचरण और बाकी दुनिया जाए तेल बेचने।" (हॉलोवे 130)

यहाँ जॉन हॉलोवे 'नैतिकता का निजीकरण' की बात रखते हैं। 'नैतिकता का निजीकरण' सबसे पहले मूल्य को प्रदूषित करता है, फिर अस्मिता को और जब अस्मिता प्रदूषित हो जाए, तो मुकम्मल प्रतिरोध हो ही नहीं सकता। निजीकृत नैतिकता समाज, परिवार, परिवेश से कटकर अपने लिए हो जाती हैं और जब केवल अपने लिए का भाव आ जाएगा तो जाहिर है औरों से विरोध बढ़ेगा और वे सभी एक होंगे जिनका विरोध किया जा रहा है, फलस्वरूप प्रतिरोध का निर्माण होगा। जॉन हॉलोवे निजीकृत नैतिकता की बात रखते हैं, साथ ही स्पष्ट

करते हैं कि निजीकृत नैतिकता में भी सही और गलत का विचार होना चाहिए अर्थात् बोध होना चाहिए, नैतिकता बोध सहित नहीं होगी, तो प्रतिरोध की जगह प्रतिशोध जन्म लेगा।

1.3.2. मूल्य – प्रतिरोध के निर्माण में जो दूसरा तत्व काम करता है वह है मूल्य। मूल्य एक वैचारिक इकाई है। मानव जीवन की मान्यताएँ जब सामाजिकता को प्राप्त करती है, तो नैतिकता का निर्माण होता है और जब नैतिकता को वैचारिक आधार मिलता है, तो मूल्य का निर्माण होता है। मूल्य का अर्थ अर्थशास्त्र में रुपया है, तो साहित्य-संस्कृति में उपयोगिता। जब हम किसी नीति को मानकर चलते हैं, जिसे सामाजिकता प्राप्त हो, तो उसकी वैचारिक उपलब्धि या उपयोगिता मानव समूह में या समाज के विकास में क्या है इस पर विचार जरूरी हो जाता है और यह उपलब्धि और उपयोगिता ही मूल्य कहलाती हैं। इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिया के अनुसार – "जो जीवन को गति और अस्तित्व प्रदान करे वही मूल्य है।'' (इनसाइक्लोपीडिया 962) अर्थात् मूल्य को एक उपयोगितामूलक वैचारिक उपलब्धि के रूप में देखते सकते हैं। डॉo शम्भुनाथ के अनुसार – "दरअसल मूल्य से हमारा आशय होता है – मनुष्यता के वे समाज-सम्मत गुण, जो मनुष्य के समग्र विकास में अपरिहार्य एवं महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं।''(शंभुनाथ 127) अर्थात् प्रत्येक सामाजिक क्रियाकलाप के मूल में मूल्य है। आचार्य राममूर्ति त्रिपाठी मूल्य के संदर्भ में मंतव्य प्रकट करते हुए कहते हैं — "जिन मान्यताओं के आधार पर हम अपने को, अपने समाज को न केवल धारण और व्यवस्थित कर पाते हैं, बल्कि दोनों में निहित लोकमांगलिक संभावनाओं को चरितार्थ भी करते हैं, मानव मूल्य कहे जाते हैं।"(त्रिपाठी 27) अर्थात् मूल्य का उद्देश्य व्यक्ति और समाज में सामंजस्य कर कल्याण करना है। मूल्य के दो स्वरूप होते हैं–१.शाश्वत मूल्य २.समय-सापेक्ष मूल्य। शाश्वत मूल्य वे मूल्य हैं जो हमेशा से समाज के लिए जरूरी रहे हैं। शाश्वत मूल्य मानव मूल्य हैं। दया, करुणा, मानव मात्र के प्रति संवेदना, सद्भावना इत्यादि शाश्वत मूल्य कहलाते हैं, जो प्रत्येक समय और प्रत्येक समाज के लिए जरूरी है। वहीं समाज सापेक्ष या परिस्थिति सापेक्ष मूल्य वे मूल्य हैं, जो समाज और समय की जरूरत के अनुसार अपनी नीति में बदलाव लाता है और खड़ा होता है। गोविंद चंद्र पांडे ने अपनी पुस्तक 'मूल्य मीमांसा' में समय सापेक्ष मूल्य को व्यावहारिक मूल्य के रूप में स्थापित किया है और लिखते हैं — "विभिन्न प्रयोजनों की सिद्धि के लिए मानवीय संबंधों की विभिन्न व्यवस्थाएं उपयोगिता के अनुसार कल्पित होने पर भी प्रत्येक स्तर और क्षेत्र में विशिष्ट नैतिक मूल्यों को जन्म देती है।" अर्थात् हमारी उपयोगिता के अनुसार प्रत्येक क्षेत्र में नई नैतिकता और नए मूल्य का जन्म होता है। जैसे हत्या ना करना शाश्वत मूल्य है लेकिन किसी ने बलात्कार किया है, तो बलात्कारी को दंड देना, उसकी हत्या करना नया मूल्य अर्थात् समय, समाज सापेक्ष मूल्य है। यही व्यावहारिक मूल्य कहलाता है। यद्यपि शाश्वत मूल्यों के बिना कोई भी समाज नहीं टिकेगा अर्थात् शाश्वत मूल्य रहेंगे, तभी हम रहेंगे, लेकिन समय और समाज के अनुसार पुराने मूल्य जब असमर्थ होने लगते हैं और नए की जरूरत महसूस होती है, तो दो मूल्य आपस में टकराते हैं। ऐसे में मूल्य

संक्रमित होते हैं, उसमें विपर्यय की प्रक्रिया घटित होती है, मूल्य विघटित होते हैं और नए मूल्यों की स्थापना होती है और इन सबके प्रतिफलन में प्रतिरोध होता है।

हम जैसे समाज में रहेंगे, वैसे ही हमारे मूल्य बनेंगे और जैसा हमारा मूल्य होगा, वैसा ही हमारा समाज बनेगा। मूल्य का परिवर्तन होना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है, क्योंकि हमें जीना है, तो भविष्य की ओर देखना जरूरी है और जब भविष्य के अनुसार (समय, समाज सापेक्ष) खड़ा होना चाहेंगे, तो पुराने मूल्य से टकराव होगा। ऐसे में पुराने को या तो पूरी तरह छोड़कर नए को अपनाना जरूरी होगा या नए और पुराने को जोड़कर मिलाकर मिश्रित मूल्य को अपनाना होगा। इस प्रकार मूल्य मिश्रण की प्रक्रिया होगी और इसी प्रक्रिया से मूल्य संक्रमित होंगे तथा उसमें दोष उत्पन्न होगा, क्योंकि हमारा जो मूल्य-बोध रहेगा, उसमें अतीत को पूरी तरह छोड़ पाना संभव नहीं होगा और वर्तमान को सीधे-सीधे ग्रहण करना भी संभव नहीं हो पाएगा और संक्रमण से मूल्य विपर्यय जन्म लेगा अर्थात् असमंजस की स्थिति उत्पन्न होगी कि नए को अपनाए या ना आपनए। पुराने मूल्य वर्तमान जरूरत को पूरा करने में असमर्थ है और नया स्वीकार नहीं कर पा रहे हैं, तो ऐसे में विवशता उत्पन्न होगी और इस विवशता में प्रतिरोध। नित्यानंद तिवारी ने लिखा भी हैं – "मूल्य हमेशा विवशता में उपजता है।...संबंधों के लिए उपजता है।'' (तिवारी 46) विवशता इस अर्थ में की जो प्रचलित है वह जब अपर्याप्त हो जाता है, तो अपर्याप्त की पूर्ति के लिए नए मूल्यों को स्वीकार करने की नैतिक जरूरत महसूस होती है और यहीं नैतिकता का टकराव होता है। एक ओर रूढ़ नैतिकता रहती है, तो दूसरी ओर 'नैतिकता का निजीकरण' होने लगता है। ऐसे में विवशता में मूल्यों को मिश्रित किया जाएगा और इस मिश्रण की प्रक्रिया से प्रतिरोध का जन्म होगा। प्रतिरोध हमेशा वैचारिक धरातल पर होता है। यही कारण है कि उसमें मूल्यबोध का होना बहुत जरूरी है।

1.3.3.परंपरा और संस्कृति – प्रतिरोध के तत्वों में से एक तत्व परंपरा और संस्कृति भी हैं, हालांकि वर्चस्ववादियों द्वारा इसका प्रयोग प्रतिरोध को दबाने और वर्चस्व को कायम करने के लिए ही अधिक किया जाता है, लेकिन फिर भी इसमें प्रतिरोध अंतर्निहित है। विकिपीडिया के अनुसार – "संस्कृति किसी समाज में गहराई तक व्याप्त गुणों के समग्र स्वरूप का नाम है, जो समाज के सोचने-विचारने कार्य करने के स्वरूप में अंतर्निहित है।" (विकिपीडिया) सोचने-विचारने और एक्शन में आने की प्रक्रिया संस्कृति है, लेकिन यह एक्शन समाज और मानव के परिप्रेक्ष्य में होना चाहिए, अर्थात् जो भी हम जी रहे हैं, वह व्यावहारिक धरातल पर कितना मानवीय है और कितना सामाजिक है, इस बोध से संस्कृति का निर्माण होता है। परंपरा प्राय: संस्कृति में परिवर्तित होती हैं। मैनेजर पांडेय ने लिखा है – "नई परंपरा संस्कृति की पर्याय के रूप में प्रयुक्त होती हैं। परंपराएं समाज की होती है, कलाओं की होती हैं और साहित्य की भी होती हैं, जो मिल-जुलकर संस्कृति का विशिष्ट स्वरूप निर्मित करती हैं।" (पाण्डेय 20)

संस्कृति के निर्माण में परंपरा मुख्य तत्व है। परंपरा गतिमान है, परिवर्तनशील प्रक्रिया है। समय, समाज के अनुसार इसमें परिवर्तन आते रहता है और इसके साथ संस्कृति में भी परिवर्तन आएगा। संस्कृति में परिवर्तन के साथ सांस्कृतिक मिश्रण और बहुसंस्कृतिवाद की प्रक्रिया भी घटित होती है, जिसे मैनेजर पाण्डेय ने 'संस्कृति की राजनीति' (पांडेय 22) कहा, जिसके मूल में लक्ष्य वर्चस्व, प्रतिरोध का दमन है। मैनेजर पांडेय संस्कृति के संबंध में ग्राम्शी के विचार का उल्लेख करते है। ग्राम्शी के अनुसार – "यह आधिपत्य की ऐसी प्रक्रिया है जो प्रत्यक्ष और प्रकट नहीं है, इसमें अधीनस्थ वर्ग समूह और समुदाय के विरुद्ध सीधे बल का प्रयोग नहीं होता, बल्कि उनकी ऐसी सहमति और स्वीकृति प्राप्त की जाती है, जिसके बारे में वह अनजान होते हैं।" (पाण्डेय19) इसी के तहत बहुसंस्कृतिवाद, सांस्कृतिक सम्मिश्रण के सिद्धांत का जन्म हुआ। जहां दो संस्कृतियों का सम्मिश्रण किया जाता है और प्रतिरोध को सहमति और स्वीकृति से दबाया जाता है। जैसे अमेरिका में धर्म, भाषा, नस्ल के लोगों के प्रतिरोधी आंदोलन को बहुसंस्कृतिवाद के सिद्धांत के तहत दबाया गया तथा प्रकृति से प्राप्त रंग, धर्म ,भाषा, नस्ल को मानवीय और सामाजिक धरातल पर जीने की स्वीकृति सम्मिश्रण से मिला, लेकिन सांस्कृतिक सम्मिश्रण या बहुसंस्कृतिवाद की जरूरत और उदय का मूल कारण भी प्रतिरोध की चिंगारी रही और नव निर्मित संस्कृति भी प्रतिरोध का परिणाम। परंपरा और संस्कृति सभ्यता के मूल में है, जिसकी निर्मिती प्रतिरोध द्वारा है।

1.3.4.सत्ता – प्रतिरोध अवरोध के विरोध में अर्जित शक्ति है और सत्ता प्रदत शक्ति संपन्न अधिकार है। सत्ता का सिद्धांत प्रतिरोध की अवधारणा का जन्मदाता है। सत्ता अधिकार की भावना से लैस करती है और जहाँ अधिकार कर्तव्य की भावना से हीन होता है, वही एक अवरोध की सृष्टि होती है और प्रतिरोध का जन्म। सत्ता की एक प्रकृति शक्ति अर्जन की होती है, तो दूसरी ओर अपने प्रभुत्व को कायम रखने के लिए शोषण की। जहां सत्ता है, वहां शोषण है और जहां शोषण है, वहाँ प्रतिरोध की सृष्टि होना स्वाभाविक है। जॉन हॉलोवे सत्ता की प्रकृति और प्रभुत्व पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं – " संघर्षो का भरपूर संसार है जो सत्ता का संघर्ष नहीं, सत्ता विरोधी संघर्ष है।" (हॉलोवे 128) प्रतिरोध प्रभुत्वशाली सत्ता के विरोध में होता है। यद्यपि प्रभुत्व का लक्ष्य प्रतिरोध को दबाना है, लेकिन प्रभुत्व में प्रतिरोध अंतर्निहित रह ही जाता है, जिसके बारे में वे आगे लिखते हैं – "प्रभुत्व का एक अदम्य पहलू है उसमें प्रतिरोध की अदृश्यता। प्रभुत्व में यह निहित होता है कि प्रतिरोध का दमन कर दिया गया है और यह भी कुछ न कुछ प्रतिरोध तो भूमिगत है ही। उत्पीड़न में उत्पीड़ित की अदृश्यता छिपी ही रहती हैं। " (हॉलोवे 130) अर्थात् जहाँ प्रभुत्व है, वहाँ प्रतिरोध भी रहेगा। प्रभुत्व में प्रतिरोध अंतर्निहित है। जब-जब शक्ति अर्जित होती है, तो सत्ता में बदलती है, प्रभुत्व कायम करती है, तब-तब प्रतिरोध की प्रक्रिया भी साथ-साथ चलती है।

1.3.5. प्रतिसत्ता – सत्ता के दमनकारी शक्ति के प्रतिरोध में प्रतिसत्ता की संकल्पना स्वाभाविक होते हुए भी प्रतिरोधमूलक न होकर प्रतिक्रियामूलक अधिक है। सत्ता के विकल्प के रूप में प्रतिसत्ता, प्रतिरोध को प्रतिक्रिया तक सीमित कर देती हैं। प्रतिसत्ता का लक्ष्य एक सत्ता को समाप्त कर वापस दूसरी सत्ता की स्थापना है और जैसे ही हम दूसरी सत्ता की और बढ़ते हैं, वापस सत्ता की प्रकृति से दूषित हो जाते हैं और फिर प्रतिसत्ता के प्रभुत्व के खिलाफ भी प्रतिरोधी शक्ति का संचयन जरूरी हो जाता है। एक समय में समाज में मातृसत्ता थी, सत्ता की प्रकृति से दूषित थी तो पितृसत्ता की स्थापना द्वारा उस दूषित सत्ता के परिष्करण का प्रयास किया गया, लेकिन फिर पितृसत्ता की स्थापना हुई, तो वह भी सत्ता की प्रकृति से दूषित हो गई और आज उसका प्रतिरोध प्रबल हो रहा है। ऐसे में प्रतिरोध का विकल्प सत्ता में नहीं, बल्कि शक्तिविहिन, सत्ताविहीन समाज की निर्मिति में है, हॉलोवे लिखते हैं – "हम एक सत्ता रहित समाज की स्थापना सत्ता पर विजय से नहीं कर सकते। एक बार सत्ता का तर्क स्वीकार कर लेने पर सत्ता के विरुद्ध संघर्ष तो पराजित हो जाता है।" (हॉलोवे 24) सत्ता के विरूद्ध संघर्ष की शक्ति का पराजित होना प्रतिरोध का पराजित होना है। ऐसे में सत्ता के विरोध में शक्ति का संचयन होते रहेगा, भले संचयित शक्ति शोषणकारी ही क्यों न हो, ऐसे में वापस से शक्ति संचयन कर फिर सत्ता के विरोध में प्रतिरोध कायम होगा और यह काम चलता रहेगा।

1.3.6.प्रतिशक्ति – सत्ता और प्रतिसत्ता के विकल्प के रूप में प्रतिशक्ति की निर्मिती प्रतिरोध का महत्वपूर्ण तत्व बनता है। प्रतिशक्ति का तात्पर्य शक्तिविहीन, सत्ताविहीन समाज की स्थापना है और जब सत्ताविहीन और शक्तिविहीन समाज की स्थापना होगी, तो शोषण,अवरोध की समाप्ति होगी। जॉन हॉलोवे लिखते हैं–"इक्कीसवीं सदी के प्रारंभ में चुनौती यही है – दुनिया को बिना सत्ता के परिवर्तित करने की चुनौती। इसे सबसे स्पष्ट ढंग से सूत्रीकृत किया है, मैक्सिको दक्षिण पूर्व के जपातिस्ता आंदोलन ने। उन्होंने कहा है कि वह एक नई दुनिया रचना चाहते हैं, एक सम्मान की दुनिया, मानवता की दुनिया - पर बिना सत्ता में आए। " (हॉलोवे 28) क्रांति और प्रतिरोध की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए हॉलोवे बताते हैं कि क्रांति का लक्ष्य एक सत्ता को समाप्त कर दूसरी सत्ता की स्थापना हैं, वहीं प्रतिरोध का लक्ष्य सत्ता प्राप्ति नहीं, बल्कि सत्ता विहीन समाज का निर्माण है। "क्रांति की पारंपरिक धारणा की समस्या यही है कि उसने लक्ष्य नहीं बड़ा रखा। लक्ष्य बहुत छोटा रखा, सत्ता पाने का लक्ष्य। मूल लक्ष्य सत्ता संबंधों को समाप्त कर परस्पर सम्मान के संबंध बनाने के लक्ष्य से बहुत छोटा है।" (हॉलोवे 26) हॉलोवे प्रतिशक्ति को मानवता की आशाशक्ति के रूप में देखते हैं –

> "प्रतिशक्ति मातहत लोगों के खुले संघर्ष, वाम के संसार में ही नहीं होती, वह समस्या और अंतर्विरोध के रूप में हमारी दैनंदिन असफलताओं, कुंठाओं, शक्ति के सामने सम्मान बचाने के संघर्षों, अपने जीवन पर नियंत्रण रखने या वापस आने के संघर्षों में निहित है। दैनंदिन अस्तित्व के सम्मान में होती है प्रतिशक्ति। प्रतिशक्ति हमारे लगातार बनने वाले संबंधो – प्यार, दोस्ती, समुदाय, सहभागिता के

संबंधों में होती है। जाहिर है जिस संसार में हम रह रहे हैं उसकी प्रकृति के कारण शक्ति उन संबंधों को आच्छादित किए रहती है। फिर भी प्यार, दोस्ती, आदि के तत्व इन संबंधों को परस्पर सम्मान के आधार पर स्थापित करने के संघर्षों में विद्यमान रहते हैं। "(हॉलोवे 130)

इस प्रकार प्रतिरोध के मूल में सत्ता और प्रतिसत्ता नहीं प्रति-शक्ति का होना जरूरी है।

1.3.7.अस्मिता – प्रतिरोध के निर्माण का अंतिम न सही पर सबसे मूल्यवान और निकटतम तत्व है अस्मिता। अस्मिता का मूल प्रश्न अपने होने का बोध है। 'मैं कौन हूं' का प्रश्न इससे जुड़ा हुआ है और दूसरों के नजर में हमारे अस्तित्व को स्वीकारे जाने को लेकर यह संघर्ष करता है। डॉo सुरेशचंद्र गुप्त के अनुसार – "अस्मिता को परिभाषित करना कठिन है, फिर भी 'मैं हूं' से लेकर 'मैं किस लिए हूं' तक की अंतर्यात्रा कई पड़ाव से होकर अंततः अस्मिता के गंतव्य पर पहुँच कर पूरी होती है। " (गुप्त 2) यानी अपने होने का बोध अस्मिता में है और जब अपने होने का बोध होगा, तभी अपने अस्तित्व के निर्माण के मार्ग में अवरोध के विरुद्ध प्रतिरोध शुरू होगा।

अत:अस्मिता प्रतिरोध के निर्माण का मूल तत्व रहा। अस्मिता, अस्तित्व और पहचान एक दूसरे से संबंधित है और इसके अंत:क्रिया ही प्रतिरोध का आधार। पहचान प्रदत सामान्य ज्ञान है, तो अस्मिता अर्जित उपलब्धि और जब इस अर्जित उपलब्धि को सामाजिक स्वीकृति मिलती हैं, तो अस्तित्व का गठन होता है। यह जरूरी नहीं कि हमारी उपलब्धि अर्थात् हमारी अस्मिता को दूसरे के द्वारा भी उसी रूप में स्वीकार किया जाए और जहाँ हमारी अर्जित उपलब्धि अर्थात् अस्मिता को समाज द्वारा अस्तित्व के रूप में स्वीकृति नहीं मिलती, वही अस्मिता प्रतिरोध में बदल जाती हैं अर्थात् अस्मिता के साथ संकट जुड़ा हुआ है, जिसे स्पष्ट करते हुए नामवर सिंह लिखते हैं –"अस्मिता दया नहीं चाहती। अस्मिता हक चाहती हैं।"(सिंह 292) और इस हक की लड़ाई में मूल्य और चेतना न हो, तो इस हक के लिए अस्मिता क्या कर सकती है, इस पर अमर्त्य सेन लिखते हैं – "लेकिन पहचान की भावनाएं हत्या भी करवा सकती है – क्रूर से क्रूर हत्याएं। किसी समूह के अंग होने की पहचान और यह कि हम दूसरे समूह से अलग हैं। कई दफा दूसरे समूहों से दूरियां और उनसे भिन्न होने का भाव पैदा करती हैं।" (सेन 19-20) अस्मिता मनमर्जीपन नहीं होती, पर 'नैतिकता के निजीकरण' के द्वारा अस्मिता दूषित होकर हक की लड़ाई अर्थात् प्रतिशोध में न बदले, बल्कि बोध से जुड़ी रहे, इसलिए इसमें मूल्य और चेतना का होना जरूरी है। मूल्य के बारे में डॉक्टर रमेश का कहना है – "मानवीय जीवन को मूल्यवान बनाने की क्षमता मूल्य शाश्वत व्यवहार हैं। इसका निर्माण मानव के साथ-साथ हुआ है। यदि इसका अंत होगा, तो सभ्यता के साथ-साथ मानवता भी समाप्त हो जाएगी।" (देशमुख 9) प्रतिरोध मानवीय धरातल पर सृजनात्मक अभिव्यक्ति मूल्यबोध से समृद्ध होकर ही बन सकता है।

प्रतिरोध हमेशा वैचारिक धरातल पर होता है और इसके लिए मूल्य-बोध का होना जरूरी है। नैतिकता का निजीकरण सबसे पहले मूल्य को प्रदूषित करता है और फिर अस्मिता को प्रदूषित करता है। जब अस्मिता ही प्रदूषित हो जाएगी, तो कभी मुकम्मल प्रतिरोध नहीं हो सकेगा। अत: अस्मिता में मूल्य का समावेश चेतना संपन्न अस्मिता को जन्म देगा और तब अपने अस्तित्व के लिए प्रतिरोध का जो स्वर निर्मित होगा, वह मानवता की स्थापना के लिए कल्याणकारी होगा न कि प्रतिशोध प्रेरित।

2. साहित्य और प्रतिरोध का संबंध —

साहित्य में प्रतिरोध शब्द का प्रथम प्रयोग बारबरा हार्लो ने 1966 में फिलिस्तीनी लेखन गासान कानाफासी के शोध शीर्षक 'अधिकृत फिलिस्तीन में प्रतिरोध का साहित्य:1948-1966' से माना। अनुराधा सिंह बारबरा हार्लो के विचार को अपनी पुस्तक 'ल्हासा का लहू' में उल्लेख करती है। बारबरा हार्लो लिखते हैं –

> "कानाफासी कहते हैं कि शोध तभी संभव है, जब शोधकर्ता स्वयं उस प्रतिरोध के आंदोलन का एक हिस्सा हो। वह आंदोलन जो अधिकृत भूमि पर उठा हो। इसलिए प्रतिरोध का सही आकलन के लिए अंदर का अवलोकन आवश्यक है क्योंकि भीतर से किया गया यह सामूहिक संघर्ष किसी ना किसी ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य पर आधारित होता है। अत: इतिहास लेखन का उपयोग प्रतिरोध की वास्तविक भावना को ग्रहण करने के लिए करना चाहिए, क्योंकि दमनकारी ताकतें हमारी जिन वस्तुओं को अमान्य घोषित करती है, उसमें से एक इतिहास है।" (सिंह 154)

प्रतिरोध की पहचान के लिए इतिहास को देखना जरूरी है, तभी वर्तमान का मूल्यांकन हो सकता है। वर्तमान साहित्य अस्मिता का साहित्य है। दलित, आदिवासी, किन्नर, स्त्री की अस्मिता आज के साहित्य के चिंतन के केंद्र में है और जहां अस्मिता की बात होगी, वहीं इसकी रक्षा के लिए प्रतिरोध का स्वर भी जन्म लेगा ही। अस्मिताबोध अपने आप में प्रतिरोध का ही परिणाम है और जब आज अस्मिता के साहित्य का दौर चल रहा है, तो साहित्य और प्रतिरोध के संबंध को देखना विमर्श को सही दिशा देने के लिए अनिवार्य बन जाता है। साहित्य और प्रतिरोध के संबंध पर विचार करते हुए प्रगति सक्सेना लिखते हैं –"प्रतिरोध साहित्य का अभिन्न अंग है। वह उसका एक अविभाज्य हिस्सा है।" (सक्सेना 3) वह स्पष्ट करते हैं कि साहित्य में जन्मा प्रतिरोध सत्य से प्रेरित होता है, जिसका उद्देश्य सभी प्रकार के अन्याय, दमन, उत्पीड़न के विरुद्ध खड़ा होना है, यह प्रतिरोध सत्ता के प्रतिपक्ष में घटित होता है। वह आगे लिखते हैं – "साहित्य हमेशा सत्य का अन्वेषण करता है और इस दृष्टि से उसका धर्म असत्य के खिलाफ बोलना है। इस तरह साहित्य के मूल स्वर में प्रतिरोध अंतर्निहित है। यह प्रतिरोध हर तरह की असमानता, भेदभाव, अन्याय, दमन, शोषण के विरुद्ध है। जाहिर है यह प्रतिरोध

सत्ता प्रतिष्ठान के विरुद्ध होता है।" (सक्सेना 3) इस प्रकार वह सत्ता के विरोध में, असत्य के खिलाफ साहित्य के प्रतिरोध को देखते हैं, तो दूसरी ओर कृपाशंकर चौबे साहित्य की रचनात्मकता का आधार ही प्रतिरोध को मानते है – "रचनात्मक साहित्य विरोध और प्रतिरोध के अंतिम जगह के रूप में बच सकता है।"(चौबे 65) रचनात्मक साहित्य की विशेषता ही प्रतिरोध हैं। साहित्य और प्रतिरोध के संबंध पर विचार करते हुए डॉo प्रवीण कुमार लिखते हैं–

> "साहित्य और प्रतिरोध में द्वंद्वात्मक संबंध होता है। साहित्य रचनात्मक और प्रतिरोध नकारात्मक यानी विध्वंसात्मक होता है यह मानसिकता एकांगी है। दोनों में अन्योन्याश्रय संबंध होता है। सभ्यता और संस्कृति के निर्माण में सृजनात्मकता का इतिहास प्रतिरोध का इतिहास रहा है। यह मानव की जन्मजात प्रवृत्ति है। सृजनात्मकता के इतिहास के प्रति और प्रतिरोध दोनों का समन्वय रहा है। दोनों की भाषा समन्वित रही है और प्रतिरोध समय सापेक्ष और समस्याओं के अनुसार भाषा का सृजन और चुनाव दोनों कर लेता है।" (कुमार 191)

यानि प्रतिरोध नकारात्मक अभिव्यक्ति नहीं है न ही विध्वंसात्मक, बल्कि सभ्यता और संस्कृति के सृजन का आयाम है। एक जन्मजात प्रवृति है। हाँ, समय सापेक्ष इसका रूप परिवर्तित जरूर होते रहता है और साहित्य में इसी परिवर्तन को अभिव्यक्ति मिलती रहती है। भले ही प्रतिरोधी साहित्य नकारात्मक अभिव्यक्ति नहीं है, लेकिन नकारात्मक न होने का अर्थ सच को सच के रूप में प्रस्तुत न करके उसपर पर्दा डालना नहीं है, बल्कि कात्यायनी प्रतिरोध के साहित्य को स्पष्ट करते हुए लिखती हैं –

> "प्रतिरोध का सच्चा साहित्य वही है जो डेनिश लेखक हान्स क्रिश्चियन एंडरसन की कहानी के बच्चे की तरह राजा को नंगा देख लेता है और साफ शब्दों में कहता है कि 'राजा नंगा है'। जो यथार्थ को अधूरे और खंडित रूप में देखकर सत्ता और पूंजीवाद-साम्राज्यवाद की आलोचना प्रस्तुत करते हैं, वे कहते हैं कि राजा के कपड़े फटे हैं, पुराने हैं या उसके आर-पार बहुत कुछ दिख रहा है, पर वे राजा को ना तो अलफ नंगा देख पाते हैं, ना बोल ही पाते हैं। वैचारिक अंधता की शिकार इस विकृत विकलांग यथार्थवादी दृष्टि से आज का सच्चा प्रतिरोध का साहित्य नहीं लिखा जा सकता। कई बार साहित्य कला की दुनिया में प्रतिरोध के साहित्य का एक मिथ्याभास रचा जाता है, जहां प्रतिरोध व्यवस्था द्वारा तय की गई चौहद्दी में कैद होता है या फिर दिशाहीन अथवा गलत दिशा वाला होता है। प्रतिरोध के साहित्य का काम राजा को इज्जत ढापने वाला कपड़े पहनने की राय देना और इस व्यवस्था को पैबंदसाजी से ठीक करने का सुझाव देना कतई नहीं हो सकता। उसे राजा को नंगा दिखलाना होता है, लोगों में से उसका आतंक मिटाना होता है और सड़क पर उसे घेर लेने के लिए उकसाना होता है।" (कात्यायनी)

अत: स्पष्ट है कि साहित्य का मूल स्वर प्रतिरोध ही है, लेकिन प्रतिरोधी साहित्य व्यवस्था द्वारा तय की गई चारदीवारी के भीतर बंद करके नहीं लिखा जा सकता है अर्थात् आंखे बंद करके या आँखों के सामने पर्दा लगाकर नहीं लिखा जा सकता, प्रतिरोध के साहित्य का लक्ष्य समाज में घटित घटनाओं पर पर्दा डालना नहीं बल्कि समय ,समाज सापेक्ष उसकी अभिव्यक्ति है। साहित्य भविष्योन्मुखी होता है और भविष्य के निर्माण के लिए जरूरी है कि वर्तमान की विसंगतियों के यथार्थ से परिचित होने के साथ भविष्य के प्रति सचेत हो, बदलती समाज की दशा के साथ उसकी दिशा पर भी ध्यान केंद्रित किया जाए। साहित्य का प्रतिरोध इसी उद्देश्य से प्रेरित होता है।

3. स्त्री-प्रतिरोध —

साधारणत: स्त्री-लेखन से तात्पर्य स्त्री द्वारा, स्त्री संबंधित मुद्दों पर किए गए लेखन को माना जाता हैं, इस प्रकार स्त्री-प्रतिरोध का तात्पर्य स्त्री द्वारा, स्त्री संबंधित मुद्दों पर किए गए प्रतिरोध को माना जा सकता है लेकिन स्त्री-लेखन को और उसी क्रम में स्त्री-प्रतिरोध को यहीं तक मानना इसे सीमित करना है। मधु कांकरिया ने लिखा है कि 'बैल पर लिखने के लिए बैल होना जरूरी नहीं है।' वहीं मृदुला गर्ग ने भी अपना निबंध 'देसी फेमिनिस्ट' में स्पष्ट किया हैं — "फेमिनिज्म का मतलब नारी मुक्ति नहीं, सोच की मुक्ति है। अगर स्त्री मौजूदा राजनीतिक- आर्थिक, नीति और इतिहास को उन मानदंडों के अनुसार परख सकती है जो उसने खुद इजाद किए हैं तो वह फेमिनिस्ट हैं। जरूरी नहीं है कि दुनिया को स्त्री के नजरिए से देखने का काम, स्त्री ही करें। पुरुष भी कर सकता है यानी पुरुष भी फेमिनिस्ट हो सकता है।" (गर्ग 76) जाहिर है स्त्री पर लिखने के लिए, उससे संबंधित मुद्दों की व्याख्या के लिए स्त्री ही होना जरूरी नहीं है, बल्कि स्त्री नजरिए से दुनिया को व्याख्यायित करना स्त्रीवाद है। अत: स्त्री-प्रतिरोध के लिए स्त्री होना जरूरी नहीं, बल्कि स्त्री संबंधित मुद्दों पर पुरुष द्वारा भी प्रतिरोध किया जा रहा है तो वो भी स्त्री-प्रतिरोध है, लेकिन जब हम स्त्री- प्रतिरोध की बात करते हैं तो उसे स्त्री-संबंधित मुद्दों तक ही सीमित मान लेना उसके स्वरूप को विकृत कर देना है। आज २१वीं सदी में समाज की विभिन्न समस्याओं को स्त्री-लेखन ने अपना केंद्र बिंदु बनाया है और सामाजिक-सांस्कृतिक, वैश्विक मुद्दों पर अपने प्रतिरोध को दर्ज कराया है। विभिन्न वैश्विक मुद्दों पर स्त्री-स्वर भी स्त्री-प्रतिरोध का ही अंश है। सुधा सिंह स्त्रीवादी साहित्यालोचना को परिभाषित करते हुए लिखती हैं – "स्त्री साहित्य का तात्पर्य स्त्री का लिखा साहित्य। स्त्री साहित्य का मूल आधार है स्त्री की अनुभूति। इसके अलावा एक कोटी स्त्रीवादी साहित्य की भी प्रचलन में है इसमें वह साहित्य शामिल किया जा सकता है जो स्त्री के सवालों पर लिखा गया हो अथवा अन्य किसी भी विषय पर स्त्री दृष्टिकोण से लिए रखा गया है। जिसमें स्त्री और पुरुष दोनों का लिखा साहित्य शामिल है।" (सिंह 91) स्पष्ट है किसी अन्य विषय पर स्त्री संबंधित दृष्टिकोण से लिखने का तात्पर्य ही अपनी समस्याओं से इतर समाज, देश, राष्ट्र के वैश्विक मुद्दों को स्त्री-दृष्टि से व्याख्यायित करना स्त्री-साहित्यालोचना है और प्रतिरोध भी

इसी क्रम में स्त्री संबंधित मुद्दे पर स्त्री द्वारा किए गए प्रतिरोध के साथ, स्त्री द्वारा, स्त्री संबंधित विषय से अलग देश, समाज, राष्ट्र, विश्व के विभिन्न मुद्दों किया गया उनका प्रतिरोध और पुरुष द्वारा अपनी लेखनी में स्त्री संबंधित मुद्दों पर किया गया प्रतिरोध स्त्री-प्रतिरोध का ही स्वरूप है। इस प्रकार स्त्री-प्रतिरोध के भी तीन आयाम बन गए-

१. स्त्री द्वारा स्त्री संबंधित मुद्दों पर किया गया प्रतिरोध।
२.स्त्री द्वारा स्त्री से इतर समाज, राष्ट्र, वैश्विक मुद्दों पर किया गया प्रतिरोध।
३. पुरुष द्वारा स्त्री संबंधित मुद्दों पर किया गया प्रतिरोध।

3.1. स्त्री-प्रतिरोध विद्वानों की दृष्टि में —

स्त्री-प्रतिरोध के जो तीन आयाम या स्वरूप बनते है, जिसमें स्त्री द्वारा अपने मुद्दे के साथ समाज, देश, विश्व स्तर के वैश्विक समस्याओं पर उठाए गए उसके प्रश्न, उसका विरोध स्त्री-प्रतिरोध का स्वरूप है, साथ ही पुरुष रचनाकारों की रचनाओं में भी स्त्री संबंधित जिन समस्याओं और उनके विरोध को उन्होंने दर्ज किया है, वह भी स्त्री-प्रतिरोध है। इसे विद्वानों ने अपनी-अपनी दृष्टिकोण से परिभाषित किया है। स्त्री-प्रतिरोध को परिभाषित करते हुए कमलेश कटारिया लिखते हैं – "भारतीय मानस में स्त्री की प्रतिमा अत्यंत क्षमाशील, परम सहिष्णु, सतत प्रेममयी (देवी या माँ) की है। इसलिए उसे धरती की उपमा दी जाती रही है, जबकि पुरुष की तुलना देवता या पिता या आकाश से अंशत: दी जाती है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था का अंत नारी जीवन में कई बदलाव आ गया। इसका अंत केवल सदियों के प्रतिरोध से ही प्राप्त हुआ है।" (कटारिया 01) पितृसत्तात्मक व्यवस्था के विरोध को वो स्त्री-प्रतिरोध मानते है। स्त्री की समस्याओं के मूल में पितृसत्तात्मक व्यवस्था को वह उतरदायी मानते है, क्योंकि वास्तव में यह व्यवस्था पक्षपातपूर्ण रहा, जिसमें पुरुष को तो उसके विकास का पूर्ण अवसर मिला और स्त्रियों पर तरह-तरह की बंदिशें लगाकर उसके सर्वांगीक विकास में बाधक रहा, ऐसे में इस व्यवस्था का अंत ही स्त्री मुक्ति का आरंभ है, जिसमें सुधार की संभावना प्रतिरोध से ही संभव है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था के स्वरूप पर विचार करते हुए जॉन स्टुअर्ट मिल ने 'विमेन सबजुगेशन' में जो लिखा है, उसे 'सुधा सिंह' ने अपनी पुस्तक 'ज्ञान का स्त्रीवादी पाठ' में उल्लेख किया है। मिल लिखते हैं – "इतना काफी नहीं है कि स्त्री दास रहे, बल्कि यह भी जरूरी है कि वह स्वेच्छा से दास हो। स्त्री यदि अपनी चुप्पी तोड़ेगी तो उसी समय से पुरुषों की कानूनी ,राजनीतिक, सामाजिक वर्चस्व की स्थिति खत्म नहीं हो जाएगी और स्त्रियों को बराबरी के अधिकार मिलने शुरू नहीं हो जाएंगे, लेकिन यह भी सत्य है कि बिना स्त्रियों की चुप्पी तोड़े सत्ता का पुनर्विभाजन नहीं हो सकता।" (सिंह 108) जॉन स्टुअर्ट मिल चुप्पी तोड़ने को प्रतिरोध का चरण मानते है और इसके लिए सत्ता के पुनर्विभाजन को जरूरी मानते हैं। वह मानते हैं कि चुप्पी टूटने पर अर्थात् प्रतिरोध करने

पर ही सत्ता का विभाजन होगा और समानता की स्थापना होगी, लेकिन ध्यान देने की बात है कि सत्ता का विभाजन समस्या का समाधान नहीं हैं, बल्कि सत्ता की प्रकृति ही अपने वर्चस्व को बनाए रखना हैं, ऐसे में दूसरे की सत्ता को नकारना ही लक्ष्य बन जाता हैं। जान हॉलोवे ने इसे स्पष्ट किया है कि "कैसे अस्मिता को एक सकारात्मक स्थिति माना जाता है, पर वास्तव में कोई भी ढांचा स्वीकारे जाने पर मजबूत होता है और दूसरे से टकराता है अपने को ही लगातार मजबूत करने पर लगा रह जाता है।"(हॉलोवे 59) यानि सत्ता मतलब प्रदत्त शक्ति का स्थानांतरण समानता का स्थापक नहीं होगा, बल्कि स्वयं को मजबूत कर दूसरे से टकराना है और इसी टकराने को ही जब एकमात्र लक्ष्य मान लिया जाता है तो भटकाव भी आता है। इसी भटकाव का परिणाम रहा कि स्त्रीवादी आंदोलन पितृसत्ता के विरोध की जगह पुरुष विरोध में बदल गया। जिससे समाज में स्त्री-पुरुष संबंध बिगड़ने लगे। जिसकी आलोचना पश्चिम में नारीवादी आंदोलनकारियों द्वारा ही स्त्रीवाद की तीसरी लहर में किया गया और भारत में आज 21वीं सदी में स्त्री-लेखन में। रोसी ब्रायडोटटी ने अपनी पुस्तक 'नोमेडिक सब्जेक्ट्रस' (1994) में पश्चिम के स्त्रीवाद की द्वितीय लहर की समीक्षा करते हुए जो कुछ भी कहा, उसका उल्लेख सुप्रिया पाठक ने अपनी पुस्तक 'भारतीय स्त्रियों का अहिंसक प्रतिरोध' में किया है। द्वितीय लहर की समीक्षा करते हुए कहा रोसी लिखती हैं – "उस दौर का अधिकांश स्त्रीवादी सिद्धांत भविष्य के लिए लिखा जा रहा था। जिसमें दृढ़ निश्चय की गहरी अनुभूति तथा प्रतिरोधी स्वर की चेतना अपने चरम पर थी । उस दौर के अधिकतर लेखन में आधी हकीकत और आधा यूटोपिया है।'' (पाठक 37) अर्थात् स्त्रीवाद के नाम पर अतिवाद है। सुधा सिंह ने लिखा है – "पुरुष को शत्रु घोषित करने वाली मानसिकता मूलत: मर्दवाद के प्रत्युत्तर में पैदा हुई स्त्रीवादी अतिवादी समझ है।" (सिंह 96) पितृसता या पुरुष-सत्ता की तरह यदि शक्ति स्त्री के पास आ जाएगी, तो समानता की नहीं, बल्कि स्त्री-सत्ता की स्थापना होगी, जो पितृसता की तरह ही क्रूर होगी। इसे सुधा सिंह से 'परा-पितृसत्ता' और 'उत्तर स्त्रीसत्ता' कहा है और जिसकी धारणा देते हुए लांका के विचार का उल्लेख करती हैं। लांका लिखते हैं – **"**स्त्री या पुरुष होना दूसरे लिंग विशेष की अस्मिता और भूमिका के स्वीकार और नकार पर टिका है।" (सिंह 121) इस प्रकार स्त्री-प्रतिरोध का आशय पुरुष सत्ता की जगह स्त्री-सत्ता की स्थापना नहीं है, बल्कि उसका लक्ष्य वर्तमान व्यवस्था में जो भी बुराई है, उसमें सुधार लाना है। मृदुला गर्ग ने अपने निबंध 'देसी फेमिनिस्ट' में फेमिनिस्ट के लक्षण को स्पष्ट किया हैं कि इसका लक्ष्य सत्ता हथियाकर स्त्री सत्ता की स्थापना नहीं है और न ही इसका फलक केवल स्त्री-संबंधित मुद्दों तक सीमित है, बल्कि समाज के लिए जो कुछ भी अहितकारी है, उसमे सुधार है। वह लिखती हैं – "फेमिनिस्ट का क्या लक्ष्य है तो मैं कहूँगी, वह औरत ,जो अपने घर का कचरा, बाहर सड़क पर नहीं फेंकती। कारगर फेमिनिस्ट वह है, जो सड़क पर अपना कचड़ा तो फेंकती ही नहीं, दूसरों के फेंका कूड़ा भी साफ करवा देने पर माद्दा रखती है।''(गर्ग 79) अर्थात् पुरुष अगर गलत है तो उसमे सुधार लाने का प्रयास स्त्रीवाद है न कि कचड़ा समझ घर से बाहर फेंक देना ही उपलब्धि है,

जैसा कि परंपरा में महादेवी ने भी 'घर और बाहर' निबंध में अपने विचार को रखा था। स्त्रीवाद या स्त्रीवादी प्रतिरोध, केवल अपनी समस्या तक सीमित नहीं है, बल्कि अपने घर के बाहर का कचड़ा भी अर्थात् समाज, विश्व तक की समस्याओं को सुलझाना इसका लक्ष्य है। सामाजिक समस्याओं के विरोध में भी अपने स्वर को मजबूत करना स्त्री-प्रतिरोध है।

3.2. विचारधारा और स्त्री-प्रतिरोध ——

सत्ता, प्रतिसत्ता, अस्मिता, अस्तित्व की पृष्ठभूमि में प्रतिरोध बहुत ही सुखद मामला है, लेकिन अपनी सृजनात्मकता में यदि चूक जाए, तो इसका स्वरूप संक्रमित हो जाता है। नैतिकता एवं मूल्य की कसौटी पर इसका संस्कार प्रतिरोध को प्रतिक्रिया और प्रतिशोध से आगे ले जाने के लिए जरूरी है, इस दिशा में विकसित विचारधाराओं और उसके अंतर्गत परस्पर निर्मित संवर्धित चरणों का महत्वपूर्ण योगदान है, जिसे निम्नवत शोध की पृष्ठभूमि बनाना अभीष्ट है। विचारधारा के अनुरूप स्त्रीवाद कई स्कूल में बदल गया। अनामिका ने इसके छह भाग माने — 1.लिबरल 2.रेडिकल 3.मनोविश्लेषणात्मक 4.मार्क्सवादी/समाजवादी 5. फैंरोफोन/भाषिक/उत्तर संरचनावादी 6.लेस्बीयन — उत्तर-औपनिवेशिक। विचारधारा के अनुसार स्त्री-प्रतिरोध का स्वरूप और आयाम निम्नलिखित हैं –

3.2.1. स्त्रीवादी विचारधारा में निर्मित स्त्री-प्रतिरोध का स्वरूप — क. उग्र स्त्रीवाद।
ख. उदारवादी स्त्रीवाद।

3.2.2. मार्क्सवादी विचारधारा में निर्मित स्त्री-प्रतिरोध का स्वरूप।

3.2.3. समाजवादी विचारधारा में निर्मित स्त्री-प्रतिरोध का स्वरूप।

3.2.4. अस्तित्ववादी व व्यक्तिवादी विचारधाराओं में निर्मित प्रतिरोध स्त्री-प्रतिरोध का स्वरूप।

3.2.5. मनोविश्लेषणवादी विचारधारा में निर्मित स्त्री-प्रतिरोध के स्वरूप।

3.2.6. आधुनिकतावादी विचारधारा से निर्मित स्त्री-प्रतिरोध का स्वरूप।

3.2.7. उत्तर-आधुनिकतावादी विचारधारा से निर्मित स्त्री-प्रतिरोध का स्वरूप।

3.2. 1. स्त्रीवादी विचारधारा में निर्मित स्त्री-प्रतिरोध के स्वरूप –

स्त्रीवादी आंदोलन स्त्री के अधिकारों के लेकर चलने वाला एक प्रतिरोधी आंदोलन रहा, जिसका उद्देश्य सामाजिक, राजनीतिक क्षेत्र में स्त्रियों को भी पुरुष के समान, समान अवसर मिल सके और उसकी अस्मिता को भी स्वीकारा जाए। स्त्रीवाद के उद्देश्य को लेकर सुप्रिया पाठक ने लिखा हैं– "स्त्रीवाद एक राजनीतिक विचार है

जो यह मानता है कि स्त्रियां भी मनुष्य है . . . स्त्री की बात को समझा जाए, उसे चुनाव की स्वतंत्रता दी जाए और अपने चुने उद्देश्यों के आधार पर जीने की उसकी स्वतंत्रता को स्वीकार किया जाए।" (पाठक ,09) इस प्रकार स्त्रीवाद, स्त्री के अधिकार, अस्तित्व, स्वतंत्रता की भावना को लेकर एक आंदोलन के रूप में उभरता है, जो पितृसत्तात्मक व्यवस्था के प्रतिरोध में खड़ा हुआ, लेकिन इसमें निर्मित प्रतिरोध का स्वर आगे चलकर दो भाग में बट गया – क. उग्रवादी, ख.उदारवादी। इन दोनों विचारधाराओं के अंतर्गत स्त्री-प्रतिरोध का स्वरूप अलग-अलग रहा।

क. उग्रवादी स्त्रीवाद – उग्रवादी स्त्रीवाद 60 के दशक में पाश्चात्य में उभरा। इसने भारत के नारीवादी आंदोलन को भी प्रभावित किया। उग्रवादी नारीवाद में स्त्री की समस्याओं के समाधान के लिए सुधारात्मक रवैये को नहीं अपनाया, जबकि स्त्रीवादी आंदोलन के मूल में व्यवस्था में सुधार ही रहा। मेरी वुलस्टक्राफ्ट, रेन्डेल, बेट्टी फ्रायडन आदि स्त्रीवादियों ने स्त्री के अधिकार के लिए सामाजिक व्यवस्था और कानूनी व्यवस्था के सुधार को महत्त्व दिया, जबकि उग्रवादी स्त्रीवादियों ने प्रचलित संस्थानों के नकार को स्त्री-मुक्ति और स्वतंत्रता के मानक के रूप में देखा। फलत: उग्रवादी स्त्रीवाद में विवाह, मातृत्व, प्रजनन क्षमता आदि का विरोध हुआ, क्योंकि उनका मानना था कि इनके कारण ही स्त्री को देह माना जाता है और इन्हीं क्षमताओं के कारण उनका विकास बाधित हो रहा है। स्त्री-मुक्ति के लिए जैविक क्रांति को उग्रवादियों ने महत्त्वपूर्ण माना। इसी कारण इस समय स्त्रियोचित्त गुणों को त्यागने की बात पर जोर देकर सौन्दर्य प्रतियोगिता तक का नकार अमेरिका और यूरोप के देशों में दिखा। स्त्री की तुलना में पुरुष अगर आगे है तो इसके पीछे का कारण उग्रवादियों ने शारीरिक अंतर के साथ सामाजिक भेदभाव को माना, जिसका अधिकांश में निर्माण पुरुषों ने स्त्रियों को दिग्भ्रमित करने के बनाया है। उग्रवादी स्त्रीवादियों ने अपने शोषण तथा समस्या का दोषी एकमात्र पुरुष को माना और पुरुष की तरह बनने में ही उन्होंने अपनी उपलब्धि समझी, जिससे आगे चलकर यह पुरुष से प्रतिशोध में बदल गया। फलस्वरूप उग्रवादियों के यहाँ प्रतिरोध का स्वर दूषित हो गया और उस दौर की स्त्रीवादियो ने भी इस दूषित प्रतिरोध का विरोध शुरू कर दिया। रोसी ब्रायडोट्टी स्त्रीवाद की दूसरी लहर जो उग्र स्त्रीवाद में बदल गया, उसकी समीक्षा करते हुए जो कुछ भी लिखा गया, उसका उल्लेख सुप्रिया पाठक ने अपनी पुस्तक 'भारतीय स्त्रियों का अहिंसक प्रतिरोध' में किया है। रोसी ब्रायडोटी के अनुसार – "उस दौर का अधिकांश स्त्रीवादी सिद्धांत भविष्य के लिए लिखा जा रहा था। जिसमें दृढ़निश्चय की गहरी अनुभूति तथा प्रतिरोधी स्वर की चेतना अपने चरम पर थी। उस दौर के अधिकांश लेखन में आधी हकीकत और आधा यूटोपिया है।" (पाठक 37) उग्र स्त्रीवाद की सीमा यह रही कि इसमें पुरुष विरोध की सनक ने उसे आधे यूटोपिया में बदल दिया और स्त्री-पुरुष संबंध को दूषित किया। 'साहित्य की जमीन और स्त्री-मन के उच्छवास' पुस्तक में रोहिणी अग्रवाल लिखती हैं – "उग्र उन्मूलनवादी संप्रदाय की दुर्बलता यह थी कि उसने पितृसत्तात्मक व्यवस्था में निहित पृथकतावाद के समानांतर स्त्री-पुरुष के

बीच दूरियाँ बढ़ाती हैं, संवाद स्थापित कर पितृसत्तात्मक व्यवस्था के स्वरूप विकल्प की तलाश संभव नहीं बनाती। "(अग्रवाल ,23) साथ ही स्पष्ट करती हुई आगे लिखती हैं – "हिंदी की महिला कथाकारों द्वारा 70 के दशक में रचा गया अधिकांश कथा साहित्य उग्र उन्मूलनवादी संप्रदाय की निष्पत्तियों से प्रभावित नकार एवं प्रतिशोध को अपनी जीवन शक्ति मानता है।" (अग्रवाल ,23) अर्थात् 70 की दशक में स्त्री-प्रतिरोध का जो स्वरूप साहित्य में निर्मित हुआ, उसमें स्त्री-प्रश्न को तो उभारकर रखा गया, स्त्रियाँ तो क्रांतिकारी रहीं, पर पुरुष हाशिये पर चला गया। इसीकारण उग्र स्त्रीवाद के प्रभाव से स्त्री-पुरुष संबंध बिगड़ने लगे और प्रतिरोध प्रतिशोध से आगे नहीं बढ़ पाया और इस समय स्त्री-प्रतिरोध का जो स्वरूप निर्मित हुआ, वह उग्रवादी विचारधारा से प्रभावित पितृसत्तात्मक व्यवस्था की जगह पुरुष विरोधी बन कर रह गया।

ख. उदारवादी स्त्रीवाद – उदारवादी स्त्रीवाद के अंतर्गत प्रतिरोध का जो स्वरूप निर्मित हुआ, वह सही अर्थों में प्रतिरोध रहा और प्रतिरोध का लक्ष्य मानवता के हित से प्रेरित रहा। स्त्रीवादियों का ही एक वर्ग जो उदारवादी रहा, उन्होंने उग्र स्त्रीवाद के तहत स्त्री-पुरुष संबंध को बिगाड़ने की जगह सुधारने की बात की। समस्याओं के केंद्र में पितृसत्तात्मक व्यवस्था को देखा न की पुरुष को। उदारवादियों ने पुरुष को दोषी ठहरा उससे किनारा नहीं कर लिया और न ही उससे प्रतिशोध को अपना लक्ष्य बनाया, बल्कि रोहिणी अग्रवाल ने पितृसत्तात्मक व्यवस्था से मुक्ति के लिए स्त्री और पुरुष के बीच जिस संवाद को स्थापित करने की बात की है, वह प्रयास उदारवादी स्त्रीवाद में हुआ। महादेवी ने 'शृंखला की कड़ियां' में पुरुष को 'उलझनमय यंत्र' बताया। पुरुष उलझनमय यंत्र क्यों हैं? उग्र-स्त्रीवाद में इस पर विचार नहीं किया गया, जबकि वहाँ उसे सबसे बड़ी उलझन मान लिया गया। उसका विरोध ही लक्ष्य रहा। इसीकारण प्रतिरोध प्रतिशोध प्रेरित हो गया, जबकि उदार में स्त्री के साथ पुरुष को, उसके निर्माण की प्रक्रिया या उसके ऐसे होने के पीछे के कारण को समझने का अवसर मिला। रोहिणी अग्रवाल 'साहित्य की जमीन और स्त्री-मन के उच्छवास' पुस्तक में मिल की मान्यता पर प्रकाश डालती हैं। मिल लिखते हैं – "जैविक विषमताओं के बावजूद स्त्री और पुरुष में नैतिक एवं बौद्धिक क्षमताएँ बराबर है। अत: आदर्श व्यक्तित्व की प्राप्ति हेतु पुरुष में स्त्रियोचित्त गुण तथा स्त्रियों में पुरुषोचित्त गुणों का विकास किया जाना चाहिए।" (अग्रवाल 22) उदारवादी स्त्रीवादियो ने इस मान्यता पर काम किया, जिस कारण उदारवादियों द्वारा किया गया प्रतिरोध सही अर्थ में बोध सहित अवरोध रहा और निर्मित प्रतिरोध मानवता के हित में रहा।

3.2.2 मार्क्सवादी विचारधारा में निर्मित स्त्री-प्रतिरोध का स्वरूप – कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एंगेल्स के विचार से जन्मी मार्क्सवादी विचारधारा पूंजी के समान वितरण के सिद्धांत के आधार पर सामाजिक भेदभाव, वर्ग-संघर्ष को समाप्त करके समतामूलक समाज की स्थापना की पक्षधर रही और इसके लिए क्रांति और संघर्ष को जरूरी माना। जॉन हॉलोवे लिखते हैं– "मार्क्स ने फायरबाख पर अपनी ग्यारहवीं थीसिस में कहा है : दार्शनिकों ने बहुविध केवल व्याख्या की है संसार की, जबकि मुद्दा तो है उसे बदलना।" (हॉलोवे 29) और इस

बदलाव के लिए मार्क्सवाद ने ऐतिहासिक भौतिकतावाद, द्वंद्वात्मक भौतिकवाद और वर्ग-संघर्ष के सिद्धांत को रखा है। मार्क्सवाद का मानना है कि समाज में सदैव से दो वर्ग हैं, एक शोषक वर्ग, तो दूसरा शोषित वर्ग। शोषित वर्ग को उसके श्रम के बदले बहुत कम मूल्य दे शोषक वर्ग उसके उत्पादन पर कब्जा कर मनमाने ढंग से पूंजी का उत्पादन करता है। ऐसे में एक वर्ग बड़ी ही दयनीय स्थिति में रहता है, तो दूसरे वर्ग के कब्जे में सर्वाधिक अर्थ रहता है और इस आर्थिक भेदभाव के कारण समाज में असमानता और शोषण है। वर्ग संघर्ष के द्वारा ही पूंजी का सामान वितरण कर इस वर्ग भेद को मिटाया जा सकता है। मार्क्सवाद के केंद्र में समाज के विभाजन का प्रमुख कारक अर्थ को बताया गया। स्त्री-प्रतिरोध व मुक्ति में भी आर्थिक आत्मनिर्भरता की बात की गई है। आर्थिक आत्मनिर्भरता के पीछे मनोवैज्ञानिक संस्कार है कि खुद कमाएंगे तो अपना निर्णय खुद ले सकते हैं और निर्णय की बात स्त्री-विमर्श में खूब होती रही और इस निर्णय लेने का सामर्थ्य अर्थ से ही प्राप्त हो सकता है। पुरुष समाज के विकास में अर्थ सबसे बड़ी शक्ति है, इसलिए आर्थिक आत्मनिर्भरता स्त्री पक्ष में स्त्री-मुक्ति के लिए पहला चरण बन जाता है। इस आर्थिक आत्मनिर्भरता के लिए सामाजिक अवरोध के विरुद्ध प्रतिरोध का स्वरूप निर्मित होता है। अनामिका स्त्री संदर्भ की प्रमुख पुस्तक फेडरिक एंगिल्स की 'द ऑरिजन ऑफ फैमिली, प्राइवेट प्रापर्टी द स्टेट' को आधार बना स्त्री शोषण में पूंजी की भूमिका पर प्रकाश डालते हुए लिखती हैं – "स्त्री का शोषण वहाँ से शुरू हुआ जहां से व्यक्तिक संपत्ति का प्रावधान। उत्पादन के साधन पर जिन थोड़े से लोगों का प्रभुत्व हुआ, वे मर्द थे, कारपोरेट कैपिटलिज्म तथा 'साम्राज्यवाद' के पितृसत्तात्मक पूर्वाग्रहों के मूल में है पूंजीवाद, और साधनों, अवसरों के सही आवंटन के लिए पूंजीवादी व्यवस्था ही ध्वस्थ कर देनी होगी।"(अनामिका 177) अनामिका पूंजीवादी व्यवस्था को नष्ट करने की बात करती है। पूंजीवाद और पूंजी का केन्द्रीकरण, उत्पादन का केन्द्रीकरण स्त्री-मुक्ति का बाधक तत्व है, इसलिए स्त्रियों को भी या तो यह व्यवस्था ध्वस्थ करनी होगी या पूंजी पर अपने अधिकार को जमाना होगा। एंगेल्स ने स्पष्ट किया हैं कि 'स्त्री और पुरुष में पूंजीपति और सर्वहारा का संबंध है। घर के अंदर स्त्री, पति और परिवार की देखभाल, बच्चों के पालन-पोषण तथा घर के विभिन्न काम झाड़ू-पोंछा, बर्तन, रसोई आदि करके घर के उत्पादन पर अपना नियंत्रण रखती है और पुरुष घर के बाहर का उत्पादन अर्थात् पैसा और अर्थ को नियंत्रित करता है। परंपरा से ही घर से बाहर के उत्पादन को अधिक महत्वपूर्ण माना जाता है जिसके कारण पुरुष के अधीन स्त्री रहती है। दोनों के संस्कार ही ऐसे विकसित किए जाते है। अर्थ पुरुष के हाथ में रहा, तो यह विश्वास भी उनके अंदर रहा कि घरेलू स्त्रियों को जैसे वह चाहे रख सकते हैं। खिलाने से खाएगी और पहनने देने से पहनेंगी। अपना किसी भी तरह का स्वाभिमान स्त्रियों के अंदर नहीं रहा। ऐसी स्थिति में समाज में सम्मान पाने और महत्वपूर्ण होने के लिए घर के काम को छोड़ अर्थ के उत्पादन में अपना योगदान देना स्त्री मुक्ति का विशेष चरण है। इससे परिवार रूपी पुरानी संस्था टूटने लगी। अर्थ द्वारा, स्त्री-पुरुष के बीच वर्ग भेद को समाप्त करने का प्रयास किया गया, ताकि लिंग भेद समाप्त

हो जाए और यहां स्त्री-प्रतिरोध का जो स्वरूप निर्मित हुआ, उसमें संधर्ष को वरीयता मिली। मार्क्सवादी विचारधारा से ही प्रभावित होकर स्त्रियों ने भी घर की चारदीवारी से बाहर अर्थ उपार्जन में अपना महत्वपूर्ण योगदान देना शुरू किया, लेकिन इससे कहीं न कहीं पारिवारिक संरचना में विघटन और तनाव शुरू हो गया। अपने परंपरागत कार्यों के प्रति एक प्रतिरोध का स्वर निर्मित हुआ और कामकाजी महिलाओं के साथ घरेलू कामगारों का एक बहुत बड़ा वर्ग तैयार हुआ।

3.2.3. समाजवादी पृष्ठभूमि में निर्मित स्त्री-प्रतिरोध का स्वरूप –व्यक्तिवाद और पूंजीवादी विचारधारा के विरोध में समाजवादी विचारधारा का उदय हुआ। जहाँ एक ओर पूंजीवादी व्यवस्था पूंजी के केंद्रीकरण और व्यक्ति केंद्रित व्यवस्था की समर्थक रही, वहीं समाजवादी विचारधारा पूंजी केंद्रित समाज या व्यक्ति केंद्रित पूंजी और व्यक्तिवादी विचारधारा के घोर विरोध में पनपी। पूंजीवादी व्यवस्था और पूंजी के केंद्रीकरण ने साधनों को कुछ लोगों तक सीमित कर दिया, ऐसे में समाज में विषमता का जन्म हुआ। डॉ० अमरनाथ पूंजीवादी व्यवस्था की सीमा को रेखांकित करते हुए लिखते हैं —

> "पूंजीवादी समाज व्यवस्था के अंतर्गत पैसा ही प्रमुख हो जाता है।....पैसे की शक्ति तथा क्षमता उस मनुष्य की शक्ति तथा क्षमता बन जाती है, पैसे के बल पर अत्यंत कुरूप होते हुए भी वह एक सुंदर युवती को खरीद सकता है।...बेईमानी, दुष्ट और निहायत मंदबुद्धि होने के बावजूद कोई व्यक्ति इस कारण समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेता है कि वह पैसे वाला है।" (अमरनाथ 219)

अत: पूंजी ही व्यक्ति के अधिकार का मानक बन गई। ऐसे में समाजवादी ने पूंजी के विकेंद्रीकरण की बात को सामने रखा। यद्यपि पूंजी के विकेंद्रीकरण का सिद्धांत मार्क्सवादी विचारधारा में भी विकसित हुई, पर मार्क्सवादी विचारधारा से समाजवादी विचारधारा में अंतर यह रहा कि मार्क्सवाद पूंजी के समान वितरण को समस्या के समाधान के रूप में देखता है, वह पूंजीविहीन समाज की बात नहीं करता, वहीं समाजवादी सिद्धांत पूंजी के व्यक्ति में समान वितरण की जगह पूंजीविहीन समाज की स्थापना की बात पर बल देता है। यह केवल पूंजी को समस्या के केंद्र में नहीं देखता, बल्कि प्रतिस्पर्धाविहिन समाज की स्थापना के लक्ष्य को रखता है। यह संपत्ति पर व्यक्ति नियंत्रण की जगह, सामाजिक इकाई के नियंत्रण की बात करता है। विकिपीडिया के अनुसार – "मूलत: यह वह आंदोलन है जो उत्पादन के मुख्य साधनों के सामाजीकरण पर आधारित वर्गविहीन समाज स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील है।" (विकिपीडिया) समाज की परंपरागत सोच में परिवर्तन की बात समाजवादियों ने की। मार्क्सवाद में माना स्त्री घर से बाहर निकलेगी, अर्थ उपार्जन करेगी तो निर्णय का अधिकार उसे मिलेगा समाजवादी नारीवादियो ने आर्थिक आत्मनिर्भरता को तो महत्वपूर्ण माना पर उसकी सीमा भी दिखाई कि अर्थ उपार्जन के लिए स्त्रियाँ घर से बाहर जाती हैं, तो वहाँ भी उसे लिंग के आधार पर भेदभाव का सामना करना पड़ता है और श्रम के बाद जब घर लौटती हैं, तो वहां उसे पति के रुप में जो पुरुष मिलता है, वह

पूंजीपति पुरुष ही है जो भेदभाव ही करता है अर्थात् स्त्रियां अर्थ-उपार्जन तो कर लेती हैं, पर व्यावहारिक धरातल पर अर्थ-उपार्जन के द्वारा उसकी मुक्ति की दिशा नहीं बन पाती, क्योंकि समाज पर उसकी रूढ़िवादी विचार हावी है, जो यह मानता है कि स्त्रियोचित्त गुण होने के कारण स्त्री, पुरुष से कम है। इसी मानसिकता के कारण या कहा जाए मनोवैज्ञानिक संस्कार के कारण कर्मक्षेत्र में भी स्त्रियों को कम वेतन मिलता है। अनामिका ने मार्क्सवाद में जिस वर्ग भेद को लिंग भेद का कारण बताया, उसकी सीमा पर प्रकाश डालते हुए लिखतीं हैं — "वर्ग भेद लिंग भेद को प्रश्रय जरूर देता है, पर वर्ग भेद मिटने से लिंग भेद मिट जाएगा-ऐसा तो नहीं कहा जा सकता।" (अनामिका 178) परिवार के अंदर स्त्री का शोषण मुख्य समस्या है। अर्थात् सिर्फ आर्थिक मुक्ति से या वर्ग भेद मिटा कर स्त्री मुक्ति संभव नहीं है, बल्कि इसके लिए लिंग संबंधित मानसिकता जो समाज में व्याप्त है, जिसमें लिंग के आधार पर स्त्रियों को कमजोर माना जाता है और एक पूरे के पूरे वर्ग पर मनमाने अधिकार का बोध किया जाता है, उसमे परिवर्तन की जरूरत है। समाज को अपनी रूढ़िवादी विचारों से निकलना होगा। इस प्रकार समाजवादी पृष्ठभूमि में स्त्री-प्रतिरोध का जो स्वर निर्मित हुआ, वह परंपरागत सामाजिक ढांचे की त्रुटियों के विरोध में रहा। समाज का स्त्री के प्रति रूढ़िवादी सोच के खिलाफ प्रतिरोध देखने मिला, जो सुधारवादी अधिक रहा। यही स्वर 21वीं सदी के कथा साहित्य में अभिव्यक्त हो रहा है।

3.2.4. व्यक्तिवादी और अस्तित्ववादी विचारधारा में निर्मित स्त्री-प्रतिरोध का स्वरूप —

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद व्यक्तिवादी और अस्तित्ववादी विचारधारा का उदय हुआ — यह विचारधारा समाज की जगह प्रत्येक व्यक्ति के अस्तित्व को महत्व देता है। व्यक्ति स्वतंत्रता इस सिद्धांत के मूल मे रहा और इसी कारण व्यक्ति स्वतंत्रता में बाधक सामाजिक नियम नैतिकता, मान्यता आदि जो व्यक्ति को उसके स्वयं के अस्तित्व के ऊपर समाज के अस्तित्व या सामाजिकता को महत्व देने का समर्थक रहा, उसका विरोध पाया गया। व्यक्तिवादियों का मानना था समाज और समाज की मान्यताएं व्यक्ति के सर्वांगीण विकास में अवरोध उत्पन्न करती है, इसी कारण सामाजिक मान्यताओं का प्रतिरोध व्यक्तिवाद के अंतर्गत रहा। नीत्से ने ईश्वर के अंत की घोषणा कर दी, क्योंकि ईश्वर, धर्म, अध्यात्म के नाम पर मनुष्य की स्वतंत्रता को सामाजिकता के नाम पर बाधित किया जाता है। साहित्य में भी अब तक उपेक्षित व्यक्तिवादी विचारधारा का प्रभाव पड़ा। लोंजाइनस व्यक्ति और आत्मतत्व को महत्व देते हैं और लिखते हैं –

> "साहित्य में आत्मतत्व की महानता का प्रतिबिंब ही साहित्य का औदात्य है। सच्चा वाग्वैदग्ध्य उन्हीं में पाया जा सकता है, जिनकी चेतना व्यापक और उदार हो। जो लोग जीवन भर क्षुद्र उद्देश्य और संकीर्ण स्वार्थों के पीछे पड़े रहते हैं, वे मानवता के लिए स्थाई महत्व की रचना नहीं दे पाते। यह बिल्कुल स्वाभाविक है कि जिनके मस्तिष्क महान विचारों से परिपूर्ण होते हैं उन्हीं की वाणी से उदात्त शब्द झंकृत होते हैं।" (गुप्त 14) ।

व्यक्तिवाद के अंतर्गत जब स्त्री-प्रतिरोध को देखते हैं, तो वहाँ स्त्री एक अकेली व्यक्ति के रूप में नहीं, बल्कि समुदाय के रूप में है। स्त्री समुदाय का प्रतिनिधित्व कर रही है, लेकिन जब भी कोई समुदाय को नेतृत्व देता है, तो पहली बात आती है कि हम अपने फैसले खुद करेंगे। समाज या किसी दूसरे के हस्तक्षेप को नकारती हैं। यानी समाज से ऊपर स्वयं के अस्तित्व को रखा जाने लगता है और यहीं व्यक्तिवाद पर अस्तित्ववाद हावी हो जाता है। अपने अस्तित्व को महत्व देती है और इसी कारण स्त्रीवादी आंदोलन प्रभावित हुआ और उग्र-स्त्रीवाद का जन्म हुआ। स्त्री-प्रतिरोध की दिशा में व्यक्तिवादी और अस्तित्ववादी विचारधारा ने साहित्य में कैसे स्त्री-चरित्र रचे और उनका प्रतिरोध कैसा रहा, कैसे इन विचारों से स्त्री-प्रतिरोध प्रभावित रहा और समाज को कैसे प्रभावित करता है, इन आयामों में प्रतिरोध की दिशा को समझा जाना हमारा अभिष्ट है।

3.2.5. मनोविश्लेषणवादी विचारधारा में निर्मित स्त्री-प्रतिरोध का स्वरूप —

मनोविश्लेषण का सिद्धांत मानव मन से संबंधित है। मनोविश्लेषणवाद व्यक्ति का मूल्यांकन उसके अच्छे-बुरे, नैतिक-अनैतिक, सही-गलत होने के आधार पर नहीं करता, बल्कि उसके पीछे की मानसिकता क्रिया को समझने की कोशिश करता है। मनोविश्लेषणवाद का सिद्धांत दमन के विरोध में रहा। फ्रायड काम-वृत्ति के दमन के प्रतिरोध में इसे देखते है। फ्रायड जिसे काम-वृत्ति मानते हैं, जुंग उस काम-वृति को जीवन-शक्ति मानते हैं और एडलर ने इसे सामाजिक नैतिकता से उत्पन्न हीनता-ग्रंथि का प्रतिरोध माना है। फ्रायड काम-वृति को प्रबल शक्ति मानते हैं। डॉ० सत्यदेव मिश्र लिखते हैं –

> "फ्रायड मनुष्य के सारे कार्यकलापों की संचालिका इसी लिबिडो (काम-ऊर्जा) को मानते हैं। समष्टित: एवं व्यष्टित: मनुष्य के सभी कार्य-व्यापारों के मूल में लिबिडो की प्रेरणा रहती है। … मनुष्य के सारे जीवन में काम-वृति का अहं और अत्यहम् द्वारा दमन होता है। ये दमित कामवासनाएँ अवचेतन मन में केंद्रीभूत होती रहती है और समय-समय पर नाना रूपों में अभिव्यक्ति पाती है। ये अभिव्यक्तियाँ कला, साहित्य, धर्म और संस्कृति के निर्माण की प्रधान एवं एकमात्र उपादान है।" (मिश्र 225)

मनोविश्लेषणवादी विचारधारा से प्रभावित होकर साहित्य में अतृप्त इच्छाओं को अभिव्यक्ति मिलने लगी। इसी कारण अब तक दमित वर्ग स्त्री, दलित, आदिवासी, किन्नर का विमर्श के अंतर्गत उदय हुआ। सामाजिक मान्यताओं, नैतिकताएँ और परंपरा के नाम पर स्त्रियों की अभिव्यक्ति को समाज में तथा साहित्य में दबाया जाता रहा। यौन-शुचिता का हवाला देकर उसपर सामाजिक प्रतिबंध लगाया गया, लेकिन 60 के दशक तक आते-आते इस प्रतिबंध के विरोध में प्रतिरोध का स्वर लेखिकाओं के कलम से दर्ज हुआ और स्त्रियों की यौन अभिव्यक्ति को खुल कर सामने रखा गया। साहित्य में प्रेम-काम जैसे संदर्भ पर खुलकर विचार होने लगा और यौन-शुचिता जैसी विभिन्न वर्जनाएं टूटने लगी। विवाह-पूर्व, विवाह पश्चात, समलैंगिक जैसे संबंध पर खुलकर चर्चा होने लगी, लेकिन प्रतिरोध की दिशा में रचनाकारों ने स्त्री के व्यक्तित्व का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण तो ६०

की दशक से किया, लेकिन पुरुष के विचारों और व्यक्तित्व का विश्लेषण नहीं हुआ। एक पुरुष का व्यक्तित्व जैसा है, वैसा क्यों बना? प्रतिरोध की दिशा में यह छूट गया, जबकि स्त्री और पुरुष ऐसे इकाई है, जिनका एकाकी विश्लेषण संभव नहीं है। मनोविश्लेषणवादी सिद्धांत के अंतर्गत स्त्री और पुरुष के स्त्री और पुरुष बनने के पीछे के मनोविज्ञान को समझने की समझ बनेगी, जिससे स्त्री-प्रतिरोध के बदलते स्वरूप को समझने में मदद मिलेगी। मनोविश्लेषणवादी विचारधारा के अंतर्गत मनोविज्ञान किस प्रकार स्त्री-प्रतिरोध को स्वरूप दे रहा है, इससे स्त्री-प्रतिरोध की दिशा कैसे बन रही है, इसकी परख वर्तमान प्रतिरोध के स्वरूप की पहचान की दिशा में हुई है।

3.2.6. आधुनिकतावादी विचारधारा में निर्मित स्त्री-प्रतिरोध का स्वरूप — आधुनिकतावाद का उदय प्रथम विश्व युद्ध के बाद से माना जाता है। इसके साथ अनेक ऐसी विचारधाराओं का जन्म हुआ, जिसमें धर्म के स्थान पर विवेक और तर्क की सत्ता को प्रमुखता दी गई। आधुनिकतावाद ऐसी विचारधारा रही, जिसमें परंपरा, नैतिकता, धर्म, आस्था की जगह वैज्ञानिकता को प्रमुख माना गया और परंपरा के प्रति प्रतिरोधी स्वर निर्मित हुआ। डॉo अमरनाथ लिखते हैं — "आधुनिकतावाद प्रत्येक विश्वास और विचार को संशय की दृष्टि से देखता है। इसी कारण उसमें आनास्था का स्वर मुखर है। वह मूल्यों की स्थिरता में विश्वास नहीं रखता। मूल्य न केवल अनावश्यक तथा अर्थहीन है, बल्कि हानिकारक भी है। मूल्यों के संकट का ही फल है कि लेखक अपने लेखकीय दायित्व को स्वीकार नहीं करता।" (डॉo अमरनाथ 60) आधुनिकतावाद की इस विचारधारा का प्रभाव साहित्य पर भी पड़ा और परंपरागत मूल्यों के प्रति सामाजिक नियमों, सिद्धांतों जिसको आधार बना सामाजिक भेदभाव को बढ़ाया गया है, वर्गीय भेदभाव को बल दिया गया, उसके प्रति प्रतिरोधी स्वर मजबूत हुआ। किन्नर, आदिवासी, स्त्री, दलित अपने अधिकार के लिए आगे आने लगे, विश्व से जुड़ने लगे, वैश्विक बनने लगे। स्त्री -प्रतिरोध की दिशा पर विचार करें, तो धर्मसत्ता के नाम पर स्त्री को दबाया जाता रहा है, लेकिन आधुनिकतावादी विचारधारा के मूल तत्व वैज्ञानिकता, तार्किकता ने स्त्री को भी उसके बारे में धर्म को आधार बनाकर निर्धारित किए गए मापदंड को तर्क और विज्ञान के आधार पर स्वीकार किए जाने या न किए जाने के लिए तैयार किया। डॉo अमरनाथ लिखते हैं "आधुनिकतावाद धर्म, प्रकृति, परंपरा, नैतिकता, प्रतिबद्धता, आस्था, मूल्य तथा प्रत्येक प्रचलित विचार तथा वस्तु स्थिति और व्यवस्था को चुनौती देता है विद्रोह उसका मूल स्वर है।"(डॉ अमरनाथ) तर्क और विवेक ने धर्मसत्ता के नाम पर रूढ़िग्रस्त व्यवस्था जो स्त्री-अस्मिता के लिए घातक रही, उसके विरोध में सोचने- समझने की शक्ति विकसित की और प्रतिरोध के स्वरूप को आकार दिया। आधुनिकता में व्यक्ति की महत्ता को जन्म के आधार पर स्वीकार नहीं किया गया, बल्कि इसका मानना रहा योग्यता अर्जित गुण है, जिसे कोई भी व्यक्ति, कोई भी लिंग अर्जित करके अपनी महत्ता स्थापित कर सकता है। इस विचारधारा में भाग्यवाद का खंडन रहा। जिसका प्रभाव यह रहा कि स्त्रियाँ भी भाग्यवादी, धर्मसत्ता द्वारा

स्थापित मान्यता के विरोध में आई और पुरानी 'अव्यवस्थित व्यवस्था' से निर्मित अवरोध का तर्क और विवेक के आधार पर प्रतिरोध शुरू किया।

3.2.7. उत्तर-आधुनिकतावाद की पृष्ठभूमि में निर्मित स्त्री-प्रतिरोध का स्वरूप – आधुनिकतावाद का अगला चरण उत्तर-आधुनिकतावाद कहलाया, जिसमें आधुनिकतावाद की सारी प्रवृत्तियों को तो आत्मसात किया गया, साथ ही शक्ति और संपत्ति के केंद्रीकरण की जगह विखंडन पर अधिक जोर दिया गया। उत्तर-आधुनिकतावाद निर्माण की जगह सिर्फ विखंडन के सिद्धांत पर आधारित है। इसे स्पष्ट करते हुए कृष्णदत्त पालीवार लिखते हैं – "उत्तर आधुनिकतावाद हर तरह के 'केंद्रवाद' या सेंट्रिज्य को तोड़ता है और विकेंद्रीयतावाद की महत्व-प्रतिष्ठा करता है।" (पालीवार 22) उत्तर आधुनिकतावाद का ही परिणाम रहा कि दलित, नारी, किन्नर हाशियाकृत वर्ग ने केंद्र का विरोध जोर-शोर से शुरू किया। वर्चस्व का प्रतिरोध निर्मित हुआ। ये अपने हक के लिए आगे आए। उत्तर आधुनिकतावाद से प्रभावित होकर प्रतिरोध का जो स्वरूप निर्मित हुआ उसमें जोड़ने की जगह तोड़ने की प्रवृत्ति प्रमुख रही। कृष्णदत्त पालीवाल लिखते हैं – "उत्तर आधुनिकतावाद के बुनियादी लक्षणों का अध्ययन करने पर पाते हैं कि आधुनिकतावाद के दशक के मुक्ति आंदोलन के भीतर से उपजा रेडिकल आंदोलन है। इसने सभी पुरानी विचारधारा, संस्थान, व्यवस्थाओं पर न केवल प्रश्न लगाए, बल्कि उन्हें अप्रासंगिक करार दे दिया।" (पालीवाल 18) इस प्रकार उत्तर-आधुनिकतावादी विचारधारा का मूल लक्ष्य नकार रहा, जिसने इतिहास से लेकर वर्तमान तक हर एहसास, मान्यता, परंपरा, नैतिकता, मूल्य, व्यवस्था को नकार दिया। फेक कमोड ने उत्तर-आधुनिक युग को 'अंत के एहसास का नया युग'(पालीवाल 19) तक घोषित कर दिया। इस नकार की अभिव्यक्ति को प्रमुख शक्ति मानने के कारण उत्तर-आधुनिकतावादी विचारधारा से प्रभावित हो स्त्री प्रतिरोध का जो स्वरूप निर्मित हुआ, उसका उद्देश्य भी सिर्फ तोड़ना ही रहा, जोड़ने की प्रवृत्ति उसने नहीं रही। स्त्री-प्रतिरोध की दिशा उग्र हो गई। तलाक जैसी समस्याओं का जन्म हुआ। समाज में लिव-इन, सिंगल पैरंट का कांसेप्ट जन्म लेने लगा, जिससे समाज टूटने लगा। इस कारण इस विचारधारा में निर्मित प्रतिरोध रेडिकल ही अधिक रहा। कृष्णदत्त पालीवार उत्तर आधुनिकता के बारे में लिखते हैं — "उत्तर- आधुनिकता का सबसे दिलचस्प पहलू यह है कि यह यौनवाद का पुजारी है। यहाँ संडास में सेक्स के फूल खिलते है।" (पालीवार 18) अर्थात् यौन अभिव्यक्ति को प्रमुखता मिलने लगी। 'मेरी देह मेरी मर्जी' जैसे विचार जोर पकड़ने लगे। प्रेम, विवाह जैसे संस्था के प्रति अनास्था उत्पन्न हो गई। सामाजिकता टूटने लगी, जिसके परिणाम को 21वीं सदी के कथा-साहित्य में विषय बनाया गया है।

इस प्रकार हम देखते है कि नैतिकता, मूल्य, परंपरा, संस्कृति, के परिप्रेक्ष्य में निर्मित प्रतिरोध विभिन्न विचारधाराओं से प्रभावित होता है और समय, समाज अनुसार विचारधाराओं से प्रभावित होकर स्त्री-प्रतिरोध

का स्वरूप भी बदलते रहता है, लेकिन इसके मूल में उद्देश्य सत्ता, प्रतिसत्ता से ऊपर प्रतिशक्ति को स्थापित कर व्यवस्थित व्यवस्था की स्थापना है, ताकि अस्मिता की रक्षा हो सके।

3.3. स्त्री-प्रतिरोध के प्रकार –

प्रतिरोध की बात करें, तो जॉन हॉलोवे नैसर्गिक प्रतिरोध की बात करते हैं। बारबरा हार्लो सांस्कृतिक प्रतिरोध की बात करते हैं। ऐसे में प्रतिरोध के विभिन्न तत्व व विचारधाराओं के अध्ययन के आधार पर स्त्री-प्रतिरोध को मूल रूप से पाँच भाग में बांटा जा सकता है।

3.3.1 प्रेम-काम का द्वंद्वमूलक प्रतिरोध –

स्त्री-प्रतिरोध की दिशा में प्रतिरोध का जो पहला प्रकार है, वह है प्रेमकाम के मामले को लेकर प्रेम-काम का द्वंद्वमूलक प्रतिरोध। स्त्री-विमर्श व स्त्री-प्रतिरोध, स्त्रियों की स्वाधीनता, समानता और अधिकार की मांग करता है और मैनेजर पांडेय स्वाधीनता की पहली कसौटी ही प्रेम की स्वाधीनता को मानते हैं। मैनेजर पांडेय का मंतव्य हैं – "स्वतंत्रता की पहली कसौटी है, प्रेम की स्वतंत्रता। सामंती सामाजिक व्यवस्थाओं में सबसे अधिक दमन प्रेम की भावनाओं का किया जाता है। सामंती जकड़बंधियो से आजाद होने की आकांक्षा सबसे पहले प्रेम के जरिए प्रकट होती है।" (पांडेय 20) मैनेजर पांडेय स्पष्ट करते हैं कि सामंती व्यवस्था में सबसे अधिक दबाया जाता है तो प्रेम की भावना को और प्रतिक्रियास्वरूप आजादी की इच्छा भी सबसे पहले प्रेम के द्वारा ही व्यक्त की जाती है। मैनेजर पांडेय प्रेम की आजादी को सामंती जकड़बंधियो से मुक्ति के रूप में देखते हैं और स्त्री का पूरा जीवन ही सामंती जकड़बंधियो में कसा रहा। ऐसे में प्रेम द्वारा आजादी की अभिव्यक्ति पहला चरण बनता है। स्त्री संदर्भ में प्रेम की स्वाधीनता के बारे में प्रणय कृष्ण लिखते हैं – "प्रेम के जरिए युवतियां परिवार और दूसरी सामाजिक संस्थाओं के दमघोंटू माहौल में अपना विद्रोह भी व्यक्त करती हैं।" (कृष्ण 81) तो दूसरी ओर, कात्यायनी प्रेम की आजादी को स्त्री की आजादी से जोड़ते हुए लिखती हैं – "सच्चे अर्थों में प्रेम की आजादी का प्रश्न स्त्री की आजादी के प्रश्न से भी जुड़ा हुआ है।" (कात्यायनी 5) स्त्री संदर्भ में प्रेम की आजादी को लेकर प्रज्ञा जोशी लिखती हैं – "प्रेम उसकी मर्जी है, उसका स्पेस।"(जोशी 189) दूसरी ओर मनोविज्ञान के अंतर्गत फ्रायड अतृप्त कामनाओं की उदात्तीकरण में पूरी संस्कृति के विकास को देखते हैं। फ्रायड के विचार का उल्लेख करते हुए आशुतोष कुमार लिखते हैं – "फ्रायड ने सुझाया है कि संस्कृति का समूचा विकास 'अतृप्त कामना' के उदात्तीकरण की मनुष्य की कोशिशों का ही परिणाम है।" (कुमार 5) अतृप्त कामना 'काम' की भावना है, जो प्रेम की अभिव्यक्ति का अनिवार्य चरण है। स्त्रीवाद की बात करें, तो स्त्री के मामले में भी देह शुचिता, कौमार्य रक्षा की तमाम जकड़बंधिया लगा उसके प्रेम और काम की भावना को सबसे अधिक दबाया गया, इसलिए स्त्रीवाद की शुरुआत भी 'मेरी देह, मेरी मर्जी' के सिद्धांत के साथ हुआ। अत: प्रेम और

काम के मामले में निर्णय की स्वाधीनता स्त्री स्वाधीनता का प्रमुख चरण रही। मैनेजर पांडेय और फ्रायड के मंतव्य के विश्लेषण से स्पष्ट है कि स्त्री-प्रतिरोध की जो पहली कसौटी बनती है, वह प्रेम व काम की स्वाधीनता है।

प्रेम की आजादी व प्रतिरोध की व्यापकता की ओर संकेत करते हुए मैनेजर पांडेय आगे लिखते हैं – "...प्रेम का जो संघर्ष है वह सामंती पूंजीवादी सामाजिक व्यवस्थाओं के विरुद्ध स्वतंत्र चेतना का संघर्ष है।"(पाण्डेय 20) और यह भी मानते हैं कि आर्थिक, राजनीतिक आदि अन्य संकटों से यह कम महत्वपूर्ण नहीं है – "प्रेम की चिंता स्वतंत्र चेतना को बचाने और उसे बढ़ाने की चिंता है। यह विश्व की आर्थिक-राजनीतिक संकटों की तुलना में कम महत्वपूर्ण नहीं है।"(पाण्डेय 21) डी एच लॉरेंस के मन्तव्य को लें, तो स्त्री ही नहीं मनुष्य मात्र की मुक्ति का आधार प्रेम को मानते हैं। आशुतोष कुमार उनके मंतव्य का उल्लेख करते हुए लिखते हैं – "डी एच लॉरेंस ने आधुनिक मनुष्य की मुक्ति का एक ही उपाय बताया था और वह था उद्दाम सीमाहीन प्रणय। रूढ़िग्रस्त सामाजिक जीवन, पेचीदा जीवन स्थितियों और उनसे पैदा हुए तनाव को सिर्फ और सिर्फ प्रेम के माध्यम से ही सहनीय बनाया जा सकता है।" (कुमार 41) ऐसे में स्त्री-प्रतिरोध की दिशा में प्रतिरोध की मुकम्मल पहचान के लिए प्रेम के मामले में प्रतिरोध को देखना जरूरी हो जाता है और इसी प्रेम के स्वरूप को व्याख्यायित करते हुए मृदुला गर्ग लिखती हैं – "प्रेम का मूलाधार है मनुष्य की कामवृत्ति।" (गर्ग 42) मृदुला गर्ग के अनुसार प्रेम में काम का समावेश है। प्रेम की स्वाधीनता में काम की स्वाधीनता को स्त्री-मुक्ति का प्रमुख आधार के रूप में देखते हुए राजेंद्र यादव भी लिखते हैं –

> "स्त्री-व्यक्तित्व को जिस एकमात्र जगह पर सबसे अधिक कुचला, तोड़ा या समाप्त किया गया है, वह है सेक्स। स्त्री को मर्यादा या नियंत्रण में रखने की जितनी भी तरकीबें और तरतीबें हैं, वे सब सेक्स को लेकर ही हैं। बचपन से ही उसकी इस प्रवृत्ति को समाप्त करने के तरीके ईजाद किए जाते रहे हैं।...उधर पुरुष सेक्स को बढ़ाने के लिए नुस्खे हर दीवार और अखबार पर छाए हैं। उनका भी जोर होता है कि औरत को कैसे काबू में रखा जाए...यानी तरीका कोई भी हो, स्त्री-सेक्स वह विस्फोटक तत्व है जिसे शास्त्र और शस्त्र सभी से नियंत्रित रखना है। फिर क्यों स्त्री मुक्ति की मुहिम मुख्य रूप से इसी नैतिकता के विरोध से नहीं शुरु होनी चाहिए?"...स्त्री-मुक्ति का असली मुद्दा सेक्स मुक्ति है...।" (यादव 43-44)

मैनेजर पांडेय और राजेंद्र यादव के कथन पर विचार किया जाए, तो प्रेम और काम स्त्री मुक्ति की दिशा में प्रमुख चरण बन जाते हैं। यह संबंध 'लक्ष्य-उपलक्ष्य' के अंतर के कारण द्वंद्वमूलक बना रहता है। इस कारण प्रतिरोध कहीं प्रतिकार, तो कहीं प्रतिशोध में बदलकर रह जाता है। इसे स्त्री-प्रतिरोध की दिशा में देखना जरूरी रहा, जिसपर इस शोध में विचार किया गया है।

3.3.2. घरेलू महिला कामगार का प्रतिरोध –

स्त्री-प्रतिरोध की दिशा में प्रतिरोध का एक प्रकार बनता है, घरेलू महिला कामगार का प्रतिरोध। प्रतिरोध का अर्थ हमेशा सशक्त विद्रोह ही नहीं होता, बल्कि चुप्पी भी होती है। प्रतिरोधी आंदोलन में प्रतिरोध को परिभाषित करते हुए लिखा गया –

> "वास्तव में प्रतिरोध को ना केवल प्रभुत्व और अधिकार के संबंधों में समझा जाना चाहिए, बल्कि अन्य अनुभवों के माध्यम से भी समझा जाना चाहिए, जैसे "इच्छा और क्रोध", "क्षमता और क्षमता", "खुशी और भय", "सपने देखना और भूलना", जिसका अर्थ है कि प्रतिरोध नहीं है हमेशा प्रभुत्व बनाम प्रभुत्व, शोषित बनाम शोषक या उत्पीड़ित बनाम उत्पीड़न के बारे में। विभिन्न कारणों से प्रतिरोध के विभिन्न रूप बनते हैं, जिन्हें फिर से हिंसक और अहिंसक प्रतिरोध (और "अन्य" जो अस्पष्ट है) के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है।" (प्रतिरोधी आंदोलन)

अत: प्रतिरोध हमेशा हिंसक ही नहीं होता, बल्कि प्रभुत्व, शोषण से कहीं आगे अनिच्छा, भय, विवशता से भी जुड़ा मामला है। ऐसे में घरेलू महिला कामगार को लेकर उनकी चुप्पी व विवशता में प्रतिरोध को देखना जरूरी जान पड़ता है। जिसे देवेंद्र चौबे ने 'मध्यवर्ग के बीच हाशियाकृत' बताया है, तो डॉo अजय कुमार साव 'प्रतिरोध के प्रतिमान' के रूप में देखते हुए 'स्त्री-विमर्श का अछूता अध्याय' मानते हैं। गिरीश मिश्र अपने लेख 'भूमंडलीकरण के वैचारिक आधार' में लिखते हैं –

> "उदारवाद की मान्यता है कि ज्वार आने पर छोटी-बड़ी सब नौकाएं ऊपर उठती है, अर्थात् आर्थिक समृद्धि की दर बढ़ने पर समाज के हर व्यक्ति को फायदा पहुंचता है। निचले तबके को 'ट्रिकल डाउन' के जरिए, समृद्धि के फायदे मिलते हैं। उदाहरण के लिए किसी धनी व्यक्ति की जितनी ही अधिक गाड़ियां होगी, उसे उतनी ही अधिक ड्राइवर और साफ-सफाई करने वालों की जरूरत होगी, इस प्रकार उसकी कमाई का एक बड़ा भाग छीज़कर अन्य लोगों को मिलेगा।" (मिश्र 33)

अर्थात् उदारवाद एक चेन की तरह काम करेगा। जिसमें एक के साथ दूसरे के विकास का अवसर बनेगा और इसी का परिणाम है कि नव-उदारवाद के विकास के बाद शहरीकरण की जो प्रक्रिया हुई, उसमें कामकाजी महिलाओं के परिवार में घरेलू महिला कामगार की आवश्यकता बढ़ने लगी। मध्यवर्गीय परिवार में घरेलू महिला कामगार की उत्तरोत्तर आवश्यकता की बढ़ोतरी को देखते हुए जागोरी संस्था द्वारा हुए सर्वे के आधार पर सुरभि टंडन मेहरोत्रा लिखती है – "पिछले तीन दशकों में इनकी संख्या पुरुष कामगारों की तुलना में तेजी से बढ़ती दिखाई दी है। 2000-2004 में कुछ बढ़ोतरी दिखाई दी। 2004 में राष्ट्रीय स्तर पर शहरी महिला श्रमिक दल में यह आंकड़ा बढ़कर 16 प्रतिशत हो गया। 2004-2005 में 30.05 महिला कामगार की भारतीय शहरों में

1990-2000 से 200 प्रतिशत तक बढ़ोतरी हुई है।" (मेहरोत्रा 1) निरंतर इस वर्ग की आवश्यकता बढ़ती जा रही है, बावजूद इसके 'स्वप्न, संघर्ष, व स्वप्न' को लेकर स्त्री-विमर्श में बातें कम हुई है। डॉo साव लिखते हैं –

> "हाशिये को विमर्श ने अपना विषय बनाया है, पर मुख्यधारा 'मध्यवर्गीय परिवार' के बीच का 'हाशिया' 'घरेलू महिला कामगार' स्त्री-विमर्श के लिए अछूता विषय है। ऐसे में हाशिये के साथ मध्यवर्गीय परिवार के संबंध प्रत्यक्षत: कहीं प्रतिरोधमूलक है, तो कहीं समय-समाज के लिए इनके हित में वैचारिक भूमि उपलब्ध कराते हैं। यह भी विचारणीय है कि अब घरेलू महिला कामगार उत्पीड़न की शिकार मात्र नहीं है, मध्यवर्गीय परिवार की विवशता का भरपूर शिकार भी कर रही हैं। ऐसे में मुख्यधारा के बीच इस हाशिये के संदर्भ में प्रतिरोध के परस्पर द्वंद्वमूलक प्रतिमान का अध्ययन वर्तमान विमर्श को समग्रता प्रदान करेगा।" (साव 5)

डॉo साव विमर्श को समग्रता देने के लिए मुख्यधारा के बीच हाशियाकृत वर्ग 'घरेलू महिला कामगार' के अध्ययन को एक ओर अनिवार्य मानते हैं, तो दूसरी तरफ लिखते हैं – "घरेलू महिला कामगार के 'संघर्ष-स्वप्न-संकल्प और फिर सघन होते संघर्ष' के बहुआयामी प्रतिरोधमूलक परिदृश्य भले ही कथा जगत में व्याप्त हैं, पर विमर्शकारों, आलोचकों, शोधार्थियों की जवाबदेही का हिस्सा नहीं बन पाए हैं।" (साव 5) ऐसे में स्त्री-विमर्श को समग्रता प्रदान करने के लिए क्योंकि विमर्श की समग्रता ही प्रतिरोध को समग्रता दे सकती है, चुप्पी में, विवशता में (बिना आक्रमक हुए) प्रतिरोध की तलाश के लिए स्त्री-विमर्श के इस अनछुए पक्ष में स्त्री-प्रतिरोध की पड़ताल करना शोध की मौलिकता व जवाबदेही के साथ प्रतिरोध का एक जरूरी प्रकार बन जाता है।

3.3.3. स्त्री-प्रतिरोध का राजनीतिक संदर्भ –

पश्चिम में नारीवादी आंदोलन का श्री गणेश ही महिलाओं की राजनीतिक (वोट के अधिकार) को लेकर हुआ और भारत में रवींद्रनाथ टैगोर से लेकर महात्मा गांधी तक ने स्त्रियों के संवैधानिक प्रक्रिया में भागीदारी को न केवल समाज के लिए जरूर बताया, बल्कि इसके लिए अथाह कोशिश भी की। प्रफुल्ल कोलाख्यान लिखते हैं – "राजनीति मूलत: सत्ता विमर्श है...सत्ता राजनीति का केंद्रीय विधान है...राजनीतिक आंदोलन का मकसद सत्ता के संचालन में परिवर्तन के माध्यम से समाज के संचालन में परिवर्तन करना होता है। " (कोलाख्यान 2-3) स्त्री की समस्या अधिकांश में समाज से जुड़ी रही और राजनीति समाज परिवर्तन का माध्यम रहा, इसलिए स्त्री-प्रतिरोध का एक अनिवार्य प्रकार स्त्री का राजनीतिक क्षेत्र में पदार्पण कर सामाजिक परिवर्तन के लक्ष्य को पूरा करना रहा। इस दिशा में राजनीतिक क्षेत्र में अपने अधिकार के लिए संघर्ष करती स्त्रियाँ कथा-साहित्य में नजर आईं। यद्यपि स्त्री का राजनीतिक प्रतिरोध केवल अपनी सामाजिक स्थिति में परिवर्तन करने के संकुचित लक्ष्य तक सीमित नहीं रहा, बल्कि स्त्री के राजनीतिक प्रतिरोध के लक्ष्य को बड़ा माना गया। रवीन्द्र नाथ टैगोर हो या महात्मा गांधी इनका मानना रहा कि स्त्री की राजनीतिक भागीदारी उसके स्त्रियोचित्त गुण त्याग, ममता,

सहानुभूति आदि समाज के लिए अधिक हितकर है। महिला राजनीति को लेकर रवींद्रनाथ टैगोर के जो विचार रहे, उसका उल्लेख प्रणव मुखर्जी संसद में अपने भाषण में कहते हैं – "...महिला किसी भी राष्ट्र के भविष्य का निर्माण करती है और उसे गढ़ती है...उसका दिल पुरुष से कहीं अधिक मजबूत और साहसी होता है...वह मनुष्य की प्रकृति में सर्वोच्च प्रेरणा होती है।" (मुखर्जी 8) यही कारण है कि इंदिरा गांधी हो, प्रतिभा पाटिल या द्रौपदी मुरमुर जब भी कोई महिला चुनाव जीतती है, तो लोगों की उम्मीद उनसे बन जाती है कि जनकल्याणकारी काम अधिक करेगी, लेकिन कथा-साहित्य में देखा यह भी गया कि सत्ता में आने के बाद भी अधिकांश में स्त्रियाँ मोहरा मात्र बनकर रह जाती है। सत्ता संचालन किसी और (पुरूष) के द्वारा होता है। इस कारण ३३% आरक्षण अपने आप में प्रश्न के कटघरे में खड़ा हो जाता है। जो स्त्रियाँ मोहरा नहीं बनती, वो सत्ता की प्रकृति से बहुत हद तक दूषित हो जाती है और यहीं सामाजिक परिवर्तन का लक्ष्य पीछे छुटने लगता है। इसलिए मृदुला गर्ग लिखती हैं –

> "स्त्री ज्यादा सहिष्णु है और यह की वो अगर सत्ता में आई तो वह ज्यादा सकारात्मक रहेगी।...यह हमारी मान्यता है...प्रश्न करने की जरूरत है जो कुछ होता है...तो क्या हमारी (स्त्रियों की) प्रतिक्रिया फर्क होती है पुरुष से? दोनों में क्या अंतर होता है? लेकिन हम देख रहे हैं कि जब भी कोई स्त्री सत्ता में आती है वैसा ही व्यवहार करती है जैसा पुरुष करता है। सत्ता का अपना समीकरण है और वह वही होता है।" (गर्ग 113)

सत्ता की प्रकृति ही प्रदूषित है और इस प्रदूषण से न पुरूष बच सका है न स्त्री, वाबजूद इसके स्त्री का राजनीतिक प्रतिरोध उसकी पारिवारिक, सामाजिक छवि में परिवर्तन के लिए व देश, राष्ट्र के हित के लिए अनिवार्य चरण है। ऐसे में कथाजगत में स्त्री-राजनीति के स्वरूप और स्त्री-राजनीति की सीमा का स्त्री-प्रतिरोध की दिशा में अध्ययन जरूरी है।

3.3.4. सभ्यता का संकट और स्त्री-प्रतिरोध –

स्त्री-प्रतिरोध का एक प्रकार नव-साम्राज्यवाद के उदय के बाद जो नई सभ्यता विकसित हुई, उससे उत्पन्न संकट के विरोध में किया गया उनका लेखन है। 'सभ्यता का संकट' हर युग की समस्या है। गांधी और टैगोर ने सभ्यता के संकट को अपने समय 'अंग्रेजी साम्राज्यवादी' ताकत से प्रभावित भारतीय समाज के परिप्रेक्ष्य में देखा और रवींद्रनाथ टैगोर ने 'सभ्यता का संकट' शीर्षक से लेख लिखा। आज अंग्रेजी साम्राज्यवाद की जगह वैश्वीकरण के बाद जो नव साम्राज्यवाद का उदय हुआ, उससे उत्पन्न संकट बना हुआ है। हंटिंगटन ने 1993 में अपनी पुस्तक 'The Clash Of Civilization' में सभ्यता के संघर्ष का सिद्धांत दिया। उनके विचार का उल्लेख करते हुए रविशंकर लिखते हैं –

> "90 के दशक में हंटिंगटन ने सभ्यताओं के संघर्ष का सिद्धांत दिया था। उनका कहना था कि इन नए यानी शीतयुद्ध के पश्चात के विश्व में सर्वाधिक महत्वपूर्ण व्यापक और खतरनाक संघर्ष सामाजिक वर्गों, अमीरों-गरीबों या अन्य आर्थिक आधार पर विभाजित समूहों के बीच नहीं, बल्कि विभिन्न कल्चरल पहचान के लोगों के बीच होगी।...बाद में हंटिंगटन 'कल्चर' के स्थान पर 'सिविलाइजेशन' यानी सभ्यता शब्द का प्रयोग करते हैं।" (रविशंकर 8)

हंटिंगटन ने सभ्यता के संघर्ष के मूल में "पश्चिम बनाम शेष सभ्यता" (रविशंकर 8) की बात की, जिसे पुरुषोत्तम अग्रवाल ने 'सभ्यता का संकट' कहा है। रविशंकर ने सभ्यता के इस संघर्ष में भारत की भूमिका का विवेचन करते हुए लिखा है – "सभ्यताओं का उनका यह लगभग डेढ़ हजार वर्ष पुराना संघर्ष अब नए अवतार में हमारे सामने हैं। यह संघर्ष अब हिंसक कम है और बौद्धिक अधिक है। उन्हें समझ आ गया था कि भारत बौद्धिक विमर्श में विश्वास करता है।...इस बौद्धिक विमर्श में सबसे बड़ी भूमिका भारत की ही है, क्योंकि वही इसका सबसे बड़ा पीड़ित और सक्षम प्रतिभागी भी है।" (रविशंकर 11) स्पष्ट है कि नव साम्राज्यवाद के उदय के साथ अब देशों के बीच सशक्त लड़ाई की जगह सभ्यता की लड़ाई होगी। इसमें पश्चिमी सभ्यता के अंधानुकरण से अन्य सभ्यता, विशेषकर भारत की सभ्यता प्रभावित होगी और पश्चिमी सभ्यता के गिरफ्त में जाने लगेगी। अल्विन टॉफलर "न्यू वेब" शीर्षक पुस्तक में लिखते है कि कैसे इस नई सभ्यता में हमारा सब कुछ 'ट्यून' करने लगेगा और इससे हमारा परिवार, समाज, जीने का ढंग, चिंतन पद्धति सबकुछ प्रभावित हो जाएगा। अल्विन टॉफलर के विचार का उल्लेख कृष्णदत्त पालीवाल अपनी पुस्तक 'उत्तर आधुनिकतावाद और दलित साहित्य' में करते हैं। अल्विन टॉफलर के अनुसार –

> "हमारे जीवन में एक नई सभ्यता का प्रादुर्भाव हो रहा है। अज्ञानी लोग हर जगह सभ्यता के आगमन को रोकने के लिए एड़ी-चोटी का जोर लगा रहे है, किंतु यह सभ्यता अपने साथ नई परिवार व्यवस्था, पारिवारिक चिंतन पद्धतियां, कार्यकलापों का नया ढब, प्रेम-संबंध और जीवन जीने का नया अंदाज, नवीन अर्थव्यवस्था, नया राजनीतिक परिदृश्य और इन सभी से ऊपर एक नवीन परिवर्तनवाद की चेतना ला रही है। आज हजारों लोग अब भविष्य किसने से अपने को 'ट्यून' कर रहे हैं।" (पालीवाल 50)

अर्थात् इस व्यवस्था के अनुरूप अनुकूलित हो जाने को, इसके बहाव में बहते चले जाने को, इसके अनुसार ट्यून होने को हम बाध्य हो जाएंगे। पुष्पपाल सिंह लिखते हैं –

> "विचारना (थार्ट, थ्योरी) के रूप में भूमंडलीकरण, उपभोक्तावाद उन्मुक्त बाजार व्यवस्था या कहें खुला उदार बाजार आदि की चर्चा प्राय: 2530 वर्ष पूर्व प्रारंभ हो गई थी, किंतु इस दिशा में विशेष सक्रियता पिछले 15 वर्षों, विशेषतः 1989-90 से तीव्रतर रूप धारण करती चली गई।...कहना न होगा कि वह

दिन दूर नहीं जब हम परिवर्तन की द्रुत गति का आकलन करने की स्थिति में नहीं रहेंगे, केवल उसके बहाव में बहते ही चले जाएंगे।" (सिंह 16-17)

इस बहाव में हमारा परिवार, समाज बाजारवादी व्यवस्था केंद्रित हो जाएगा। इस नई सभ्यता को रोक पाना संभव नहीं है, लेकिन इसके प्रभाव को कुछ कम किया जा सकता है और इस संकट को सम करने की शक्ति पुष्पपाल सिंह साहित्य में देखते हैं। वह लिखते हैं – "भूमंडलीकरण का प्रभाव केवल बाजार या व्यापार तक ही सीमित होकर नहीं रह गया, पूरी सभ्यता और संस्कृति को इसने अपने रंग में रंग दिया।...यह बाजारू संस्कृति का निर्माण, प्रसार अब रुकने की बात नहीं रह गया है, एक प्रकार से यह अप्रतिरोध्य हो चला है, इसके प्रभाव को केवल साहित्य और कलाओं के चिंतन द्वारा ही कुछ सम पर लाया जा सकता है।" (सिंह 19- 20)

ऐसे में स्त्री लेखन में इस संकट को सम करने के लिए किस रूप में प्रयास हो रहा है, इसे स्त्री-प्रतिरोध की दिशा में देखा जाना जरूरी है, क्योंकि स्त्री-प्रतिरोध 'स्व' के मुद्दे तक सीमित अर्थ लिए हुए नहीं है, बल्कि व्यापक सामाजिक सरोकार से जुड़ा हुआ है। सुधा सिंह लिखती हैं — "स्त्री साहित्य से तात्पर्य है स्त्रियों का लिखा साहित्य। स्त्री साहित्य का मूलाधार है स्त्री की अनुभूति। इसके अलावा एक कोटी स्त्रीवादी साहित्य की भी प्रचलन में है। इसमें वह साहित्य शामिल किया जा सकता है, जो स्त्री के सवालों पर लिखा गया हो अथवा अन्य किसी भी विषय पर स्त्री दृष्टिकोण से लिखा गया हो।" (सिंह 93) ऐसे में स्त्री-प्रतिरोध को सीमित 'स्व' से आगे व्यापक सामाजिक सरोकार में देखने के लिए 'सभ्यता का संकट' पर स्त्री लेखन में जो प्रतिरोध है, उस पर विचार जरूरी है।

3.3. 5. स्त्री-प्रतिरोध का भाषाई संदर्भ –

स्त्री- प्रतिरोध के विभिन्न प्रकार में प्रतिरोध का भाषाई संदर्भ भी है। भाषा पर स्पेन्डर के विचार का उल्लेख करते हुए सुधा सिंह अपनी पुस्तक 'ज्ञान का स्त्रीवादी पाठ में लिखती हैं – "पुरुष श्रेष्ठत्व वाला समाज भाषा के द्वारा ही अपना वर्चस्व कायम किए हुए हैं। यद्यपि दोनों लिंग भाषा का प्रयोग करते हैं, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि भाषा से दोनों का संबंध समान है। इसके उलट यह साबित करना आसान है कि भाषा मुख्यत: पुरुष प्रयास का नतीजा है और ऐतिहासिक तौर पर भाषा पर पुरुषों का ज्यादा बड़ा अधिकार है।" (सिंह 143) अतः स्पष्ट है कि भाषा के माध्यम से वर्चस्व कायम करने का अपना एक इतिहास रहा है। हमारे यहां स्त्री से संबंधित अपशब्द अधिक रहे हैं, कुछ ऐसे शब्द भी रहे हैं जैसे सती, बंदिनी जिसके लिए पुल्लिंग शब्द नहीं है। विद्यापति, बिहारी की ओर ध्यान ले जाएं, तो स्त्री के लिए उनकी शब्दावली का कामुक रही है। स्त्री भाषा में अधिकतर सहमति के शब्द रहे हैं। इसके उलट पुरुष की भाषा में वीरता से भरे शब्द रहे है, जिसमें नकार, प्रतिकार, विरोध दर्ज हुआ है। इस प्रकार भाषा के माध्यम से स्त्री को पराश्रित बनाया गया। अनामिका लिखती

हैं – "यह बात अपनी जगह दुरुस्त है कि भाषा एक लीला भूमि है, तो एक युद्धभूमि भी। अस्मिता की लड़ाई हो या अन्य मनोसामाजिक संघर्ष उसकी सबसे महीन और सार्थक अनुगूंजे भाषा में ही दर्ज होती हैं।" (अनामिका 23) अत: 'लीलाभूमि' के रूप में भाषा चमत्कार भी पैदा करती है, 'युद्ध भूमि' के रूप में प्रतिरोध का भी माध्यम है। ऐसे में 21वीं सदी के कथा-साहित्य में स्त्री संदर्भ में जिस तरह की भाषा का प्रयोग हुआ है, उसे स्त्री-प्रतिरोध की दिशा में देखना जरूरी हो जाता है। जगदीश्वर चतुर्वेदी लिखते हैं – "स्त्री के हितों की लड़ाई का स्त्री भाषा के निर्माण की प्रक्रिया से गहरा संबंध है। स्त्री हितों की रक्षा एवं विस्तार की कोशिश जितनी तेज होगी, स्त्री भाषा के निर्माण की संभावनाएं उतनी ही प्रबल होगी। स्त्री संघर्ष के बगैर स्त्री भाषा संभव नहीं है। उसी तरह स्त्री की भाषा के बगैर स्त्री के संघर्ष को सही दिशा देना भी संभव नहीं है।" (चतुर्वेदी 278) संघर्ष को सही दिशा देने के लिए स्त्री संदर्भ में प्रयुक्त भाषा जो स्त्रीभाषा है, उसे प्रतिरोध की दिशा में देखना जरूरी बन जाता है, इसलिए स्त्री-प्रतिरोध के भाषाई संदर्भ का अध्ययन प्रतिरोध की दिशा में एक अनिवार्य चरण बन जाता है।

विचारणीय है कि प्रतिरोध के निर्माण में प्रयुक्त विभिन्न तत्व और समय-समय पर विकसित विचारधाराओं के प्रभाव से निर्मित स्त्री-प्रतिरोध का समग्रता में अध्ययन के लिए सामंती जकड़बंधियों से मुक्ति की दिशा में प्रतिरोध का 'प्रेम-काम का मामला हो', 'राजनीतिक संदर्भ' हो, स्त्री-विमर्श का अछूता अध्याय 'घरेलू महिला कामगार' का प्रतिरोध हो, प्रतिरोध का 'भाषाई संदर्भ' हो या 'स्व' से ऊपर पूरी सभ्यता जिस संकट से गुजर रही है, इससे प्रभावित हमारे परिवार-समाज की व्यवस्था हो, उस संकट को सम करने की दिशा में स्त्री-लेखन ने जो प्रतिरोध खड़ा किया गया है, वह विमर्श को समग्रता प्रदान कर रहा है। इसे स्त्री-प्रतिरोध की दिशा में देखना प्रतिरोध को व्यापक सामाजिक सरोकार से जोड़कर देखने के लिए अनिवार्य है।

4. स्त्री-प्रतिरोध : परंपरा और प्रगति –

हिंदी कथा साहित्य में स्त्री-प्रतिरोध के विविध स्वर अपने प्रारंभिक काल से मुखर रहे हैं। इसके बावजूद थेरी गाथा से आगे बढ़ते हुए, भक्ति युग में स्त्री-प्रतिरोध एक अनिवार्य पृष्ठभूमि तैयार कर रहा है, जिसका सामान्य परिचय प्रस्तुत करते हुए कथा-साहित्य में अभिव्यक्त प्रतिरोध की परंपरा से परिचित होना हमारा अभीष्ट है, ताकि परंपरा से किए गए प्रतिरोध प्रगतिमूलक है या प्रतिरोध मूलक इसकी सही पहचान हो सके।

4.1. वैदिक एवं उत्तर वैदिक काल में स्त्री-प्रतिरोध : परंपरा एवं प्रगति –

सिंधु घाटी सभ्यता के अंत और आर्यों के भारत आगमन के साथ वैदिक काल का प्रारंभ हुआ और जहां तक स्त्री की बात करें, तो ये मातृ- प्रधान समाज रहा। इस काल में शिक्षा, विवाह, सामाजिक, धार्मिक कार्यों में स्त्रियों की समान भागीदारी थी। स्त्रियों के सम्मान का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि आर्यों ने स्त्री को ही परिवार की संज्ञा दे दी और वधु को परिवार की सम्राज्ञी मान लिया। स्त्री स्वतंत्रता की बात

करें, तो वर चुनने, अविवाहित रहने, पति की मृत्यु पर सती होने या ना होने, विधवा द्वारा अन्य को पति के रूप में चुनने या न चुनने, मां बनने के लिए किसी अन्य पुरुष से 'वीर्य अनुदान' लेने तक की छुट इस काल में स्त्रियों को थी, इसलिए वैदिक काल में स्त्री-प्रतिरोध की परंपरा को देखने की बात करते हैं, तो अवरोधों के अभाव में प्रतिरोध भी विशेष न रहा। हालांकि अपनी प्रगति में जहाँ 'काम' संबंध को संतान उत्पत्ति के सरोकार से जोड़कर देखा गया और इसमें स्त्रियों की भूमिका को, उसके आनंद को पाप और पुण्य की मर्यादा से जोड़कर बाधित किया गया। वहीं दूसरी ओर वैदिक काल में स्त्रियाँ रतिक्रिया के प्रति मुखर रही और इसे संतानोत्पत्ति का नहीं, आनंद माध्यम मानती रही। घोषा, लोपामुद्रा, इंद्रानी की ऋचाओं में इसकी मुखर अभिव्यक्ति है। लोपा जवानी में संभोग का पूर्ण आनंद लेने की बात करती है। घोषा उसे ही पति स्वीकार करना चाहती है जो बलवान हो, इंद्रायनी बताती है कि कैसे पुरूष मैथुन में स्त्री को संतुष्ट कर ही नहीं सकता,इस प्रकार काम-संबंध की मुखरता प्रतिरोधी चरण बना।

लेकिन उत्तर वैदिक काल तक आते-आते 'मनुस्मृति' के प्रभाव से स्त्री की स्थिति में ह्रास आ गया। वेद,शास्त्र की शिक्षा, संपत्ति, उपनयन संस्कार के साथ सामाजिक कार्य में उसकी भागीदारी पर अंकुश लगा। स्वयंवर की जगह कन्या विक्रय, दुराचारी पति के साथ संबंध निर्वाह, वीर शुल्का जैसी प्रथा प्रारंभ हुई। बाल-विवाह, बहु-विवाह, सती-प्रथा का प्रचलन और विधवाओं की वैदिक युग में वर चुनने की जो स्वतंत्रता थी, उसपर भी अंकुश लगा दिया गया। उत्तर वैदिक काल में स्त्री की स्थिति की गिरावट का वर्णन करते हुए कमलेश कुमार गुप्ता लिखते हैं–

> "महिलाओं को वैदिक काल में जो पुरुषों को बराबर सम्मान एवं महत्व प्राप्त था, वह उत्तरोत्तर कम होता चला गया। उत्तर वैदिक काल में धर्मसूत्रों में बाल-विवाह का निर्देश दिया गया, जिसके परिणामस्वरूप महिलाओं की शिक्षा में बाधा पहुंची और इनकी शिक्षा का स्तर गिरता चला गया। उत्तर वैदिक काल में महिलाओं को धार्मिक तथा सामाजिक अधिकारों से वंचित रखने की दो प्रमुख कारण थे – १.कर्मकांड की जटिलता तथा पवित्रता २. अंतर्जातीय विवाह।" (गुप्ता -१-२)

और इन दोनों परिणाम यह हुआ कि 'मनुस्मृति' को व्यवहार की कसौटी मानकर 'वैदिक काल की 'गृहलक्ष्मी', 'माता' एवं 'शक्ति प्रदायिनी देवी' अब 'याचिका', 'सेविका' तथा 'अबला' के प्रतीक के रूप में दिखाई देने लगी।' परंपरा और संस्कृति का सहारा लेकर अन्य धर्म ग्रंथों को छोड़ केवल 'मनुस्मृति' को आधार बना 'नैतिकता का निजीकरण' पुरुषहित में हुआ, जिससे स्त्री को माता या देवी बनाने वाले पारंपरिक मूल्य संक्रमित हुए और आगे चलकर नए मूल्य जो विकसीत हुए, वह स्त्री के सामाजिक जीवन को बाधित करने लगे। हालांकि प्रतिरोध इस क्रम में रहा कि वाबजूद इसके कुछ स्त्रियाँ शास्त्रार्थ करती रही। गार्गी का उदाहरण है, जहाँ जनक के दरबार में जब विद्वान गार्गी के तर्क से हार जाते हैं, तो क्रोध में कहते हैं कि मुझसे सवाल करेगी तो तेरा सिर नीचे गिर

जाएगा। 'गार्गी मति प्राक्षीर्मा ते मूर्दधा चयपत'। (बिसारिया 9) गार्गी, मैत्रेयी, लोपामुद्रा, विश्वाश्या आदि शास्त्र और ऋचाओं को लिखने वाली, तर्क करने वाली स्त्रियाँ आती हैं, जो इन कर्मकांड के विरोध में खड़ी होती है और यह स्त्री-प्रतिरोध का ही चरण रहा।

4.2. बौद्ध धर्म में स्त्री- प्रतिरोध : परंपरा एवं प्रगति –

बौद्ध धर्म में स्त्री-विमर्श, स्त्री-मुक्ति, संघर्ष व प्रतिरोध की प्रथम गुंज 'थेरी गाथाओं' में मिलता है। 'मनुस्मृति' की निजीकृत नैतिकता के आधार पर पुरुषहित में जो व्याख्या उत्तर वैदिक काल में हुई, उससे स्त्री संबंधित पारंपरिक, शाश्वत मूल्य में परिवर्तन आया और स्त्री संबंधित नए समाज, समय-सापेक्षिक मूल्य विकसित हुए। इसका परिणाम यह हुआ कि स्त्रियों को मोह-माया बाधा माना गया। फलत: गौतम बुद्ध ने भी बौद्ध धर्म में स्त्रियों के संघ में प्रवेश को निषेध बताया, किंतु कालांतर में उन्हें संघ में स्त्रियों को प्रवेश देना पड़ा। संघ में स्त्री का प्रवेश ही उनकी विमाता गौतमी और उन जैसी सैकड़ों थेरियों के प्रतिरोध का ही परिणाम रहा। पुनीत बिसारिया लिखते हैं–

> "उनकी विधवा विमाता तथा उनकी माता माया की बहन महा प्रजापति गौतमी ने उनके समक्ष आकर उनसे भिक्षुणी बनने की आज्ञा चाही, किंतु बुद्ध के मन में स्त्रियों को संघ में प्रवेश देने के प्रति हिचक थी। अत: महात्मा बुद्ध ने तीन बार अनुमति देने से इनकार किया और वे वैशाली लौट गए। उनके पीछे केश मुंडित करवाकर भिक्षु वेश में सूजे हुए पैरों से धूल में लथपथ होकर पैदल चलते हुए महाप्रजापति गौतमी अपनी पाँच सौ सखियों के साथ कपिलवस्तु आ गई और उनके द्वार पर आकर खड़ी हो गई।" (बिसारिया 82)

धर्म, कर्म और निर्वाण पर स्त्री का अधिकार नहीं है, जो रूढ़ नैतिकता मानुस्मृति के प्रभाव से बनी हुई थी, उसका प्रतिरोधी चरण यहाँ हमें नजर आता है। यद्यपि बौद्ध धर्म में स्त्री के प्रति सुधारात्मक रवैया रखने के बावजूद पुरुष भिक्षु से स्त्री भिक्षुणियों को निम्न समझा गया। साथ ही दुराचारी पति के प्रति भी पति परायणता का मंत्र विवाहित स्त्रियों को दिया गया। भले इसका प्रतिरोध इसी काल में थेरियों ने किया। सुमंगला माता दुराचारी पति के प्रति पति परायणता के मंत्र के विरोध में लिखती हैं – "ओह! मैं मुक्त नारी। मेरी मुक्ति कितनी धन्य है। पहले मैं मुसल लेकर धान कूटा करती थी, आज उससे मुक्त हुई। मेरी दरिद्रावस्था में छोटे-छोटे बर्तन, जिनके बीच में मैली कुचली बैठती थी और मेरा निर्लज्ज पति मुझे इन छातो से भी तुच्छ समझता था, जिन्हें वह अपनी जीविका के लिए बनाता था।...आहो! मैं कितनी सुखी हूं। मैं कितनी सुख से ध्यान करती हूं। " (नेगी) पुरुष सत्ता के खिलाफ यहां प्रतिरोधी तेवर है। पति अगर पत्नी का सम्मान नहीं करता, तो ऐसे दांपत्य का विरोध यहाँ है, जो अपनी प्रगति में हिंदी कथा साहित्य में भी नजर आया। थेरी 'पुर्णिका' दासी स्त्री के प्रति स्वामियों के अमानवीय व्यवहार का प्रतिरोध लिखित रूप में दर्ज करती हैं– "मैं पनिहारिन थी। सदा पानी भरना ही मेरा काम

था,स्वामिनियों के दंड के भय से, उनके क्रोध भरे कुवाच्यों से पीड़ित होकर मुझे कड़ी सर्दी में भी सदा पानी में उतरना पड़ता।" (नेगी) यहां एक कामकाजी स्त्री के प्रतिरोध को हम देख सकते हैं। इस काल में पर्दा प्रथा प्रचलन में थी, वहीं गोपा ने बुद्ध के आग्रह पर भी इसे अस्वीकार कर दिया। पुनीत बिसारिया लिखते हैं – "ललितावित्स्र में उल्लेख आता है कि जब गौतम बुद्ध की दुल्हन गोपा को सगाई के समय घूँघट की सलाह दी गयी तो उसने यह कहकर इनकार कर दिया कि पवित्र विचारों को ऐसी सुरक्षा की आवश्यकता नहीं।" (बिसारिया 35) यद्यपि गोपा का प्रतिरोध व्यवस्था के क्रूर रूप पर बोध सहित विरोध रहा, किंतु अपनी प्रगति में इसी तर्ज पर आज स्त्रियों के कपड़े छोटे होते जा रहे हैं, जो फेसबुक, रिल्स में निरंतर नजर आ रहे हैं, जो बोधशून्य, प्रतिक्रियावादी और मनमर्जीपन का ही प्रतीक है।

4.3. जैन धर्म में स्त्री-प्रतिरोध : परंपरा और प्रगति –

बौद्ध धर्म के समानांतर चलने वाले जैन धर्म में स्त्री-प्रतिरोध पर विचार करें, तो यह धर्म स्त्रियों के प्रति उत्तर वैदिक काल के पूर्वाग्रह से मुक्त सुधारात्मक रहा, अत: प्रतिरोध भी संतुलित नजर आया और स्त्रियों के प्रवेश को भी इसमें सहर्ष स्वीकृति मिली। 24तीर्थंकरों में 19वे तीर्थंकर विधेय की राजकुमारी 'मल्ली' रही। पितृसत्तात्मक व्यवस्था को चुनौती देकर जैन धर्म में स्त्री के प्रवेश प्रतिरोध का एक चरण रहा, तो दूसरा अब तक वर्जित सामाजिक-धार्मिक कार्यों में उनका आगे आना प्रतिरोधी चरण ही है। जहां उत्तर वैदिक काल में गार्गी से कहा जाता है, शास्त्रार्थ करने पर उसका सिर गिर जाएगा, वही जैन धर्म में शास्त्र की शिक्षा लेने के साथ, भद्रा, कुण्डलकेशी आदि स्त्रियां पुरुषों के साथ खुलकर शास्त्रार्थ करने लगी। रूढ़ नैतिकता से स्त्री-संबंधित विकृत मूल्य का परिवर्तन यहां देखने को मिला और इसी के साथ नए मूल्य बने। यहाँ स्त्रियाँ सिर्फ धर्म-कर्म तक ही सीमित नहीं रही, बल्कि अपनी समस्याओं के विरोध के साथ पूरे समाज की समस्या के समाधान के लिए एक सुधारात्मक कार्य की ओर सक्रिय रही। स्त्री-प्रतिरोध का स्वर 'स्व' से ऊपर यहीं दिखा। इसकी प्रगति कथा साहित्य में आधुनिक काल में देखने को मिली। इसी क्रम में वह पुरुषों की प्रेरणा शक्ति बनी। डॉo कुमार पाल देसाई के जैन धर्म में स्त्री संबंधित विचार को पुनीत बिसारिया अपनी पुस्तक में उल्लेख करते हैं। डॉo कुमार पाल देसाई के अनुसार –

> "जैन स्त्रियों ने पुरुषों को प्रेरणा देने का कार्य भी किया था। हेमचंद्राचार्या अपनी माता पाहिमी की प्रेरणा से ही 'ज्ञानसागर' बन सके थे। कवि धनपाल को' अमरकोष' लिखने की प्रेरणा अपनी बहिन सुंदरी से मिली थी। श्रीदेवी तथा अनुपमा देवी ने अपने पतियों को धर्म कार्य हेतु धन दान करने के लिए प्रेरित किया था। भगवान महावीर ने स्वयं दासी प्रथा का विरोध किया था। साध्वी यक्षकुँवर जी ने पशु बलि

प्रथा का दृढ़तापूर्वक विरोध किया था। श्रावक आनंद की पत्नी ने अपने पति के साथ मिलकर भगवान महावीर के उपासक संकल्प पूर्ण किए थे" (बिसारिया 81)

इस प्रकार जैन धर्म में स्त्री को प्रेरणा के स्रोत में रूप में मानकर इससे संबंधित पुराने मूल्य में परिवर्तन दिखा और परंपरागत स्त्री छवि के प्रति प्रतिरोध भी नजर आया।

4.4. आदिकाल, भक्तिकाल और रीतिकाल में स्त्री-प्रतिरोध : परंपरा और प्रगति –

बौद्ध धर्म के सिद्ध संप्रदाय में सहजता के नाम पर स्त्री भोग की जो प्रवृत्ति बनी। उसका विरोध नाथों के द्वारा आदि काल में ही देखा गया। सहजता के नाम पर प्रेम रहित दैहिक निकटता के मामले का विरोध करते हुए गोरखनाथ मछंदरनाथ को कहते हैं –'जाग मछंदर गोरख आया' और यही परंपरा आगे चलकर मध्यकाल में बिहारी के यहां और आज 21वीं सदी की रचनाओं में देखने को मिलती है। भक्तिकाल स्त्रियों के लिए जितने दुख, अंधकार और अभिशाप का युग रहा, स्त्री-प्रतिरोध की दिशा में एक नई पहल का भी युग रहा। घर से लेकर समाज, विशेषकर राजनीति तक में इस काल में स्त्रियों ने अपनी जबरदस्त प्रभावशाली उपस्थिति दर्ज कराया और निषिद्ध क्षेत्रों में अपने प्रतिरोधी कदम द्वारा प्रवेश लिया।

भक्ति काल में साहित्य और समाज में स्त्री-प्रतिरोध को हम दो छोड़ पर देख सकते हैं। एक कबीर, तुलसी के यहां, तो दूसरा मीराबाई के यहाँ। यद्यपि कबीर,तुलसी को हम स्त्री-विरोधी के रूप में देखते हैं। कबीर ने नारी की परछाई से भुजंग तक के अंधे होने की बात की, तो तुलसी ने स्पष्ट कह दिया – 'जिमि सुतंत्र भएँ बिगरहीं नारी' (रामचरितमानस, किष्किन्धा कांड) यद्यपि कबीर और तुलसी की स्त्री संबंधित यह सोच निश्चित तौर पर गलत है और इसे लेकर हम विरोध में भी आते हैं, लेकिन ध्यान देने की बात यह है, कि उनकी इस सोच के पीछे क्या कारण रहा। डॉo रमेश कुमार त्रिपाठी लिखते हैं– "हमेशा से ही नारी को भोग और विलास की सामग्री और अध्यात्म का दुश्मन माना जाता रहा है। अत: एकदम स्वाभाविक ही था कि वैदिककालीन भोगवाद के बाद जब समाज अध्यात्म की ओर झुका तो नारी सहज ही नरक का द्वार और दुर्गुणों की खान घोषित कर दी गई।" (त्रिपाठी 80) यानी परंपरा पोषित रूढ़ नैतिकता के कारण स्त्री के प्रति उनके विचार में दोष आया, लेकिन यहाँ गौर करने की बात यह है कि जिस प्रकार हम स्त्री-विमर्श में जब पुरुष-विरोध की बात करते हैं, तो सभी पुरुष इसके अंतर्गत नहीं आते, ठीक वैसे ही कबीर और तुलसी ने भी यह बात सभी स्त्रियों के संदर्भ में नहीं कहा है, क्योंकि कबीर स्वयं आत्मा-परमात्मा के मिलन की बात करते हैं, तो खुद को एक स्त्री के रूप में देखते हैं, 'दुलहनी गावहु मंगलाचार, हमारे घर आये राजा राम भरतार।' (दास 1) और तुलसी ने भी 'जिमि सुतंत्र भएँ बिगरहीं नारी' द्वारा स्वतंत्रता के नाम पर आवारगी तक पहुँच जाने वाली स्त्री का विरोध किया है। स्वतंत्रता की अति का वो विरोध करते हैं, क्योंकि इसके पहले ही पंक्ति में वह स्पष्ट लिखते हैं, 'महावृष्टि चलि फूटि किआरीं'(रामचरितमानस, किष्किन्धा कांड) जिस प्रकार अतिवृष्टि से फसल नष्ट हो जाती हैं, उसी प्रकार अति

स्वतंत्रता किस प्रकार आवारगी में बदल जाती है, इसे हम 21वीं सदी की रचनाओं में देख सकते हैं और उसका विरोध इन्होंने यहीं परंपरा में दर्ज किया है।

दूसरी ओर भक्ति-काव्य में स्त्री-संबंधी तमाम प्रतिबंधों के बावजूद मीरा जैसी विद्रोही शक्ति का उदय होता है, जो रूढ़िवादी व्यवस्था को धत्ता बना अपना प्रतिरोध दर्ज कराती हैं। मीरा विधवा होकर सती होने से मना करती है, सामाजिक रूढ़ियों से टकराती है। जिस समाज में पर्दा प्रथा विद्यमान था, मीरा कृष्ण भक्ति में अपने को रमाती है और कहती हैं – "लोक लाज कुल काण जगत की, दइ बहाया जस पाणी।। अपने घर का पर्दा कर ले मैं अबला बौरानी। ।"(मीरा मुक्तावली 38) और सबसे बड़ी बात अपने प्रतिरोध में वह भौतिक सुख-सुविधाओं को त्यागती हैं, इस प्रकार मीरा का प्रतिरोध सामंती समाज की व्यवस्था के प्रति विरोध है, वह कहती हैं–

"पाट पत्बर सब ही मैं त्यागा, सिर बांध्यों छा जूडो।
माणिक मोती सब ही त्यागा, त्याग्या छै सक्कर बूरो।।" (मीरा बृहतपदावली, पद 506)

मीरा जिस प्रकार भौतिक सुख-सुविधा को त्याग रही है, वो आज भी स्त्रियों के द्वारा प्रतिरोध की दिशा में त्याग पाना कठिन है। मैनेजर पांडेय मीरा के प्रतिरोध के बारे में लिखते हैं –

> " 'अपने घर का पर्दा कर ले, मैं अबला बौरानी' में आरंभ का व्यंगवाद भी विडंबना से मिलकर जो प्रभाव पैदा करता है, चुनौती के स्तर को वो अधिक अर्थपूर्ण और धारदार बना देता है। यहां एक सजग स्त्री स्वर सुनाई देता है, जिस में आक्रोश की अनुगूंज है, किसी पीड़ित की चीख या पुकार नहीं।... इससे यह भी स्पष्ट है कि संकल्प और आस्था के साथ अपनी अस्मिता और स्वतंत्रता के लिए संघर्षशील अबला भी पुरुष प्रभुत्व के लिए चुनौती बन सकती है।" (पाण्डेय 41)

इस प्रकार मीरा के प्रतिरोध को मैनेजर पाण्डेय रूढ़ सामाजिकता और भौतिकता के विरोध में देखते है। मीराबाई के साथ सहजोबाई का जीवन भी मध्यकालीन स्त्री-प्रतिरोध का नया आयाम बनाता है। 11वर्ष की अवस्था में विवाह की वेदी पर बैठ दी गई सहजोबाई, अपने गुरु चरणदास के वचन को सुन विवाह करने से इनकार कर देती है। कालांतर में 'सहजप्रकाश' की रचनाकर गुरु की महिमा स्थापित करती है। सहजोबाई मध्यकालीन स्त्री की रूढ़ परंपरागत छवि पर हर तरह से प्रहार करती हैं। सामाजिक 'व्यवस्थित अव्यवस्था' के विरुद्ध जाती है। मध्यकालीन समाज में स्त्री के लिए संत बन पाना लगभग असंभव था, ऐसे में सहजोबाई संततत्व को प्राप्त करती है। इतना ही नहीं अपने गुरु की मृत्यु के बाद उनकी गद्दी पर अपने अधिकार के लिए संघर्ष भी करती है, तत्कालीन अदालत तक के रास्ते को खटखटाती है। इस तरह वह धर्मसत्ता और पितृसत्ता दोनों के खिलाफ अपने प्रतिरोधी व्यक्तित्व का परिचय देती है।

भक्ति काल सत्ता-प्रतिसत्ता द्वारा प्रभुत्व कायम का काल रहा। जिस कारण स्त्री अत्याचार, दुराचार, उसके जन्म को शोक का कारण, बाल विवाह, सती प्रथा, जौहर प्रथा, कन्याओं का क्रय-विक्रय व राजनीतिक समझौते में लेनदेन लागू होने के कारण स्त्री की स्थिति का ग्राफ नीचे आ गया, बावजूद सामाजिक जीवन के साथ राजनीतिक जीवन और साहित्य में भी सक्रिय स्त्रियों का उदय भी इसी समय हुआ, उनका प्रतिरोधी तेवर देखने को मिला। सल्तनत काल में पर्दा प्रथा को धत्ता बताकर 'रजिया बेगम' ने स्वयं दिल्ली की गद्दी संभाली और पहली मुस्लिम शासक बन गई। विदेशी आक्रमणारियो से अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए प्रतिरोध करती स्त्री में पद्मावती भी विशेष रही। जिन्होंने अपनी अस्मिता व सम्मान की रक्षा के लिए जौहर का रास्ता चुना, लेकिन विदेशीसत्ता अलाउद्दीन के सामने अपनी हार नहीं मानी। मुगल दरबार में 'महाम अनमा', 'बेगम रुकैया' जैसी शक्तिशाली राजनीति में दक्ष स्त्रियां मध्यकाल में नजर आई। इसके अतिरिक्त रानी विद्या, अजमेर की रानी कर्पूर देवी, रानी दुर्गावती, मेवाड़ की रानी कर्णवती, ताराबाई, पद्मिनी, अकबर की सेना से लोहा लेने वाली चांदबीबी, जीजाबाई, आगे चलकर सामाजिक कार्य करने वाली अहिल्याबाई, जिन्होंने इतिहास में अपनी योग्यता दर्ज कराई और यह साबित किया कि यह काल भले ही स्त्री के सामाजिक स्थिति में ह्रास का काल रहा, पर एक नए आकाश के दर्शन का काल भी रहा। चांद बीबी ने अकबर की विशाल सेना से लोहा लेते हुए अहमदनगर के किले की रक्षा की, हालांकि उसके अपने लोगों के षड्यंत्र के कारण आगे चलकर उनकी मृत्यु हो गई। बूंदी नरेश की पुत्री रानी कर्णावती ने बहादुरशाह से वीरतापूर्वक युद्ध लड़ा और अंत में अपने सम्मान की रक्षा के लिए उसने भी जौहर के रास्ते को अपनाया, लेकिन अपनी अस्मत पर किसी को हाथ डालने नहीं दिया। गढ़वाल साम्राज्य की रानी कर्णावती ने देहरादून के नवादा शहर में 'राजपूत नहर' का भी निर्माण करवाया और सामाजिक कार्यों में अपना योगदान दिया। रानी दुर्गावती ने मुगल सेना से लोहा लिया। रानी चेन्नम्मा ने पति की मृत्यु के बाद राज्य की रक्षा के लिए अस्त्र-शस्त्र धारण किए, बीजापुर के शासन से अपने सल्तनत की रक्षा की। इतना ही नहीं शिवाजी की मृत्यु के बाद मुगल फौज से बचकर भाग रहे शिवाजी के द्वितीय पुत्र राजाराम को शरण दी। मुगल फौज का भी वीरतापूर्वक सामना किया। अपने शासनकाल में 'सोमशेखरपुर' नामक नगर विद्वानों के लिए बसाया। ऋषियों, धार्मिक संस्थान तथा निर्धनों को भी मुक्त कंठ से दान दिए। जीजाबाई जैसे कुशल राजनीतिक स्त्री इसी युग की देन रही, जिसने वीर शिवाजी का चरित्र निर्माण किया। वीर मराठा सेना के निर्माण में भी जीजाबाई ने महत्वपूर्ण योगदान दिया। माई भागो अथवा भगत कौर नामक सिख महिला, भारतीय मध्यकालीन इतिहास की वीरांगना रही, जिन्होंने मुगलों के विरुद्ध सिख सैनिकों का नेतृत्व किया। रानी अवंती बाई, हांडी रानी जैसी स्त्रियों ने अपने प्रतिरोधी व्यक्तित्व का परिचय दिया। एक ओर इन सभी स्त्रियों ने अपनी राजनीतिक दूरदर्शिता का परिचय दिया और विदेशी सत्ता के प्रतिरोध में मजबूती से डटी रही, वहीं दूसरी ओर

गुलबदन बेगम का 'हुमायूंनामा' लिखना, 'मीरा पदावली', सहजोबाई का 'सहजप्रकाश' का होना मध्यकालीन स्त्री-साहित्य की स्थिति को दिखाता है।

भक्तिकाल से आगे रीतिकाल में स्त्रियों को श्रृंगार का पर्याय बना दिया गया, लेकिन बिहारी तक ने स्त्री की ओर से व्यभिचार के विरोध में स्त्रियों को व्यंगात्मक व्यक्तित्व प्रदान कर उनके प्रतिरोध को दर्ज कराया है। बच्चन सिंह ने अपनी किताब 'बिहारी का नया मूल्यांकन' में बिहारी के दोहे में चित्रित स्त्री-प्रतिरोध को नए रूप में व्यक्त किया है। बिहारी लिखते हैं—

" परतिय-दोष पुरान सुनि, लखि मुलकी सुखदानि।
कसि करि राखी मिश्रहूँ, मुँह आई मुसकानि। ।'' (सिंह 58)

जो कथावाचक स्वयं पराई स्त्री पर नजर रखता है, जब स्त्रियों के सामने दूसरे पुरुषों को पराई स्त्री पर नजर न रखने का उपदेश देता है तो वहां बैठी स्त्रियाँ मुस्कुरा देती है। स्त्रियों का मुस्कुरा देना यहाँ एक मौन प्रतिरोध है। स्त्री के प्रति आतिश्रृंगारी पौरूषिय आचरण का विरोध उन्होंने व्यभिचार और काम तृष्णा दोनों स्तर पर किया रखा है। वह कहते हैं–

"नहिं पराग नहिं मधुर मधु नहिं विकास यहि काल
अली कली में ही बिन्ध्यों आगे कौन हवाल।" (बिहारी सतसई 190)

कामतृष्णा में जब पुरुष डूब जाता है, तो उसका जीवन कैसे बाधित होता है। यही बात नाथों ने की थी सिद्धों के लिए और यही बात बिहारी ने भी की है और स्त्री-प्रतिरोध को दर्ज किया।

4. 5. नवजागरणकाल में स्त्री-प्रतिरोध : परंपरा और प्रगति –

नवजागरण काल का प्रारंभ 19वीं शताब्दी से हुआ और यही वह काल रहा, जहां स्त्री प्रश्न पर विचार किया गया समाज सुधारकों द्वारा भी और राष्ट्रवादी नेताओं के द्वारा भी एवं स्त्री की समस्याओं के समाधान के लिए प्रतिरोधी तेवर पनपा। जहाँ एक ओर भक्तिकालीन प्रगतिशील सुधारक कबीर, तुलसी भी स्त्री के प्रश्नों से न केवल बचते रहे, बल्कि कहीं न कहीं उन्हें दुर्गुणों का भंडार बताया, वहीं नवजागरण काल में राजा राममोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, दयानंद सरस्वती, स्वामी विवेकानंद, ज्योतिबा फुले, सावित्रीबाई फुले जैसे समाज सुधारक तथा भारतेंदु हरिश्चंद्र, प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट जैसे साहित्यकार स्त्री की स्थिति में सुधार लाने के लिए अथक प्रयासरत रहे और उनके प्रयास का ही प्रतिफल रहा कि यह काल स्त्रियों के लिए नई हवा में सांस लेने का नवजागरण काल बन गया। पाश्चात्य में नारीवाद की प्रथम लहर स्त्री के राजनैतिक अधिकार के लिए स्त्री द्वारा किया गया प्रतिरोध रहा, तो भारत में स्त्री के सामाजिक अधिकार के लिए पुरुष सुधारक द्वारा स्त्री-हित में प्रतिरोध शुरू हुआ।

19वीं सदी में प्रेस के विकास ने महिलाओं के प्रश्नों को समाज तक पहुंचाया और उसे सामाजिक प्रश्न बनाया। यह काल छुआछूत, आडंबर, धर्मांधता से मुक्ति के लिए संघर्ष का काल था, साथ ही सतीप्रथा, बालविवाह, पर्दाप्रथा, बहुविवाह, वेश्या, दहेज, कन्याशुल्का जैसी कुरीतियों की वेदी पर बलि कर दी जा रही स्त्रियों के संघर्ष और मुक्ति के लिए प्रयासरत समाज सुधार का काल भी रहा। राजा राम मोहन राय ने 'आर्यसमाज' की स्थापना कर 'सती निर्मूलन एक्ट' पास कराया। ब्रह्म समाज के माध्यम से सती प्रथा, बहुपत्नी प्रथा, वेश्यावृति आदि का मुखर विरोध किया। ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने विधवा पुनर्विवाह का प्रवर्तन किया। उनके प्रयास से ही विधवा पुनर्विवाह एक्ट 1857 में आ गया। बाल-विवाह के कारण स्त्रियाँ शिक्षा के अधिकार से वंचित कर दी जाती थी, उसकी स्थिति में सुधार के लिए स्वामी विवेकानंद ने आवाज उठाई। कन्याओं के क्रय-विक्रय, वर पक्ष द्वारा दहेज की मांग, अनमेल विवाह का विरोध, साथ ही स्त्री-शिक्षा का प्रोत्साहन दयानंद सरस्वती और केश्वचन्द्र सेन ने किया और स्त्री शिक्षा की व्यवस्था करवाई। दयानंद सरस्वती का मानना था कि हिन्दू जाति के पिछड़ेपन का बड़ा कारण स्त्रियों का पिछड़े रहना है। फलत: स्त्रियों को आगे बढ़ाने के लिए उन्होंने काफी प्रयास किया। स्त्री शिक्षा की बात इस काल में सर्वप्रथम दयानंद सरस्वती ने ही रखी। सन 1854 में 'वुड डिस्पैच' में महिलाओं की शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया, जिसके परिणामस्वरुप कई कन्या पाठशालाओं की स्थापना हुई। कई विश्वविद्यालय अस्तित्व में आए। इसके पूर्व 1849 ईस्वी में लॉर्ड डलहौजी ने कन्या पाठशाला के लिए अनुदान दिया। ईसाई धर्म प्रचारक भी कन्याओं की शिक्षा के प्रबल समर्थक रहे। जिसका परिणाम रहा कि 1857 तक 100 से अधिक कन्या पाठशाला खुल गए, लेकिन महिलाओं के लिए महिला गुरुकुल की सोच स्वामी दयानंद जी के ही विचार रहें। साथ ही वैदिक काल के बाद आधुनिक काल में स्त्रियों और शूद्रों की वेद पढ़ने की वकालत भी इन्होंने ही की। परिवार में पत्नी को पति की दासी की जगह समकक्ष, सहधर्मी के रूप में मानने का विचार भी इनका रहा। इस प्रकार दयानंद सरस्वती का प्रयास स्त्री हित में किया गया उनका प्रतिरोध रहा।

नवजागरण काल में समाज सुधारक पुरुषों के साथ इस दिशा में आगे बढ़ती स्त्रियाँ भी आईं। इनमें 'सावित्रीबाई', 'रमाबाई', 'सरोजिनी नायडू', 'एनी बेसेंट', 'विजयलक्ष्मी पंडित' आदि रहीं, जिन्होंने स्त्री-अस्मिता की रक्षा के लिए सुधार की दिशा में प्रतिरोधी कदम को आगे बढ़ाया। स्त्रियों के लिए अपनी स्थिति में सुधार के लिए शिक्षा जरूरी माध्यम रहा। इस दिशा में सावित्रीबाई फुले ने स्त्री-शिक्षा, महिलाओं की मुक्ति, विधवा विवाह के लिए काम किया और इसी क्रम में 1848 में पुणे में अपने पति के साथ मिलकर महिलाओं की शिक्षा के लिए प्रथम विद्यालय की स्थापना की। अपने पति ज्योतिबा फुले के साथ मिलकर उन्होंने 1854-55 में भारत में साक्षरता मिशन की शुरुआत की। 'सत्यशोधन समाज' की स्थापना कर दहेज प्रथा का विरोध किया। सावित्रीबाई फुले ने स्त्री शिक्षा के लिए उस समय काम किया, जब स्त्रियों को पढ़ाना समाज की नजरों में

कट्टरपंथी विचार का पोषक माना जाता था। बालगंगाधर तिलक जैसे राष्ट्रवादी नेता स्त्री और गैरब्रह्मण की शिक्षा के विरोधी ही नहीं रहे, बल्कि इसके लिए राष्ट्रव्यापी आंदोलन भी चलाया। स्त्री शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं थी। ऐसे में महिला अधिकारों के लिए अपने जीवन को समर्पित करने वाली सावित्रीबाई फुले भारत के पहले बालिका विद्यालय की संस्थापक और प्राचार्या बनी। सावित्रीबाई फुले का यह प्रतिरोधी कदम निश्चित तौर पर स्त्री-अस्मिता और उसकी मुक्ति का मशाल बना। 1904 में भारतीय महिला परिषद की स्थापना की गई। रमाबाई ने विधवा स्त्री के लिए शारदा सदन(1889) और समाज में तिरस्कृत पथभ्रष्ट स्त्रियाँ व उनकी संतान के लिए 'कृपा सदन'(1898) की स्थापना की। 'थियोसॉफिकल सोसायटी' के संस्थापक 'एनी बेसेंट' ने स्त्री शिक्षा के लिए 'सेंट्रल हिंदू कॉलेज' की स्थापना की। थियोसोफिकल सोसायटी के आडयार स्थित केंद्र से अनेक पत्र पत्रिकाएं प्रकाशित की जाती रही, जिसके माध्यम से महिलाओं के उत्थान पर बल दिया गया। सन 1927 ईस्वी में आडयार स्थित थियोसॉफिकल समिति ने एक अखिल भारतीय महिला परिषद की स्थापना की, इस संस्थान में कालांतर में महिलाओं को सक्षम एवं शक्तिशाली बनाने के लिए भारत में शक्तिशाली नारी आंदोलन का सूत्रपात किया। पंडित दयाबाई ने स्वाधीनतापूर्व महिला जागरूकता के लिए बाल विवाह के विरुद्ध जागरण किया। 1882 में पति की मृत्यु के पश्चात भारी विरोध के बावजूद अंग्रेजी शिक्षा ग्रहण की। समाज में प्रताड़ित हुई, लेकिन हार नहीं मानी। स्त्रियों को जागरूक करने के उद्देश्य से सन् 1888 में इन्होंने "स्त्री धर्मनीति" शीर्षक पुस्तक लिखी। इसी क्रम में सरोजिनी नायडू का योगदान महत्वपूर्ण रहा। उन्होंने भारतीय महिलाओं में व्याप्त निरक्षरता, हीनभावना, बाल-विवाह पर्दा-प्रथा जैसी कुरीति को समाप्त करने के लिए, उन्हें भी स्वाधीनता आंदोलन में भाग लेने का अवसर मिल सके, साथ ही महिलाओं को मतदान का अधिकार मिले, इसलिए काम किया। संभवत उन्हीं के प्रयास का परिणाम रहा कि आगे चलकर प्रांतीय विधायिका में महिलाओं को मतदान का अधिकार मिला। मातृत्व और शिशु कल्याण हेतु सरकार ने कदम उठाए। सन 1886 ईस्वी में रवींद्रनाथ ठाकुर की वारिस स्वर्ण कुमारी देवी ने बंगाल में 'द लेडिज एसोशिएशन' संगठन की स्थापना की, जिसका उद्देश्य महिलाओं को जागरूक करना रहा। उनकी पुत्री सरलादेवी चौधरानी ने 'भारती' पत्रिका का संपादन किया। कांग्रेस की शीर्ष नेत्री बनी और महिला जागरूकता के लिए 1910 में भारत 'स्त्री महामंडल' की स्थापना की। डॉ0 आनंदीबाई जोशी अमेरिका से डॉक्टर बनकर भारत आई और भारत की महिलाओं को स्वास्थ्य के प्रति जागरूक बनाने में महत्वपूर्ण योगदान निभाया। 1905 में राष्ट्रीय आंदोलन में 'अनिया देवी', ' नृत्यमीदेवी' आदि के आगमन द्वारा राजनीति में स्त्री की हिस्सेदारी बनी। स्त्री की नर्सिंग और सेवामूलक कार्य में प्रशिक्षण कार्य 1914 में शुरू हुआ और प्रो कर्वे ने भारतीय महिला विश्वविद्यालय की स्थापना 1916 में की। 1925 में सरोजिनी नायडू भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की पहली भारतीय महिला अध्यक्ष बनी । हिंदू ही नहीं मुस्लिम समाज में भी स्त्री के प्रति रूढ़िवादी प्रवृत्ति को जड़ से उखाड़ने के लिए सर सैयद अहमद खान ने मुसलमानों की शिक्षा

हेतु 1901 में अलीगढ़ में 'मोहम्मडन एंग्लो ओरिएंटल कॉलेज' की स्थापना की। इस कॉलेज से कई विदुषी मुस्लिम महिलाएं पढ़कर निकली, जिन्होंने देश की सामाजिक-राजनीतिक गतिविधि में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इसी क्रम में शेख अब्दुल्ला और उनकी बेगम वाहिदा जहाँ खा भी रही, जिन्होंने स्त्री शिक्षा पर जोर दिया। महिला शिक्षा में गृह-प्रबंध, सिलाई-कढ़ाई का प्रबंध किया। महिलाओं की लेखन प्रतिभा को निकालने के लिए 'खातून' नामक पत्रिका निकाली। हीराबाई टाटा, सरोजिनी नायडू, कमला देवी चट्टोपाध्याय, मुथुलक्ष्मी रेड्डी आदि स्त्री की अस्मिता निर्माण के लिए लगातार संघर्षरत रही। इन सबके मिलेजुले प्रयास का ही परिणाम निकला कि अपनी अस्मिता के बाधक तत्व के विरोध में तत्कालीन स्त्रियाँ प्रतिरोधी हो उठी।

मध्यकाल में जो कुछ स्त्रियाँ अपनी इच्छा से राजनीति में पदार्पण करती है, वहीं नवजागरण काल में प्रगति इस रूप में दिखाई पड़ने लगी कि उन्हें राजनीति में लाने के लिए प्रोत्साहित किया जाने लगा। सुप्रिया पाठक लिखती हैं–" महिलाएं अब सिर्फ सुधार या कल्याण किए जाने योग्य ही नहीं मानी गई, बल्कि अब उनको स्वतंत्रता आंदोलन में महती भूमिका निभाने हेतु प्रोत्साहित किया जाने लगा।" (पाठक 57) गांधी और राष्ट्रवादी नेताओं के प्रयास से सरोजिनी नायडू, उर्मिला देवी, लतिता घोष, कस्तूरबा गांधी जैसी महिलाएँ राजनीति में आगे आई।

इस काल के साहित्यकारों पर समाज सुधारकों का गहरा प्रभाव रहा। भारतेंदु हरिश्चंद्र, प्रताप नारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट आदि का दृष्टिकोण बदलती नए मूल्यों से प्रभावित रहा और मध्यकालीन रूढ़ नैतिकता से निकलकर स्त्री-शिक्षा, समानता आदि की दिशा में अग्रसर जरूर हुआ। उनकी रचनाओं में भी स्त्री-शिक्षा, विधवा विवाह प्रोत्साहन, बहु-विवाह विरोध आदि नजर आया, परंतु स्त्री संबंधित दृष्टिकोण से जुड़ी यह नई नैतिकता 'नैतिकता की निजीकरण' से मुक्त नहीं रह सकी, तभी भारतेंदुकाल के साहित्यकार स्त्री की उतनी ही स्वाधीनता के पक्षधर रहे, जितने में वह पति की अनुगामिनी बनी रहे। प्रताप नारायण मिश्र नारी से सावधान रहने की बात करते हुए 'उसे स्वतंत्रता न सौंपने की बात करते हैं', तो स्वयं भारतेंदु नारी शिक्षा में केवल 'कुल-धर्म सीखना' और 'पति की भक्ति करना' ऐसी शिक्षा के ही प्रोत्साहक रहें, जिससे घरेलू प्रबंध अच्छे से चले। भारतेंदु लिखते हैं – "ऐसी चाल से उनको शिक्षा दीजिए कि वह अपना देश और कुल धर्म सीखे, पति की भक्ति करें और लड़कों को सहज शिक्षा दें।" (भारतेन्दु 1013) भारतेन्दुकालीन कवियों की स्त्री-दृष्टि पर विचार करते हुए जितेंद्र गुप्ता लिखते हैं – "स्त्री शिक्षा के प्रति सकारात्मक रुख का कारण यह था कि वह घर के अंदर की अपनी भूमिका निर्वाह ठीक और भली प्रकार निभा सके।" (गुप्ता 17) इस प्रकार नवजागरण काल में समाज सुधारकों का प्रयास स्त्री-प्रतिरोध की दिशा में अवश्य ही क्रांतिकारी रहा, पर साहित्य और साहित्यकारों की दृष्टि सुधारात्मक और द्वंद्वग्रस्त ही रही।

4.6. कथा साहित्य में स्त्री-प्रतिरोध स्वतंत्रता पूर्व : परंपरा और प्रगति

19वीं शताब्दी नवजागरण का युग रहा। समाज सुधारको के द्वारा स्त्री की स्थिति में सुधार के लिए कड़ा संघर्ष किया गया और इसका सुखद परिणाम सती निषेध, बहु विवाह निषेध, विधवा विवाह प्रोत्साहन, स्त्री शिक्षा का प्रसार व स्वाधीनता आंदोलन में स्त्री की सहभागिता आदि अनेक सकारात्मक प्रभाव रहें। स्त्री-संबंधित पारंपरिक रूढ़ मूल्यों का प्रतिरोध हुआ, वह विघटित हुए और इस प्रतिरोध से नए मूल्य बनने लगे, जिसका प्रभाव साहित्य में भी पड़ा। प्रेमचंद, जैनेंद्र, यशपाल, जयशंकर प्रसाद, पांडे बेचन शर्मा उग्र, सुदर्शन, सुभद्रा कुमारी चौहान जैसे हिंदी साहित्य के साहित्यकार रहें, जिन्होंने स्त्री प्रश्न को सामने रखा और प्रचलित रूढ़ मूल्यों के प्रति जोरदार विरोध, प्रतिरोध दर्ज कराया।

उपन्यास सम्राट प्रेमचंद के यहाँ सेवासदन, कर्मभूमि, प्रेमाश्रम, निर्मला, गबन, गोदान, प्रतिज्ञा जैसे उपन्यास तो घासवाली, बड़े घर की बेटी, पत्नी से पति, बूढ़ी काकी, मनोवृति, नया विवाह, मिस पद्मा, जैसी कहानियों की रचना कर स्त्री के अधिकारों की वकालत की और उनका प्रतिरोध दर्ज कराया है। उनकी रचनाओं में पितृसत्तात्मक सोच को पोषित करने वाला परिवार, समाज, धर्म तीनों दिशाओं में विरोध दर्ज हुआ है। पारिवारिक जीवन की आधारशिला विवाह संस्थान की निरर्थकता के विरोध में लिव-इन का संकेत उस जमाने में 'मिस पद्मा' में है, तो विवाह में स्त्री को कृतदासी मानने का विरोध 'सेवासदन' की नायिका सुधा करती है, जब उसका पति गजाधर देर रात घर लौटने पर उसे घर से निकल जाने की धमकी देता है, तब वह स्वयं को अबला सोच रोटी, कपड़ा, मकान के बदले अन्याय को झेलने को तैयार नहीं होती और कहती है – "यों कहो कि मुझे रखना नहीं चाहते। मेरे सिर पर पाप क्यों लगाते हो? क्या तुम्हीं मेरे अन्नदाता हो? जहाँ मजूंरी करूंगी, वहीं पेट पाल लूँगी?" (प्रेमचंद 36) हालांकि विवाह संस्थान में शोषण का विरोध थेरी गाथाओं में भी हैं, जहां सुमंगला माता दुखी दांपत्य से मुक्त हो धर्म की शरण में जाती है, वहीं उसकी प्रगति प्रेमचंद के यहां सुमन में है, लेकिन जहाँ सुमंगला माता पति के गृह को त्यागकर धर्म की शरण लेती है, वहीं प्रेमचंद की 'सेवासदन' की सुमन पति के घर को छोड़कर वेश्यालय पहुँच जाती है। अत:दाम्पत्य का प्रतिरोधी चरण सुमन के प्रतिरोध में है, पर मुक्त होकर वह जा कहा रही है और कैसे मूल्य का निर्माण कर रही है प्रतिरोध की दिशा में ये विचारणीय है।

समाज के कठोर नियम स्त्री जीवन को बाँधते रहे हैं,उसके जीवन को नर्क बनाते रहे है। अनमेल विवाह, दहेज ऐसी ही परंपरा पोषित रूढ़ि है, जिसे संस्कृति का नाम दे उसका पोषण होता रहा है।'निर्मला' में इसके दुखद परिणाम को देखते है, वहीं 'कुसुम' कहानी में पति द्वारा पिता से दहेज की मांग करने पर नायिका द्वारा रिश्ता तोड़ने का फैसला लेने का साहस भी प्रेमचंद कहानियों में नजर आया है। विधवा का विरोध में समाज तो है ही, लेकिन कानून भी संपत्ति में विधवा को कोई अधिकार ना देकर उसके अस्तित्व को नकारता है इसका

विरोध प्रतिज्ञा, गबन जैसी रचनाओं में है। गबन में रतना प्रश्न उठाती हैं कि क्यों हमारा कानून स्त्री पक्ष को लेकर इतना कठोर है कि पति के मरते ही हिन्दू स्त्रियाँ स्वत्ववंचिता हो जाती है। रत्ना का यह प्रश्न कानून व्यवस्था के प्रति एक प्रतिरोधी चरण है। आज विमर्श में जो तीखापन नजर आता है, उसे प्रेमचंद ने अपने समय ही स्पष्ट कर दिया था। पारिवारिक जीवन में संबंधों की आड़ में स्त्री के साथ होने वाली अभद्रता के खिलाफ प्रतिरोध तेवर 'बड़े घर की बेटी' की आनंदी के माध्यम से दर्ज किया है, तो मनोवृति कहानी के माध्यम से पुरुषों का स्त्री के प्रति कामुक दृष्टि को दिखा एक प्रश्न भी खड़ा कर दे रहे है कि आखिर स्त्री के प्रति पुरुष दृष्टि ऐसी ही क्यों होती है।

मध्यकाल में स्त्री-राजनीति में प्रेरणा के रूप में सामने आई, तो नवजागरण काल में स्वाधीनता आंदोलन के प्रभाव से कार्यकर्ता के रूप में। गांधी ने स्वाधीनता आंदोलन में स्त्री की सहभागिता को जरूरी माना, प्रेमचंद का साहित्य हो या उनके समकालीन प्रसाद का साहित्य उसमें भी रूढ़ सामाजिकता को किनारे कर राजनीति में सक्रिय स्त्रियाँ है। प्रेमचंद के यहाँ 'कर्मभूमि' की 'सुखदा','गबन' की 'जालपा, 'रंगभूमि' की 'सोफिया', 'पत्नी से पति' कहानी की 'गोदावरी', 'सती' कहानी की नायिका ऐसी राजनीतिक सक्रिय चेतना संपन्न स्त्री हैं। प्रसाद के यहाँ 'पुरस्कार' की मधुलिका, 'आकाशदीप' की चंपा प्रेम और देश में देश को चुनती है। 'चंद्रगुप्त','राज्यश्री' नाटक में भी राजनीति में स्त्री और उसके प्रतिरोध को दर्ज किया है। पारिवारिक जीवन में संबंधों की आड़ में स्त्री के साथ होने वाली अभद्रता के खिलाफ प्रतिरोधी तेवर 'बड़े घर की बेटी' आनंदी के माध्यम से दर्ज किया है। स्त्री के पुनर्विवाह का समर्थन प्रसाद की 'ध्रुवस्वामिनी' में है। आज बलात्कार एक विकट समस्या है, अपनी रचनाओ में बलात्कृत स्त्री की पीड़ा और उसके प्रतिरोध को प्रेमचंद ने उस जमाने में दर्ज किया। 'कर्मभूमि' में मुन्नी के माध्यम से से देख सकते हैं, जो उसके बलात्कार करने वाले की हत्या कर देती है, तो 'घासवाली' कहानी में 'मुलिया' है, जो अपने सतीत्व की रक्षा के लिए ठाकुर चैनसिंह से लोहा लेती है और अपने समुदाय की (दलित) सभी स्त्री को अन्याय के विरुद्ध लड़ने के लिए प्रेरित करती हैं।

हालांकि प्रेमचंद और उनके समकालीन कथाकार व्यक्तिवादी या आस्तित्ववादी विचारधारा से प्रभावित नहीं थे, समाज से ऊपर व्यक्ति के अस्तित्व को नहीं मानते थे, इसलिए तमाम विसंगतियों के वाबजूद सामाजिक बंधनों को पूरी तरह तोड़ने का साहस इस समय की नायिकाएं नहीं रखती है। इनका प्रतिरोध प्रचलित व्यवस्था में सुधार लाना हैं, न की तोड़ना। जैनेन्द्र 'त्यागपत्र' में मृणाल के माध्यम से यह कहलाते हैं – "मैं समाज को तोड़ना-फोड़ना नहीं चाहती। समाज टूटा की फिर हम किसके भीतर बनेंगे या किसके भीतर बिगड़ेंगे?" (जैनेन्द्र 85) परंपरा में, नवजागरण काल में विधवा के लिए प्रेम और विवाह की वकालत की गई और अपनी प्रगति में 'परख' की 'कट्टो' विधवा होकर प्रेम करती है, पर विवाह नहीं करती जो जैनेन्द्र के इसी सोच का परिणाम है। हालांकि सूत की माला पहना बिहारी का वरण करती है,जो एक प्रतिरोधी चरण जरूर है। महादेवी लिखती हैं,

"प्राचीनता की दुहाई देकर जीवन को संकीर्णतम बनाते जाना और विकास के मार्ग को चारों ओर से अवरुद्ध कर लेना किसी जीवित व्यक्ति पर समाधि बना देने से भी अधिक क्रूर व विचारहीन कार्य है।" (वर्मा 22-23) स्त्री के संदर्भ में सदियों से धर्म को आधार बनाकर उसके जीवन को नरक बनाया जाता रहा है। धर्म के नाम पर पुरोहितवाद का विरोध प्रेमचंद के 'गोदान' के अंतिम दृश्य में धनिया करती हैं, तो धर्मस्थल पर स्त्री-प्रतिरोध को यशपाल का उपन्यास 'दिव्या' के माध्यम से देख सकते है। दिव्या जब दूधमुँहे बच्चे के संग बौद्ध धर्म के शरण में आती है, तो उसे शरण नहीं दिया जाता है। वह प्रश्न करती है कि जब 'नगरबधु आम्रपाली तक को संघ में स्थान दिया गया है तो उसे क्यों नहीं', इसका उत्तर उसे इस रूप में मिलता है कि 'वेश्या स्वतंत्र नारी हैं।' जैनेन्द्र का दिव्या द्वारा प्रश्न करवाना ही धर्म, परंपरा के प्रति स्त्री के प्रतिरोधी स्वर की मुखर अभिव्यक्ति है।

स्वाधीनता पूर्व ही पाश्चात्य और भारतीय भूमि पर नारीवादी आंदोलन ने जोड़ पकड़ा, जिसमें एक ओर सिमोन का उदय हुआ, तो उसके समकालीन भारत में महादेवी वर्मा का और समकालीन महिला-लेखन में भी स्त्री-प्रतिरोध दर्ज हुआ। साधारणत: महादेवी को उनकी कविता और छायावाद तक ही सीमित कर दिया जाता है, लेकिन उनका निबंध 'श्रृंखला की कड़ियां' प्रगतिवादी तेवर को व्यक्त करती है और स्त्री विमर्श की आधार पुस्तक भी मानी गई हैं। इस काल में महादेवी की 'श्रृंखला की कड़ियां', सुभद्रा कुमारी चौहान की 'तीन बच्चे', 'कल्याणी', 'मछुआरे की बेटी', 'कैलाशी नानी' सुमित्रा कुमारी सिन्हा की 'अचल सुहाग' 'वर्ष गांठ' कहानी जिसमें संयुक्त परिवार की रूढ़ियों के प्रति स्त्री-प्रतिरोध और स्त्री स्वतंत्रता दर्ज हुआ है। उषा देवी मित्रा की 'संध्या', पूर्व रात की रानी, कमला चौधरी की 'उन्माद' ओमवती देवी की 'स्वप्न भंग' 'धरोहर' आदि स्त्री संघर्ष की कहानियां हैं। महादेवी वर्मा की 'श्रृंखला की कड़ियां' और सिमोन द वोउवार की 'द सेकंड सेक्स' स्त्री विमर्श, अस्मिता और प्रतिरोध की आधार ग्रंथ बन गई। 'श्रृंखला की कड़ियां' जिसमें स्त्री पराधीनता के लिए प्रसिद्ध धर्मग्रंथ 'मनुस्मृति' के सिद्धांतों की धज्जियाँ उड़ा दी गई। महादेवी स्त्री स्वाधीनता के लिए आर्थिक स्वाधीनता की बात करती है। सामाजिक व्यवस्था में व्याप्त रूढ़िवादी सोच में बदलाव की बात करती हैं। धर्म ग्रंथों द्वारा गढ़ी गई झूठी नैतिकता जो स्त्री को पुरुष का गुलाम बना गुलामों सा जीवन जीने को बाध्य करता है, उसका विरोध करती है और स्त्रियों को अपनी शक्ति पहचानने के लिए प्रेरित करते हुए लिखती हैं– " भारतीय नारी जिस दिन अपने संपूर्ण प्राणवेग से जाग सके, उस दिन उसकी गति रोकना किसी के लिए संभव नहीं। उसके अधिकारों के संबंध में यह सत्य है कि वह भिक्षावृत्ति से ना मिले हैं और ना मिलेंगे, क्योंकि उनकी स्थिति आदान-प्रदान योग्य वस्तुओं से भिन्न है।" (वर्मा 9) महादेवी ने पुरुष की उसके आचरण के कारण आलोचना तो की है, लेकिन महादेवी का प्रतिरोध कभी भी पुरुष से प्रतिशोध नहीं रहा, बल्कि स्त्री-पुरुष की सहभागिता व समानता रहा। महादेवी वर्मा लिखती हैं कि 'समाज की दो आधारशिलाएँ हैं, अर्थ का विभाजन और स्त्री पुरुष का संबंध। इसमें से यदि एक की भी स्थिति में विषमता उत्पन्न होने लगती हैं, तो समाज का संपूर्ण प्रासाद

हिले बिना नहीं रह सकता।' स्पष्ट है अर्थ और स्त्री-पुरुष संबंध में व्यवस्था की जरूरत महादेवी महसूस करती हैं। इस प्रकार महादेवी का चिंतन समाजवादी और मार्क्सवादी विचारधारा के करीब रहा।

मैनेजर पांडेय महादेवी की स्त्री दृष्टि के बारे में अपने विचार लिखते हैं –

> "श्रृंखला की कड़ियां' में महादेवी वर्मा भारतीय स्त्री की मुक्ति के लिए ऐसी स्त्री दृष्टि का विकास चाहती है, जो ना पुरुष दृष्टि के पीछे-पीछे चले और ना पुरुष दृष्टि बनने की कोशिश करें। भारतीय समाज में सबसे अधिक संख्या उन स्त्रियों की है, जो पुरुष सत्ता के सर्वाधिकारवादी प्रभाव के कारण अपना व्यक्तित्व और विवेक खोकर पुरुष की छाया मात्र बन गई है। पुरुष उसके आत्मबोध और जगतबोध का निर्माता ही नहीं, नियन्ता भी होता है। ऐसी स्थिति में वह स्वयं को पुरुष की दृष्टि से देखती हैं और उसकी आकांक्षा की मूर्ति बनना चाहती हैं। दूसरी ओर वे स्त्रियां है, जो नारी जागरण के आंदोलन के फलस्वरुप अपनी मुक्ति पुरुष बनने में समझती हैं। समाज और संस्कृति को पुरुष की दृष्टि से देखना चाहती हैं। महादेवी वर्मा इन दोनों दृष्टियों को गलत मानती है। वे ऐसी स्त्री दृष्टि का समर्थन करती है जो स्त्री को अपनी अस्मिता की पहचान, विवेक के विकास और नारीत्व की शक्ति की समझ पैदा करने में सहायक हो, ताकि स्त्री अपने स्वत्व की रक्षा कर सकें।" (पांडेय 134)

यह एक सच है कि पुरुष स्त्री जीवन की नियंता बनने लगता है और उसकी दृष्टि से ही स्त्रियाँ स्वयं को देखने लगती है, लेकिन महादेवी की स्त्री-दृष्टि पुरुष विरोध कर पुरुष बनना नहीं, बल्कि विवेक से सही दिशा में बढ़ना ही स्त्री-प्रतिरोध है, जिसमें पुरुष का संस्कार जरूरी है। अपने निबंध 'घर और परिवार' में वह लिखती हैं –

> "आज स्त्री का सहयोगी पुरुष न आदिम युग का ऐसा अहेरी है, जिसके लाए हुए पशु-पक्षी को खाद्य रूप में परिवर्तित कर देने में ही उसके कर्तव्य की इति हो जावे, न वह वेद-काल का ऐसा गृहस्थ है, जिसके साथ यज्ञ में भाग लेना ही उसे सहधर्मचारिणी के पद तक पहुँचा सके और न वह वीर युग का ऐसा युद्धपरायण आहत है जिसकी शिथिल और ठंडी उंगलियों से छूटती हुई तलवार संभाल लेने में ही उसके जीवन की सार्थकता हो, प्रत्युत् वह इस उलझन भरे यंत्र-युग का सबसे अधिक उलझनमय यंत्र बन गया है जिसके जीवन में किसी प्रकार का सहयोग भी तब तक संभव नहीं जब तक उसे ठीक-ठीक न समझ लिया जावे। समझ लेने पर भी सहयोग तभी सुगम हो सकेगा जब स्त्री में भी जीवन के अनेक रूपों और परिस्थितियों के साथ चलने और उनके अनुरूप परिवर्तनों को हृदयंगम करने की शक्ति उपन्न हो जावे।"(वर्मा 48-49)

मतलब यदि प्रतिरोध की परंपरा को हमारे यहाँ भारतीय परिप्रेक्ष्य में देखा जाए, तो यह समग्रता में पुरुष संस्कार की बात करती है। स्त्री-प्रतिरोध रचते समय महादेवी पुरुष की यथास्थिति को भूल नहीं जाती क्योंकि अगर इसे

छोड़ देंगे, तो विमर्श विकलांग हो जाएगा और प्रतिरोध प्रतिशोध में बदल जाएगा। यहाँ प्रेमचंद की स्त्री-दृष्टि की सीमा से महादेवी वर्मा आगे हैं। इस प्रकार नवजागरणकाल में स्त्री, पुरुष चिंतक हो या समाज-सुधारक या साहित्यकार सबने स्त्री की हित की बात की, साथ ही समानता, स्वतंत्रता को अधिकार भी बताया, लेकिन इन सबमें महादेवी वर्मा की एक विशेष पहचान बनती है। यदि विमर्शकार के रूप में महादेवी वर्मा को देखें, तो स्त्री-विमर्श की पहली पुस्तक 'शृंखला की कड़ियाँ' दिखाई पड़ती है और उसमें स्त्री-प्रतिरोध के रूढ़ स्वरूप की संस्कार की निर्मिति होते पाते है। जहां स्त्री हित में पुरुष व पितृसतात्मक सोच का विरोध परंपरा रही, वहीं महादेवी वर्मा पुरुष को उलझनमय यंत्र बताकर स्थापित और प्रचलित स्व-निर्मित स्त्री-दृष्टि का संस्कार द्वारा स्त्री-बोध को समग्रता प्रदान करने का प्रस्थान बिंदू रचती है। आगे चलकर 'यौनिकता बनाम आध्यात्मिकता' में के. पी.प्रेमिला ने पुरुष विनिर्माण की स्त्री-दृष्टि को ज्यादती का विषय बताया, जिसका विकास आगे रचनात्मक लेखन में अवश्य हुआ है, लेकिन आलोचना, समीक्षा और शोध के स्तर पर अभी भी उपेक्षा के भाव का शिकार है, जिसे आधार बना प्रतिरोध को दिखाना मेरा अभीष्ट है।

4.7. स्वातंत्र्योत्तर कथा-साहित्य में स्त्री-प्रतिरोध : परंपरा और प्रगति –

स्वतंत्रता के पश्चात मोहभंग हुआ। व्यवस्था चाहे राजनीतिक हो, धर्म संस्थान की हो, शिक्षा व्यवस्था की हो, पुलिस-प्रशासन की हो, सबके प्रति तीव्र विरोध नजर आने लगा। स्त्रियाँ घर से बाहर निकलने लगी, श्रम बाजार में उनकी भागीदारी बढ़ने लगी। फलस्वरूप स्वतंत्रता के पश्चात 20वीं सदी में स्त्री- प्रतिरोध का जो स्वरूप नजर आया, वह दो भागों में बटा हुआ दिखा। मीरा, महादेवी की परंपरा से प्रभावित होकर परिवारिक बंधन, सामाजिक रूढ़ियाँ, वर्ण व्यवस्था, पितृसत्तात्मक व्यवस्था को चुनौती देने वाला एक वर्ग पनपा, तो दूसरी ओर पाश्चात्य विचारक सीमोन द बोउवा, केट मिलेट आदि से प्रभावित होकर देह संबंधित वर्जना से मुक्ति के लिए लिंगभेद जैसे विचार के विरोध में स्त्री का प्रतिरोधी तेवर नजर आया। पहले पक्ष में अधिकांश में पुरुष द्वारा रचित कथा-साहित्य में स्त्री पात्र का प्रतिरोध रहा, तो दूसरे तरह का प्रतिरोध अधिकांश में स्त्री-लेखन में स्त्री-प्रतिरोध के अंतर्गत अधिक देखा गया।

स्त्री-जीवन उसकी मान्यता, नैतिकता परंपरा से काफी कुछ इस दौर में बदल गया। स्त्री शिक्षा के प्रश्न को नवजागरण में उठाया गया। प्रेमचंद की 'नैराश्यलीला' जैसी कहानी और उनके समकालीन कथाकारों ने भी इसे विषय बनाया, लेकिन स्वतंत्रता के बाद उसका विस्तार हुआ और शिक्षा के साथ रोजगार का सरोकार जुड़ गया। भारतेंदुयुगीन साहित्यकार स्त्री-शिक्षा द्वारा परिवार में संतुलन की जहाँ बात करते हैं, रोजगार से इसका कोई संबंध नहीं रहा, वहीं स्वतंत्रोत्तर कथा-साहित्य में व्यक्तिवादी और अस्तित्ववादी विचारधारा के प्रभाव से शिक्षा का उद्देश्य परिवार में संतुलन या परिवार को शिक्षित करने तक सीमित न रह अर्थ-उपार्जन द्वारा अपनी मर्जी से जीवन जी पाने की कोशिश रही। मार्क्सवाद में आर्थिक आत्मनिर्भरता को स्त्री की पराधीनता का प्रमुख

कारण माना गया, इसलिए स्वाधीनता के बाद इस दिशा में प्रतिरोधी चरण सबसे पहले देखने को मिला। कमलेश्वर की 'तीसरा आदमी' की नायिका चित्रा, उषा प्रियवंदा की 'जिंदगी और गुलाब के फूल' की नायिका वृंदा का नौकरी का निर्णय इस दिशा में प्रतिरोधी चरण है कि आर्थिक आत्मनिर्भरता ही स्त्री को घर, परिवार और समाज में अहमियत दिला सकती है, इसीलिए ये नायिकाएं नौकरी का निर्णय लेती है। राजेंद्र यादव की कहानी 'उखड़े हुए लोग' की जया शिक्षा को नौकरी के लिए और नौकरी को स्त्री की आत्मनिर्भरता की दिशा में जरूरी कदम जरूर मानती हैं, किन्तु साथ ही यह एक स्वीकारोक्ति भी है जहां वह अपने पति की पुरानी मानसिकता का विरोध करते हुए जब अपनी बात रखती है, तो स्पष्ट करती हैं, घर का काम करना कोई महत्वपूर्ण काम नहीं है – "इसका सीधा अर्थ तो यह हुआ ना, प्रमुख कार्य करने वाला पुरुष और स्त्री केवल गति बनाए रखने के लिए 'मोबिल ऑयल। ' फर्क क्या रहा? कल वह चरखे का तेल थी, आज मोटर का मोबिल ऑयल हो गई।" (सिंह 98) जया का घर के काम को कम आंकना हमारे समाज में गृहणियों के कार्य के प्रति उपेक्षित नजरिए के कारण निर्मित नए मूल्य का ही परिणाम है और लेखक का इस नजरिए के प्रति प्रतिरोध है।

स्वाधीनता के बाद जब कर्मक्षेत्र में स्त्रियाँ प्रवेश करने लगी, पैसा कमाने लगी, तो किन विडंबनाओ से गुजरती है, उसे विस्तार में रचनाकारों ने सामने रख स्त्रीहित में प्रतिरोध को दिखाया है। आर्थिक आत्मनिर्भरता भी स्त्री को स्वतंत्र होकर जीने की स्वतंत्रता नहीं देती, स्वतंत्रता के बाद की रचनाओं में इस सत्य को विषय बना इसके खिलाफ प्रतिरोधी स्वर रचा गया। कामकाजी होकर भी महिलाएं कहीं घर परिवार के अधीन हैं, जिसे राजी सेठ की 'योग दीक्षा' और ममता कालिया की 'बानी' के माध्यम से देखा जा सकता है। मन्नू भंडारी ने 'घुटन' में इस समकालीन सत्य को सामने रखा है कि प्रकार नौकरी पेशा लड़कियों का विवाह भी उसका अपना ही परिवार नहीं होने देना चाहता है, ताकि अपनी आमदनी में कमी ना हो, तो दूसरी ओर कर्मस्थल पर लैंगिकता के कारण होने वाले दैहिक शोषण को ममता कालिया ने 'जांच अभी जारी है' जैसी कहानी में विषय बनाया और 90 की दशक तक आते-आते प्रभा खेतान की 'अपने- अपने चेहरे' तक ये स्वीकारोक्ति रही कि आर्थिक स्वावलंबन स्त्री- पुरूष की सामाजिक छवि में बदलाव नहीं कर सकता। अकेली आत्मनिर्भर स्त्री को समाज के तीखे प्रश्नों का सामना करना पड़ता है। बदलते समय में भी स्त्री-संबंधित पारंपरिक मूल्य में कुछ बदलाव तो देखा जा सकता है, तभी घर से कर्मक्षेत्र में स्त्रियों के पदार्पण को समाज स्वीकार कर रहा है, लेकिन स्त्री को देह तक समझे जाने की विसंगति और उसके जीवन और निर्णय पर एक नियंत्रण बनाए रखने की कोशिश परंपरा से चली आ रही है और अपनी प्रगति में भी विद्यमान है।

इस दौर में जब स्त्रियां नौकरी में जाने लगी, तो घर से बाहर कार्य क्षेत्र पर जाना और वहाँ आकर्षण, प्रेम और विवाहेतर संबंध भी पनपने लगे, जिसे समकालीन कथाकार ने अपनी रचनाओं में उभार कर समय की विसंगति के खिलाफ प्रतिरोधी तेवर को मजबूत किया है। चित्रा मुद्गल की 'लाक्षागृह' कहानी हैं, जहाँ नायिका

सुन्नी अपने विभाग में कार्यरत सिन्हा को प्रेम तो कहती है, पर विवाह से इंकार कर देती है क्योंकि उसे पता है, सिन्हा रुपए के लिए उससे प्रेम चाहता है। यहाँ एक बोध सहित प्रतिरोध है, तो दूसरी ओर मृदुला गर्ग की 'खरीददार' कहानी है, जिसमें नौकरीपेशा नायिका पुरुष को खरीदने की बात करती है और खरीदकर अपनी सेक्स की इच्छा को पूरा करती है। यहाँ प्रतिरोध की जगह प्रतिशोध मुखर है।

स्वतंत्रता के पूर्व प्रेमचंदयुगीन कथा साहित्य का वह दौर रहा जहाँ विवाह संस्थान पर गहरी आस्था दिखी। स्त्री अपनी यथास्थिति को नियति मान जीवन जी लेती थी। निर्मला परिवार द्वारा चुने अपनी अधेर साथी के साथ जीवन बिताती है। 'कर्मभूमि' की सुखदा हो या 'गोदान' की झुनिया विवाह संस्थान पर आस्था रखती है और बुरे से बुरे विवाह पर भी पर प्रश्न-चिन्ह नहीं लगाती, वहीं स्वतंत्रता के बाद की कहानियाँ तथा उपन्यासों में विवाह संस्थान के प्रति गहरी अनास्था रही। स्त्री अपनी यथास्थिति से समझौता कर जीने को नियति नहीं मानती, बल्कि प्रतिरोध करती है। कमलेश्वर का 'खोया हुआ आदमी' और 'काली आंधी' की नायिका अपनी मर्जी से परिवार की इच्छा के विरूद्ध अपने जीवनसाथी को चुनती है। जीवनसाथी चुनने का निर्णय अपने हाथ में लेती हैं, तो 'वही बात' की नायिका महत्वाकांक्षी पति के अंधी दौड़ में अकेले होकर अपने जीवन के खालीपन को दूर करने के लिए नुकूल से पुनर्विवाह कर लेती है। प्रेमचंद की नायिकाओं की तरह विवाह के बंधन में घुटते नहीं रहती। निर्मल वर्मा की कहानी 'परिंदे' में लतिका एक उम्र के बाद भी अपने अकेलेपन से निकलकर प्रेम की पगडंडी पर कदम रह सकती है, उसके लिए उम्र बाधा नहीं है। उपन्यास'आपका बंटी' के द्वारा शकुन के माध्यम से तलाकशुदा स्त्री के लिए भी नया जीवन जीना संभव है, उसकी भी जरूरत हो सकती है इससे सामने रखा गया है। यद्यपि परंपरा में प्रसाद ने ध्रुवस्वामिनी का 'चंद्रगुप्त' से दूसरा विवाह दिखाया है। ऐतिहासिक पात्र के माध्यम से जिस सत्य को रखना चाहा था प्रसाद ने, अपनी प्रगति में समाज में वह घटित होने लगा, जिसकी साहित्य में अभिव्यक्ति होने लगी। पत्नी के रूप में भी इस दौर की कथा नायिकाएं अपने आत्मसम्मान की रक्षा के लिए आगे आती है। मेहरून्निसा प्रवेश की कहानी 'खामोशी की आवाज' में नायिका पति द्वारा कपड़े और भोजन की एवज में कृतदास समझने का प्रतिरोध करती हुई कहती है और इसके बदले में वह खरीदी हुई लौंडी नहीं, उसे एहसास करा देती है कि सब कुछ दे कर भी उसे क्या चाहिए उसका पति नहीं समझ सका है। मृदुला गर्ग की 'मेरा' कहानी में पति के चाहने पर भी पत्नी अबॉर्शन के लिए तैयार ना हो, अपने मातृत्व की रक्षा के लिए आगे आती है, अपने अधिकारों के प्रति सचेत होती नारी दिखती हैं।

प्रेम और विवाह के संबंध में प्रचलित नैतिकता साठ के दशक तक आते-आते टूटने लगी। वैवाहिक जीवन को स्त्री-शोषण का कारण माने जाने लगा, इसलिए इस संस्था के प्रति एक प्रतिरोधात्मक रवैया स्वतंत्रोत्तर साहित्य का मुख्य विषय बना। मृदुला गर्ग की कहानी 'एक और विवाह' की नायिका और 'तुक' कहानी की नायिका विवाह को घृणाप्रस्त स्थिति मानती है। मन्नू भंडारी की 'जीती बाजी हार गई' की नायिका मुरला

विवाह को व्यक्तित्व का खून मानती है। आगे चलकर उषा प्रियंबरा का उपन्यास 'रुकोगी नहीं राधिका' में राधिका के भी यही टोन है, जो अक्षय और मनीष से मित्रता के बंधन से इतर कुछ नहीं देखती और बार-बार विवाह के प्रश्न को उठाने पर कह देती कि विवाह के मूड में नहीं है। मन्नू भंडारी की 'जीती बाजी हार गई' की नायिका मुरला विवाह को व्यक्तित्व का खून मानती है। 'एक और विवाह' की नायिका कहती है– "मैं व्यवस्थित विवाह में विश्वास नहीं करती। वह विवाह नहीं, जबरदस्ती किसी का पल्लू पकड़ लेना होता है। दो कारणों से ऐसा करने की आवश्यकता पड़ सकती है, आर्थिक अवलंबन की खोज और शारीरिक भूख। "(भण्डारी, 28) साठ के दशक में मृदुला गर्ग की नायिका आर्थिक निर्भरता और शारीरिक जरूरत को विवाह का आधार बताती है और आज जब आर्थिक रूप से स्त्रियाँ स्वावलंबी हैं, दैहिक जरूरत को पूरा करने के लिए बाजार में कृत्रिम उपकरण भरे हुए हैं, ऐसे में विवाह में गहरी आनास्था उत्पन्न होना स्वाभाविक जान पड़ता है। ऐसे में भी अगर विवाह संस्थान बचे हुए हैं, तो केवल एक औपचारिकता है। सामाजिक होने का एक माध्यम मात्र। डॉक्टर पुष्पलता सिंह लिखती हैं – "परिवर्तित सामाजिक परिदृश्य में नारी और पुरुष का विवाह और प्रेम संबंधी दृष्टिकोण आज पूरी तरह बदला हुआ है। आज विवाह का आधार प्रेम या भावनात्मक संवेदना, युग-युग के संबंध की आस्था व विश्वास नहीं है, अभी तो उसे मात्र एक सामाजिक समझौता, साथ रहने की आवश्यकता भर समझा गया है। कुछ कहानीकारों ने विवाह संस्थान को ही निरर्थक घोषित कर दिया है। "(सिंह 150)

स्वातंत्रोत्तर कथा-साहित्य में प्रतिरोध का ये एक ऐसा स्वरूप बना जहां विवाह का संस्कार न करके विवाह के त्याग की बात की गई है, जबकि विवाह का दस्तूर आज भी अपनी सारी विसंगतियों के साथ चला आ रहा है।

भूमंडलीकरण और पश्चिम के नारीवाद के द्वितीय लहर का प्रभाव भारत में भी पड़ा और स्वतंत्रता बाद का हिंदी कथा साहित्य इससे प्रभावित दिखा। नई नैतिकता के नाम पर निजीकृत और विकृत नैतिकता को भी साहित्य में उभार कर उसके खिलाफ प्रतिरोधी तेवर भी साहित्य में नजर आने लगा। भूमंडलीकरण का ही प्रभाव रहा कि स्त्री ना तो पत्नी रह सकी और ना ही प्रेमिका और इन सबके बीच पुरूष लाचार नजर आने लगा। मन्नू भंडारी का कथा साहित्य 'यही सच है','बाहों का घेरा', 'बंद दरवाजों के साथ','ऊँचाई' में इसे देख सकते हैं। 'ऊँचाई' कहानी में नायिका शिवानी दो बच्चे की माँ और पत्नी होकर भी अपने प्रेमी से शारीरिक संबंध बनाती है और पति से कहती है – "मेरे जीवन में तुम्हारा जो स्थान है, उसे कोई नहीं ले सकता, लेना तो दूर, उस तक कोई पहुँच भी नहीं सकता। किसी के कितनी ही निकट चली जाऊं। "(भण्डारी 134) 'कितने कैद' की नायिका विवाह पूर्व बने संबंध के बारे में पति को बतलाती है और दोनों पुरुष यहाँ लाचार दिखाई देते हैं। वह कुछ नहीं कह पाते, जबकि प्रेमचंद के यहां सुमन के घर से बाहर रहने मात्र पर गजाधर बाबू उसे घर से बाहर निकाल देते हैं।

स्त्री की यौनिक अभिव्यक्ति को स्वतंत्रता के बाद रचना में कथाकारों ने विषय बनाया। इस दिशा में अस्तित्ववाद व व्यक्तिवाद से प्रभावित निजीकृत नैतिकता का प्रतिरोध भी दिखा। डॉ अंजू लिखती हैं – "समकालीन कहानी के उभरे पात्र सेक्स के स्तर पर एकदम खुले और स्वतंत्र है...पवित्रता और अपवित्रता, नैतिकता और अनैतिकता की धारणा से मेल नहीं खाती।" (डॉ अंजु) साठ के दशक में कृष्णा सोबती की 'मित्रो' अपनी यौनिक इच्छा की सहज अभिव्यक्ति करती हैं। स्त्री होने के कारण अपनी इच्छा को दबाती नहीं है। स्त्री संतुष्टि के प्रश्न को कथा साहित्य में पहली बार विषय बनाया गया, जो प्रतिरोधी चरण है। वहीं मृदुला गर्ग की 'उसके हिस्से की धूप' की नायिका प्रेम को कला नहीं, बल्कि जरूरत मानती है। मनीषा प्रेम की रिक्तता को पूरा करने के लिए जितेन और मधुकर दोनों की और बढ़ती है, पर किसी से संतुष्ट नहीं होती और अंत में रचनात्मक कार्य में लग जाती है। इस प्रकार स्त्री संतुष्टि के प्रश्न को कथा साहित्य में विषय बनाया गया। 'ऐ लड़की' में माँ बेटी को यौन तृप्ति का पाठ पढ़ाती है। 'चितकोबरा' में मनु के माध्यम से विवाहेतर प्रेम को दर्शाए है, जहां मनु विवाह महेश से और प्रेम रिचर्ड से रखती है। परंपरा में प्रेमचंद ने विवाहेतर संबंध का 'नया विवाह' में संकेत किया, अपनी प्रगति में स्वतंत्रोत्तर कथा-साहित्य में नजर आने लगा। हालांकि प्रेमचंद के कथा-साहित्य की तरह यहाँ पुरुष को खल पात्र बनने से कथाकारों ने बचा लिया, न तो मृदुला गर्ग के यहाँ पुरुष बुरा है,न ही मन्नू भण्डारी के यहाँ, पर उनकी इच्छा या चिंता भी इनकी रचनाओं में नहीं दिखा। इस प्रकार प्रतिरोध का स्वरूप यहाँ एकपक्षीय रह गया।

प्रेम के नाम पर चलने वाले यौन दुराचार को भी कथाकारों ने विषय बना उसका भी प्रतिरोध किया है। ज्ञानरंजन ने 'शेष होते हुए' कहानी में परिवार में प्रेम के नाम पर चलने वाली यौन दुराचार को सामने रखा जो परंपरा से अपनी प्रगति में आज भी समाज में है। 'दाम्पत्य' कहानी में प्रेम के नाम पर दैहिक संबंध को दिखाया है। 'हास्य रस', 'छलांग' जैसी कहानी में प्रेम के नाम पर शरीर की चाहत को दिखाया है। 'यही सच है' की दीपा, निशिथ और संजय दोनों से प्रेम करती है, जो क्षणवाद के प्रभाव को दिखाता है।

परंपरागत और समय अनुसार बदला पुरुष भी इस दौर की रचनाओं में नजर आया। नारीवाद की तीसरी लहर में स्त्री-पुरुष के रिश्ते में जिस समरसता को बनाने की बात हुई और जिस बदलते पुरुष को देखा गया, हिन्दी कथा-साहित्य में भी इससे प्रभावित पुरुष नजर आने लगे। एक ओर राजेन्द्र यादव का 'कुलटा' उपन्यास में मेजर तेजपाल स्त्रियों के पैंट-शर्ट पहनने पर उन्हें कुलटा कहते है, तो उनकी पत्नी मिसेस तेजपाल ना केवल उस समय उनका विरोध करती है, बल्कि खुद भी पैंट-शर्ट पहनकर पिकनिक पर जाने के लिए निकलती है। स्त्री के कपड़े से उसके कैरेक्टर को देखे जाने का विरोध करती है। अपना प्रतिरोध दर्ज कराती है। दूसरी ओर उषा प्रियंबरा की 'तूफान के बाद' कहानी है, जिसमें भाई बहन का जाति से बाहर विवाह नहीं होने देता, वहीं अपनी बेटी का

विजातीय विवाह करता है और बहन के साथ किए अन्याय का पश्चाताप भी करता है। पुरुष भी संस्कारगत जड़ता को छोड़कर बदल रहा है।

बलात्कार जैसी सामाजिक समस्या को प्रेमचंद ने विषय बनाया, तो अपनी प्रगति में कृष्णा सोबती और मृदुला गर्ग ने भी इससे स्त्री-मानस पर पड़ने वाले दुष्परिणाम को अपने साहित्य में जगह दी और स्त्री के प्रति समाज की इस मानसिकता का प्रतिरोध किया। 'सूरजमुखी अंधेरे में' बलात्कार पीड़ित स्त्री की मनोदशा को कृष्णा सोबती ने रखा है। समाज बलात्कार पीड़ित स्त्री को किस प्रकार मनोग्रंथि में जीने को विवश कर देता है, इसे सामने रख सामाजिक प्रतिरोध को रचती है। मृदुला गर्ग का उपन्यास 'कठगुलाब' में भी स्मिता जीजा द्वारा बलात्कार पीड़ित है और इस पीड़ा को झेलती है। कृष्णा सोबती की 'डार से बिछड़ी', 'ऐ लड़की' के द्वारा भी उन्होंने स्त्री के संघर्ष व उसके प्रतिरोध को स्वर दिया है।

प्रभा खेतान ने 'पीली आंधी', 'आओ पेपे घर चलें' द्वारा स्त्री के स्वाभिमान को परंपरा, नैतिकता की घुट्टी के आगे रखा है। कृष्णा अग्निहोत्री, नासिरा शर्मा, मेहरून्निसा परवेज, नमिता शर्मा आदि महिला कथाकार ने स्त्री मुद्दे के साथ हाशियाकृत समाज, सामाजिक, वैश्विक समस्याओं को भी अपने-अपने दृष्टिकोण से सामने रखा है। इस प्रकार इस दौर में स्त्रियाँ स्वयं अपनी समस्याओं के लेकर मुखर तो हुई ही, साथ ही अपनी समस्याओं से इतर देश, समाज, विश्व को अपनी दृष्टि से देख, वहाँ उत्पन्न समस्या के विरोध में भी प्रतिरोधी तेवर लिए हुए है।

4.8. 21वीं सदी के कथा साहित्य में स्त्री-प्रतिरोध : परंपरा और प्रगति –

पचासी के दौर में भूमंडलीकरण के पृष्ठभूमि बनती है। 91 में इसके स्वीकार के साथ पूरा विश्व 'ग्लोबल विलेज' में बदल जाता है और 2000 के बाद इसके प्रति नियतिबद्ध तरीके से बाध्य हो जाते हैं। भूमंडलीकरण एक राजनीतिक विचार है, इसका उद्देश्य अर्थ की सत्ता द्वारा पूरे विश्व पर अपना वर्चस्व कायम करना रहा। भूमंडलीकरण नव-साम्राज्यवाद है, जिसने साम्राज्य की स्थापना के लिए एक नई संस्कृति को आर्थिक सत्ता द्वारा जन्म दिया गया। इसका लक्ष्य आत्मनिर्भरता है और इस आत्मनिर्भरता के द्वारा मुक्त संस्कृति को जन्म देना है। इसी कारण भूमंडलीकरण में विकास की संस्कृति को बढ़ावा दिया गया। बहुराष्ट्रीय कंपनी आ गई। विकासशील देशों में नए उद्योग स्थापित किए गए। हर किसी को उन्नति के लिए अवसर दिया गया। हाशियाकृत वर्ग दलित, आदिवासी, किन्नर, स्त्री मुख्यधारा के सम्मुख आ गए। बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में जब भूमंडलीकरण को स्वीकृति मिली, तो जिस परिवेश को जीने के लिए अब तक हम अभिशप्त थे, भूमंडलीकरण के बाद उसे जीने के लिए अभ्यस्त हो गए। फलस्वरूप २१वीं सदी के पहले की रचना में स्त्री-प्रतिरोध का जो स्वर निर्मित हुआ, उसमें सदियों से परंपरा, नैतिकता, मूल्य के नाम पर दमित स्त्रियों को मुखर अभिव्यक्ति का

अवसर मिला। पूरी व्यवस्था के प्रति उनका प्रतिरोधी तेवर उग्र रहा, वहीं २१वीं सदी में इस प्रतिरोध के साथ इससे आ रही सामाजिक विकृतियों को भी कथाकारों ने विषय बनाया और उन विकृतियों के खिलाफ भी प्रतिरोध के स्वर मजबूत किया। सामाजिक, राष्ट्रीय, वैश्विक सरोकारों के प्रति भी स्त्री-लेखन में प्रतिरोध नजर आने लगा है।

स्त्री और पुरुष के बीच 'प्रेम और काम' का संबंध सबसे अधिक द्वंद्वमूलक रहा है और अगर इसमें दोनों की तृप्ति न हो, तो समाज में विकृति ही फैलेगी। मैनेजर पाण्डेय प्रेम की आजादी को 'सामंती जकड़बन्दियों से आजादी' के रूप में देखते हैं, तो राजेन्द्र यादव 'सेक्स की मुक्ति को स्त्री मुक्ति' मानते है और २१वीं सदी में प्रेम और काम को लेकर स्त्रीपक्ष सक्रिय हुआ है। इस मामले में स्त्री की स्वतंत्रता को लेकर स्त्री-पुरुष ही नहीं, समाज भी उदार हुआ है, तभी आज 'ऑर्गैज़म' की चर्चा जोर-शोर से चल रही है। जिस क्षेत्र को स्त्री के लिए गैरजरूरी बताया गया, आज 'कथा के गैरजरूरी प्रदेश में' जैसी रचना के माध्यम उस क्षेत्र में स्त्रियों का प्रवेश जरूरी हो गया। २१वीं सदी के पहले स्त्री-लेखन में मृदुला गर्ग, मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती के यहाँ 'चितकोबरा', 'ऊंचाई', 'मित्रो मरजानी' आदि रचनाओं में स्त्री की काम तृप्ति को अभिव्यक्ति मिली, लेकिन पुरुष पात्र की चिंता इन लेखिकाओं के केंद्र में नहीं रहा। वहीं २१वीं सदी में प्रेम-काम संबंध में पुरुष की इच्छा को भी नोटिस में लिया है। गीताश्री की 'ताप', शरद सिंह का 'कस्बाई सिमोन' अलका सिंहा का 'जी-मेल एक्सप्रेस', अनामिका का 'तिनका-तिनके पास' रचनाएं इस संदर्भ को व्यक्त करती है। स्त्री-प्रतिरोध एकपक्षीय नहीं रह गया, बल्कि भारतीय परिप्रेक्ष्य में नारीवाद की तीसरी लहर में स्त्री-पुरुष दोनों पर विचार करने का जो प्रस्ताव रखा गया कथा-साहित्य में वह प्रयास परिलक्षित होने लगा।

परंपरा में महादेवी के यहाँ से प्रतिरोध की जो परंपरा चली, वह पुरुष प्रतिशोध नहीं, बल्कि पुरुष को 'उलझनमय यंत्र' बताकर उसमें संभावित संस्कार की कोशिश दिखती है। आगे चलकर 70-80 के दशक में मृदुला गर्ग ने भी 'देसी फेमिनिस्ट' में लिखा कि 'सच्चा फेमिनिस्ट घर के कचरे को बाहर नहीं फेंकता, बल्कि बाहर के कचरे को भी साफ करता है।' अतः पुरुष बुरा है, तो उसे संस्कारित करने की आवश्यकता है। 'यशपाल' के 'करवा का व्रत' के पुरुषवादी कन्हैयालाल से आज तक पुरुष को संस्कारित करने की दिशा में कोई कोशिश नहीं की गई। अब २१वीं सदी में स्त्री-प्रतिरोध की दिशा में पुरुष को संस्कारित करने का चरण नजर आ रहा है। अनामिका अपने उपन्यास 'तिनका तिनके पास' में स्त्री पात्र द्वारा कहलाती हैं "क्रोध और काम के सरप्लस या अतिरेक से पुरुष को उबारना ही स्त्री की सबसे कठिन चुनौती है।" (अनामिका 60) अनामिका 'तिनका-तिनके पास' में विचार के स्तर पर इसे चुनौती मानती है और जयश्री की 'एक रात', सूरज प्रकाश की 'लहरों की बांसुरी' कहानी में पुरुष संस्कार की एक कोशिश नजर आने लगती हैं। 'एक रात' की नायिका कहती है – "जरूरी नहीं कि स्त्री-पुरुष के जिस्म हमेशा प्राथर्ना में दो हथेलियों की तरह जुड़े। वे एक

दुआ में दो हाथों की तरह अलग-अलग रहकर भी एक सनातन साथ में हो सकते हैं। आओं, हम हमेशा एक दुआ की तरह साथ रहें, प्रार्थना में जुड़कर अपना अस्तित्व समाप्त न करें।'' (राय 63) आगे चलकर सूरज प्रकाश की कहानी 'लहरों की बांसुरी' की अंजली कहती है – "अगर तुम कमजोर पड़ोगे तो मैं तुम्हें संभालूँगी और कमजोर नहीं पड़ने दूँगी और अगर कहीं मैं पर गई तो तुम मुझे संभाल लेना।'' (प्रकाश) पुरुष संभालता भी नजर आता है। पुरुष और स्त्री दोनों का गठन समाज में होता है, ऐसे में किसी एक को जन्म से बुरा मान लेना हमारी दृष्टि का ही दोष है। पुरूष बुरा है, तो स्त्री संबंधित उसके संस्कार को संस्कारित करने की जरूरत है। जब तक इस दिशा में प्रयास नहीं किया जाए, कितने ही विमर्श और उसमें अंतर्निहित प्रतिरोध स्त्रीहित में क्यों न हो, पारिवारिक-सामाजिक संरचना में सुधार नहीं आ सकता। आज २१वीं सदी की रचनाओं में पुरुष संबंधित पूर्वाग्रह से मुक्त हो उसके संस्कार का प्रयास नजर आ रहा है, जो स्त्री-प्रतिरोध का एक चरण है।

स्त्री-पुरुष दोनों एक ही समाज की उपज है,लेकिन एक ही समाज के होने के वाबजूद दोनों को अलग-अलग परिवेश में अलग-अलग तरीके से संस्कारित किया जाता है। जिस कारण प्रेम-काम के मामले को लेकर दोनों की फैन्टेसी भी अलग-अलग बनती है। 'कस्बाई सिमोन' की सुगंधा अपनी फैन्टेसी के बनने के कारण का का जिक्र करती हुई कहती है– "इससे पहले मैंने यही पढ़ा, देखा और सुना था कि प्रेम का उद्घाटन बड़े कोमल ढंग से किया जाता है।"(सिंह 30) एक ही समाज की उपज होने के वाबजूद स्त्री-पुरुष दोनों का पढ़ना, सुनना और देखना अलग-अलग परिवेश में होता है, जिस कारण स्त्री, प्रेम में काम की आपूर्ति चाहती है, तो पुरुष काम में प्रेम की आपूर्ति को खोजता है और यही द्वन्द्व निर्मित हो जाता है, इस द्वन्द्व को विषय बना २१वीं सदी में प्रेम-काम मामले में प्रतिरोध को मुकम्मल रूप देने की कोशिश 'तिनका-तिनके पास','बीतते हुए','कस्बाई सिमोन','कथा के गैर जरूरी प्रदेश में','पिछला दरवाजा','गोरिल्ला प्यार' रचनाओं में हुई है।

प्रतिरोध मुकम्मल तभी होता है जब वह बोध सहित हो, लेकिन देखा गया कि जो प्रतिरोध मीरा, गोरखनाथ, बिहारी, तुलसी ने परंपरा में आगे बढ़ाया, वह अपनी प्रगति में प्रतिशोध में बदल गया। पुरुष के जिस आचरण के विरोध में स्त्री का प्रतिरोध था, आज स्त्रियों भी उसी आचरण को अपना रही है। इसका प्रतिरोध भी स्त्री-लेखन में नजर आ रहा है, तभी 'जिगोल' जैसे प्रसंग भी २१वीं सदी के कथा साहित्य में 'देह के पार','जूनियर जिगोलों','जिमेल-एक्सप्रेस' जैसी रचनाओं में जुड़ रहे हैं। 'औरत जो नदी है','गोरिल्ला प्यार', 'पत्ताखोर' जैसी रचनाएं नई नैतिकता के नाम पर नैतिकता के निजीकरण का ज्वलंत उदाहरण है। 'पत्ताखोर' में बैंक कर्मी पति को 'फिक्स डिपॉजिट' तो प्रेमी को 'करेंट अकाउंट' बताती हैं और 'औरत जो नदी है' में पुरुष को 'आपद मस्तक लिंग' महसूस करा देती है। इन्हीं विसंगतियों को लक्ष्य कर प्रेमिला के० पी० ने 'स्त्री-अस्मिता और पुरुष विनिर्माण' शीर्षक में सही कहा है – "स्त्री पक्षीयता में अब भी आगे जाने की कामना है, शक्ति है, सुधार की गुंजाइश है, इसलिए हमसफ़र बहनों का दायित्व है कि वह इस मुकाम में 'पुरुष विनिर्माण'की

सामाजिक ज्यादती को छोड़ दें।" (प्रेमिला 35) स्पष्ट है स्त्री-प्रतिरोध का मतलब पुरुष बनना या उसके जैसे आचरण को अपना लेना नहीं है। परंपरा में मन्नू भंडारी की 'ऊंचाई' कहानी में पत्नी बाहर संबंध बताती है और पति को कहती है, तुम मेरे मन की ऊँचाई में हो। मृदुला गर्ग की'कितनी कैदे' की नायिका विवाह पूर्व बने संबंध के बारे में पति को बताती है और वह कुछ नहीं कर पाता,लाचार नजर आता है और इसी डर के कारण 'चित्तकोबरा' में जब मनु महेश से पूछती है, कि 'अगर मुझे कहीं बाहर प्रेम हो जाए' तो महेश कहता है कि उसे न बताए। आगे 90 के दशक में 'जलडमरूमध्य' जैसी रचना रही है, जहाँ पति-पत्नी दोनों के बाहर संबंध और दोनों अनजान बने रहते हैं। वहीं आज 21वीं सदी में 'कस्बाई सिमोन', 'इंद्रधनुष के पार' जैसी रचनाएँ आ रही है, जहाँ पति की जानकारी में पत्नी संबंध बना रही है और वह विवश है। प्रतिरोध की दिशा में नई नैतिकता के नाम पर 'निजीकृत नैतिकता' संबंधों को कैसे पतन की दिशा में ले जा रही है, जिससे हमारे मूल्य और मूल्य से प्रतिरोध का स्वरूप प्रदूषित हो रहा है, ऐसे विषय को कथा साहित्य में विषय बनाकर रचनाकारों ने प्रतिरोध को सही दिशा देने का प्रयास किया है।

आज स्त्रियाँ अन्य क्षेत्र के साथ राजनीति में भी अपना परचम लहरा रही है। परंपरा में मध्यकाल हो या आधुनिककाल अधिकांश में राजनीति में स्त्री की भूमिका मात्र 'पात्र' की रही, वहीं आज पात्र से 'कर्ता' की ओर स्त्री का प्रस्थान हो रहा है और इस प्रस्थान में जिन विडंबनाओ से वो घिर रही है, वहाँ उसके प्रतिरोधी चरण को २१वीं सदी की रचना में मुख्य रूप से सामने रखा गया है। जिसमें रजनी गुप्त का 'ये आम रास्ता नहीं', गीताश्री का 'हसीनाबाद' किरण सिंह की 'यीशू की कीलें' नीलिमा सिंहा की 'तैंतीस परसेंट', भूमिका द्विवेदी की 'दांव' आदि रचनाएं प्रमुख हैं। स्त्री की राजनीति में आते ही इसके प्रति राजनेता की सोच, कार्यकर्ताओं का आचरण, परिवार वालों का व्यवहार शोषण मूलक तो हो ही जाता है, साथ ही यह भी देखा गया कि राजनीति में स्त्री का अस्तित्व मायने नहीं रखता उसका रूप सौन्दर्य ही योग्यता बन जाती है। इस कारण व्यवस्था से समझौता या पलायन ही उसकी नियति बन जाती है, जिसे कथा साहित्य में स्त्री-प्रतिरोध की दिशा में विषय बनाया गया। 'ये आम रास्ता नहीं' की 80 वर्षीय नेत्री 'रत्ना' मृदु को राजनीति में बने रहने का मूल मंत्र बताती हुई जो कुछ कहती है, वह स्त्री के प्रति पुरुष की रूढ़ दृष्टि का प्रतिरोध है – "सचमुच! सुंदर होना यहाँ अभिशाप बन जाता है। पहले तो वे आपकी सुंदरता के कसीदे काटेंगे, आंखों की, रूप-रंग की, चाल-चुस्ती की यहाँ तक कि उसकी काबिलियत की झूठ-मूठ तारीफें करेंगे, मगर हस्तगत होते ही सारी की सारी काबिलियत एक कोने में धरी रह जाएगी, फिर तो वह मुफ्त का माल बन जाती है।" (गुप्त 26) राजनीति में स्त्री वस्तु बनकर नहीं रहना चाहती है। स्त्री दिखती ही नहीं, देखना भी सीख चुकी है। यह अलग बात है कि उसका प्रतिरोध अभी मुकम्मल नहीं हो पाया है क्योंकि इसी में उसे सुरक्षा और विकास दोनों की संभावना दिखती है, इसीलिए राजनीति का अपने प्रति भ्रष्ट आचरण को जानते हुए भी विरोध नहीं करती। सत्ता की प्रकृति शक्ति का उपयोग है और इसके

लिए स्त्री या पुरुष होना मायने नहीं रखता, बल्कि यहीं आकर स्त्री-राजनेता का जो आचरण नजर आता है, उससे स्पष्ट होता है कि स्त्री-राजनीति पुरुष राजनीति से भिन्न नहीं है। इसे २१वीं सदी में 'यीशू की कीले','दांव' जैसी कहानियाँ सामने ला रही हैं, जो अपने आप में स्त्री-राजनीति की विकृति के खिलाफ प्रतिरोध को रचती है। 'यीशू की कीलें' की दीदी जी 100% जीत का समीकरण पति की हत्या कर, भाई पर इल्जाम लगा और स्वयं उसकी विधवा के रूप में उसी सीट पर खड़ी होकर बनाती है और सहानुभूति की राजनीति कर चुनाव जीतकर दिखाती हैं। भारती का मोहरे की तरह उपयोग करती है और कहती है – "मैंने तुमसे कहा था न कि मुझे मालूम है कि सौ प्रतिशत जीत कैसे सुनिश्चित होती है…अपोजीशन पार्टी पति की हत्या करवा दें और उसी सीट से मृतक की पत्नी खड़ी हो, तो सिर्फ उसके जीतने का रिकार्ड है।" (सिंह 129) स्त्री-प्रतिरोध कितना निर्मम और क्रूर हो चुका है। स्त्री, स्त्री का इस्तेमाल करती है और पुरुषों की तरह घातक राजनैतिक पैतरे अपनाती है, इसलिए यहाँ प्रतिरोध की जगह सता पाने की सनक मात्र है। इस सनक का प्रतिरोध 21 वीं सदी में दर्ज है।

भूमंडलीकरण ने गांव का विस्थापन और शहरीकरण की प्रक्रिया को बढ़ाया और महिलाओं के लिए अवसर के द्वार खोले। ऐसे में घरेलू महिला कामगार वर्ग मध्य वर्ग के लिए अनिवार्य बन गया। परंपरा में इस वर्ग के प्रतिरोध का थेरी गाथा में संकेत है, वहीं कथा जगत में भीष्म साहनी की 'राधा-अनुराधा चित्रा मुद्गल की 'सुख', मृदुला गर्ग की 'किस्सा आज का',चंद्रकांता की 'विदागीत', अर्चना वर्मा की 'राजपाट' में है। अपनी प्रगति में भूमंडलीकरण के बाद इनका प्रतिरोध और मुखर हुआ है। सुरभि टंडन मेहरोत्रा लिखती हैं – "घरेलू कामगार न केवल अवांछित काम करते हैं, बल्कि घर का काम करते हुए मालिकों के लिए संभव बनाते हैं कि वह अपनी मध्यवर्गीय प्रतिष्ठा को कायम रख सकें।" (मेहरोत्रा 54) इस काम में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियां अधिक है। प्रतिष्ठा के सूचक के वाबजूद डॉo अजय कुमार साव के अनुसार यह स्त्री विमर्श का ऐसा अछूता हिस्सा रहा, जो विमर्शकारों, आलोचकों और शोधार्थियों की जवाबदेही का हिस्सा नहीं बन पाया है। जबकि मध्यवर्ग के बीच हाशियाकृत कामगार वर्ग का प्रतिरोधी तेवर २१वीं सदी में स्त्री-प्रतिरोध की दिशा में विषय बना है। गीताश्री की 'डाउनलोड होते हैं सपनें' और 'माई री मैं टोना करिहों', उर्मिला शुक्ल की 'फिर मिलना कारी', कविता वर्मा की 'निश्चय', सूर्यबाला की 'सुनंदा छोकरी की डायरी', शोभा सिंह की 'नाम में बहुत कुछ रखा है..' रचनाओं के माध्यम से घरेलू महिला कामगारों के प्रति मध्यवर्ग की दोहरी मानसिकता, घर-परिवार, कार्यस्थल पर मालिक और मालकिन सदस्य के द्वारा होने वाला उनके मानसिक और यौनिक शोषण तथा कानून के अभाव के बावजूद मौन व मुखर प्रतिरोध २१वीं सदी में दर्ज हुआ है। 'एक नौकरानी की डायरी' की शानो कहती है "मुझे निकाल देने की धमकियां अक्सर देती रहती हैं। निकालती नहीं। निकलेगी नही, आजकल नौकरानियाँ आसानी से नहीं मिलती।" (वैद 11) 'नाम में बहुत कुछ रखा है' 'बराबरी का खेल' रचनाओं में यह बोध दिखता है। मध्यवर्गीय जीवन से आकृष्ट और उस जैसा जीवन जीने को लालायित इस वर्ग

की विडंबना को 'डाउनलोड होते हैं सपने', 'एक नौकरानी की डायरी' में रखा गया है। साथ ही इनसे त्रस्त मध्यवर्ग के घर-परिवार की नियति को प्रवासी लेखिका जाकिया जुबैरी ने 'लौट आओ तुम!' कहानी में व्यक्त कर प्रतिरोध की कई दिशाओं को रचा है।

स्त्री लेखन में प्रतिरोधी स्वर की बात करते हैं, तो आज बच्चे, युवा, बुजुर्ग, दलित, आदिवासी, किन्नर, शिक्षा, सांस्कृतिक संस्थान, धर्म,आतंकवाद की समस्या केंद्र में हैं, स्त्री-प्रतिरोध इस दिशा में प्रगति में है। स्त्री-प्रतिरोध, स्त्री-विमर्श से आगे सभ्यता विमर्श की दिशा में अग्रसर है। स्त्रीलेखन में प्रतिरोधी स्वर इनके अधिकारों के लिए, विसंगतियों के खिलाफ देखने को मिल रहा है। प्रकृति पर निर्भर आदिवासियों के विस्थापन की समस्या को 'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ', 'हम यहां थे', 'अस्थि फूल' जैसी रचनाओं में लेखिकाओं ने स्वर दिया है। आज दलित की समस्या भी वैश्विक समस्या के रूप में कई रूपों में हमारे सामने है, कहीं जाति की समस्या है, तो कहीं रंग की समस्याएं। दलित समस्या को 'तुम्हे बदलना ही होगा','नीला आकाश' में लेखिकाओं ने स्वर दिया है। तीसरे लिंग के अधिकार और संघर्ष को सांझा, पोस्ट बॉक्स नंबर 203 नालासोपारा, गुलाम मंडी के माध्यम से दिखाया है। आतंकवाद का संकट गहरा रहा है,अफगानिस्तान की समस्या ज्वलंत है। उसे 'सूखते चिनार' जैसी रचना व्यक्त कर रही है। शिक्षा और संस्कृति जगत में संकट गहरा रहे है। राजनीति और बाजारवाद की समस्या को 'कल्चर वल्चर', 'दौड़' जैसी रचना व्यक्त करती है। आज जब आर्थिक उपलब्धि प्रमुख हो गई है, कैरियर और 'स्व' केन्द्रीयता बढ़ गई है, तो घर-परिवार में बुढ़े और बच्चे इस नई सभ्यता में अकेले पड़ गए हैं। जहाँ 'आपका बंटी' में माता-पिता के तलाक के कारण बच्चे के मनोविज्ञान को प्रभावित होता दिखाया है, आज तलाक की जरूरत नहीं बल्कि परिवार में रहते हुए बच्चा अजनबी बन नशे का आदी हो रहा है, जिसे 'पत्ताखोर' जैसी रचना रख रही है। वृद्ध के प्रति परिवार में चिंता मिट गई है, मृदुला गर्ग की कहानी 'बेंच पर बूढ़े' जैसी रचना में समय कई इस विसंगति का चित्रण हैं। विस्थापन, पश्चिमी सभ्यता, कारपोरेट जगत के गुलाम हो रहे हैं। 'लोड शेडिंग','लेडी बॉस', 'एक ब्रेक के बाद' में इसे विषय बनाया गया है। मृणाल पांडे की 'उमेश जी' कहानी कर्मसंस्थान में शारीरिक शोषण की शिकार स्त्री को दिखा रहा है और वह यह सोचती कि जब वह इस नौकरी से निकलकर अच्छी नौकरी में जाएगी, तो यहाँ की बदसलूकी पर उपन्यास लिखेगी जो बेस्ट सेलर बनेगा और 14 भाषा में निकालकर खुद के दस्तखत करके अपने बॉस को देगी, जो उसके प्रतिरोध को ही दिखाता है। ऑनलाइन वर्चुअल रिश्ते आज वास्तविक रिश्तो की जगह ले चुके हैं। 'फेसबुक', 'सच्ची झूठी गाथा' में इस लाचारी को व्यक्त कर समय की विसंगतियों के खिलाफ प्रतिरोध दर्ज हुआ है। इस प्रकार परंपरा के आलोक में स्त्री-प्रतिरोध की प्रगति पर विचार करें, तो आज का स्त्री-प्रतिरोध समसामयिक संदर्भों में स्त्री-विमर्श से आगे सभ्यता विमर्श को रचते हुए मुकम्मल स्वरूप ग्रहण कर रहा है।

निष्कर्षत: हम देखते हैं कि प्रतिरोध में समाहित विभिन्न तत्व और समय-समय पर बदलती विचारधाराओं के प्रभाव से स्त्री-प्रतिरोध का स्वरूप भी बदलता रहा। थेरी गाथा से लेकर कबीर, तुलसी, बिहारी, मीरा की परंपरा में स्त्री-प्रतिरोध का जो स्वरूप रहा, वह स्त्री के प्रति रूढ़ सामाजिक विसंगतियों के साथ भौतिकतावाद के भी विरोध में रहा। नवजागरण स्त्री के प्रति सुधारात्मक रहा, तो पश्चिम में सिमोन और भारतीय परिप्रेक्ष्य में महादेवी की वैचारिकी ने आगे चलकर स्त्रीवाद को प्रभावित किया और कथा-साहित्य में भी वर्जित क्षेत्र में स्त्रियों की अभिव्यक्ति मुखर हो गई। साथ ही इनके प्रभाव से आई विभिन्न विसंगतियों पर भी दृष्टि मजबूत की गई। यद्यपि 60-70 के दशक का हिन्दी कथा साहित्य सिमोन और उस समय पश्चिम में चल रहे नारीवाद की दूसरी लहर से अधिक प्रभावित दिखा और इसी का परिणाम रहा कि स्त्री-प्रतिरोध पितृसता के विरोध की जगह 'नैतिकता के निजीकरण' से दूषित होकर तमाम विसंगतियों से ही घिरने लगा। स्त्री की अभिव्यक्ति के नाम पर विसंगतियों को भी रचनाकारों द्वारा इतना प्रश्य दिया गया कि पुरुष की चिंता काफी पीछे छूट गई, जबकि स्त्री-पुरुष से मिलकर ही परिवार और समाज की इकाई निर्मित है। इसमें संतुलन के लिए दोनों को केंद्र में रखना जरूरी है। यही चिंता महादेवी ने व्यक्त की थी। परिणामत: स्त्री-प्रतिरोध एकपक्षीय होकर सिमट गया और इसी की पहचान पश्चिम में नारीवाद की तीसरी लहर तक आते-आते स्त्रीवादियों ने की और उग्र नारीवाद का विरोध किया। 21वीं सदी की रचनाओं में इस दृष्टि का दर्शन हुआ, जहां स्त्री-प्रतिरोध की विद्रूपताओं के साथ महादेवी का पुरुष संस्कार कथा-साहित्य में विषय बनाया गया। इस प्रकार स्त्री-प्रतिरोध को पक्ष विशेष की जगह समग्रता में देखना मेरा अभीष्ट है। स्त्री-प्रतिरोध अपने तक सीमित दायरे में कभी नहीं बंधा रहा है, बल्कि समाज, राष्ट्र व विश्व के मुद्दों को भी लेखिकाओं ने विषय बनाया है। लेखकों ने भी स्त्री-मुद्दों को अपने लेखन का विषय समय-समय पर बनाया है। इन सबके आलोक में 21वीं सदी का कथा-साहित्य किस प्रकार प्रतिरोध को प्रतिशोध से आगे की दिशा दे रहा है, इसका विश्लेषण मेरे शोध कार्य की सामाजिक, सांस्कृतिक उपलब्धि है।

संदर्भ-ग्रंथ

अग्रवाल, रोहिणी. "स्त्री विमर्श : पितृसतात्मक व्यवस्था की संरचनात्मक पड़ताल" *साहित्य की जमीन और स्त्री मन के उच्छवास*. वाणी प्रकाशन, 2014. पृष्ठ 11-29.

अंजु, डॉ. "साठोत्तरी महिला कथाकारों की कहानियों में स्त्री-विमर्श" अपनी माटी, वर्ष -2, अंक-16, अक्टूबर-दिसंबर 2014.

अनामिका, *तिनका -तिनके पास*. वाणी प्रकाशन, 2008.

---, "मार्क्सवादी/समाजवादी स्त्रीवाद" *स्वाधीनता का स्त्री पक्ष*.राजकमल प्रकाशन, 2012. पृष्ठ 176-178.

---, *मौसम बदलने की आहट*. सामयिक प्रकाशन, 2012.

---, *स्त्री विमर्श की उत्तर गाथा*. सामयिक प्रकाशन, 2012.

इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका, वॉल्यूम 22.2007.

कटारिया, कमलेश. *नारी जीवन वैदिक काल से आज तक*. जयपुर यूनिक ट्रेडर्स, 2003.

कपूर, मस्तराम. *अस्तित्ववाद से गांधीवाद तक*. वाणी प्रकाशन, 2008.

कात्यायनी. "प्रतिरोध का साहित्य" समालोचन.12 मार्च 2008. https://samalochan.blogspot.com/2018/03/blog-post_12.html

---, *प्रेम,परंपरा और विद्रोह*. परिकल्पना प्रकाशन, 2008.

किशोर, कौशल. *प्रतिरोध की संस्कृति*. परिकल्पना प्रकाशन, 2018.

कुमार, आशुतोष, "प्रेम का स्त्री अर्थ" संपादकीय, आशय पत्रिका, संपादक कुमार. आशुतोष, वर्ष-4, अंक-5-6 (संयुक्तांक), सितम्बर 2005-2006. पृष्ठ 1-12.

कुमार, डॉ प्रवीण. "प्रतिरोध की संस्कृति की भाषिक बनावट" Creative Space: International Journal, Vol 3, Issue 06, नंवबर-दिसंबर 2015.पृष्ठ 191-200.

कुमार, जैनेन्द्र. *त्यागपत्र*. द्वितीय संस्करण, भारतीय ज्ञानपीठ, 2017.

कुमार, आर मनोज. और प्रेमचंद एम. कोराली, संपादक. *भारतीय दलित साहित्य,* दर्पण प्रकाशन, 2000.

कुमार, सुरेश, और रामनाथ सहाई. *ऑक्सफोर्ड हिन्दी-हिन्दी इंग्लिश डिक्शनेरी*. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2014.

कोलाख्यान, प्रफुल्ल. *दलित राजनीति की समस्याएं.* archive. Org

मिश्र, गिरीश. "भूमंडलीकरण का वैचारिक आधार", परस्पर पत्रिका, अंक- 12, फरवरी -2010. पृष्ठ 31-34.

गुप्ता, कमलेश कुमार. *महिला सशक्तिकरण*. बुक एनक्लेव जयपुर, 2007.

गुप्त, गणपतिचंद्र. "साहित्य और व्यक्तित्व". *भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र*. लोकभारती प्रकाशन, 2018. पृष्ठ 11-17

गुप्ता, रजनी. *ये आम रास्ता नहीं: राजनीति मे चक्रव्यूह में स्त्री*. वाणी प्रकाशन, 2013.

गर्ग, मृदुला. *किस्सा आज का. संगति-विसंगति (संपूर्ण कहानियां, दो खंड)*. नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 2004.

गर्ग, मृदुला. "देश से ऊपर है स्त्री की प्रज्ञा", स्त्री को स्त्री रहने दो, बस!, सम्पादन डॉ दीपिका उपपध्याय, भारत पुस्तक भंडार, संस्करण 2014, पृष्ठ 49-58

---, "देसी फेमिनिस्ट" *चुकते नहीं सवाल*. सामयिक प्रकाशन, 2007. पृष्ठ 73-80.

---, "प्रेम जितना सहज है,उतना कठिन", आशय पत्रिका, संपादक कुमार. आशुतोष, वर्ष-4, अंक-5-6 (संयुक्तांक), सितम्बर 2005-2006. पृष्ठ 40-47.

चतुर्वेदी, जगदीश्वर *स्त्रीवादी साहित्य विमर्श*. मेधा पब्लिशिंग हाउस, 2018.

चौबे, कृपाशंकर. *पत्रकारिता के उत्तर आधुनिक चरण*. वाणी प्रकाशन, 2003.

JASS. "नारीवादी आंदोलन के कार्यकर्ताओं के लिए शब्दकोश" अनुवाद CREA. द्वित्तीय संस्करण 2013.

जोशी, प्रज्ञा. "देह (व्यापार) और प्रेम : कुछ नोट्स" आशय पत्रिका, संपादक कुमार.आशुतोष, वर्ष-4,अंक-5-6 (संयुक्तांक),सितम्बर 2005-2006. पृष्ठ 186-191.

जैमिनी, अंजु दुवा. "गर्भ में आने से पूर्व" *मोर्चे पर स्त्री*. कल्याणी शिक्षा परिषद, 2008. पृष्ठ 13-20.

डॉ अमरकांत, "आधुनितकता और उत्तर आधुनिकता" *हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली*. द्वितीय संस्करण,राजकमल प्रकाशन,2012. पृष्ठ 61-62

----,"अस्तित्ववाद" *हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली*. द्वितीय संस्करण, राजकमल प्रकाशन, 2012. पृष्ठ 48-50

---, "पूंजीवाद " *हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली*. द्वितीय संस्करण, राजकमल प्रकाशन, 2012. पृष्ठ 220-21

डॉक्टर शंभुनाथ. *धूपछाँही दिनकर*. भारतीय ज्ञानपीठ, 2008.

तिवारी, नित्यानंद. *आधुनिक साहित्य और इतिहास बोध*. वाणी प्रकाशन, 2009.

दास, कबीर. कबीर ग्रंथावली, सम्पादन दास, श्यामसुंदर, इंडियन प्रेस लिमिटेड प्रयाग,

देशमुख, डॉ रमेश. "साहित्य और जीवन मूल्यों का पारस्परिक संबंध" *आठवें दशक की हिंदी कहानी में जीवन मूल्य*. विद्या प्रकाशन, 2016. पृष्ठ 9-36

नेगी, स्नेह लता. "थेरिगाथाओं में अभिव्यक्त मुक्तिकामी स्वर" स्त्रीकाल, 15 अप्रेल 2017. http://streekaal.com.

पवार, डॉ तारु एस. "समकालीन हिन्दी कहानियों में स्त्री-प्रतिरोध'' साहित्य सेतु. Year 7 Issue 3 May-June 2019.

पाठक, प्रोफ़ेसर रामचंद्र. *आदर्श हिंदी शब्दकोश*. भार्गव बुक डिपो, 2011.

पाठक, सुप्रिया. "स्त्रीवाद : सैद्धांतिक विमर्श" *भारतीय स्त्रियों का अहिंसक प्रतिरोध*. प्राकृत भारती अकादमी जयपुर, 2020. पृष्ठ 9-27.

---, "स्त्रीवाद की लहरे : प्रथम, द्वितीय,तृतीय" *भारतीय स्त्रियों का अहिंसक प्रतिरोध*. प्राकृत भारती अकादमी जयपुर, 2020. पृष्ठ 28-40.

---, "भारतीय स्त्री आंदोलनों की विकास-यात्रा" *भारतीय स्त्रियों का अहिंसक प्रतिरोध*. प्राकृत भारती अकादमी जयपुर, 2020. पृष्ठ 41-78.

पाठक, ज्ञान. "नैतिकता के नए तकाजे".*नैतिकता के नए सवाल*. संपादक - राजकिशोर. वाणी प्रकाशन, 2009. पृष्ठ 102-107

पांडे, गोविंद्र चंद्र. *मूल्य मीमांसा*. राका प्रकाशन, 2005.

पालीवाल, कृष्णदत्त. "उत्तर आधुनिकता का अर्थ संदर्भ" उत्तर आधुनिकतावाद और दलित साहित्य. वाणी प्रकाशन, 2008. पृष्ठ 13-35.

---, उत्तर आधुनिकतावाद और दलित साहित्य. वाणी प्रकाशन, 2008.

प्रकाश, सूरज. *लहरों के बाँसुरी*. प्रतिलिपि.कॉम. *2017* https://hindi.pratilipi.com/

प्रणय, कृष्ण. "द्विखंडित आत्म: द्विखंडित प्रेम" आशय पत्रिका, संपादक कुमार. आशुतोष, वर्ष-4, अंक-5-6 (संयुक्तांक), सितम्बर 2005-2006. पृष्ठ 76-90.

पांडेय, डॉ दर्शन. नारी अस्मिता की परख. संजय प्रकाशन, 2004.

पांडेय, मैनेजर. "संस्कृति का समाजशास्त्र." *भारतीय समाज में प्रतिरोध की परंपरा*. द्वितीय संस्करण, वाणी प्रकाशन, 2020, पृष्ठ 9-25.

वैद, कृष्ण बलदेव. *एक नौकरानी की डायरी*, राजपाल प्रकाशन, 2009.

---, "शृंखला की कड़ियाँ : मुक्ति की राहें." *भारतीय समाज में प्रतिरोध की परंपरा*. द्वितीय संस्करण, वाणी प्रकाशन, 2020, पृष्ठ 122 -136.

---, *भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य*. वाणी प्रकाशन दिल्ली, 1992

---, "जिस समाज में स्त्री की अस्मिता नहीं, वहाँ प्रेम कैसे होगा?" आशय पत्रिका, संपादक कुमार. आशुतोष, वर्ष-4, अंक-5-6 (संयुक्तांक), सितम्बर 2005-2006. पृष्ठ 20-24.

पांडे, मृणाल. "घर, परिवार और स्त्री" *देह की राजनीति से देश की राजनीति तक*. तृतीय संस्करण, राधाकृष्ण, 2011.पृष्ठ 87-91.

प्रतिरोधी आंदोलन, https://www.hmoob.in/wiki/Resistance_movement

प्रेमचंद, मुंशी. *सेवासदन*, प्रभात प्रकाशन दिल्ली, 2016

प्रेमिला, के0 पी0. "स्त्री-अस्मिता और पुरुष-विनिर्माण", *स्त्री : यौनिकता बनाम आध्यात्मिकता*. राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 2010. पृष्ठ 32-42.

Freedman, Estelle B. *No Turning Back, The History of Feminism and the future of women.* Ballantine Books. New York ,2007 https://literariness.org/

बाई, मीरा. मीरा मुक्तावली, संकलन कर्ता स्वामी, नरोत्तम. राजस्थानी ग्रंथाकर जोधपुर, संस्करण 2022.

---, मीरा वृहदपदावली, संकलनकर्ता राजस्थान पुरातन ग्रंथमाला, प्रकाशन- राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, 1998.

बिसारिया, पुनीत. *वेदबुक से फेसबुक तक*. अटलांटिक पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लि., 2015

बाहरी, डॉ हरदेव. *राजपाल हिंदी शब्दकोश हिन्दी-हिन्दी डिक्शनेरी*. राजपाल प्रकाशन, 2012.

शर्मा, डॉ हरिचरण. *बिहारी सतसई*. श्याम प्रकाशन,2007.

भण्डारी, मन्नू. "*ऊंचाई", एक प्लेट सैलाब*. राधाकृष्ण प्रकाशन, 2001.पृष्ठ -

यादव, राजेन्द्र. "अग्निपरीक्षाएं" आदमी की निगाह में औरत, पहला संस्करण, राजकमल प्रकाशन, 2006. पृष्ठ 40-45

मिश्र, सत्यदेव. *पाश्चात्य काव्यशास्त्र आधुनातन संदर्भ*. लोकभारती प्रकाशन, 2008.

मेहरोत्रा, सुरभि टंडन. "घरेलू कामगारों का महत्व" *घरेलू कामगार: परिस्थितियाँ, हक और जिम्मेदारियाँ*. अनुवाद श्रीवास्तव, सीमा, जागोरी, 2010. पृष्ठ- 52-54.

राजकिशोर. "नैतिकता के द्वन्द्व" *नैतिकता के नए सवाल*. वाणी प्रकाशन, 2009, पृष्ठ 70-80.

राय, जयश्री. "एक रात" *कामुकता का उत्सव : प्रणय,वासना और आनंद की कहानी,* संपादक रंगनाथन,जयंती, वाणी प्रकाशन, 2020. पृष्ठ 49-63.

वर्मा, अचार्य रामचंद्र. *लोकभारती प्रमाणिक हिंदी कोश*. लोकभारती प्रकाशन, 2014.

वर्मा, महादेवी. "घर और बाहर" *शृंखला की कड़ियाँ*. लोकभारती प्रकाशन इलाहबाद, 2008. पृष्ठ 48-63.

विश्वनाथन, टी. के. "संसद भवन के केन्द्रीय कक्ष में 3 अक्टूबर 2012 को महिला संवेदी सांसदों की महिला अध्यक्षों की सातवीं बैठक के उदघाटन समारोह के अवसर पर दिए गए भाषण" संसदीय पत्रिका, खंड59, अंक 1, मार्च 2013. पृष्ठ 1-9

शंकर, रवि "सभ्यतागत संघर्ष और संचार माध्यम, सभ्यता संवाद पत्रिका, वर्ष 2, अंक 2, अप्रैल-मई-जून 2020 पृष्ठ 8-16

शर्मा, एस पी और शर्मा एस.एन. *Standard illustrated advanced Dictionary मानक हिंदी कोश अंग्रेजी शब्दकोश*. अशोक प्रकाशन, 2002.

सहाय, आर एन, और एस के वर्मा. *ऑक्सफोर्ड स्टूडेंट्स इंग्लिश हिन्दी डिक्शनेरी*. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2014.

साव, अजय कुमार. "प्रतिरोध के बुनियादी हस्ताक्षर" *वसंत के हरकारे–कवि शैलेंद्र चौहान*, संपादन-कुशवाह. सुरेन्द्र सिंह, मोनिका प्रकाशन, 2021. पृष्ठ 45-54.

---, डॉ अजय कुमार. प्रतिरोध के प्रतिमान घरेलू महिला कामगार, विमर्श का अछूता अध्याय, प्रथम संस्करण शब्द. डॉट इन, 2023. पृष्ठ 6-27

सक्सेना, प्रगति. "पूर्वजों ने भी उठाई थी साहित्य में प्रतिरोध की आवाज" समतामार्ग, 26 दिसंबर 2021. https://samtamarg.in/2021/12/26/ancestors-also-raised-the-voice-of-resistance-in-literature/

सिंह, अनुराधा. *ल्हासा का लहू, निर्वासित तिब्बती कविता का प्रतिरोध*. वाणी प्रकाशन, 2021.

सिंह, अंजना. "राजेन्द्र यादव के कथा-साहित्य में नारी -दर्शन" international journal of Hindi Research, Issn 2455-2232, Vol 6, Issue 6, 2020 www.hindijournal.com

सिंह, किरण. *"यीशू की कीलें"*. यीशू की कीलें. आधार प्रकाशन, 2016. पृष्ठ-109-125.

सिंह, नामवर. *बात बात में बात*, संपादन- समीक्षा ठाकुर. वाणी प्रकाशन, 2013

सिंह, डॉ पुष्पलता. *समकालीन कहानी: युगबोध का संदर्भ*. नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली,1977

सिंह, बच्चन. *बिहारी का नया मूल्यांकन*. लोकभारती प्रकाशन, 1999.

सिंह, डॉ सुधा. "स्त्रीवाद की महत्वपूर्ण अवधारणाएं." *ज्ञान का स्त्रीवादी पाठ. प्रथम संस्करण.ग्रंथ शिल्पी,2008, पृष्ठ*- 93-118.

---, "स्त्री पराधीनता." *ज्ञान का स्त्रीवादी पाठ, प्रथम संस्करण. ग्रंथ शिल्पी, 2008, पृष्ठ*- 19-47.

---, "भाषा,कामुकता और इच्छा के प्रश्न." *ज्ञान का स्त्रीवादी पाठ, प्रथम संस्करण. ग्रंथ शिल्पी ,2008. पृष्ठ*-118-138.

---,"भाषा का कामुक खेल और स्त्री भाषा" *ज्ञान का स्त्रीवादी पाठ, प्रथम संस्करण. ग्रंथ शिल्पी, 2008, पृष्ठ-139* - 154.

---, "सांप्रदायिकता, फासीवाद, कथा साहित्य और स्त्रीभाषा." *ज्ञान का स्त्रीवादी पाठ, प्रथम संस्करण. ग्रंथ शिल्पी,2008, पृष्ठ*- 245-253.

सिंह, पुष्पपाल. *भूमंडलीकरण और हिन्दी उपन्यास*, पहला संस्करण, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2012.

सेन, अमर्त्य. "मनुष्य की पहचान" *हिंसा और अस्मिता का संकट*. अनुवाद-कुलश्रेष्ठ, महेंद्र. राजपाल एंड संस, 2011. पृष्ठ-19-34

हिन्दी साहित्य का इतिहास भाग दो, अस्मिता विमर्श: स्त्री, दलित, आदिवासी, ओडिसा स्टेट ओपन यूनिवर्सिटी. egyanagar.osou.ac.in was first indexed by Google in June 2017

हॉलोवे, जॉन. "राज्य के पार : शुरू में थी चीख,लेकिन उसके बाद?" *चीख: आज की क्रांतियों का अर्थ*. अनुवाद-बहादुर, लाल बहादुर. संवाद प्रकाशन, 2009. पृष्ठ19-24.

---, "सत्ता के पार?" *चीख: आज की क्रांतियों का अर्थ*. अनुवाद- बहादुर, लाल. संवाद प्रकाशन, 2009. पृष्ठ -25-43.

---, "वस्तु पूजा,त्रासद असमंजस : क्रांति की जरूरी असंभाव्यता." *चीख: आज की क्रांतियों का अर्थ*. अनुवाद-बहादुर, लाल. संवाद प्रकाशन, 2009. पृष्ठ 44-68.

---, "प्रति-शक्ति की भौतिक वास्तविकता" *चीख: आज की क्रांतियों का अर्थ*. अनुवाद- बहादुर, लाल. संवाद प्रकाशन, 2009. पृष्ठ-127-142.

त्रिपाठी, रमेश कुमार. *समकालीन हिन्दी पत्रकारिता में नारी संदर्भ*. नमन प्रकाशन, 2007.

दूसरा अध्याय
प्रेम-काम का द्वंद्वमूलक प्रतिरोध

- **भूमिका**

2.1. प्रेम की परिकल्पना

2.2. काम का आचरणमूलक अवधारणा

2.3. प्रेम-काम का स्त्री अर्थ

2.4. प्रेम-काम का पुरुष अर्थ

2.5. प्रेम-काम संबंध में फैंटेसी की भूमिका

2. 5.1. प्रेम-काम की फैंटेसी : स्त्री दृष्टि में

2.5.2. प्रेम-काम की फैंटेसी : पुरुष दृष्टि में

2.6. प्रेम-काम संबंध में परिवेश की भूमिका

2.7. प्रेम-काम संदर्भ में नारीवादी दृष्टिकोण

2.8. दांपत्य में प्रेम-काम का प्रतिरोधी स्वर

2.8.1. दांपत्य की अवधारणा

2.8.2. दांपत्य में पुरुष के प्रति स्त्री दृष्टि (प्रेम-काम के मामले में)

2.8.3. दांपत्य में स्त्री के प्रति पुरुष दृष्टि (प्रेम-काम के मामले में)

2.9. विवाहेतर संबंध

2.9.1. प्रेम या मन के अभाव में विवाहेतर संबंध का प्रस्थान

2.9.2. काम रहित प्रेम, विवाहेतर का प्रस्थान

2.9.3. प्रतिशोध प्रेरित विवाहेतर संबंध

2.9.4. लाभ प्रेरित व समझौता प्रेरित विवाहेतर संबंध

2.9.5. नए के प्रति आकर्षण व सभ्यता के संकट से उत्पन्न विवाहेतर संबंध

2.10. सहजीवन (लिव-इन रिलेशन) और प्रतिरोध

2.10.1. लिव-इन रिलेशन को लेकर कानून

2.10.2 कथा-साहित्य में लिव-इन की परंपरा

2.10.3. लिव-इन संबंध की ओर बढ़ने के कारण

2.10.3.1 विवाह संस्थान की त्रुटियों और निरर्थकता के प्रतिरोध में लिव-इन

2.10.3.2 नए के प्रति आकर्षण और लिव-इन

2.10.3.3. महानगरों में आर्थिक बोझ कम करने के लिए लिव-इन

2.10. 4 लिव-इन संबंध के प्रति समाज का नजरिया

2.10.5. प्रेम-काम के लिव-इन मामले में स्त्री प्रतिरोध

2.11. जिगोलो : स्त्री प्रतिरोध का नया संदर्भ

2.11.1. पुरुष वेश्यावृत्ति की विडंबना और प्रतिरोध

2.11.2 पुरुष वेश्यावृत्ति और स्त्री-प्रतिरोध

2.12. आत्मरति (सेल्फ सेक्स) और स्त्री-प्रतिरोध

- **निष्कर्ष**

दूसरा अध्याय
प्रेम-काम का द्वंद्वमूलक प्रतिरोध

स्त्री-पुरुष का संबंध प्रेम और काम के मामले में जितना जटिल बताया जाता है, उससे कहीं अधिक संवेदनशील है। इसके पीछे वजह यह है कि पुरुष की प्रेम-काम संबंधी अपेक्षाएँ स्त्री की अपेक्षाओं के विपरीत ही नहीं या उससे अलग ही नहीं, बल्कि विरोधी भी महसूस होती है। इसके पीछे मूल वजह पुरुष और स्त्री के मन की बनने के पीछे की स्थितियाँ और इन स्थितियों को बनाने के पीछे परिवेश व समाज के साथ-साथ तरह-तरह के ज्ञान व मनोरंजन के स्रोत हैं। देखा यह जाता है कि एक स्त्री प्रेम और काम के क्रम में महत्व प्रेम को देना चाहती है, वहीं दूसरी ओर पुरुष प्रेम की जरूरत तक को महसूस करता हुआ नहीं दिखता है। यह समझ लिया जाता है कि पुरुष काम तक ही टिका रह जाता है और यहीं एक पुरुष चाहे वह प्रेमी हो, पति हो, साथी हो, सहकर्मी हो, चाहे किसी भी संबंध में हो, कितना ही गुणवान या महान क्यों न हो जाए, स्त्री की नजर में गिरा हुआ या चरित्र से विघटित समझा और महसूस कराया जा सकता है। कुल मिलाकर यह बात सामने आती है कि एक पुरुष कितना ही अच्छा हो, अपनी कामवृत्ति के कारण स्त्री की नजर में किसी भी क्षण वह छोटा ही नहीं, बल्कि त्याज्य महसूस कराया जा सकता है, आलोचना का पात्र माना जाता है और एक सिरे से उसके अस्तित्व को नकारा जाता है, जबकि विचारणीय है कि पुरुष की काम संबंधी सोच या अपेक्षाएँ बनती कहाँ से हैं एवं कैसे है? जहाँ एक ओर स्त्री का मन प्रेम-काम के संदर्भ में पुरुष को लेकर रूढ़ हो चुका है कि उसे अपने एक परंपरागत, परिचित तरीके वाला पुरुष चाहिए, वहीं पुरुष का भी मन कहीं ना कहीं रूढ़ हो चुका है कि काम के मामले में उपलब्ध एवं प्रयोग में लाए गए बाजारू ज्ञान एवं मनोरंजन के साधन में दिख रही स्त्री देह को यदि प्राप्त नहीं किया, तो उसका जीवन व्यर्थ हो गया। इस तरह स्त्री-पुरुष की प्रेम-काम संबंधी अपेक्षाएं विरोधी ही नहीं द्वंद्वमूलक बनी रहती हैं। यह द्वन्द्व सघन होता आया है, क्योंकि स्त्री-पुरुष दोनों अवचेतन में परस्पर छवि को लेकर व्यवहार करते हैं। एक ओर परंपरा और वर्तमान में भी स्त्री देह के प्रति पुरुष के आचरण को देखकर पुरुष विरोधी फैंटसी काम करती है, तो दूसरी ओर संचार माध्यमों ने मनोरंजन के तमाम साधनों में इस्तेमाल की गई स्त्री-देह अपनी समूची प्रक्रिया में पुरुष के अवचेतन में फैन्टेसी निर्मित कर चुकी होती है। इसी कारण प्रतिरोध का स्वर निर्मित होता है।

कथा-साहित्य में अधिकांश ने अभी तक नारीवाद के तहत प्रेम-काम के मामले में जो प्रतिरोध रचा गया है, वह पुरुष के विरोध में ही है। यह स्थिति स्त्री एवं पुरुष दोनों के यहाँ परंपरा के रूप में दिखती है, लेकिन 21वीं शताब्दी में आकर इस परंपरा की प्रगति नारीवादी प्रतिरोध को समग्रता प्रदान करने की दिशा में है। अब पुरुष के मन को उसकी स्वाभाविकता में समझने की भी कोशिश हुई है, तो साथ ही स्त्री मन के रूढ़ हो जाने को

भी विषय बनाने की कोशिश की गई है। प्रेम और काम के संदर्भ में स्त्री और पुरुष के मन के बनने की प्रक्रिया के पीछे काम कर रही अनजान-सी 'फैन्टेसी' केंद्रीय बिंदु है। ऐसी फैन्टेसी की तलाश करना शोध का मुख्य चरण है, जो प्रतिरोध को प्रतिशोध से आगे बोध सहित दिशा देने के लिए जरूरी है। बुरे को बुरा कहते-कहते हम उसे अच्छा नहीं बना सकते। स्त्री-पुरुष के मामले में तो और भी जटिल संदर्भ बनते है। पुरुष के समान होने की चेष्ठा में स्त्री भी पुरुष जैसे उन्हीं के द्वारा घोषित तथाकथित बुरे आचरण को अपनाने में कहीं भी संकोच नहीं करती, बल्कि गर्व के भाव से भरी रहती है। यहीं आकर हम विमर्श के प्रेम-काम संबंध की 21वीं सदी में द्वंद्वमूलक प्रगति देख पाते हैं। इसे स्वयं लेखिकाओं ने भी विषय बनाया है। प्रेम-काम की ऐसी द्वन्द्वमूलक प्रगति प्रतिरोध के स्त्री-स्वर को विचारधारा से आगे एक स्वाभाविक और बेहद जरूरी आयाम उपलब्ध कराती है।

2. 1. प्रेम की परिकल्पना –

प्रेम एक नैसर्गिक जरूरत है। यह प्राकृतिक क्रिया-व्यापार है, लेकिन प्राकृतिक होने के बावजूद स्त्री-पुरुष के मामले में उतना ही ऐकांतिक और गोपनीय भी। स्त्री-पुरुष के संबंध में प्रेम जितना मानसिक है, उतना ही शारीरिक भी। प्रेम के संबंध में मृदुला गर्ग लिखती हैं – "प्रेम का मूल आधार है मनुष्य की कामवृत्ति।" (गर्ग 42) अर्थात् कामवृत्ति के बिना प्रेम अपने अस्तित्व को ग्रहण नहीं कर सकता। देह और मन दोनों के सह-अस्तित्व में ही प्रेम का पूर्ण रूप से अनुभव किया जा सकता है, लेकिन स्त्री मन को वरीयता देती है। इसके पीछे पूरा का पूरा सामाजिक तंत्र और प्रचलित नैतिकता से निर्मित रूढ़ मन काम करता है। अर्चना वर्मा लिखती हैं – "देह/मन विरोध मूलक, अर्थ-युग्म की तरह प्रयुक्त होता रहा है। इसमें एक पक्ष को दूसरे की कीमत पर मूल्यवान मान लिया जाता है।" (वर्मा 178) यहाँ देह और मन के मामले में प्रेम-काम के मुख्य दो आयाम उल्लेखनीय है, पहला 'प्रेम सहित काम' और दूसरा 'काम रहित प्रेम'। स्त्री इन आयामों में 'प्रेम सहित काम' की कामना करती हुई अंतत: 'काम रहित प्रेम' के पक्ष में खड़ी हो जाती है। मृदुला गर्ग की जो परिभाषा रही है कि 'प्रेम का मूल आधार है कामवृत्ति' वह कहीं न कहीं स्त्री द्वारा प्रचलन में नकार दी गई है। ऐसी स्थिति में जिस कामवृत्ति को मृदुला गर्ग ने प्रेम का आधार बताया, उसी कामवृत्ति को आधार बनाकर स्त्री-प्रतिरोध का स्वर भी निर्मित किया गया है। प्रेम-संबंधी बन रही भावुक मानसिकता को समझने के लिए आशुतोष कुमार का मंतव्य उल्लेखनीय है – "आवेगपूर्ण भावुकता, आत्मकरुणा, सरलता, समर्पणशीलता, एकपक्षीय निष्ठा, दृष्टिहीन आस्था, ऐसे तमाम 'स्त्री सुलभ' गुण-दोष प्रेम नहीं है।" (कुमार 1) स्पष्ट है कि नैतिकता, मूल्य, परंपरा और संस्कृति के नाम पर स्त्री प्रेम के मामले में इन गुणों को ढोल की तरह पीटते आई है, उसे गुण-दोष की श्रेणी में देखा जा सकता है, पर उसे प्रेम नहीं मान लिया जा सकता है। ये गुण-दोष व्यक्ति स्वाधीनता में बाधक हैं, जबकि प्रेम का जन्म ही व्यक्ति स्वाधीनता का प्रस्थान बिंदु है। इस दिशा में मृदुला गर्ग लिखती है – "अस्तित्ववादी दर्शन की यह उक्ति है कि व्यक्तित्व की जिस स्वाधीनता से प्रेम के आकर्षण और भावावेग का जन्म होता है, प्रेम अपने अंतिम परिणति

में उसकी ही बलि चाहता है। इस तरह यह एक अंतर्विरोधी संवेदना है, प्रेम की बजाय मोह पर लागू होती है|" (गर्ग 167) आशुतोष कुमार प्रेम के नाम पर चलने वाली जिस आवेगपूर्ण भावुकता, समर्पणशीलता, आत्मकरुणा को स्त्री सुलभ गुणदोष के रूप में देखते हैं, उन्हें ही मृदुला गर्ग मोह के रूप में देखती हैं। स्त्री जिन गुणों को प्रेम का पर्याय समझती है, उनके साथ काम की कैसी संगति है, इसे समझने के बाद ही प्रेम-काम के सह-अस्तित्वमूलक आयामों की पहचान हो सकती है। मृदुला गर्ग ने लिखा है – "मैं मानती हूं, प्रेम अपने मूल में प्लेटोनिक (अशरीरी) होता है। यानी उसकी परम गति प्रेमी से एकात्म होने में है, एक शरीर होने में नहीं।" (गर्ग 7) यहाँ विचारणीय पहलू यह है कि 'अशरीरी' कुछ तभी हो सकता है, जब वह 'शरीरी' हो अर्थात् प्रेम प्रथमत: शारीरिक प्रक्रिया से गुजरता है और फिर अशरीरी होता है। प्रेमी से एकात्म होने की स्थिति या अशरीरी प्रेम की प्राप्ति काम की तृप्ति के बाद की स्थिति है। जब तक शारीरिक तृप्ति नहीं हो, तब तक अगर कुछ अशरीरी होता है, तो वह भी एक भावुक अपेक्षा मात्र है। इसे भी हम प्रेम नहीं कह सकते। स्त्री सामान्यत: एकात्म भाव को ही प्रेम मानती है इसलिए यहाँ अशरीरी विशेषण अत्यंत गंभीरता की मांग करता है। बिना काम की तृप्ति के हम प्रेम की प्राप्ति नहीं कर सकते है। काम रहित प्रेम की जो अपेक्षा स्त्री पालती है, वह मूर्खता है। सामाजिकता, नैतिकता के नाम पर स्वयं की कामेच्छा को दबाकर देह से पार की अपेक्षा अंतत: काम रहित प्रेम की रूढ़ सोच को ही मजबूत बनाती है। खुशवंत सिंह ने भी प्रेम के प्लेटोनिक स्वरूप के बारे में लिखा है – "प्लेटोनिक लव में तर्क को पूरा मान मिलता है और किसी तरह का आवेग नहीं रहता है।" (सिंह 134) मृदुला गर्ग ने कहा है प्रेम शरीर से अशरीरी हो जाता है, यहाँ खुशवंत सिंह ने उसे और भी स्पष्ट कर दिया है कि इसमें तर्क को पूरा मान मिलता है और साथ ही कि इसमें आवेग नहीं रह जाता। यहाँ कौन से तर्क को हम देखें? यह जो तर्क है दरअसल शरीरी से अशरीरी होने में न कि मूलत: अशरीरी होने में। मृदुला गर्ग ने मूल में जिसे प्लेटोनिक बताया है, उस 'लव' में तर्क को पूरी जगह देने की बात खुशवंत सिंह करते है। दूसरी ओर आवेग नहीं रह जाता, मतलब शरीर के प्रति अंतत: आवेग नहीं रह जाता अर्थात् कामवृत्ति को नैतिकता, सामाजिकता, मूल्य, परंपरा, संस्कृति के नाम पर दबाकर प्रेम की उपलब्धि नहीं हो सकती, बल्कि शरीर के आवेग से गुजरकर ही मन की तृप्ति प्रेम की सच्ची अनुभूति कराती है और तब जाकर यह आवेग खत्म हो जाता है। यही कारण है कि स्त्री-पुरुष संबंध को समग्रता में जानना हो, तो मृदुला गर्ग का यह मन्तव्य संजीवनी के समान है। मृदुला गर्ग लिखती हैं – "जीवन को समग्र और उदात्त रूप से जानने-पहचानने के लिए प्रेम से अधिक उपयुक्त माध्यम नहीं मिल सकता।" (गर्ग vi) जहां मृदुला गर्ग जीवन को जानने के लिए प्रेम को उपयुक्त माध्यम मानती है, वहीं आज भी समाज में प्रेम को यदि त्याज्य माना जाता है, तो उसके पीछे सक्रिय रह गई कामवृत्ति ही है। अत: कामवृति के प्रति सहज होकर ही प्रेम को संभव बनाया जा सकता है। आशय यह है कि कामवृत्ति से दूरी यानि प्रेम असंभव। अत: काम की सहज तृप्ति ही प्रेम की उपलब्धि है।

2.2. काम का आचरणमूलक अवधारणा –

प्रेम को समझने के लिए सेक्स की अवधारणा को समझना भी उतना ही जरूरी है। प्रेम का लक्ष्य मन तक पहुंचना है और इस मन तक पहुंचने की प्रक्रिया देह से गुजरकर ही संभव है, अर्थात् सेक्स द्वारा संभव है। मृदुला गर्ग स्वीकारती हैं – "सेक्स प्रेम की अभिव्यक्ति की राह का एक पड़ाव है, जहां से गुजरकर व्यक्ति वह अंतर्ज्ञान अर्जित कर सकता है, जिसके सामने तन की नगण्यता उसके प्रति उद्घाटित हो जाए और वह अशरीरी प्रेम की और बढ़े।" (गर्ग ix) यानी शरीर से गुजरकर मन तक का सफर प्रेम है और सेक्स इसका अहम पड़ाव। शारीरिक तृप्ति ही अशरीरी प्रेम का प्रस्थान है। इस अर्थ में सेक्स का सवाल नैतिकता या अनैतिकता का सवाल नहीं, बल्कि सामाजिकता का सवाल है, किंतु देखा यह गया कि सेक्स को नैतिकता और अनैतिकता से चश्मे से देखा जाता रहा है और स्वस्थ समाज में इस पर खुलकर चर्चा तक बाधित रही है, जबकि सेक्स और प्रेम में लक्ष्य-उपलक्ष्य का संबंध है। एक के अभाव में दूसरे की प्राप्ति असंभव है। जैनेंद्र कुमार लिखते हैं – **"प्रेम जहाँ होता दिखता है, लक्ष्य उसका उससे परे होता है।"**(जैनेन्द्र 32) आशय यह है कि प्रेम अगर लक्ष्य है, तो उसका उपलक्ष्य सेक्स है। प्रेम के लक्ष्य तक पहुंचने के लिए सेक्स नामक उपलक्ष्य से होकर गुजरना अनिवार्य है और जब उपलक्ष्य की प्राप्ति नहीं होती, तब लक्ष्य भी चूक जाता है। जैनेन्द्र लिखते हैं – "…जिसके उपलक्ष्य से हमारा स्वप्न हमारे निकट सचित्र होता है, जिसके उपलक्ष्य से मानो हम अपनी सीमा से मुक्त होते हैं, अपनी क्षुद्रता को विशालता में उठता अनुभव करते हैं, उसकी ओर बलात् हम प्रेम से खिंचे जाते है। जब उसमें लक्ष्य का आभास प्राप्त नहीं होता, बल्कि उलटे उसके कारण लक्ष्य दुर्लभ होता है, तब उपर्युक्त उपलक्ष्य विरक्ति का कारण होता है।" (जैनेन्द्र 32) आशय यह है कि यदि अशरीरी प्रेम लक्ष्य है, तो कामतृप्ति उसका उपलक्ष्य। यह जरूरी नहीं कि स्त्री-पुरुष दोनों के लक्ष्य-उपलक्ष्य एक समय पर एक ही समान हो और यहीं एक समय पर एक समान न होने के कारण प्रतिरोध जन्म लेता है। उपलक्ष्य यदि कामवृत्ति है, तो कामवृत्ति की तृप्ति ही लक्ष्य यानि प्रेम को संभव बना सकती है, अत: काम से परहेज नहीं होना चाहिए, लेकिन काम के विरुद्ध स्त्री स्वर सदा मजबूत होते रहा है। इस संदर्भ में मृदुला गर्ग, खुशवत सिंह एवं जैनेन्द्र के विचारों के विश्लेषण के बाद स्पष्ट होता है कि सेक्स के बिना प्रेम संभव ही नहीं है और यह भी एक सच है कि सेक्स में प्रेम यदि न हो, तो वो सेक्स भी निंदनीय है। जयश्री राय लिखती हैं – "प्रेम के अभाव में सेक्स पशु के स्तर पर उतर जाता है।" (राय 65) इस कथन का आशय यह है कि प्रेम रहित काम किसी भी सूरत में स्वीकार्य नहीं है, इसी कारण जब-जब पुरुष प्रेम रहित सेक्स में उतरता है, वह पशु के समान दिखता है। इसी प्रेम के अभाव में सेक्स करता हुआ पुरुष जयश्री राय के कथन में "आपाद-मस्तक लिंग" (राय 136) के समान दिखता है और इसलिए प्रेम के नाम पर जो कामाचार है उसके प्रति स्त्री का प्रतिरोधी स्वर पाते है। प्रेम के मामले में स्त्री प्राय: अतृप्त रहती है तो पुरुष काम के मामले में, जबकि सेक्स की तृप्ति अंतत: मानसिक तृप्ति और आनंद में परिणत होती है। प्रेम में घटित सेक्स

का लक्ष्य केवल शारीरिक तृप्ति नहीं, बल्कि मानसिक तृप्ति और आनंद से संबंधित है। इस दिशा में जगदीश्वर चतुर्वेदी का मन्तव्य उल्लेखनीय हैं – "कामसूत्र में सेक्स को नैतिक और मनोवैज्ञानिक के बजाय आनंद, सामाजिकता और विकास के परिप्रेक्ष्य में पेश किया गया है।"(चतुर्वेदी 54) एक ओर सेक्स को नैतिक या अनैतिक नहीं, बल्कि सभ्यता व स्वस्थ्य सामाजिकता के विकास का जरूरी आधार बताया गया है, तो दूसरी ओर जयश्री राय इसे आत्मिक प्रक्रिया और योग से जोड़कर देखती हैं, यह एकात्म की स्थिति है – "सेक्स में हम अपने को बांटते है, शेयर करते है स्वयं को पूरी तरह ईमानदारी से, उसके साथ जिसे हम प्रेम करते है.... उसके साथ एक हो जाना चाहते है…हर स्तर पर। यह एक शारीरिक ही नहीं, आत्मिक प्रक्रिया भी है…योग में लिप्त होने और अर्धनारीश्वर की स्थिति में पहुँचने की…।"(राय 65) यहाँ प्रेम में काम कितना अनिवार्यता है, सहज ही स्पष्ट हो जाता है। इसके साथ ही यह भी स्पष्ट हो जाता है कि काम आचरण का स्वरूप कैसा हो। जैनेंद्र प्रेम की प्रकृति के बारे में लिखते हैं – "सेक्स मिश्रण है अहम्-रक्षण और अहम् विसर्जन की दो अनिवार्य और विरोधी प्राण प्रेरणाओं का। इसी के तहत इसमें विस्फोट तत्व विद्यमान रहता है। लोग इसी में उसकी सामाजिकता के बीज देखते हैं। वे बीज हैं भी। लेकिन अहम् को इंकार करें, तो मानो समस्त अस्तित्व का अर्थ लुप्त हो जाता है|" (कुमार 341) आशय यह है कि एक की काम की तृप्ति तभी उसके अहम् की रक्षा कर पाती है, जब किसी के द्वारा काम में सहज ही पूर्ण समर्पण उपलब्ध हो। यहाँ स्पष्ट है कि सेक्स में एक पक्ष की अहम् की रक्षा होगी, लेकिन यह तभी संभव है, जब दूसरा पक्ष अपने अहम् का विसर्जन कर दे। यही भाव जब परस्पर बना रहेगा तब काम की पूर्ण तृप्ति संबंध को समग्रता में आगे बढ़ाएगी और अंतत: यह काम अपने स्वस्थ रूप में उपलक्ष्य बन पाएगा, लेकिन यह एक असंभव-सी प्रक्रिया दिखाई पड़ती है क्योंकि अहम् का विसर्जन स्वयं के अस्तित्व का अंत महसूस कराता है, इसी कारण पुरुष की कामवृत्ति के सामने स्त्री अगर पूर्णत: समर्पित होती है, तो वहाँ उसकी अस्मिता आहत होती है और प्रतिरोध जन्म लेता है।

2.3. प्रेम-काम का स्त्री अर्थ –

आधुनिक समय में आर्गेज्म और काम तृप्ति के सवाल पर संजीदा से विचार किया जाना शुरू हो गया है, तो ऐसे में प्रेम-काम के संदर्भ को स्त्री और पुरुष अर्थ के अंतर्गत देखना जरूरी बन जाता है। आधुनिकता ने व्यक्ति स्वतंत्रता को महत्व दिया और अस्तित्ववाद, व्यक्तिवाद के प्रभाव स्वरूप नई जीवन दृष्टि भी प्रदान की। इस नई दृष्टि ने स्त्री की दृष्टि में प्रेम-काम संबंध को भी नए सिरे से देखने का सामर्थ्य दिया। आधुनिकता के बारे में कहा गया – "मनुष्य ने अपने को सामाजिक मशीन के पुर्जे के रूप में देखने की जगह स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में पहचाना। व्यक्ति स्वतंत्रता एक नई जीवन दृष्टि बन गई।"(कुमार 7) इसी व्यक्ति स्वतंत्रता की नई जीवन दृष्टि ने 'मेरी देह मेरी मर्जी' की सोच को जन्म दिया, जिससे स्त्री मन प्रभावित ही नहीं, रूढ़ हो गया। प्रभा जोशी लिखती हैं – "प्रेम उसकी मर्जी है उसका स्पेस"(जोशी 189) प्रेम-काम का स्त्री अर्थ उसकी मर्जी से जुड़ा हुआ

है। एक ओर कात्यायनी लिखती हैं – "सच्चे अर्थों में प्रेम की आजादी का प्रश्न स्त्री की आजादी के प्रश्न से भी जुड़ा है।" (कात्यायनी 18) तो दूसरी ओर जगदीश्वर चतुर्वेदी इसे सामाजिक विकास की दिशा में देखते हैं – "सामाजिक विकास किस दिशा में हो रहा है, इस तथ्य पर निर्भर करता है कि समाज में सेक्स चेतना का स्तर क्या है?...सेक्स माहौल, सेक्स परिप्रेक्ष्य आदि का 'स्त्री-परिप्रेक्ष्य' से गहरा संबंध है।....किसी भी समाज में सेक्स के प्रति व्यक्त नजरिए के आधार पर स्त्री की अवस्था का पता चलता है।...सेक्स का आधार पुरुष नहीं, औरत है। ऐसा क्यों हुआ और कैसे हुआ?" (चतुर्वेदी 54) कात्यायनी प्रेम को स्त्री की आजादी से जोड़कर देखती है, तो जगदीश्वर चतुर्वेदी सेक्स चेतना के द्वारा सामाजिक विकास की दिशा को समझने की बात करते हैं। हालांकि सेक्स का आधार वो केवल स्त्री को मानते हैं। इन दोनों का यह मंतव्य उनके एकाकी दृष्टिकोण को ही व्यक्त करता है। प्रेम और काम स्त्री और पुरुष दोनों के बीच का संबंध है। इसमें किसी एक को इसका आधार मान लेना दूसरे की अस्मिता में बाधा की सृष्टि करता है और यहीं प्रतिरोध खड़ा होता है। प्रेम और काम की स्त्री और पुरुष दृष्टि में मूल अंतर यह है कि स्त्री परीचित तरीके से प्रेम में काम की तृप्ति चाहती हैं, जबकि पुरुष जिज्ञासु तरीके से काम में प्रेम की तृप्ति को खोजता है। यहीं प्रेम और काम का द्वंद्व प्रतिरोध को जन्म देता है। इस दिशा में जगदीश्वर चतुर्वेदी और गीताश्री का कथन विचारणीय हैं। जगदीश्वर चतुर्वेदी का मन्तव्य हैं – "पुरुष की तरह स्त्री में भी कामेच्छा बचपन से ही पैदा हो जाती है।...इसके बावजूद स्त्रियों का सेक्स संसार और काम चेतना पुरुष से अनेक मामलों में भिन्न भी होती है...स्त्री चाहती है कि पुरुष उसके होठों और वक्षस्थल पर प्यार करें। वह किसी काल्पनिक व सच्चे काम आनंद की लालसा करती है, जिससे वह कुछ परिचित है।"(चतुर्वेदी 54) वहीं दूसरी ओर पुरुष जिज्ञासु तरीके से उसके शरीर की प्रयोगशाला पर प्रयोग करना चाहता है। गीताश्री का मन्तव्य हैं – "मर्द स्त्री की देह को अपना राजपाट और अपने प्रभुत्व की प्रयोगशाला समझता है, जिसमें वह अपने अवांछनीय प्रयोग भी करता है।" (गीताश्री 83) और यही प्रयोग स्त्री की नजर में एक पुरुष को त्याज्य बना देता है। जगदीश्वर चतुर्वेदी भी आगे लिखते हैं – "प्रतिरोध, भय और अतिरिक्त सतर्कता से समर्पण करने वाली स्त्री स्वाभाविक काम आनंद प्राप्त नहीं कर सकती...वास्तविक काम परिपक्वता संभोग क्रिया में शरीर का महत्व समझने वाली औरतों में ही होती है।...आनंद प्रदान करने के लिए पुरूष द्वारा अपनाया गया कोई भी अस्वाभाविक तरीका स्त्री को स्वीकार नहीं होता।" (चतुर्वेदी 41) अत: स्त्री अपनी शर्त पर प्रेम-काम की तृप्ति चाहती हैं और जब उसके अनुकूल नहीं होता तो प्रतिरोधी हो उठती है। काम के स्त्री-अर्थ को व्यक्त करते हुए राकेश बिहारी लिखते हैं – "यौन व्यवहार में स्त्री और पुरुष दोनों के लिए सुख के अलग-अलग मायने होते है। पुरुष जहां यौन संबंधों को सामान्यत: शरीर के स्तर पर जीता है और आनंद प्राप्त करता है, वहीं स्त्री के लिए रति सुख का मतलब शरीर से आत्मा तक की यात्रा होती है। यदि स्त्रियों में चरम की स्थिति सामान्यत: नहीं आती या देर से आती है, तो इसके कारण सिर्फ दैहिक नहीं, मानसिक भी है।" (बिहारी 6) हालांकि दैहिक संरचना के

कारण स्त्री संतुष्ट न भी हो, तब भी ऑर्गैज़म को प्राप्त करने का नाटक जरूर कर लेती है। मृदुला गर्ग लिखती हैं – "स्त्री की दैहिक संरचना ऐसी होती है कि वह देह और मस्तिष्क के बीच द्वैत कायम रखते हुए सहवास कर सकती है। यानी ऑर्गैज़म या चरम उल्लास के क्षण का ढोंग भी कर सकती है।" (गर्ग 44) वास्तव में प्रेम में स्त्री 'सिलेक्टिव बधिर' हो जाती है। मृदुला गर्ग का मन्तव्य है – "असल में जब हम प्यार करने पर आमादा होते हैं, तो केवल वही सुनते हैं जो सुनना चाहते हैं। यह 'सिलेक्टिव हियरिंग' की क्षमता मर्दों की बनिस्पत, औरतों में ज्यादा होती है।" (गर्ग 71) इसी का परिणाम है कि अपने रूढ़ मन के कारण प्रेम में सेक्स से पहले या बाद स्त्री अपनी पुरुष पार्टनर के मुख से प्रेम भरे शब्द सुनना चाहती हैं और नहीं सुन पाने की स्थिति में उसे गलत ठहरा देती है। मनीषा पांडेय लिखती हैं – "…भारतीय कठमुल्ला लड़की, जो किसी पुरुष के सामने इसी शर्त और दावे के साथ अपने कपड़े उतारती है कि वह उससे प्रेम करता है। या शुरू में ऐसे वायदों की पड़ताल न भी करे, तो भी सोने के बाद वो 'आय लव यू' ही सुनना चाहती हैं।" (पाण्डेय 144) जैनेन्द्र कुमार स्त्रियों में प्रेम-काम की तृप्ति के संबंध में सिमोन के विचार का उल्लेख करते हैं – "प्रेम, स्नेह और इंद्रिय सुख प्राप्त करने में स्त्री को सफलता तभी मिलती है, जब वह अपनी निष्क्रियता को दूर कर दें और अपने साथी के साथ परस्परिकता का संबंध स्थापित करे।" (कुमार 32) लेकिन नैतिकता, अनैतिकता, सामाजिकता और रूढ़ मन के दायरे में यह संभव नहीं हो पाता। पात्र से कर्ता के रूप में स्त्री की भागीदारी व्यावहारिकता में कल्पना लगती है। आशुतोष कुमार का मन्तव्य हैं – "स्त्री अर्थ का अवबोध उतना ही कठिन है, जितना पात्र से कर्ता की भूमिका में स्त्रियों के आने की व्यावहारिक कल्पना।"(कुमार 7) इसके पीछे सामाजिक तंत्र, प्रचलित रूढ़ नैतिकता काम करती है। अनामिका लिखती हैं – "शोध से पता चलता है कि यौन इच्छा पुरुषों की बपौती नहीं है, स्त्रियों में भी वह होती है, उतनी उग्र नहीं होती, क्योंकि उनके जीन में गुण नहीं होते, जो पुरुष में आक्रामकता का एक बड़ा कारक होते हैं। इतना-सा जीव विज्ञान – बाकी तो पालन-पोषण, चिंतन और परिवेशगत विसंगतियां, जिनके चलते यौनगत आक्रामकता का उन्नयन या उदात्तीकरण उनको कठिन लगता है।" (अनामिका 131) पुरुष फैंटेसी के तहत निर्मित उसका जिज्ञासु मन और परिवेशगत विसंगतियों के तहत निर्मित स्त्री का रूढ़ मन ही प्रेम-काम में द्वंद्वमूलक संबंध की सृष्टि कर उन्हें प्रेम-काम मामले में एक दूसरे का सहयोगी होने की जगह प्रतिरोधी बना देता है।

2.4. प्रेम-काम का पुरुष अर्थ –

प्रेम विशेषकर काम संबंध में पुरुष की भूमिका एक्टिव पार्टनर की होती है। काम क्रिया के लिए स्त्री को देह के स्तर पर तैयार होना पड़ता है, वहीं पुरुष को देह के साथ मन के स्तर पर भी तैयार होना पड़ता है। स्त्री और पुरुष की काम चेतना के उद्देश्य व भूमिका का अवलोकन करते हुए राकेश बिहारी और सिमोन के विचार उल्लेखनीय है। सिमोन के विचार का उल्लेख करते हुए जगदीश्वर चतुर्वेदी लिखते हैं – "जीव विज्ञान के अनुसार पुरुष के लिए संभोग का एक ही उद्देश्य होता है वीर्य पतन।'' (चतुर्वेदी 41) वहीं राकेश बिहारी भी लिखते हैं

– "...पुरुष जहां कामेच्छा के चरमोत्कर्ष पर जाकर वीर्य स्खलन में तृप्ति खोजता है, स्त्री इस पूरी प्रक्रिया में एक दोयम दर्जे का साझीदार रही है, जिसे हर हाल में अपने पुरुष साथी को संतुष्ट करने के लिए एक सेविका या कृतदासी के रूप में प्रस्तुत रहना है।" (बिहारी 2) अत: पुरुष की जो कामवृत्ति है, वह स्त्री विरोधी है। साथ ही यह एक रूढ़ धारणा है कि पुरुषों में वीर्य पतन से तृप्ति हो ही जाएगी क्योंकि प्रेम और काम का मामला केवल शारीरिक नहीं, बल्कि मानसिक भी है विशेषकर पुरूष के मामले में उसकी शारीरिक बनावट के कारण। ऐसे में मनचाहा सामने ना हो तो फिर चाहे पत्नी हो, प्रेमिका हो या कोई और ही क्यों ना हो, उसके द्वारा संबंध संभव नहीं। ऐसे में संभोग का जो पुरुष अर्थ राकेश बिहारी और सिमोन ने निकाला है कि पुरुष केवल स्खलन तक ही सीमित रह जाता है, ये अपने में अपूर्ण है क्योंकि स्खलन के पहले की प्रक्रिया में उसे मानसिक रूप से तैयार होना पड़ता है। अशफाक अहमद 'जूनियर जिगोलो' में इसका उल्लेख करते हुए लिखते हैं – "औरत को लेटना होता था, चाहे तन-मन पार्टनर को स्वीकार करे ना करे, लेकिन पार्टनर फिर भी संभोग कर सकता था, जबकि मर्द के लिए पार्टनर अगर पसंद का ना हुआ या मन से स्वीकार ना कर पाया तो उसके अंग विशेष में वह जरूरी तनाव ही नहीं आ पायेगा, जो संभोग के लिए जरूरी था। करना तो मर्द को ही होता था और कर वह तभी सकता था, जब उसका अंग इसमें सहयोग करे।" (अहमद 56) यहां ध्यान देने की बात है कि ऐसे में मनपसंद साथी ना हो या मनपसंद के होने के वाबजूद भी अंग विशेष में तनाव ना आ पाए और काम-क्रिया पूरा ना कर पाए, तो पुरुष ना केवल पत्नी, प्रेमिका की नजर में गिर जाता है, बल्कि स्वयं की नजर में भी दोषी बनकर सेक्स मरीज़ महसूस करा दिया जाता है। विनोद भारद्वाज का उपन्यास 'एक सेक्स मरीज़ का रोगनामचा' का नायक जयकुमार इसी परेशानी को झेलता है। स्पष्ट है कि मानसिक तृप्ति ना हो, तो वीर्य पतन के बावजूद चरम सुख पुरुष के लिए भी संभव नहीं है, बल्कि उसके लिए तो ऐसा सुख दे पाना भी कठिन हो जाता है। अत: यह रूढ़ धारणा है कि पुरुष कभी भी, किसी के भी साथ काम संबंध में आगे बढ़ सकता है, बल्कि सच्चाई तो यह है कि मन से तैयार ना हो, तो उसके लिए यह संभव ही नहीं है। एक तथ्य यह भी है कि मन की तृप्ति ना होने पर भी स्त्री तृप्त होने का नाटक कर लेती है। इस संदर्भ में मृदुला गर्ग लिखती हैं – "माना यह जाता है कि पुरुष बगैर प्रेम के सेक्स में शामिल ही नहीं हो सकता, चरम सुख भी प्राप्त कर सकता है पर स्त्री चरम सुख तभी प्राप्त कर सकती है जब भावात्मक रूप से पुरुष से जुड़ाव महसूस करे। यह धारणा बिल्कुल गलत है।" (गर्ग 25) अर्थात् स्त्री भी बिना प्रेम के काम संबंध में शामिल हो सकती है, जबकि अब तक पुरुष द्वारा प्रेम रहित काम के मामले के कारण उसके प्रतिरोध में स्त्री मत निर्मित किया गया है, वह कहीं न कहीं स्त्री के मामले में भी फिट बैठता है। इसके लिए सिर्फ पुरुष को जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता हैं। सिमोन व राकेश बिहारी वीर्य स्खलन तक ही पुरुष की कामतृप्ति को देखते है, जबकि मृदुला गर्ग के कथन से स्पष्ट है कि ये स्त्री और पुरुष दोनों का सच है, इसलिए सिमोन और राकेश बिहारी के जो विचार है, वो एकतरफा है।

दूसरा संदर्भ है, प्रेम-काम मामले में स्त्री ऑब्जेक्ट बनना नहीं चाहती है, जबकि पुरुष का आकर्षण उसकी देह से ही प्रारंभ होता है और यहीं एक पुरुष चाहे वह पति हो, प्रेमी हो स्त्री की नजर में काम-कीड़ा बन जाता है। हालांकि पुरुषों की इस दृष्टि के पीछे पूरी की पूरी बाजार की संरचना है, जो उसकी फैंटेसी निर्मित कर रही है, तभी स्त्री के प्रति प्रेम संबंध में उसकी दृष्टि कामातुर है। नीलिमा चौहान 'पतनशील पत्नियों के नोट्स' में लिखती हैं कि कैसे बाजार स्त्री की कामुक छवि के प्रति पुरुष को आकर्षित करता है – "देखिए ना कैसे मर्दों की सोच के अंदर घुसपैठ कर उनकी तमन्ना और हसरतों को इस मायावी सीना पोश के जरिए वजूद में लाने में जुटा है यह बाजार। कामातुर मर्द के सपनों में औरतों से भी पहले औरत की छाती और उसकी छाती से भी पहले उसकी सेक्सी ब्रा का खाका उकेरने को वचनबद्ध है बाजार। पूरी दुनिया को बिगर, कूलर, सेक्सियर छातियों से अभिभूत कर देने पर आमादा बाजार।" (चौहान 33) आज फेसबुक रिल्स और सोशल मीडिया का बाजार स्त्री की ऐसी छवि को ही प्रोत्साहन दे रहा है। ऐसे में स्त्री के अंग विशेष के प्रति पुरुष की कामातुर फैंटेसी बनना स्वाभाविक है और उस फैंटेसी की पूरी ना होने पर या फैन्टेसी के अनुरूप स्त्री का अंग विशेष न मिलने पर निराशा प्रेम-कम संबंध को प्रतिरोधमूलक बनाती हैं। हालांकि यह फैंटेसी आज की देन नहीं है, यह केवल आज का प्रश्न ही नहीं, बल्कि सदियों का है। पुरुष के निर्माण की प्रक्रिया में सदियों से चला आ रहा है। नीलिमा चौहान आगे लिखती हैं – "जिस मुल्क में देवियों तक को भरपूर उभारों और गोलाइयों वाले उरोजों के साथ रचा गया हो, वहाँ बेहाल और ऊल जुलूल अनुपात वाली छातियों की मालकिन होने का जुर्म छोटा नहीं हो सकता है।" (चौहान 17) देवियों तक को सुडौल, आकर्षक बनाना समाज की देह केंद्रित मानसिकता का ही परिचय है। ऐसा नहीं है कि देह का आकर्षण केवल पुरुषों में है और इससे स्त्रियां मुक्त है, बल्कि स्त्रियां भी अपने आप को ऐसे ही देखना चाहती है। वे आगे लिखती हैं –

> "अपनी तमाम कोशिशों के बाद भी मैं खुद को भरावदार, बुलंद छातियों के तिलिस्म से आजाद नहीं कर पा रही हूं।...हर मर्द को औरत के सीने से जो उम्मीद होती है, वही उम्मीद मुझे भी अपने सीने से रहती है।...ब्रा खरीदते समय ट्रायल रूम के आईने में अपने को हर उस कोण से निहारकर देखती हूं, जिस कोने से मर्दों की दुनिया मुझे देखती होगी। छी:! मर्दों को रिझाना मेरा मकसद नहीं, मैं तो बस यह चाहती हूं कि मेरा सीना हर समय, हर पहलू से इस बात का गवाह देता रहे कि उसकी मालकिन एक तरक्की पसंद मॉडर्न और जागरूक औरत है, ना कि बदइंतजामों से भरी बेशऊर औरत।" (चौहान 34)

जिस देह के आकर्षण में पुरुष बंधा हुआ है, स्त्री भी उससे मुक्त नहीं है। जब स्वयं स्त्रियाँ देह के आकर्षण से मुक्त नहीं हैं, तो पुरुष कैसे मुक्त हो। ऐसे में प्रेम-काम के मामले में पुरुष द्वारा देह को विशेष महत्व देने के कारणों का मनोवैज्ञानिक संस्कार प्रतिरोध को प्रतिशोध से आगे बोध सहित दिशा देने के लिए अनिवार्य कदम होगा।

2.5. प्रेम-काम संबंधों में फैंटेसी –

प्रेम-काम संबंध के द्वंद्वमूलक होने का सबसे प्रमुख कारण फैंटेसी है। फैंटेसी का निर्माण हम क्या देखते हैं, क्या सुनते हैं और क्या पढ़ते हैं उससे होता है। प्रेम-काम के मामले में फैंटेसी का बनना बहुत ही स्वाभाविक और अनिवार्य तत्व है। यद्यपि ऐसा नहीं है कि फैंटेसी केवल पुरुषों की होती है, बल्कि इस मामले में स्त्री की भी फैंटेसी पाई जाती है, पर परिवेश, शिक्षा, नैतिकता के कारण इन दोनों की फैंटेसी में द्वंद्वमूलक संबंध पाया जाता है। यह द्वन्द्वमूलक संबंध स्त्री-पुरुष के संबंध को, चाहे पति-पत्नी, प्रेमी-प्रेमिका, लिव-इन पार्टनर या अन्य किसी भी संबंध को प्रतिरोधमूलक बनाता है। अगर स्त्री फैंटेसी और पुरुष फैंटेसी एक ही दिशा में बने अपने-अपने रूढ़ मन से निकलकर एक-दूसरे का संस्कार करे, तो संबंध प्रगतिमूलक बन सकते है, वरना यह प्रतिरोधी ही बनकर रह जाएंगे।

2. 5.1. प्रेम-काम की फैंटेसी : स्त्री-दृष्टि में —

आज भी सेक्स संबंध पर खुल कर बात करना संभव नहीं, न ही सेक्स शिक्षा सुलभ है। ऐसे में स्त्री-पुरुष की प्राकृतिक जरूरत प्रेम-काम के मामले में उनके ज्ञान को बढ़ाने के स्त्रोत दोनों के लिए एक ही है। इसके वाबजूद इन दोनों के परिणाम परस्पर प्रतिरोधमूलक देखने को मिलते रहे हैं। इसके पीछे परिवेश निर्मित रूढ़ मन और प्रेम-काम संबंधी विभिन्न ज्ञानपरक स्त्रोतों से सहज ही निर्मित फैन्टेसी है। प्रेम-काम संबंध में स्त्री और पुरुष की भूमिका और उद्देश्य का उल्लेख करते हुए राकेश बिहारी ने लिखा है – "पितृसत्तात्मक समाज में संभोग एक ऐसी जैविक क्रिया रही है जिसमें पुरूष और स्त्री की भूमिका और उद्देश्य अलग-अलग होते हैं।" (बिहारी 2) जब भूमिका और उद्देश्य अलग है, तो इसे प्राप्त करने का माध्यम एक जैसा हो, यह संभव नहीं। स्त्री की फैंटेसी ज्यादातर में जहां पुरुष के कोमल आचरण से जुड़ी होती है। इसमें उसके अपने नखरे की अधिक जगह होती हैं, वहीं पुरुष की फैंटेसी स्त्री देह पर प्रयोग से जुड़ी रहती है। इसी अंतर से द्वंद्व व प्रतिरोध की सृष्टि होती है। 'कस्बाई सिमोन' की सुगंधा अपनी फैन्टेसी के बनने के कारण का जिक्र करती हुई कहती है – "इससे पहले मैंने यही पढ़ा, देखा और सुना था कि प्रेम का उद्घाटन बड़े कोमल ढंग से किया जाता है।"(सिंह 30) स्त्री-फैन्टेसी के मूल में पुरुष का कोमल आचरण है। पढ़ने, सुनने और देखने से प्रेम-काम संबंध में सुगंधा की जिस तरह की फैंटेसी बनी है, वास्तविकता में प्रेमी रीतिक के प्रेम प्रदर्शन के मौके पर वह उसे अपनी फैंटेसी से उलट पाती है। उसके पढ़ने, सुनने और देखने के दायरे में प्रेम का प्रदर्शन कोमलता से होता है और रितिक उसे ऐसा नहीं दिखता, तो उसके प्रेम के उद्घाटन के तरीके को वह घटिया बताती हैं। यद्यपि स्त्री अपनी फैंटेसी में शरीर से ज्यादा मन पर ध्यान देती है। सुगंधा कहती है – "देह की भूख ने मुझे कभी इतना प्रभावित नहीं किया, जितना प्रेम की प्यास ने। मुझे सदा ही यही आकांक्षा रही थी, कोई ऐसा हो, जो मुझे सिर्फ मुझे चाहे।" (सिंह 25) देह की भूख की अपेक्षा मन की तृप्ति स्त्री फैन्टेसी के मूल में है। यद्यपि ऐसा नहीं है कि उसे शरीर की जरूरत नहीं होती, बल्कि

होती है, पर अपनी शर्त पर, अपने परिचित तरीके से। अब यह परिचित तरीका कैसा हो, इस बारे में जगदीश्वर चतुर्वेदी का मन्तव्य उल्लेखनीय हैं – "... स्त्री चाहती है कि पुरुष उसके होठों और वक्षस्थल पर प्यार करें।"(चतुर्वेदी 54) स्पष्ट है कि उसके देखे, सुने और पढ़े के अनुसार है सबकुछ, तो स्वीकार करती है, वरना सबकुछ त्याज्य। स्त्री, फैन्टेसी के तहत निर्मित मन से अपने परिचित तरीके के बारे में जो कल्पना करती है, उसे अल्पना मिश्र ने भी विषय बनाए है और प्रियंका ओम ने भी। अल्पना मिश्र की कहानी 'कथा के गैरजरूरी प्रदेश में' की नायिका अरुंधति कहती है – "इच्छा होती है कोई प्यार से उन्हें देखे। आंखें, आंखों से मिलाकर ठहर जाएं। कोई जो धीरे से छुए, धीरे से उसकी नाक पर अपने होंठ रख दे, उसकी गर्दन, उसके कंधे, उसकी पीठ, उसकी देह के एक-एक रोम छिद्र पर...किसी की गर्म सांस सिहरा जाए। कोई जो देर तक, बहुत देर तक उनके साथ हो...जाने कैसी है देह के भीतर उगी प्रेम की यह पागल इच्छा।" (मिश्र 38) अरुंधति मानती है कि देह के भीतर ही प्रेम की इच्छा जागती है। ऐसे में उसकी पूर्ति का माध्यम भी देह ही बनेगा, लेकिन उसकी अपनी फैन्टेसी के तहत उसके प्रदर्शन का तरीका हल्का और कोमल होगा। तो दूसरी ओर, प्रियंका ओम की कहानी 'विष्णु ही शिव है' की बाल विधवा की भी फैंटेसी ऐसी ही है – "उसका जी चाहा इन पिंडलियों पर कोई अपने होंठ रख दे। तपते गर्म होंठ। इस ख्याल से वह सिहर उठी, दिल में ना मालूम कंपन हुआ, झुरझुरी-सी एक लहर समूची देह में दौड़ गई।" (ओम189) हालांकि संस्कार से निर्मित रूढ़ मन के कारण स्त्री अपने भीतर ऐसी दैहिक इच्छा के जन्म के कारण स्वयं को अपराधी मानने लगती हैं। अरुंधति सोचती है – "अगर इस जरूरत को झपट लेने की बलवती आकांक्षा पैर फैलाने लगे, तो सबसे पहले उसी की नजर में गिर जाएगी, जिसके प्रति देह का आकर्षण और प्यार की हिलोरे उठ रही हैं। सारी शिक्षा दीक्षा, संस्कार सब व्यर्थ चल जाएंगे।" (मिश्र 39) तो 'विष्णु ही शिव है' कि बाल विधवा 'सेल्फ सेक्स' के अगले ही क्षण स्वयं को बलात्कारी हाथ व घृणा की नजर से देखने लगती है, जो बतलाता है कि प्रेम-काम संबंध में स्त्री के प्रति समाज के संस्कार ही ऐसे है कि उसकी उपस्थिति दोयम दर्जे की ही होनी चाहिए, एक्टिव पार्टनर की नहीं। अपनी चाहना रखने वाली नहीं। फैंटेसी का बलवती रूप मधु कांकरिया की कहानी 'बीतते हुए' में दिखता है। 'बीतते हुए' की मणिदीपा अपने प्रेमी से इसलिए अलग होती है कि अपनी अर्जित फैंटेसी के अनुसार अपने प्रेमी को नहीं पाती। वह सोचती है – "जाने कितना कुछ सुन रखा था...पर वैसी पोर-पोर भिगो देनेवाली आत्मविस्मृति की ऐसी कोई भी अनुभूति तो नहीं हुई थी मुझे...मेरे मन में अर्ध स्वीकार था।" (कांकरिया 73) फैंटेसी बनी कहाँ से इसका जिक्र करते हुए आगे कहती है – "प्रेम संबंधी सारा अर्जित ज्ञानकोष मेरा उन दिनों किताबों से अर्जित किया हुआ था या फिर हिंदी फिल्मों से।" (कांकरिया 73) और अपनी अर्जित फैंटेसी के अनुरूप प्रेमी नहीं दिखता, तो उसे छोड़ देती है। स्त्री फैंटेसी तो बनाती है, पर उसके ऊपर उसके रूढ़ मन के हावी होने के कारण संबंध द्वंद्वमूलक रह जाता है। प्रेम-काम के मामले में स्त्री के रूढ़ मन का जिक्र करती हुई मनीषा पांडेय लिखती है – "...भारतीय कठमुल्ला

लड़की, जो किसी पुरुष के सामने इसी शर्त और दावे के साथ अपने कपड़े उतारती हैं कि वह उससे प्रेम करता है। या शुरू में ऐसे वायदों की पड़ताल ना करें, तो सोने के बाद आई लव यू ही सुनना चाहती है। "(पांडेय 144) यानी काम संबंध के मूल में प्रेम या प्रेम का भ्रम पाले रखना स्त्री स्वयं चाहती है। यह उसकी फैन्टेसी का हिस्सा है। परिवेश, संस्कार से निर्मित रूढ़ मन उस पर हावी होता है, तो पुरुष का भी एक मन इस संबंध में रूढ़ हो गया है, जहां वह अपनी पत्नी, प्रेमिका को एक विशेष रूप में पाने की चाहत रखता है। ऐसे में फैन्टेसी का टकराव संबंध में प्रतिरोध को जन्म देता है।

2.5. 2. प्रेम-काम की फैन्टेसी : पुरुष दृष्टि में –

प्रेम-काम संबंध में स्त्री फैंटेसी पर उसका रूढ़ मन हावी होता है, उसी प्रकार परिवेश, संस्कार और विभिन्न साधन के माध्यम से पुरुष की भी फैन्टेसी स्त्री को लेकर बनती है। एक पुरुष, स्त्री को भी किस रूप में पाना है, इसे लेकर उसका मन भी रूढ़ हो चुका होता है। फैंटेसी का निर्माण हमारे देखने, सुनने और पढ़ने से होता है। ऐसे में पुरुष क्या पढ़ते, देखते और सुनते हैं, इस मामले में अपने ज्ञान को बढ़ाने के लिए, यह जानना जरूरी है। गौतम राजऋषि की कहानी 'अनगिनत परिधियों वाले वृत्त' में तेरह वर्षीय बालक की भी प्रेम-काम संबंध में फैन्टेसी बन रही है। निखिल की फैंटेसी बन रही है, तो मैगजीन, कॉमिक्स पढ़कर, जहां डायना को बिना शर्ट के बंडारा की मरहम-पट्टी करते देख वह अपनी दोस्त मोना को भी फ्रॉक के नीचे देखना चाहता है। लेखक लिखते हैं –

> "जब-तब समय मिलते ही वह अपने कॉमिक्स के ढ़ेर में से बस उस कॉमिक्स को निकालता...झटपट एक झलक उस पन्ने विशेष को पलटाकर देख लेता। स्कूल, होमवर्क, क्रिकेट...सब कुछ से जैसे एक विरक्ति-सी हो गई थी। हर वक्त...हर दफा...खासकर सोते समय बंद आंखों के सामने डायना ही रहती थी उसी छोटे से सफेद रंग वाले कुछ को पहने हुए। उनींदी आंखों से देखे जा रहे दिवास्वपनों में अक्सर कॉमिक्स के उस दृश्य का हिस्सा होता...कभी वो खुद घायल बौना बंडारा बना हुआ होता, जिस पर झुक डायना अपने उसी बहुत छोटे से सफेद रंग वाले कुछ को पहने हुए उसका उपचार कर रही होती, उससे एकदम सटकर...या कभी खुद ही फैंटम बना होता डायना को थामे हुए…उसे उस छोटे से कुछ में निहारते हुए। इन समस्त दिवास्वप्न के चरम पर वो अक्सर उस छोटे से सफेद कुछ के बिना भी डायना को देख पाने के पागलपन और...और डायना को वहाँ छू लेने की अनियंत्रित इच्छा के मध्य डोलता फिरता था।" (ऋषिराज153 -154)

पुरुष की फैन्टेसी स्त्री-देह को जिज्ञासु की तरह जानने की बनती है। 'कस्बाई सिमोन' की कीर्ति अपने पति के बारे में सुगंधा से कहती है – "इनको तो बहुत शौक है। तुम्हें सी डी चाहिए होगी तो बताना, इनके पास बहुत सी है।" (सिंह 125) सीडी देखकर पुरुष की जो फैंटेसी बन रही है, वह उसके व्यवहार की भूमि अपनी

पत्नी कीर्ति में खोजता है। अत: उसकी पूर्ति की भूमि वास्तविक जीवन में चाहता है। एक ओर 'अनगिनत परिधियों वाले वृत्त' में तेरह वर्षीय बालक निखिल चाहता है – "जब अचानक से उसका मन किया कि वह मोना की फ्रॉक के ऊपर वाले बटन से अंदर झांक कर देख ले कि उसने भी कुछ पहना है क्या, डायना जैसा ही वह सफेद रंग वाला छोटा-सा कुछ।....उसका मन करने लगा था कि हाथ बढ़ाकर उस ऊपर वाले बटन को तोड़कर उधर छू ले मोना को।" (ऋषिराज 154) वहीं, दूसरी ओर 'कस्बाई सिमोन' में काम-संबंध में रितिक सुगंधा से जिस आचरण की मांग करता है, उसका निर्माण फैन्टेसी के तहत ही हुआ है। सुगंधा, कीर्ति से कहती है – "उन पेशेवर लोगों की चेष्टाएँ देख-देख कर रितिक को भी लगता है कि मैं उन फिल्मों की नायिका की तरह पेश आऊँ।"(सिंह 126) यहीं पुरुष का चाहना और स्त्री की चाहना में अंतर उत्पन्न हो जाता है। एक परिचित तरीका चाहती है, तो दूसरा प्रयोग और प्रेम-काम का द्वंद्व शुरू होता है। यहीं एक पुरुष न केवल सामने वाले की नजर में बल्कि खुद की नजरों में भी गिर जाता है। निखिल अनुभव करता है – "एक विशालकाय वृत्त जैसे उसे अपनी अनंत परिधियों में कस लेता और उस वृत की कसावट में जहां एक असीम आनंद की अनुभूति थी, वहीं एक अपराध भाव...एक डर सा भी था कि जैसे वह कुछ गलत कर रहा हो।" (ऋषिराज154) यहां ध्यान देने की बात है कि पुरुष की फैंटेसी बनने के पीछे के कारणों को जानने की जगह उसे ही गलत ठहरा दिया जाता रहा है, जबकि स्त्री-पुरुष संबंध में सकारात्मक सुधार के लिए जरूरी है कि फैंटेसी के बनने के कारण की पड़ताल की जाए और न केवल पड़ताल की जाए, बल्कि सही दिशा में उसका संस्कार किया जाए। अशफाक अहमद का उपन्यास 'जूनियर जिगोलों' में चांदनी कहती है – "मुझे नहीं लगता कि ऐसा कोई भारतीय लड़का जो पोर्न देखता हो…वह गोरी चमड़ी के आकर्षण से बच पाएगा। खोद के देखोगे तो ऐसे हर भारतीय के दिल में यह तमन्ना मिलेगी कि काश एक बार अंग्रेजी दारू के साथ अंग्रेजी लड़की मिल जाए।" (अहमद 138) अपनी फैंटेसी को जीना हर कोई चाहता है। पोर्न ने पुरुष की जो फैन्टेसी बनाई स्त्री आचरण को लेकर, पुरुष अपनी स्त्री पार्टनर में उसी आचरण को खोजने लगता है, लेकिन स्त्री द्वारा यह संभव नहीं हो पाता। सुगंधा कहती है – "रीतिक को भी लगता है कि मैं उन फिल्मों की नायिका की तरह पेश आऊँ। अब यह हर आसन में तो संभव नहीं।"(सिंह 126) और यही संभव ना हो पाना संबंध को प्रतिरोधमूलक बनाता है और कभी-कभी विकृति को भी जन्म देता है। हां, इस फैन्टेसी को जीने के लिए स्त्री पात्र अगर स्वेच्छा से तैयार हो जाती है और अगर यह संभव हो पाता है, तो संबंध ठीक रहते हैं। मनीषा कुलश्रेष्ठ की कहानी 'एडोनिस का रक्त और लिली के फूल' में अंबिका के संदर्भ में इसे देख सकते है, जहां अपने पुरुष पार्टनर के फैंटेसी को सच करने के चक्कर में अंबिका दो पुरुषों के साथ एक साथ संबंध बना लेती है और गर्व से कहती भी है – "यह पुरुष मनोलोक की अजीब-सी फंतासी है। अपनी प्रेमिका को किसी और के साथ देखना। व्हाट इट्स डिजायर्ड बाय एवरी मैन, लिव्ड बाय वेरी फ़्यू।" (कुलश्रेष्ठ 27) वो और उसका प्रेमी इन वेरी फ्यू लोगों में है, इसी कारण उनके संबंध अनुकूल रहते है,

लेकिन अगर यह एक-दूसरे के विपरीत रहते तो प्रतिरोध खड़ा होता। इस बारे में राकेश बिहारी का मत है – "लेफ्टिनेंट अनुज के भीतर एक ही आदिम मर्द बैठा है, जो हर हाल में स्त्री को भोगना जानता है। कभी सच को फैंटेसी में बदलकर, तो कभी फैंटेसी को सच में बदलकर। यही कारण है कि मेजर और लेफ्टिनेंट के बीच इस तरह बटने का निर्णय जो ऊपर से अंबिका का दिखता है, दरअसल उसका है ही नहीं, पितृसत्ता ने उसका भीतर तक अनुकूलन कर दिया है।" (बिहारी 4) कथा-जगत में पुरुष पात्रों की एक फैन्टेसी है और उस फैन्टेसी को एकांत में विषय बनाने के कारण कथालोचकों की भी पुरुष की प्रेम-काम आचरण को लेकर फैन्टेसी ही बनी हुई है कि पुरुष सदा स्त्री देह का भोगी, बलात्कारी ही महसूस होता है। इसी कारण राकेश बिहारी का मन्तव्य समग्रता की दिशा में चूक जाता है। राकेश बिहारी जैसे कथालोचक जो अधिकांश में है, यह नहीं विचार करते कि पुरुष काम संबंधी ऐसी फैन्टेसी की गिरफ्त में किस तरह आ चुके होते है। हो सकता है राकेश बिहारी का कथन एक सच हो, यह सच में पितृसता की चालबाजी हो, पर यह भी एक सच है कि यह फैंटेसी बनी क्यों, कैसे, क्या देखकर इस पर विचार ज्यादा जरूरी है, वरना विकलांग विमर्श द्वारा एक पक्ष को दोषी ठहरा कुछ नहीं हो सकता, जबकि आज तक विमर्श की दिशा यही रही है। इसी विकलांगता से अनुकूलित होने के कारण राकेश बिहारी अंबिका के अपने फैसले को पितृसत्ता का अनुकूलन मान रहे हैं। पुरुष को दोषी ठहरा रहे हैं, पर उसके ऐसे होने के पीछे के कारण को नहीं खोज रहे हैं। किंतु अब 21वीं सदी में पुरुष मन को समझने का प्रयास किया जा रहा है। अनामिका इस तत्व पर जोर देती है कि स्त्री को इस बात का ध्यान रखना होगा कि कैसे उसके द्वारा कहीं बनाई गई फैंटेसी का मुआवजा, कहीं और किसी और स्त्री को ना भुगतना पड़े। 'तिनका तिनके पास' में वह तारा के माध्यम से इसपर विचार करती हैं। तारा सोचती है – "तब मेरे मन में उन सब सीधी सादी लड़कियों के लिए गहरा बहनापा जागा, जिनको (असभ्य मॉडल या पॉर्न गर्ल्स की नंगी तस्वीरों द्वारा उकसाए हुए) मर्दों की बीमार-सी, हिंसक वासना का शिकार बनना पड़ता है, क्योंकि सड़क पर उपलब्ध वही होती हैं – अपने सीधे रास्ते जाती हुई।" (अनामिका 175) पुरुष अपनी फैन्टेसी के तहत जिस प्रकार स्त्री को चाहता हैं, भारतीय स्त्री उसके अनुरूप नहीं मिलती। वहीं भारतीय स्त्री अपनी फैन्टेसी के तहत पुरुष को जिस रूप में पाना चाहती है, पुरुष उसे उस अनुरूप नहीं मिल पाता। अत: संबंध के पीछे के द्वन्द्व का मुख्य कारक फैंटेसी है।

विपरीत और विरोधी फैंटेसी का निर्माण और उसके पीछे हावी रूढ़ मन का संस्कार प्रेम-काम के मामले में स्त्री-पुरुष को सहयोगी की जगह प्रतिद्वंदी बना देता है। ऐसे में एक-दूसरे के प्रति संबंध में मधुरता की जगह विरोध-प्रतिरोध घर करने लगता है। स्त्री-पुरुष दाम्पत्य में हो या दाम्पत्य से इतर किसी अन्य संबंध में, प्रेम-काम मामले में पुरुष सदा स्त्री की देह तक ही सीमित रह जाता है। 'बलात्कारी','वुमन ईटर' जैसे विशेषणों से आपराधिक इतिहास रचता हुआ दिखाया जाता है, तो दूसरी ओर प्रेम के लिए प्रतीक्षारत, तड़पती, पीड़ित स्त्री देखने को मिलती है। ऐसे में स्त्री और पुरुष दोनों के प्रेम-संबंधी अपेक्षाएं समानांतर दिशा में आलोचना का

विषय नहीं बन पाती, तो दूसरी ओर स्त्री-पुरुष की परस्पर कामेच्छाएं भी समानांतर दिशा में विषय नहीं बनाई गई है। इसी कारण आज तक इन दोनों संदर्भों में विवेचित प्रतिरोध का स्वरूप भी समग्रता के अभाव में रूढ़ हो चुका ही प्रतीत होता है। आज शोध या आलोचना के लिए स्त्री द्वारा उसके निजी काम आचरण संबंधी अपेक्षाएं गैरजरूरी विषय नहीं है। अपराध-बोध से ग्रसित पुरुष तभी अपेक्षित आचरण कर सकता है, जब स्त्रियाँ अपनी काम अपेक्षाओं को खुलकर अपने साथी के समक्ष रखें, अन्यथा बाजारू स्रोतों से बनी फैन्टेसी पुरुष को स्त्री साथी से दूर और हर क्षण अनुकूल स्त्री साथी की संभावना के पीछे दौड़ाती रहेगी। इस कारण प्रेम-काम संबंधी स्त्री द्वारा दर्ज प्रतिरोध अस्मितामूलक विमर्श को भी विकलांग ही बनाता है। ऐसी विकलांगता को दूर करने के लिए ही स्त्री और पुरुष दोनों की फैन्टेसी को अपराध-बोध के पूर्वाग्रह से मुक्त करके विषय बनाया जाना शोध का अभीष्ट है।

2. 6. प्रेम काम संबंध में परिवेश की भूमिका –

यद्यपि प्रेम-काम का मामला स्त्री-पुरुष के बीच नितांत एकांत का मामला है, पर समाज का हस्तक्षेप इस मामले में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से रहता है। 'स्त्री सुबोधिनी' पत्रिका में मन्नू भंडारी प्रेम-काम के संदर्भ में समाज के हस्तक्षेप का उल्लेख करती हुई लिखती हैं – "इस देश में प्रेम के बीज मन और शरीर की पवित्र भूमि में नहीं, ठेठ घर-परिवार की उपजाऊ भूमि में फलता-फूलता है।"(भण्डारी 287) परिवार की उपजाऊ भूमि तो एक होती है, लेकिन स्त्री और पुरुष का मन अलग-अलग तरह से संस्कारित होते रहता है। ये जो मामला है, यह विशुद्ध रूप से संस्कार आधारित नैतिक मूल्यों का मामला है और ये नैतिकता स्त्री के लिए अलग निर्मित होती है और पुरुष के लिए अलग। यहीं दोनों के मन में एक दूसरे के प्रति शत्रुता भाव से भरने लगते है। यह ठेठ घर-परिवार की भूमिका ही है, जो प्रेम-काम संदर्भों में स्त्री के और पुरुष के मन को रूढ़ बनाती है। प्रेम और सेक्स शरीर और मन का संदर्भ है, पर भारतीय परिप्रेक्ष्य में विवाह-पूर्व इस बारे में गुपचुप बातें करना और विवाह बाद भी खुलकर बात करना आपको समाज में कटघरे में खड़ा कर देता है, तभी अधिकतर विवाह की नींव ही प्रेमहीन सेक्स पर निर्भर होती है, जो आनंद की जगह पीड़ादायक ही अधिक है। मृदुला गर्ग लिखती हैं – "प्रेमहीन शारीरिक संबंध, जो भारतीय विवाह पद्धति की वास्तविक स्थिति है, भयानक आत्मपीड़न के अलावा कुछ नहीं है।" (गर्ग ix) परिवेश व समाज की भूमिका का ही परिणाम है कि भारतीय स्त्री का मन प्रेम-काम संबंध को लेकर रूढ़ हो गया है, जो सेक्स संबंध में तभी आने को तैयार होती है जब यह सुने कि पुरुष उससे प्रेम कर रहा हो और इसी कारण पुरुष स्त्री को जिस रूप में पाना चाहता है, वह भी संभव नहीं हो पाता। राजकिशोर ने 'भारतीय पुरुष की वेदनाएँ' में लिखा है – "दरअसल उसकी (पुरुष) ट्रेजेडी यह है कि पश्चिम में जो चीजें तीन चार सौ वर्षो के संघर्ष और अद्यम से हासिल हुई हैं, वही वह दो-तीन दशकों में प्राप्त कर लेना चाहता है। अत: भारतीय स्त्री उसको निराश करती है।" (राजकिशोर 128) भारतीय परिप्रेक्ष्य में पुरुष फैन्टेसी

पश्चिमी समाज को देखकर बनती है पर जीना उसे भारतीय समाज में पड़ता है, जिसकी संरचना ही प्रेम-काम संबंध को लेकर नितांत रूढ़ है। हमारा समाज सेक्स के मामले में स्त्री का संस्कार पैसिव पार्टनर के रूप में करता है, पुरुष की काम पूर्ति के साधन के रूप में, तो पुरुष संस्कार एक्टिव पार्टनर के रूप में, उसे मालिक की भूमिका देता है। यही कारण है कि काम संबंध में जब पुरूष आता है, तो उसकी चाहत बन चुकी होती है कि स्त्री के साथ खेल सकने को वो स्वतंत्र है और यही वह बिंदु है, जहाँ उसका आचरण स्त्री की नजर में उसे 'वुमेन ईटर' बना देता है। 'पिछला दरवाजा' में पत्नी, पति के आचरण के विरोध में कहती है – "यह आदमी मेरा पति नहीं है, एक गिद्ध है। कच्चे मांस को नोचने वाला गिद्ध।...वह पति नहीं, एक मरी हुई मछली का ग्राहक है। वूमन ईटर है।" (चंद्र122) पति द्वारा पत्नी की देह को भोग सकने का संस्कार भारतीय परिवेश की रूढ़िवादी सोच का परिणाम है। राकेश बिहारी प्रेम-कम संबंध को सेक्सुअलिटी के साथ सेंसुअलिटी से जुड़ा मामला मानते हैं। यह आनंद का माध्यम है, जिसमें फैंटेसी की बड़ी भूमिका है। अतः सामाजिक ढांचे के अंतर्गत ऐसे संबंध को स्वस्थ बनाए रखने के लिए स्त्री-पुरुष के नजरिए का परस्पर विरोधी होने की जगह, एक ही दिशा में देखने योग्य सेंसफुल बनाने के लिए सामाजिक संरचना का संस्कार जरूरी है। एक स्वस्थ संस्कारित समाज ही स्त्री-पुरुष मन के रूढ़ संस्कार का परिष्कार कर पाएगा। तभी स्त्री की नजर में पुरुष केवल देह लोभी और पुरुष की नजर में स्त्री केवल कच्चा मांस नहीं रह जाएगी, हालांकि भारतीय परिप्रेक्ष्य में यह अब भी संभव नहीं है। राजकिशोर 'भारतीय पुरुष की वेदनाएँ' शीर्षक में लिखते हैं – "दोनों एक खास ऐतिहासिक स्थिति की उपज है और उसने उसे ऐसा नहीं बनाया है, जिससे वे एक दूसरे को सुखी कर सकें।" (राजकिशोर 122) अर्थात् पुरुष का आचरण स्त्री की नजर में उसे वुमेन ईटर बना देना तथा स्त्री का खुलकर तैयार ना हो पाना इसके पीछे सामाजिकता के दवाब में गढ़ा रूढ़ मन ही है, जिसकी लंबी परिपाटी है। जिस कारण इस मामले में स्त्री-पुरुष, एक-दूसरे के विलोम व प्रतिरोधी बन गए है।

2. 7. प्रेम - काम संदर्भ में नारीवादी दृष्टि –

प्रेम और काम के संदर्भ की विवेचना करें, तो इस मामले में नारीवादी चाहे वह लेखिका हो या लेखक, उनका दृष्टिकोण इस मामले में 'मेरी देह मेरी मर्जी' की ही वकालत करते हुए सीमित रहा है। परंपरा में नारीवादियों द्वारा पुरुष को उसके कमाचरण के कारण काम-कीड़ा महसूस कराना और उसके विरोध को ही लक्ष्य बनाया गया। प्रतिरोध की दिशा उसे गलत बताने व उसके बहिष्कार तक सीमित है, लेकिन अब 21वीं सदी में इस मामले में नारीवादियों (पुरुष व स्त्री) के नजरिए में बदलाव आया है। राकेश बिहारी सेक्स के प्रश्न को 'मेरी देह मेरी मर्जी' की जगह 'सेक्सुअलिटी' के साथ 'सेंशुअलिटी' के प्रश्न से जोड़ते हैं और लिखते हैं –

> "आधी आबादी ने निस्संदेह वर्षों पुरानी वर्जनाओं से खुद को मुक्त करते हुए स्त्री-कामेषनाओं पर खुल के कलम चलाई है, लेकिन प्रश्न यह है कि इन वर्जनाहीन कामेषनाओं को जस का तस स्वीकार कर इसके उत्सव में शामिल हो लिया जाए या फिर कुछ ठहर कर इन वर्जनाहीन स्त्री अभिव्यक्तियों, उनके उद्देश्यों तथा गंतव्यों पर भी बात की जाए।...क्या देह और प्रेम के बीच कोई अंतर्संबंध है? क्या देह और पेट की भूख अपनी आदिम प्रवृत्तियों में बिल्कुल एक-सी होती हैं? यदि हां, तो पेट की भूख की तरह देह की जरूरतों को भी अपने या किसी इष्ट मित्र के घर या किसी भी होटल, भोजनालय, ठेले, पटरी या की रेहड़ी पर जब जैसा मिले और रुचे, पूरा किया जा सकता है? क्या पीढ़ियों से कफस में छटपटाती स्त्री कामनाओं की अभिव्यक्ति और ग्लैमर की रोशनी में चुंधियाई स्त्री द्वारा सेक्सुअलिटी और सेंसुअलिटी का उद्दाम और विवेकहीन उत्सवीकरण दोनों एक ही बात है?"(बिहारी 1)

अगर 'काम' पेट की भूख की तरह है, तो इसकी पूर्ति कहीं भी की जा सकती है और अगर नहीं है, तो पिछले वर्षों में विमर्श के नाम पर स्त्रियों की खुली यौन अभिव्यक्ति का जो उत्सव मना है उसकी दिशा, उद्देश्य व गंतव्य पर विचार करना जरूरी है। जिस पर विचार 21वीं सदी में रचनाओं में हो रहा है। 21वीं सदी में पुरुष को, उसके आचरण को, उसकी फैंटेसी के तहत देखने का ना केवल प्रयास किया जा रहा है, बल्कि उसके संस्कार की कोशिश भी हुई है, ताकि समतामूलक स्वस्थ समाज की नींव पर सकें, ना कि बिना विचारे स्त्रीत्व के उत्सवीकरण में शामिल हुआ जा रहा है। अनामिका लिखती हैं – "'क्रोध' और 'काम' के 'सरप्लस' या अतिरेक से पुरुष को मुक्त कराना स्त्रीवाद की सबसे कठिन चुनौती है।" (अनामिका 60) स्त्रीवाद का अर्थ का पुरुष विरोध से नहीं लेती, बल्कि उनके संस्कार से लेती है। मृदुला गर्ग भी लिखती हैं – "फेमिनिस्ट का क्या लक्षण है, तो मैं कहूँगी, वह औरत, जो अपने घर का कचरा, बाहर सड़क पर नहीं फेंकती। कारगार फेमिनिस्ट वह है, जो सड़क पर अपना कचरा तो फेंकती ही नहीं, दूसरों का फेंका कूड़ा भी साफ करवा लेने का माद्दा रखती है।" (गर्ग 79) अर्थात् संस्कार करती है। 'एक रात','लहरों की बांसुरी' कहानियाँ इस दिशा में नजर आ रही है। जहाँ स्त्री, पुरुष का संस्कार कर रही है। 'एक रात' की नायिका अपने पुरुष मित्र को संस्कारित करते हुए कहती है – "जरूरी नहीं कि स्त्री-पुरुष के जिस्म हमेशा प्रार्थना में दो हथेलियों की तरह जुड़े। वे एक दुआ में दो हाथों की तरह अलग-अलग रहकर भी एक सनातन साथ में हो सकते हैं। आओं, हम हमेशा एक दुआ की तरह साथ रहें, प्रार्थना में जुड़कर अपना अस्तित्व समाप्त न करें।" (राय 63) सूरजप्रकाश की कहानी 'लहरों की बाँसुरी' में स्त्री-पुरुष दोनों एक दूसरे को संभालते नजर आते हैं। नायिका संस्कारित करते हुए कहती है – "अगर तुम कमजोर पड़ोगे, तो मैं तुम्हें संभालूँगी और कमजोर नहीं पड़ने दूँगी और अगर कहीं मैं पर गई, तो तुम मुझे संभाल लेना।" (प्रकाश)

प्रेम-काम के मामले में द्वन्द्व के पीछे केवल पुरुष उत्तरदाई नहीं, बल्कि स्त्री का रूढ़ हो चुका मन भी उतना ही उत्तरदाई है। इसका संकेत मनीषा पांडेय अपनी कहानी 'स्टारी-स्टारी नाइट्स' में मिताली के माध्यम से करवाती हैं – "हम एक ऐसे वक्त के शिकार थे, जहाँ हमने होश संभालते ही देह के उदात्त् संसार को भी शब्दों और सांसारिकता के चश्मे से ही देखना सीखा था। वो प्रेम का जाल बुन रहा था क्योंकि मैं चाहती थी कि प्रेम का जाल बुना जाए। उस जाल के भीतर मेरा रूढ़ स्त्री मन खुद को सुरक्षित महसूस करता था।" (पांडेय155) स्त्री का यह रूढ़ मन ही है जो चाहता है कि पुरुष उसके आगे प्रेम का जाल बिछाए और जब उसके अनुरूप ना रहे, तो छले जाने दुखड़ा रोए। दोनों की सहमति से बने इस संबंध में भी स्त्री द्वारा अपने को निर्दोष और पुरुष को दोषी ठहराना उसके रूढ़ मन का ही दोष है। ऐसे में स्त्री का अपने रूढ़ मन को समझाना ही सबसे ज्यादा जरूरी सुश्री शरद सिंह मानती हैं। वह लिखती हैं – "स्त्री क्या चाहती है? यह प्रश्न हर युग में सभी के मानस पटल पर उपस्थित रहता है। पुरुष इस प्रश्न का उत्तर ढूँढते रहते हैं और स्वयं स्त्रियाँ भी। मुझे लगता है कि पुरुषों से कहीं अधिक आवश्यक है स्त्रियों के लिए इस प्रश्न का उत्तर। जब तक वे स्वयं नहीं जानेगी, समझेंगी कि उन्हें क्या चाहिए, तो वे अपने अस्तित्व की अलग पहचान कैसे कर सकेगी? बड़ा ही कठिन विमर्श है यह।" (सिंह 7) शरद सिंह इसे विमर्श में कठिन विमर्श समझती है, क्योंकि हमारे यहाँ विमर्श की दिशा ही पुरुष को दोषी दिखाने में है, जबकि विमर्श को सही दिशा देने के लिए स्त्री के रूढ़ मन को स्त्रियों द्वारा समझना जरूरी है, जबकि ऐसा नहीं हो रहा, इसी कारण के. पी. प्रेमिला लिखती हैं – "स्त्रीपक्षीयता में अब भी आगे जाने की कामना है, शक्ति है, सुधार की गुंजाइश भी। इसलिए हमसफर बहिनों का दायित्व है इस मुकाम में वें 'पुरुष विनिर्माण' की सामाजिक ज्यादती छोड़ दें।" (प्रेमिला 35) अर्थात् पहले खुद के विसंगतियों, रूढ़ मन के संस्कार की जरूरत है, तभी पुरुष संस्कार संभव है। ऐसे में पुरुषों के साथ हो रही ज्यादती के कारण स्त्री-विमर्श के साथ ही पुरुष-विमर्श की भी संभावना बनती हैं। आज 21वीं सदी में अपनी रचनाओं में पात्रों के माध्यम से लेखिकाएँ विकलांग विमर्श की पोल खोल रही हैं और ऐसे संदर्भों को सामने रख विकलांग विमर्श के खिलाफ प्रतिरोध खड़ा कर रही हैं। अलका सिन्हा अपने उपन्यास के पुरुष पात्र के मुँह से जो कुछ कहलवाती हैं, विचारणीय है – "मगर आज के समय में पुरुषों को कोई दलील रखने का हक कहाँ है? वे तो स्त्री-विरोधी, स्त्री-शोषक हैं। उनसे कैसी सहानुभूति? कभी-कभी मन होता है कि पुरुष विमर्श पर भी कुछ लिखा जाना चाहिए, उनकी चिंताएं, उनके दबाव, उनका शोषण। स्त्रियों के लिए तो न जाने कितनी सरकारी-गैरसरकारी संस्थाएं लपककर खड़ी हो जाती हैं, मगर हमारे लिए कौन खड़ा होगा? जरा ना-नुकूर ही नहीं कि स्त्रियाँ विमर्श का झण्डा लेकर खड़ी हो गईं।"(सिन्हा 7) दूसरी ओर, मनीषा पांडेय अपनी कहानी 'स्टारी-स्टारी नाइट्स' में स्त्री विमर्श के नाम पर हर स्थिति में पुरुष को सामंती और गलत ठहरा कर स्वयं को अबला बताने की नारीवादी दृष्टि पर सवाल उठाती हैं – "मतलब की मर्द सामंती और शासक होते हैं, अपना अधिकार जताते हैं, औरत को संपत्ति समझते हैं, ये

व्याख्याएँ एकतरफा हैं। सच क्या सिर्फ इतना ही है। क्या औरते पुरुष को अपनी संपत्ति नहीं समझती? क्या वो अधिकार नहीं जताती? इतने दावे के साथ कैसे कह सकते हैं सामंती सिर्फ मर्द होता है, औरत नहीं।...आधा कहती है, सो बात पूरी नहीं समझती और जो बात पूरी नहीं समझती, तो उनके नतीजे बरगलाते हैं।"(पांडेय 143) प्रेम और सेक्स को लेकर स्त्रियों की चालबाजी पर भी सवाल करती है। उनकी कहानी की पात्रा मीनाक्षी कहती है – "औरत भी प्रेम में दस खेल करती है, पॉलिटिक्स रचती है और इस सबको प्रेम का नाम देती है।"(पांडेय 145) प्रेम में हुए सेक्स में अंतत: पुरुष को दोषी ठहरा देने की जो रूढ़ धारणा हैं वाबजूद इसके की मौजूदा समय में दोनों की इच्छा व सहमति से घटित हो, उसका भी विरोध करती हैं – "सबसे आसान तरीका है ये खुद को बहलाने और विश्वास दिलाने का कि वो एक कपटी आदमी था और मैं एक छली गई स्त्री।" (पांडेय 154) और नारीवादी प्रतिरोध के नाम पर चल रहे एकतरफा विकलांग विमर्श को ठेंगा दिखाती हुई मीनाक्षी से कहलवाती है – "नारीवादियाँ इस बात पर मुझे ठोंक-बजा सकती हैं, लेकिन मुझे नारीवादियों की परवाह नहीं।" (पांडेय154) यहाँ रुग्ण नारीवाद के विरोध में स्त्री-प्रतिरोध का स्वर खड़ा है। ऐसे में स्त्री-विमर्श को सही दिशा देने की जरूरत है। अगर स्त्री-विमर्श को ही सही दिशा दी जाए, तो अलग से पुरुष विमर्श की जरूरत नहीं, क्योंकि स्त्री और पुरुष में मालिक-मजदूर या जमींदार-किसान वाला संबंध नहीं है, दोनों को साथ-साथ चलना है, अत:अलग-अलग विभाजन कर समस्या का समाधान संभव ही नहीं हैं, बल्कि नई समस्याओं का ही जन्म होगा। स्त्री और पुरुष में विभाजन कर समस्या का समाधान संभव नहीं है, बल्कि समाधान के लिए स्त्री-विमर्श में पुरुष संदर्भ को देखना होगा, जिसे 21वीं सदी में स्त्रीवाद के अंतर्गत विमर्श को सही और संतुलित दिशा देने के लिए देखा जा रहा है।

2. 8. दांपत्य में प्रेम- काम का प्रतिरोधी स्वर –

स्त्री और पुरुष के बीच प्रेम और काम का संबंध विवाह के द्वारा सामाजिक स्वीकृति को प्राप्त करता है। विवाह के दो रूप प्रचलित है – १. प्रेम विवाह. २. सामाजिक विवाह। दांपत्य के कई पहलू होते हैं, पर उसका प्रस्थान स्त्री और पुरुष के बीच प्रेम और काम से है। एक स्त्री पत्नी के रूप में अपनी फैंटेसी के तहत प्रेम-काम संबंध में पति को जिस रूप में पाना चाहती है और उसे मिलता जिस रूप में है, वहीं एक पुरुष पति के रूप में अपनी फैंटेसी के तहत प्रेम-काम संबंध में पत्नी को जिस रूप में पाना चाहता है और उसने मिलती जिस रूप में है, यही अपेक्षित आचरण परस्पर पूरक ना होकर द्वंद्वमूलक बन जाता है और प्रतिरोध की सृष्टि होती है।

संस्कार में पुरुषों के नेचर (मनोवृति) को लेकर एक छवि विवाह तक स्त्री मानस में बन चुकी होती है। यह छवि स्त्री-देह के प्रति लोलुप पुरुष की होती है। पुरुष की देह लोलुपता का पति के आचरण में अनुभव मात्र ही दांपत्य प्रेम को स्त्री पक्ष में आहत करने के लिए पर्याप्त है, जबकि उसी समाज में एक पुरुष की नजर में स्त्री-

सौंदर्य और विवाह के ठीक बाद हनीमून के संस्कार से स्त्री की दैहिक छवि पुरुष मानस पर पूरी तरह हावी होती रहती है। इन दो अंतर्विरोधी सत्य से पति-पत्नी का दांपत्य कुछ दिनों तक ही काम में प्रेम का भ्रम पाले रखता है। स्त्री मन अपने अंग मात्र के प्रति लोलुप पति के प्रति वितृष्णा से भर रही होती है, तो दूसरी ओर बाजार द्वारा परोसे गए सेक्स आचरण का पत्नी में अभाव पाकर पति की रुचि पत्नी में कम ही नहीं, बल्कि कहीं और भी दिशा पकड़ लेती है। इसी तरह (पुरुष) पति द्वारा अपेक्षित सेक्स आचरण में मानसिक लगाव के अभाव को पाकर पत्नी भी कहीं अलग संबंध में संभावनाएं तलाशने लगती है। सीधे-सीधे कहा जाए, तो यह एक हद तक स्थापित सत्य बन चुका है कि पुरुष (पति) जहाँ सेक्स आचरण तक पहुंच पाता है, वहीं स्त्री (पत्नी) उस पुरुष से भावना के स्तर पर अपने मन को समझे जाने की उम्मीद पालती सफल दैहिक अभिनय करने के वाबजूद असंतुष्ट महसूस करती है। इस पृष्ठभूमि में रचनाकारों ने स्त्री स्वर में यौनिकता की अनिवार्य नैतिकता का उद्घोष किया है। कृष्णा सोबती की 'मित्रो' में इसे ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के तहत देख सकते है, जबकि उसी यौनिकता के चरम को प्राप्त करने और पत्नी को उपलब्ध कराने के क्रम में पुरुष के आचरण को पॉर्न तक सीमित बताने का स्वर रचा गया है। परंपरा में मृदुला गर्ग का 'चितकोबरा' के महेश के मनु के साथ के प्रसंग में यह विदित है। पुरुष के मन को समझने की बहुत सारी बातें नहीं होकर भी उसके विरोध में बहुत सारी बातें जरूर हुई हैं। मृदुला गर्ग ने न महेश के मन को समझने का प्रयास किया, ना जितेन का, न अवकाश के पुरुष पात्र का। हां, उसके विरोध में स्त्री-स्वर जरूर खड़ा कर दिया, लेकिन आज पुरुष मन को उसकी फैंटेसी के तहत समझने की कोशिश की जा रही है, तो स्त्री के रूढ़ मन पर भी चर्चा शुरू हो गई है। इस दिशा में दांपत्य का प्रतिशोध की जगह प्रगतिमूलक प्रतिरोधी तेवर विचारणीय है।

2. 8. 1. दांपत्य की अवधारणा –

दाम्पत्य स्त्री और पुरुष के बीच प्रेम और काम का सबसे निकट वाला मामला है, लेकिन अपनी विसंगतियों से भी ग्रसित है। इसी कारण दाम्पत्य को अनामिका वेश्यावृत्ति का पर्याय मानती हैं, जिसमें स्त्री की इच्छा कोई मायने नहीं रखती। दाम्पत्य के बारे में अपने विचार को अपने उपन्यास 'तिनका–तिनके पास' की अवंतिका मे माध्यम से रखती हैं, जो कहती है – "और, बेटी एक तरह की कॉलगर्ल हर औरत होती है...ब्याहता गृहस्थिन भी...कॉल गर्ल को तो छूट भी होती होगी कि हर 'कॉल' पर वह प्रस्तुत न हो, पर गृहस्थिन की क्या मजाल!"(अनामिका 64) विवाह संबंध में जिस काम में भी प्रेम की तलाश स्त्री करती हैं, वहाँ पुरुष अपने संस्कार के तहत 'काम' तक ही सीमित रह जाता है, इसी कारण स्त्रियाँ अपनी ही नजर में कॉलगर्ल महसूस करा दी जाती हैं। उसकी अपनी इच्छा मायने नहीं रखती। अवंतिका कहती हैं – "...औरत की देह इस दूधमुँहे का सबसे बड़ा लेमनचूस है और सबसे बड़ा झुनझुना औरत की मीठी बोली।" (अनामिका 65) एक

तरफ स्त्रीवाद स्त्री को केवल देह मानने के विरोध में है। वहीं, पुरुष की नजर में लेमनचूस और झुनझुना स्त्री का वस्तुकरण है, जिसके विरोध में लेखिकाएँ हैं। कानून की बात करें, तो हाई कोर्ट ने यह फैसला दिया है कि वैवाहिक जीवन में मर्जी के बिना भी संबंध बनाना अपराध नहीं है और धारा 497 में सुधार के बाद विवाह के बाहर सहमति से संबंध रखना व्यभिचार भी नहीं रहा।

जैनेंद्र भारतीय विवाह संस्थान के बारे में लिखते हैं — "समाज परिवार की इकाई से चलता है। परिवार विवाह से बनता है। विवाह से आशा की जाती है कि परस्पर पति-पत्नी होकर दोनों के लिए फिर अलग प्रेम की आवश्यकता नहीं रह जाएगी।"(जैनेन्द्र 96) जैनेंद्र विवाह को परिवार का आधार मानते हैं और पति-पत्नी के बीच प्रेम को इतना ही अधिक महत्व देते हैं कि उसमें किसी तीसरे की प्रेम की जरूरत ना महसूस हो। विवाह में प्रेम का महत्व स्वीकार करते हैं, तो प्रेम की परिणति और पूर्णत: विवाह के रूप में देखते हैं। वह लिखते हैं — "विवाह से प्रेम को अधिक महत्व देता हूं, क्योंकि वैयक्तिक-सामाजिक दोनों ओर से टिकाव के स्थल के रूप में विवाह को मैं आवश्यक मानता हूं।" (जैनेन्द्र कुमार 63) वहीं दूसरी ओर मैत्रेयी पुष्पा लिखती हैं – "जिस विवाह प्रथा का चलन हमारे यहाँ हैं, इसमें पहली ही रात सेक्स से शुरू होती है। क्या प्रेम में भी ऐसा होता है?" (पुष्पा 113) विवाह का प्रचलित संस्कार सेक्स है, जिसके तहत पहली रात ही पुरुष (पति) स्त्री से उसके शरीर की मांग कर बैठता है, जबकि अपने संस्कार के तहत स्त्रियाँ बिना मन के तन का समर्पण कर देती है। ऐसे में यही प्रेमविहीन वैवाहिक संबंध स्त्री के लिए पीड़ादायक बन जाता है। मैत्रेयी पुष्पा लिखती है – "मन से ज्यादा तन का समर्पण और उसकी मौन आवृत्ति बिना मन के उसका निरंतर समर्पण।" (पुष्पा 35) भारतीय विवाह पद्धति मन से ज्यादा तन का संपर्क है और उसकी ही बार-बार बिना मन की आवृत्ति होती रहती है, जो स्त्रीपक्ष में पीड़ादायक है। प्रेमविहिन वैवाहिक संबंध को मृदुला गर्ग आत्मपीड़न मानती हैं – "प्रेमहीन शरीर संबंध, जो भारतीय विवाह पद्धति की वास्तविक स्थिति है, भयानक आत्मापीड़न के अलावा कुछ नहीं।" (गर्ग ix) दूसरी ओर, अनामिका तो विवाह को वेश्यावृत्ति करार देने के साथ हर तरह के प्रणय संबंध तक को रेप मानती है – "विवाह के भीतर हो या बाहर ज्यादातर प्रणय-प्रक्रिया एक तरह का बलात्कार है और साधरण स्त्री का समूचा जीवन एक तरह का 'साइकिक रेप'।" (अनामिका 133) यहाँ अनामिका का मन रूढ़ संस्कार से ग्रसित है, जो प्रेम में मन को तो महत्व देती हैं, लेकिन तन की उपेक्षा करती है। प्रेम रहित विवाह के साथ प्रेम सहित काम को भी वह एक ही दृष्टि से, एक ही खाँचे में देख रही है। इसके पीछे अगर कुछ काम करता है, तो वह स्त्री का रूढ़ मन और उससे निर्मित फैंटेसी है। गीताश्री अपनी पुस्तक 'स्त्रीत्व का मानचित्र' में स्त्री के रूढ़ मन की ओर संकेत करती हैं और इसी रूढ़ मन का परिणाम है कि वैवाहिक संबंध हो या विवाह के बाहर प्रेम संबंध, स्त्रियाँ उसमें घटित काम में आनंद कम और वितृष्णा अधिक देखती हैं – "दरअसल, भारतीय स्त्री का यौन मनोविज्ञान बेहद जटिल रहा है। प्रेमविहीन विवाह और पितृसत्ता की जकड़नों में लंबे समय तक घुटती रही भारतीय स्त्री के लिए

यौन-सुख आनंद की सहज प्रक्रिया नहीं, बल्कि कामना का नीलकुसुम है, जो बहुत कम स्त्रियों को नसीब होता है|" (गीताश्री 110) ऐसे में वह अपने शर्त पर काम संबंध की तृप्ति चाहती है। कामनाओं की पूर्ति का माध्यम विवाह को मानती हैं। वैवाहिक जीवन में स्त्री फैन्टेसी उसके रूढ़ मन के कारण निर्मित होती है, तो बाजार द्वारा बने रूढ़ मन के द्वारा पुरुष फैंटेसी भी पत्नी (स्त्री) के प्रति निर्मित होती हैं, जिसमें स्त्री की भावनाओं की जगह देह को प्रमुखता दी जा रही है। निर्मित फैन्टेसी के प्रयोग की भूमि विवाह के बाद ही एक आम भारतीय पुरुष के जीवन में आता है। जगदीश्वर चतुर्वेदी लिखते हैं – "स्त्री का मांसपिंड में बदलना उसके भावों, विचारों, अनुभूतियों आदि से समाज को वंचित कर देता है। समाज में हम देखते हैं कि चारों और औरतों की इमेज छाई हुई है, किंतु औरत की अनुभूति और संवेदना के प्रति निर्वैयक्तिकता और संवेदनहीनता का विस्तार हुआ है। यही वर्चुअल औरतों की सबसे बड़ी उपलब्धि है।" (चतुर्वेदी119-120) यह वर्चुअल औरतें फेसबुक रिल्स से इंस्टाग्राम तक में मौजूद हैं, जो अपनी देह को बर्गर, पिज्जा और चिकन के रूप में परोसती हैं और देह को ही प्रमुख मानती हैं। ऐसे में भारतीय पुरुष की फैंटेसी का निर्माण होता है कि उसकी पत्नी भी उसके सामने ऐसे ही पेश आएगी और अपने प्रयोग की भूमि भारतीय पुरुष पत्नी में ही पाता है, लेकिन ऐसा होता नहीं है और यही आकर संबंध प्रतिरोधमूलक बन जाते हैं। राजकिशोर 'भारतीय पुरुष की वेदनाएँ' शीर्षक में लिखते हैं – "भारत में मध्यवर्गीय जीवन में रोमांटिक प्रेम नया स्वप्न है। अभी हाल तक पुरुष और स्त्री की दुनिया कितनी अलग-अलग थी, जो उनके बीच किसी किस्म के सामंजस्य की जरूरत महसूस नहीं होती थी।...लेकिन अब यह स्थिति बदल गई है। अब पत्नी से भी पुरुष की प्रेमी अपेक्षाएं बदली है और प्रेमिका से भी।" (राजकिशोर 125) इन बदलती अपेक्षाओं को जन्म सोशल मीडिया दे रहा है। एक की अपेक्षा दूसरे को अपनी उपेक्षा लगने लगती है। यहीं दांपत्य में तनाव की सृष्टि होने लगती है। दांपत्य रोटी, कपड़ा, मकान के बदले में मानसिक व शारीरिक गुलामी का पर्याय बन जाता है। 'कस्बाई सिमोन' की सुगंधा और 'औरत जो नदी है' की दामिनी के मन में विवाह संस्थान के प्रति घृणा इसी सोच का प्रतिफल है। ऐसे में समस्या के समाधान के लिए पति-पत्नी के बीच संवाद की जरूरत है। एक-दूसरे को गलत ठहराने की जगह एक दूसरे की फैंटेसी का संस्कार करने या उस स्थिति के अनुरूप हो लेने में है, लेकिन दांपत्य में ऐसा हो पाना संभव नहीं होता। अल्पना मिश्र की कहानी 'कथा के गैरजरूरी प्रदेश' की नायिका अरुंधति कहती हैं – "ना जगत के सपनों में सेंध का रास्ता, ना अपने सपनों में उनके आने के द्वार...मानों दो समानांतर रेखाएं हो, जो पास आने की कोशिश में बगल से गुजर जाती हैं, जिससे जुड़ कर भी देह नहीं जुड़ पाता।" (मिश्र 38) विचारणीय है कि पति-पत्नी के बीच ऐसा कौन-सा समीकरण है, जो उन्हें सहयोगी की जगह प्रतिद्वंदी बना देता है। शायद पति-पत्नी होना ही ट्रेजेडी के मूल में है। नीलिमा चौहान लिखती हैं – "हमें अपना मियां बीवी होना इस कदर रटा हुआ है कि हर दम चौकस और मुस्तैद रहते हैं। इस चौकसी के चक्कर में इश्क अगर कभी उगता भी है, तो हाथों-हाथ काफूर भी हो रहता है।" (चौहान 69)

हालांकि इसके पीछे व्यक्ति से अधिक विवाह नाम की रूढ़ संस्था ही दोषी है। जयश्री राय का उपन्यास 'औरत जो नदी है' की नायिका दामिनी कहती हैं – "शादी..... एक अनोखी संस्था है, जहां दो इंसान एक दूसरे में बंधे उम्र भर एक दूसरे को योजनाबद्ध तरीके से तोड़ते, खत्म करते रहते हैं, किस्तों में तिल-तिल कर...अद्भुत हिंसा है ये...रिश्तों के नाम पर...एक कैद।" (राय 88) दाम्पत्य स्त्री-पुरुष संबंधों के सबसे अधिक संवेदनशील रिश्ते पर बनता है, लेकिन यहाँ यदि जयश्री राय ने इसे अद्भुत हिंसा कहा है, तो इसका मतलब ही हैं कि दाम्पत्य अब किसी भावनात्मक संबंध का पर्याय नहीं रह गया है, इसलिए सैधांतिक रूप से दाम्पत्य कितना ही मधुर संबंध क्यों न करार दिया जाए, लेकिन अपने इस स्तर से दाम्पत्य स्खलित होता ही दिखता है और दाम्पत्य संबंध को बलात्कार आदि की सीमा तक पहुंचा दिया है, इसे कथा साहित्य ने बखूबी विषय बनाया है।

2. 8. 2. दांपत्य में पुरुष के प्रति स्त्री दृष्टि (प्रेम-काम के मामले में) –

दांपत्य में पुरुष के प्रति स्त्री का नजरिया उसके काम आचरण के कारण निहायत घटिया और विद्वेषी रहा है। यदि दांपत्य के प्रस्थान का प्रथम बिंदु ही स्त्री और पुरुष के बीच प्रेम और उससे भी अधिक काम संबंध की स्थापना और संतान की उत्पत्ति तक की है, किंतु देखा यही जाता है कि अपने इसी काम संबंधी आचरण के कारण एक पति अपनी पत्नी की नजर में सदैव काम कीड़ा ही नजर आता है, तो दूसरी और पत्नी की कामेच्छा को पूरा न कर पाने की स्थिति में पत्नी के साथ-साथ पूरे समाज की नजर में नामर्द या सेक्स मरीज़ ना साबित हो जाए, इससे भयभीत। मधु कांकरिया की कहानी 'नामर्द' में इस पर विचार हुआ है। जहां सोनू सोचता है – "दुनिया में सिर्फ एक ही सच्चाई है...प्यार के सारे संबंध, सारे विशेषण उसी एक बिंदु पर टिके हैं...और कहीं सचमुच ही वह खड़ा नहीं उतर पाया उस मूल बिंदू पर तो..." (कांकरिया 19) यहाँ पर पुरुष के दिमाग में वह बिंदू क्या है? यह बिंदू स्त्री की कामेच्छा को तृप्त करना है, क्योंकि अगर वो ऐसा नहीं कर पाया, तो ये विचार ही उसे परिवार, समाज के सामने मजाक का पात्र बना देगी, उसका जीवन दूभर हो जाएगा। जैसा कि कहानी में सोनू के साथ हुआ। इस स्तर में प्रेम और काम के संबंध में पुरुष के लिए तीन स्तर पर चुनौती हैं - १. पहला पत्नी के कंसेंट को ध्यान में रखकर उसके साथ संबंध में आगे आए। २. समाज में अपने सेक्स आचरण के कारण नामर्द होने के कलंक से बचें। ३. पत्नी के सामने शर्मिंदा ना हो जाए इसकी मानसिक लड़ाई। पहली स्थिति में पुरुष के लिए काम संबंध आनंद की जगह एक कार्य के रूप में है, बाकि दो स्थिति में पुरुष द्वारा किया गया आचरण पत्नी की नजर में कभी भी उसे पशु-तुल्य बना दे सकता है, जिसकी पृष्ठभूमि 'चितकोबरा' में मनु-महेश के प्रसंग में है, तो 21वीं सदी में अल्पना मिश्र की कहानी 'हे अहिल्या', 'कथा के गैरजरूरी प्रदेश में' यादवेंद्र शर्मा 'चंद्र' की कहानी 'पिछला दरवाजा', गीताश्री की कहानी 'ताप', मधु कांकरिया की कहानी 'नामर्द', अनामिका का उपन्यास 'तिनका-तिनके पास', विनोद भारद्वाज का उपन्यास 'एक सेक्स मरीज़ का रोगनामचा' में है।

दांपत्य में पुरुष (पति) के प्रति स्त्री मन में बनी रूढ़ छवि गीताश्री के 'गोरिल्ला प्यार' व शरद सिंह के 'कस्बाई सिमोन' में स्पष्ट नजर आता है। 'गोरिल्ला प्यार' की अर्पिता की नजर में पति दकियानूसी सामंती प्रकृति का होता है, तो कस्बाई सिमोन की सुगंधा के अनुसार – " 'पति' बनते ही पुरुष अधिकारों से इस तरह भर जाता है कि उसके विचारों का आकार-प्रकार ही बदल जाता है। जिस औरत पर वह जान छिड़कता था, जिस औरत के पांव में कांटा चुभने पड़ टीस उसके दिल में उठती थी, उसी औरत को मारने-पिटने का अधिकार उसे मिल जाता है और वह इस अधिकार का प्रयोग करने से भी नहीं चूकता है। इस अधिकार को वह अपनी मर्दानगी का पर्याय मान लेता है,..बाहुबल को ही मर्दानगी कहते हैं।" (सिंह 64) इसी रूढ़ छवि का परिणाम है कि अपने काम मिश्रित प्रेम संबंधी आचरण में भी एक पुरुष निहायत कमीना ही नजर आता है। पुरुष (पति) स्त्री तन पर अपना अधिकार चाहता है, तन से मन तक पहुंचना चाहता है, तो एक स्त्री तन से अधिक महत्व अपने मन को देती हैं। यहीं द्वंद्व की सृष्टि होती हैं। कहानी 'पिछला दरवाजा' की पत्नी पति के बारे में उसके आचरण को लेकर जो सोचती है, इसी विपरीत चाहना का परिणाम है – "यह आदमी मेरा पति नहीं, एक गिद्ध है। कच्चे मांस को नोंचने वाला गिद्ध...वह पति नहीं, एक मरी हुई मछली का ग्राहक है...वूमन ईटर।" (चंद्र122-23) विवाह पूर्व पति-पत्नी के संबंध को लेकर जिस फैंटेसी का बीज़ स्त्री-पुरुष के मन में समाज द्वारा बोया जाता है, उसमें पुरुष के लिए पत्नी के रूप में बिस्तर की साथी और स्त्री के लिए पति के रूप में मन का साथी मिलने की आशा जुड़ती है। अर्थात् दोनों के संस्कार न केवल अलग हैं, बल्कि विपरीत भी हैं। ऐसे में किसी एक पक्ष का 'इद्' पूरा होता है, तो सामने वाले का 'अहम्' आहत करता है और जब 'इद्' अतृप्त रहता है, तब भी 'अहम्' कुंठित होने लगता है। इन दोनों ही स्थिति का प्रभाव दांपत्य में चिरकालीन पड़ता है। 'पिछला दरवाजा' में पति अपने 'इद्' की तृप्ति कर रहा है, इसलिए पत्नी का 'अहम्' घायल हो रहा है। ऐसे में पति की छवि पत्नी की नजर में वुमन ईटर की बनती है। गीताश्री की कहानी 'ताप' की मां ऐसे संबंध को ड्यूटी के रूप में देखती हैं और अपनी बेटी से कहती है – "मैं थक गई हूं...सारी जिंदगी एक ही काम करते करते...मुझसे ये ड्यूटी नहीं निभाई जाती।" (गीताश्री 91) तो 'तिनका-तिनके पास' की अवंतिका पति की तुलना भेड़िया से करती है – "दस भेड़िए के साथ रहने से अच्छा है एक भेड़िए के साथ रहा जाए।" (अनामिका59) अर्थात् बाहर का पुरुष और दाम्पत्य का पुरुष दोनों के प्रति एक नजरिया है। दोनों ही देह लोलुप होते है। गीताश्री की 'ताप' में एक तरफ (पति की तरफ) ताप कम नहीं हो रही और दूसरी तरफ (पत्नी की तरफ) कभी ताप आ ही नहीं पाई। यहाँ स्त्री के जिस प्रकार के प्रतिरोध को कहानी में दर्ज किया गया है, उस प्रतिरोध के प्रति हमारा क्या नजरिया होगा कि यह स्त्री की अपनी सामर्थ्यहीनता है या पुरुष का अधिक कामुक होना। यहाँ स्त्री प्रतिरोध का जो स्वर रचा गया है, उसमें सीधे-सीधे पुरुष की अति कामुकता दिखाई गई है, लेकिन दूसरी ओर पत्नी द्वारा कहना कि 'ये काम ड्यूटी रही और सारी जिंदगी एक ही काम करते-करते थक गई है' विचारणीय बन जाता है कि क्या उस स्तर पर वो काम करती रही,

जिससे उसके दाम्पत्य का पुरुष तृप्त हो पाए। क्या सचमुच पत्नी द्वारा ऐसा कोई भी प्रयास दाम्पत्य को सुखी बनाने के लिए किया जाता भी है? और जब नहीं किया जाता तो पुरुष की इस छवि के प्रति हमें नजारियाँ बदलने, संस्कारित करने की जरूरत है। अन्यथा यह सोच धीरे-धीरे प्रतिरोध को प्रतिशोध में बदल देती है।

एक स्त्री पति से मन की कामना सबसे पहले करती है। उम्र के हर पड़ाव में भावनात्मक सपोर्ट जाती है। 'हे अहिल्या' की मि• दासानी और मिसेज दासानी का संबंध हो, 'ताप' की मां-पिता के बीच का संबंध, 'कथा के गैर जरूरी प्रदेश' के जितेन व अरुंधति या 'पिछला दरवाजा' का पति-पत्नी के बीच के संबंध के द्वंद्वमूलक होने का बड़ा कारण यही है। मि• दासानी मिसेज दासानी को रानी बहुला की कहानी सुनाते हुए कहते हैं कि पति को अपने करीब न आने देने के कारण बहुला का पति उसे जंगल में अकेले छोड़ देता है। इस प्रसंग को रखने का उनका उद्देश्य मिसेज दासानी को ऐसा करने से रोकना है, तब मिसेज दासानी तुरंत कहती हैं – "राजा को बिना मन के करीब पहुंचे, तन मन दोनों चाहिए था,है न!" (मिश्र 116) मिसेज दासानी का ये कथन बिना मन के शारीरिक निकटता का प्रतिरोध दिखाता है। मिसेज दासानी पति के साथ भावनात्मक संबंध चाहती हैं, पर पति का आचरण पीड़ादायक बनता है। यहीं पति मन से उतर जाता है – "सोचती हूं, उनकी छाती पर सिर रखकर थोड़ी देर तक आराम करूं, पर वह बिल्कुल किलक उठते हैं और बेतहाशा चूमने लगते हैं। इस प्रेम को वे थोड़ी-सी समझ...स्वतंत्रता से, स्वस्थ और पौष्टिक क्यों नहीं बना देते।"(मिश्र 116-167) दाम्पत्य को पौष्टिक बनाने में पुरुष असमर्थ दिखता है, जबकि स्त्री की अपेक्षा यही है कि वह इसे पौष्टिक बनाए। ऐसे में निराशा प्रतिरोध तो खड़ा करेगी ही।

'पिछला दरवाजा' की नायिका भी अपनी फैंटेसी के तहत पति के जिस आचरण की कल्पना करती है और जब उससे विपरीत पाती है, तो उससे मुक्त होना चाहती हैं। 'कथा के गैर जरूरी प्रदेश में' की अरुंधति भी पति जितेन से मन को समझने की उम्मीद करती है, पर ऐसा होता नहीं है। लेखिका अरुंधति के शब्दों में लिखती हैं – "कभी जब मन करता है उनका, तो वो दिन-रात नहीं देखते, बस, बिना किसी भूमिका या संकेत के अचानक अरुंधति की तरफ मुड़ते हैं और अपनी मनमर्जी करके शांत हो जाते हैं। कभी महीनों अपने को आजमाते रहते हैं...कूढ़ती रहती है अरुंधति।" (मिश्र 37) और अरुंधती के विरोध करने पर कहता हैं – "शादी किसलिए की है"...कहते हुए बिना उनकी प्रतिक्रिया का इंतजार किए अपनी इच्छा पूर्ति करके सो जाते हैं और फिर जगती रह जाती है।" (मिश्र 37) यानी पति के लिए विवाह का मतलब ही काम इच्छा की पूर्ति है, जबकि स्त्री उससे पहले अपने सपने व अपने साथी के सपने में सेंध लगाना चाहती है। यही कारण है कि जगत के साथ शारीरिक संबंध में जाने के बावजूद अरुंधति को लगता है कि जगत ने उसे छुआ ही ना हो "...कुंवारी रह गई है वे अब तक" (मिश्र 37) इसी असंतुष्टी का परिणाम है कि पत्नियों के लिए संबंध ड्यूटी में बदल जाते है और एक उम्र पर आकर जब पत्नी भावनात्मक संबंध की मांग करती है, तब भी सेक्सुअल इच्छा की मांग पति करता रहता

है और यही माँग पति को पत्नी की नजर में गिरा देती है। 'ताप' कहानी की मां अपनी बेटी से कहती है – "सालो से एक ही काम, ड्यूटी की तरह करते-करते...चाहे मन हो या ना हो...उनकी मर्जी चलती है...मैं अब खुद को नुचवा नहीं सकती...खाल ही बची है।" (गीताश्री 89) ऐसे में पुरुष के प्रति स्त्री का नजरिया तीन तरीके से विकसित होता है-१. पहला सामाजिक व आर्थिक सुरक्षा के लिए स्त्री अपने 'इद्' को आहत कर पति के 'अहम्' की पूर्ति इसलिए करती है, ताकि सामाजिक और आर्थिक सुरक्षा मिलते रहे। 'तिनका-तिनके पास' की अवंतिका कहती है – "दस भेड़िए के साथ रहने से अच्छा एक भेड़िए के साथ रहा जाए।" (अनामिका 59) मधु कांकरिया की कहानी 'दरअसल मम्मी' में भी मम्मी, पापा के साथ, उनके सामने झुकती है तो बंटी के इलाज के लिए। बेटी के शब्दों में – "दरअसल मम्मी बंटी के चलते कुछ ज्यादा ही दबती है डैडी से...।"(कांकरिया 124)

२. दूसरा पति को टुच्चा, कुत्ता समझ मन से अलग होकर तन उसके सामने फेंक देना। जैसा कि 'पिछला दरवाजा' और 'हे अहिल्या' की नायिका करती है। 'पिछला दरवाजा' की नायिका सोचती है – "फिर दुम हिलाता आ जाता है। मैं अपने देह का एक टुकड़ा काटकर उसके सामने फेंक देती हूं।" (शर्मा 125) 'हे अहिल्या' की मिसेज दासानी कहती है– "आखिरकार मैंने छोड़ दिया अपने को और वे कुछ भी कर सकने की ताकत में है। वे तृप्त होकर उठे और मैं? मैंने अपनी साड़ी कपड़े ठीक किए, बाल संवारा और उनके साथ बाहर आ गई।"(117) परंपरा में दांपत्य में मन और तन का अलग होना मृदुला गर्ग ने भी 'चितकोबरा' में दिखाया है, पर वहाँ मनु महेश का साथ देती है, मृदुला गर्ग महेश को खल पात्र नहीं बनाती, पर 21वीं सदी के साहित्य में पुरुष को अपने इस कामुक आचरण के कारण ना केवल पत्नी की नजर में, बल्कि परिवार की नजर में भी खल पात्र ही बनाया गया है। कहानी 'ताप' में बेटी शालू पिता को भेड़िया समझती है, तो सास दामाद को कहीं ना कहीं वुमन ईटर ही मानती है।

३. तीसरा, पति की फैंटेसी में प्रवेश कर उसकी संतुष्टि और उसके मनोविज्ञान की समझे, जैसा कि 'कथा के गैर जरूरी प्रदेश में' की अरुंधति चाहती है। ऐसे में पति-पत्नी के बीच सेक्स संवाद ही समस्या का समाधान है, लेकिन हमारी सामाजिक व्यवस्था में दोस्तों के साथ सेक्स पर बातें हो सकती है। प्रेमी-प्रेमिका के बीच इसे विषय बनाया जा सकता है, परंतु पति-पत्नी के बीच इसे बात का विषय ही नहीं बनाया जाता है। जिस समाज में सेक्स समस्या को पुरुष अपनी पत्नी के साथ साझा नहीं करता। इलाज के लिए पति-पत्नी साथ नहीं जाते, वहां सेक्स फैंटेसी पर बात करने की सोचना और पत्नी द्वारा इसे समझना बड़ा कठिन सवाल है। प्रेमिका के सामने अपनी फैंटेसी को रखना एक प्रेमी के लिए जितना ही आसान है, पत्नी के सामने उसे रख पाना उतना ही कठिन क्योंकि यह संबंध ही इतना विचित्र है। शायद यही कारण है कि अरुंधती कहती हैं – "न जगत के सपनों में सेंध का रास्ता, न अपने सपनों में उनके आने के द्वार" (मिश्र 38) यहीं संबंध द्वंद्वमूलक हो जाता है। अल्पना

मिश्र अरुंधती के विचार को लेकर आगे लिखती है – "मानो दो समानांतर रेखाएं हों, जो पास आने की कोशिश में बगल से गुजर जाती है, जिससे जुड़ कर भी देह जुड़ नहीं पाती।" (मिश्र 38) जिसका परिणाम है कि दांपत्य में द्वंद्व व प्रतिरोध की सृष्टि होती है।

इस प्रकार वैवाहिक जीवन में स्त्री दृष्टि में पुरुष छवि उसके कामुक आचरण को लेकर इतनी अधिक रूढ़ हो चुकी है कि इस मामले में पुरुष को निहायत गिरा हुआ मान लिया जाता है। पुरुष (पति) के आचरण में काम को लेकर असंतुष्टि के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण का अभाव ही, उसके काम आचरण के प्रति पत्नी को उसका विरोधी बना देता है। ऐसे में जिस प्रेम और काम संबंध को सुचारु व स्वस्थ बनाए रखने की दृष्टि को लेकर दाम्पत्य संबंध की उत्पत्ति हुई, उसके भीतर ही प्रेम और काम का मामला सबसे ज्यादा असन्तुष्ट और दमित नजर आने लगा। ऐसे में दाम्पत्य में पुरुष आचरण को लेकर स्त्री की रूढ़ सोच का परिष्करण जरूरी है, वरना इससे उत्पन्न असंतोष और उससे पनप रहा प्रतिरोध बोध हीन होकर प्रतिशोध की दिशा पकड़ लेगा।

2. 8.3. दांपत्य में स्त्री के प्रति पुरुष दृष्टि (प्रेम-काम के मामले में)

साधारणत: दाम्पत्य में पुरुष के प्रति स्त्री के प्रतिरोध को दर्ज करने में स्त्री-विमर्श मशगूल रहा है, लेकिन रचनाकारों ने दाम्पत्य मे स्त्री के प्रति पुरुष नजरिए को भी रखा हैं, जहां एक प्रतिरोध निर्मित होता है। भारतीय विवाह का संस्कार ही है, जहां अपनी काम-तृप्ति के लिए पत्नी से जोर-जबरदस्ती व सुहागरात के साथ बलात्कार चलन में हैं, आज तो कानून भी इसके पक्ष में है। हालांकि इन सारी प्रतिकूलता के बावजूद 21वीं सदी की रचनाओं में पुरुष के प्रति इस रूढ़ छवि का परिष्करण देखने को मिल रहा है, साथ ही बदलता हुआ पुरुष भी नजर आ रहा है, जो पत्नी का कंसेंट, उसकी इच्छा को भी महत्व दे रहा है। 'पिछला दरवाजा' में पत्नी द्वारा पति पर 'वुमेन ईटर', 'मरी हुई मछली का ग्राहक' होने का इल्जाम जरूर लगता है, पर पहले की पुरुष की तरह वह हर हाल में जोर-जबरदस्ती कर अपनी इच्छा पूरी नहीं कर लेता, बल्कि पत्नी से पूछता है – "कमरे में चलोगी?" (शर्मा 123) और जब पत्नी मना करती है, तो शारीरिक बल के आधार पर उसके साथ जोर जबरदस्ती नहीं करता, बल्कि उसके द्वारा लगाए गए लांछन को सुनकर या तो पीठ करके सो जाता है या चला जाता है। पत्नी खुद स्वीकारती है – "पति होने का दावा पेश करता। मैं उसे अस्वीकार करती हूं। लांछन लगाती हूं कि वह पति नहीं, एक मरी हुई मछली का ग्राहक है। वूमन ईटर है।...मैं उसे बताती हूं कि देवदास आने वाला है। अपमान में दग्ध हो कर चला जाता है। ऐसे कई बार जाता है।" (शर्मा 123) बदलते पुरुष का चित्रण, स्त्री-विमर्श को 21वीं शताब्दी में एक जरूरी प्रतिरोधी आयाम उपलब्ध कराता है। एक स्त्री की ओर से स्वयं कथा नायिका प्रतिरोधी नजरिया तैयार कर रही है। यह स्त्री समाज की आत्मस्वीकृति है। कथा-साहित्य में स्त्री की आत्मस्वीकृति के ऐसे प्रसंग पहले नहीं थे, पर अब आ रहे हैं । अल्पना मिश्र की कहानी 'कथा के गैर जरूरी

प्रदेश में' पति जगत पत्नी अरुंधति के साथ शारीरिक संबंध में है, जिसमें अरुंधति कई बार मन का अभाव पाती है, पर जगत उसके साथ हर बार जोर-जबरदस्ती नहीं करते क्योंकि जब वो स्वप्न दोष के कारण जग जाते हैं और अरुंधति को जगाकर बतलाते है, तब अरुंधति बेपरवाह हो भूलकर सोने की सलाह देती हैं, उस समय वह केवल इतना कहते हैं– "भूलकर क्यो? देती नहीं हो, तो यही होगा?" (मिश्र 37) पहले पुरुष इस तरह मांग नहीं करता था, अपनी इच्छा होती थी, उसे पूरा कर लेता था, परंतु अब स्त्री के कंसेंट, कम से कम उसकी इच्छा का ध्यान पति द्वारा रखा जा रहा है, जो पत्नी के प्रति उसके बदलते नजरिए का ही परिणाम है। यहां ध्यान देने की बात है, यद्यपि जगत की मांग अपनी पत्नी से अनुचित नहीं है। पुरुष अपनी पत्नी से इस मांग को नहीं रखेगा, तो और किससे करेगा, लेकिन अरुंधति के मन में उसके लिए तार नहीं जुड़ पाते। वह खुद सोचती हैं – "जगत के छूते ही उनके मन के सारे तार टूट जाते हैं, सारी इच्छाएं मर जाती है।...बस, यह आदमी नहीं।" (मिश्र 38) यद्यपि जगत के प्रति इस वितृष्णा का दोषी जगत कम और वह स्वयं, बचपन में उसके साथ घटी घटना और स्त्री फैंटेसी के तहत निर्मित मन अधिक है। जहां वह अपने परिचित तरीके से प्रेम चाहती हैं। वह सोचती है – "इच्छा होती है कोई प्यार से उन्हें देखें। आंखें, आंखों से मिलाकर ठहर जाएं। कोई, जो धीरे से छुए, धीरे से उसकी नाक पर अपने होंठ रख दे, उसकी गर्दन, उसके कंधे, उसकी पीठ, उसकी देह के एक-एक रोम छिद्र पर...किसी की गर्म सांस सिहरा जाए। कोई देर तक, बहुत देर तक उसके साथ हो...जाने कैसे दिल के भीतर उगी प्रेम की है पागल इच्छा।" (मिश्र 38) जगत का प्रेम का तरीका उसके परिचित दायरे के तरीके में नहीं है, इसलिए उसका स्पर्श उसे लिजलिजा लगता है। सुश्री शरद सिंह और मनीषा पांडे प्रेम-काम मामले में स्त्री के रूढ़ मन की बात करती हैं और स्त्री को अपने मन को समझाने की बात रखती है, वह अरुंधति पर पूरी तरह लागू होती है। उसे अपने मन को समझाना होगा, ना कि पति के आचरण के कारण उसको दोषी ठहराना होगा, क्योंकि सेक्स की इच्छा अरुंधति में भी है और कहानी के अंत तक सोलो सेक्स करती है, पर जगत के साथ आगे ना बढ़ पाना पति के प्रति निर्मित रूढ़ छवि का ही परिणाम है। ऐसी स्थिति में ये कहानी पुरुष की ओर से पत्नी के प्रति प्रतिरोधी स्वर निर्मित करती है।

हमारे समाज का चलन है कि पति की इच्छा की पूर्ति में पत्नी की असमर्थता दिखाना, प्रेम-काम के मामले में पति को ही गलत दिखाता है और सहानुभूति स्त्री पक्ष में बन जाती हैं। इसके विपरीत, प्रेम-काम के मामले में पत्नी की इच्छा की पूर्ति में पुरुष का असमर्थता दिखाना उसके लिए बदनामी का सबब ही बनता है। एक तरफ गीताश्री की कहानी 'ताप' तो दूसरी तरफ मधु कांकरिया की कहानी 'नामर्द' और 'बड़ा पोस्टर' इस दिशा में उल्लेखनीय है। 'ताप' में 65 वर्षीय पति 60 वर्षीय पत्नी से सेक्स की पूर्ति चाहता है। पत्नी से सहयोग न मिलने पर उनका आपसी संबंध तो संबंध बिगड़ता है, लेकिन इसे लेकर जो नजारियाँ पेश किया गया है, खुद उसकी बेटी के सहकर्मी और बेटी के पति संजय द्वारा उसमें दाम्पत्य में स्त्री के प्रति एक प्रतिरोध ये भी दिखाई

पड़ता है कि आखिर स्त्रियाँ क्यों नहीं काम संबंध को चाहती है। यदि वो भरपूर चाहती, तो समय पर वो जरूरते पूरी हो जाती, लेकिन चाहना के अंतर व न चाहने के कारण ये हो नहीं पाता। ऐसे में अपनी पत्नी से भी इस जरूरत की पूर्ति की मांग की एवज में पुरुष परिवार, समाज हर जगह चरित्र से गीर जाता हैं। कहानी 'ताप' में बेटी जब अपने पति को बतलाती है उसका सहकर्मी विप्लव अपने पिता के लिए लड़की की व्यवस्था कर रहा है, तब बेटी का का पति संजय उससे कहते हैं– "इसमें हैरान होने की कौन सी बात है...कहां जाएगा...औरतें जल्दी बूढ़ी हो जाती है, इसलिए तो कहते हैं, शादी के लिए एक गैप जरूरी होता है...।" (गीताश्री 88) संभोग तभी संभव है जब इच्छा दोनों में बनी रहे और दोनों समान रूप से आनंदित हो, लेकिन पति की जरूरत का बने रहना और पत्नी की जरूरत का समाप्त हो जाना या इसके विपरीत, पत्नी की जरूरत का बने रहना और पति की जरूरत का समाप्त हो जाना समस्या का कारण बनता है। ऐसे में जरूरी है कि समय रहते इसकी आपूर्ति हो, लेकिन सच्चाई यह है कि पत्नी ऐसे संबंध का निर्वाह भी ड्यूटी के तौर पर करती हैं। ताप में मां कहती हैं – "मैं थक गई हूं...सारी जिंदगी एक ही काम करते करते हैं...मुझसे यह ड्यूटी नहीं निभाई जाती।" (गीताश्री 91) जिसका परिणाम है कि पति असंतुष्ट है और उसके लिए बेटी द्वारा कॉलगर्ल की व्यवस्था कराई जा रही है। मां कहती हैं – "अपने पापा के लिए एक लड़की का इंतजाम कर दे...।" (गीताश्री 87) जो कॉल गर्ल अंनत: पिता के बारे में कह जाती है – "बेहतर है उनके दिमाग का इलाज करवा दो...सब ठीक हो जाएगा...दी डेजायर इज स्ट्रांग, बट दी फ्लेश इज वीक (वासना मजबूत, देह कमजोर)...।" (गीताश्री 95) वास्तव में यहां समस्या के समाधान के लिए पिता के दिमाग के इलाज की जरूरत नहीं, बल्कि मां के दिमाग के इलाज की जरूरत है, जिसने जिंदगी भर इस संबंध को ड्यूटी समझा और अब उसी के पदचिन्ह पर बेटी भी है। यही कारण है कि अपने पति संजय के आने पर उसका चेहरा उतर जाता है। मां कहती हैं – "अभी ही देखती हूं...संजय जब टूर से लौटता है तो तेरा चेहरा क्यों चमकने के बजाय उतर आता है।" (गीताश्री 92) यानी मां ने जो किया, बेटी भी वही कर रही है, ऐसे में बेटी का पिता के रूप में, बेटी के पति संजय जैसे पुरुष (पति) का भविष्य है। अतृप्ति के कारण उसकी भी भविष्य में ऐसी ही स्थिति होने वाली है। यहां गीताश्री ने अप्रत्यक्ष रूप से स्त्री के रूढ़ मन का प्रतिरोध रचा है, जो संभोग को भी ड्यूटी मानती है और जिसका परिणाम शालू के पिता जैसे पुरुष के जीवन की नियति बन जाती है। हमारे समाज में स्त्री मन की यह एक रूढ़ धारणा है कि उम्र बीत जाने पर सेक्स की इच्छा भी मिट जाएगी, जबकि सेक्स का संबंध व्यक्ति की तृप्ति से है और अगर तृप्ति समय रहते न हो, तो इच्छा विकृति में भी बदल सकती है, जिसका परिणाम समाज में घट रही बहुत सारी अवांछित घटना है। जिस कारण बुजुर्गों के बारे में कालगर्ल कह जाती है — "दी डेजायर इज स्ट्रांग, बट दी फ्लेश इज वीक (वासना मजबूत, देह कमजोर)...।" (गीताश्री 95) मृदुला गर्ग प्रेम-काम मामले में लिखती हैं – "शरीर संबंध के माध्यम से वह एकात्मक मिलन प्राप्त होता है, जिससे पुनः शरीर संबंध स्थापित करने के लिप्सा स्वत: हो जाती है।" (गर्ग ix)

इच्छा का समाप्त हो जाना ही तृप्ति है और अगर समय रहते इसकी तृप्ति नहीं होती, तभी ऐसी विडंबना पैदा होती है। यहां पति अपनी 'इद्' की पूर्ति कर रहा है जिस कारण पत्नी का 'अहम्' घायल हो रहा है, वही दूसरी ओर मधु कांकरियाँ की कहानी 'बड़ा पोस्टर' में जब पत्नी मालविका का 'काम' के मामले में 'इद' की पूर्ति नहीं होती, तो उसका 'अहम्' घायल होता है, जिसका परिणाम पूरे परिवार को भोगना पड़ता है। मधु कांकरिया लिखती है – "परिवार में एक भी सदस्य यदि अतृप्त और असंतुष्ट है, तो वह पूरे परिवार को ही अपने प्रतिशोध व प्रतिहिंसा की ज्वाला में झोंक सकता है।" (कांकरिया 115) 'बड़ा पोस्टर' में पत्नी मालविका की सेक्स इच्छा की पूर्ति पति शैरेन नहीं करता, जिसका परिणाम देवर दीपू को झेलना पड़ता है। अंतत: मानसिक रोगी बन पागलखाने पहुंचना पड़ता है। अलका सिंह अपने उपन्यास 'जीमेल एक्सप्रेस' में धमेजा के मुंह से कहलवाती है – "भूख तो भूख है, इसमें पुरुष भूख या स्त्री भूख का क्या मतलब है? यह तो हो सकता है कि पुरुष की भूख जहां चार रोटी खाकर मिलती है, वहीं स्त्री की भूख दो रोटी से मिट जाती है, मगर भूख तो दोनों की होती है।" (सिन्हा 139) मालविका के अंदर भी वह भूख है। वह तरह-तरह से प्रयास करती है उसका पति उसकी भूख को शांत करें, हालांकि पति अपनी पत्नी को सेविका के रूप में पाना चाहता है, जहां वह उसके बीमार भाई की देखभाल करे। यहाँ जैनेन्द्र ने प्रेम-काम के मामले में लक्ष्य-उपलक्ष्य की जो बात कही है कि उपलक्ष्य पूरा न होने पर लक्ष्य भी चूकने लगता है, नजर आता है। पति का उपलक्ष्य पत्नी से सेविका को प्राप्त करना है, तो पत्नी का लक्ष्य काम की पूर्ति है। ऐसे में लक्ष्य-उपलक्ष्य में अंतर होने के कारण पति-पत्नी एक-दूसरे की इच्छा की उपेक्षा करते है। पत्नी की शारीरिक जरूरत अतृप्त रह जाती है, जिस कारण परिणाम भयानक निकलता है और प्रतिरोध के नाम पर प्रतिरोध का जो तरीका वह निकालती है, वह प्रतिशोध बनकर मात्र रह जाता है। देवर दीपू की वजह से उसकी इच्छा अतृप्त है इसीलिए उसी दीपू को परिवार से विलग करवा देती है।'बड़ा पोस्टर' में कामेच्छा की पूर्ति ना हो पाने का परिणाम शैरेन के परिवार को भोगना पड़ा, वहीं कहानी 'नामर्द', उपन्यास 'एक सेक्स मरीज़ का रोगनामचा' में पूर्ति ना कर पाने का आतंक झेलता पुरुष है। सोनू सोचता है – "उसे लगता दुनिया में सिर्फ एक ही सच्चाई है...प्यार के सारे संबंध, सारे विशेषण उसी एक बिन्दु पर टीके हैं...और कहीं सचमुच खड़ा नहीं उतर पाया उस मूल बिन्दु पर तो..और इस तो ने उसके अंतरंग क्षणों को कभी प्रतिशोध के क्षणों में तो कभी अपने दरकते आत्मविश्वास् के क्षणों में बदल दिया।" (कांकरिया 19) अपनी विकलांगता के कारण यह डर घर कर जाता है कि पत्नी की पूर्ति वो कर पाएगा या नहीं और पूरा ना कर पाने के आतंक में गलत कर बैठता है और फिर कभी मुंह दिखाने लायक ना समझ चला जाता है। "कहते है बाद में सोनू फिर कभी उस शहर में दिखाई नहीं पड़ा था।" (कांकरिया 19) पुरुष अतृप्त होकर आचरण करे, तो उसका प्रतिरोध किया जाता है, लेकिन स्त्री अगर अतृप्त होकर आचरण करें, तो विमर्श उसका प्रतिरोध नहीं करता, लेकिन 21वीं सदी में ये

काम हो रहा है। मतलब साफ है प्रतिरोध को स्त्री-पुरुष खांचे में बाँटकर देखने की जगह अब उसे समग्रता में देखने का प्रयास किया जा रहा है।

2. 9. विवाहेतर संबंध –

भारतीय समाज में आज भी स्त्री-पुरुष के बीच प्रेम घोषित तौर पर नैतिक अधिकार नहीं है। ऐसे में उस समाज में दांपत्य में रहते हुए अन्य स्त्री और पुरुष के साथ पति-पत्नी का प्रेम-काम संबंध में जुड़ जाना अपनी सामाजिकता में पाप के समान ही है, लेकिन कानून की नजर में आज की तारीख में यह अपराध तो दूर, व्यभिचार भी नहीं है। ऐसे में ये सवाल बनता है कि आखिर कानून में इस तरह के संशोधन की जरूरत किन दबावों के तहत बनी। साथ ही यह सवाल अपने दीर्घ परंपरा में सदा जटिल होकर अग्रसर दिखता है कि दांपत्येतर संबंध बनने के आखिर कारण क्या है। ऐसे संबंध के कारण को लेकर पारंपरिक धारणा पत्नी की मर्जी के बिना पति का कामातुर हो उठना एवं बात-बात पर लड़ना झगड़ना मुख्य संदर्भ रहा स्त्री पक्ष में, तो पुरुष पक्ष में पत्नी से कामेच्छा की अतृप्ति, लड़ाई झगड़ा व नए के प्रति आकर्षण की प्रवृत्ति बनी। लेकिन विचारनीय यह है कि भारतीय समाज में विवाह के दायरे अपेक्षाकृत कमजोर पड़ने के बावजूद आज भी बने हुए हैं। ऐसे में परिवार को निभाना और परिवार का निर्वाह करते हुए नितांत व्यक्तिगत प्रेम-काम की जरूरत को पूरा करना अंतर्विरोधी परिवेश तैयार करता है। परिवार को बनाए रखते हुए स्वयं को जीना दांपत्येतर का अत्यंत ही परिचित तरीका है। इसके अतिरिक्त काम रहित प्रेम, प्रेम रहित काम, प्रतिशोध प्रेरित, समझौते के तहत, बच्चे के लिए, तो नए के प्रति आकर्षण व अन्य अनेक संदर्भ इसमें जुड़ते हैं। कथा जगत में पत्नी के प्रति पति का कामातुर रवैया और दूसरी और पति के प्रति पत्नी का रूढ़ काम आचरण पति-पत्नी के लिए दांपत्येत्तर का अत्यंत परिचित कारण दिखता है। इन संदर्भों के बीच अन्य अनेक मामले हैं, जिनकी वजह से पति-पत्नी का परस्पर प्रेम-काम धर्म का निर्वाह भी होते रहता है और दांपत्य से इतर प्रेम काम संबंध विकसित भी होते रहते हैं।

2.9.1.प्रेम या मन के अभाव में विवाहेतर संबंध का प्रस्थान –

विवाहेतर संबंध का प्रमुख कारण मन, प्रेम के अभाव में पति का यांत्रिक कामाचरण है। अपनी फैन्टेसी के तहत स्त्री प्रेम में मन से देह तक का सफर तय करना चाहती है, तो पुरूष देह से गुजरकर भी देह तक ही सीमित रह जाता है। मैत्रेयी पुष्पा लिखती हैं – "जिस विवाह प्रथा का चलन हमारे यहां हैं, इसमें पहली ही रात सेक्स से शुरू होती है।"(पुष्पा 113) रूढ़ सामाजिकता के तहत पति-पत्नी दोनों का संस्कार विवाह की पहली रात ही सेक्स को अनिवार्य मानता है। स्त्री को जहाँ समर्पण का पाठ पढ़ाया जाता है और इस समर्पण से ही मन तक पहुँचने की सीख दी जाती है, वहीं पुरुष संस्कार में मन की कहीं बात ही नहीं आती। पत्नी के रूप में सेविका की छवि भारतीय विवाह संस्थान की रूढ़ सोच का ही परिणाम है। ऐसे में पुरुष फैंटेसी रच बैठता है कि पत्नी

है, तो हर हाल में तन और मन का सुख उपलब्ध कराएगी, हालांकि उसके तन और मन के सुख की उपलब्धि पर ध्यान नहीं जाता, ऐसी तो किसी फैंटेसी का निर्माण ही नहीं किया जाता। यही कारण है कि दांपत्येत्तर संबंध का प्रस्थान घटित होता है। जयश्री राय की कहानी 'वर्जित सुख', 'देह के पार', कमल किशोर की 'सखी-सहेली', मधु कांकरिया की 'बीतते हुए', गीताश्री की 'एक रुकी हुई पृथ्वी' रचनाओं में मन के अभाव में दांपत्येत्तर संबंध के प्रस्थान को दिखाया है। 'वर्जित सुख' में कथानायिका अपने पति अरुण के साथ अपने संबंध को घर्षण समझती है। वैवाहिक जीवन में प्रेम के अभाव के कारण ऋत्विक के साथ विवाहेतर संबंध की ओर बढ़ती है – "कभी-कभी उसे प्रतीत होता है, उसका पति उसे अपने सपनों के निर्माण में ईट गारे की तरह इस्तेमाल करता है। वह सुंदर है और उसके भव्य व्यक्तित्व के साथ जँचती है, उसकी आलीशान घर और पार्टियों की शोभा बढ़ाती है, इसलिए उसकी आवश्यकता है, यही उसके जीवन की उपयोगिता है। एक सुंदर देह से परे वह एक इंसान है, उसकी भी भावनाएं हैं, इच्छाएं हैं, यह बात अरुण के ख्याल में भी नहीं।" (राय 93) हालांकि नायिका हर कदम पर रूढ़ नैतिकता के कारण स्वयं को ऐसे संबंध की वजह से अपराध बोध से ग्रसित पाती है, पर जब अपने पति के भी किसी और के साथ संबंध में होने की बात जानती है, तो अपराध बोध से मुक्त हो जाती है – "एक अपराध दूसरे अपराध को सही नहीं कर देता, मगर बराबर तो कर देता है।" (राय 102) अखिलेश ने 90 के दशक में 'जलडमरूमध्य' में दिखाया था, पति-पत्नी दोनों के बाहर संबंध है और दोनों जानकर भी अनजान बने रहते हैं, क्योंकि दोनों चारित्रिक स्खलन के समान भागीदार है। गणित के फार्मूले के अनुसार 'माइनस' में है और दोनों 'माइनस' मिलकर 'प्लस' में बदल जाते है, अर्थात् दोनों ही गलत है तो शांत है। वहीं अपनी प्रगति में जयश्री राय ने पत्नी को ऐसे संबंध में अपराध-बोध से मुक्त करने के लिए उसी 'माइनस माइनस = प्लस' के फार्मूले का प्रयोग किया है। जयश्री राय की नायिका विवाहेतर संबंध में जाना यहां प्रतिशोध प्रेरित नहीं, बल्कि मन को जीने की चाह है। 'बीतते हुए' की नायिका मणिदीपा भी फैंटेसी के तहत परफेक्ट पुरुष की कामना में विवाह पूर्व के प्रेमी को ठुकराती है, किंतु विवाह बाद अपने और पति के संबंध के बारे में कहती है – "मैं और मेरे पति...जैसे दो ध्रुव" (कांकरिया 75) और इस दो ध्रुव होने के पीछे कारण फैंटेसी से विपरीत पुरुष (पति) का होना है। वह चाहती है – "थककर चूर निस्पंद पड़ी काया के सिरहाने तकिया बढ़ाते हाथ प्रेम है। श्रम और परेशानी से माथे पर उभरी स्वेद बूंदों पर शीतल उंगलियों की छुअन है प्रेम। ठिठुरती ठंड में गर्म खाने के लिए प्रतीक्षारत निगाहे हैं प्रेम। गहन दुख के क्षणों में, आंखों में झिलमिलाते आंसुओं के बीच विश्वास-सी जिसकी छवि कौंध जाए...वही इसका पात्र।" (कांकरिया 75) इस पात्र का अभाव अपने पति में पाकर विवाह पूर्व के प्रेमी इंद्रजीत से अपने पुराने संबंध को जीवित करने का प्रयास करती है। इस प्रकार प्रेम रहित काम आचरण अर्थात् मन के अभाव में विवाहेतर संबंध की ओर बढ़ना नैतिकता, सामाजिकता की दृष्टि से अनुचित हो सकता है, पर स्त्रियों द्वारा गढ़ी नई नैतिकता प्रतिरोध का ही सूचक है। मैत्रेयी पुष्पा ने 'हमारा

चर्चा' में लिखा है – "पति को सेक्स और सेवा देती रहो और अपना प्यार चलाती रहो। (पुष्पा 68) 'रुकी हुई पृथ्वी' की कथा नायिका मणिदीपा,'सखी-सहेली' की तोषी इसी दर्शन से प्रभावित है। 'सखी-सहेली' की नायिका तोषी दांपत्य में पति के कामाचरण में मन के अभाव को नितांत महसूस करती हैं और इसी अभाव की पूर्ति के लिए अपनी सहेली शीला के साथ समलैंगिक का सफर तय कर लेती है –

> "शीलू सारा दिन तो मैं घर में मरूँ – खपूँ। मेरा जी कैसा है। मुझे कोई दुख है, कोई तकलीफ है, इससे तो उसका कोई वास्ता ही नहीं। रात में सांढ़ की तरह ऊपर चढ़ जाता है। फिर कहता है, हरामजादी कैसे अकड़ी पड़ी है। वह समझता है वह आए और मैं मोम की तरह पिघल जाऊं। आदमी वेश्या के पास भी जाता है तो फूल-मिठाई का दोना लेकर जाता है। पहले उसका दिल जीतना है, फिर उसकी देह मांगता है। यह घर का आदमी है जो औरत को गाय-भैंस से ज्यादा नहीं मानता। उस वक्त मेरा दिल तो चाहता है कि उठाकर उसको पलंग से नीचे धकेल दो। उसका मुंह नोंच लूँ। पर तब भी चुपचाप लेट जाती हूं।" (कुमार 110)

तोषी का यह सोचना मन रहित दैहिक संबंध का मौन प्रतिरोध है, हालांकि वैवाहिक संस्थान की रूढ़ नैतिकता के कारण पति के आगे चुपचाप लेट जाती है, पर मौका मिलते ही मन के साथ देह को अपनी सहेली के साथ जीती है।

2. 9. 2. काम रहित प्रेम, विवाहेतर का प्रस्थान –

वैवाहिक जीवन में काम रहित प्रेम अर्थात् अतृप्त काम विवाहेतर संबंध का एक अन्य प्रमुख कारण है। परंपरा में प्रेम-काम के मामले में काम के अभाव में विवाहेतर संबंध को जैनेंद्र ने 'मास्टर जी' और इसके बाद 60-70 के दशक में कृष्णा सोबती 'मित्रो मरजानी', मृदुला गर्ग ने 'चितकोबरा' में उभारा है। जहां जैनेंद्र के यहां पत्नी पहाड़ी नौकर के साथ भाग जाती है अर्थात् बाहर जाकर अतृप्ति की पूर्ति करती है। मृदुला गर्ग की मनु भी तृप्ति के लिए घर से बाहर जाती है। हालांकि इस मामले में स्त्री की जरूरत को तो इन रचनाकारों ने समझा, पर इस मामले में पुरुष की भी अपनी जरूरत हो सकती है, इस पर विचार उपेक्षित ही रहा, जिसे 21वीं सदी में लेखिकाओं ने भी विषय बनाया है और उनके हित में भी प्रतिरोध को खड़ा किया है। एक ओर महुआ मांझी की कहानी ' चंद्रबिंदु' कमल किशोर की कहानी 'सखी-सहेली' काम अतृप्ति के कारण विवाहेतर संबंध के प्रति स्त्री के आकर्षण को दिखा प्रतिरोध दर्ज करती है, वहीं दूसरी ओर अल्पना मिश्र की रचना 'कथा के गैरजरूरी प्रदेश में', यादवेंद्र शर्मा 'चंद्र' की कहानी 'वाह! किन्नी वाह' वैवाहिक जीवन में काम अतृप्ति के कारण विवाहेतर संबंध की ओर बढ़ते पुरुष को दिखा उनके हित में भी प्रतिरोध व्यक्त किया है। 'सांप' कहानी की 'रजनी' 'कनक' से कहती है – "मैं तो कई बार धीरेन से कहती भी रही हूं कि मैं अपने पति से सैटिस्फाइड नहीं हुई तो तुम्हारे पास आ जाऊंगी।" (चौधरी 147-48) रजनी का यह कथन बदलती नैतिकता का ही उदाहरण है। परंपरा

में यह दिखता रहा है कि पुरुष अपने काम-तृप्ति लिए बाहर भी संबंध बना लेता है। अब यह सिर्फ पुरुष का ही अधिकार क्षेत्र नहीं रह गया, बल्कि स्त्रियाँ भी इसे अपना नैतिक अधिकार मानती है। यहाँ पारंपरिक नैतिकता के आगे जरूरी नैतिकता का निर्माण दिखता है। महुआ माजी की 'चंद्रबिंदु' में पति के लगातार अन्य स्त्री से संबंध होने के कारण कथानायिका कृति ना केवल हीन भावना से ग्रसित होती है, बल्कि फैंटेसी के तहत पति के हर संबंध में पति और प्रेमिका के शारीरिक सामिप्य की बात सोच खुद भी काम भावना से पीड़ित होती है – "हैरानी की बात तो यह भी थी कि उनके हर नए संबंध के उद्घाटन के बाद उस विस्फोटक परिस्थिति से उबरने के पहले ही पति और उनकी प्रेमिका के शारीरिक सानिध्य की कल्पना करते-करते वह स्वयं दुर्दांत काम भावना से पीड़ित हो उठती।" (माजी 159) हालांकि विवाहेतर संबंध में पति के होने का पता चलते ही उसके और पति के बीच संबंध में गर्माहट आ जाती। काम के चरम तक पहुंचा देते हैं उसके पति, पर फिर धीरे-धीरे सब समाप्त हो जाता और रिश्तों में वही 'ऊब' आ जाती। पति फिर अन्य संबंध में जाते व खुलासा होने पर वही क्रम दोहराते। ऐसे में देह और मन को पूर्णता में जीने के लिए विवाहेतर संबंध की और कृति बढ़ती है। जिसकी तरफ बढ़ती है, उससे वह कहती हैं – "मुझे आपका स्पर्श चाहिए! तन मन दोनों का स्पर्श! आत्मीयता और दीवानगी भरा स्पर्श! पाना चाहती हूं मैं आपको एक बार! पूरी तरह से...इससे पहले कि मेरी देह डिकोड हो जाए, फ्रीज कर लेना चाहती हूँ मैं आपके एहसास को अपनी देह में...देह से गुजर कर मन में…।"(माजी 163) स्त्री विमर्श मन से देह तक पहुँचने की बात करती है, लेकिन यहाँ विमर्श शीर्षासन पर नजर आता है, जहाँ स्त्री देह से मन तक पहुँचने की बात कर रही है। पत्नी की काम भावना अतृप्त रह जाती है, तो यहाँ वो व्यक्ति के स्तर पर पति से झगड़ा नहीं करती है, बल्कि अपनी आपूर्ति के लिए जो भी सोच निर्मित करती है, उसमें सहज ही उस अवधारणा के प्रति प्रतिरोध है, जिसमें स्त्री को हर हाल में पति के साथ जीवन निभाते रहने की बात की जाती है। यहाँ सहज ही पारंपरिक सामाजिक मूल्य का प्रतिरोध है। यह अश्लीलता नहीं, बल्कि अपनी यौनिच्छा को जीने की चाहत में की गई पहल है। इसे प्रतिरोध की दिशा में देखना जरूरी है।

'सखी-सहेली' में शीला एक कामकाजी महिला है, पति द्वारा अपनी सालगिरह के दिन ही बिस्तर पर उपेक्षित होती है। जब वह पति को सालगिरह की याद दिला उसके करीब आना चाहती है, तो पति अपमानित करते हुए जो करता है, वह विचारणीय है – "फिर क्या करूं?? शादी की सालगिरह है तो क्या करू? क्या करूं तेरे साथ? बासी रोटी। अरे, दस दिन आदमी छप्पन भोग भी खा ले, तो ग्यारहवें दिन उसको देखकर उबकाई आने लगती है। ग्यारह साल हो गए हमारी शादी को। दस साल का लड़का है। तेरे साथ नहीं सो सकता मैं। समझी तू।" (कुमार 117) परिणामत: वह अपनी कामेच्छा की पूर्ति के लिए समलैंगिक संबंध की ओर जाती हैं। हालांकि काम पूर्ति के पीछे भी स्त्री का एक रूढ़ मन ही होता है। वह तोषी से कहती है – "देख ना तू दुर्गा के मंदिर जाती है न?...तू जिस रास्ते से वहां जाती है, उस रास्ते से मैं वहां नहीं जाती। मैं झीलवाले रास्ते से जाती

हूं। वहां जाने का कोई तीसरा रास्ता भी होगा। लोग उस रास्ते से ही जाते होंगे। पहुंचते तो सारे दुर्गा के मंदिर में ही है। है न..! फिर क्या है! कोई किसी भी रास्ते से जाएं! हमें जीवन में अपनापन चाहिए, प्यार दुलार चाहिए, मन की खुशी चाहिए।" (कुमार 122) अतृप्ति को लेकर जीने की नैतिकता छूट रही है।

'कथा के गैर जरूरी प्रदेश में' मास्टर जगत हर स्त्री को यहाँ तक की अपनी छात्रा को कामातुर नजर से देखता है और उनके पीछे भागता है। इसके पीछे का कारण वैवाहिक जीवन में पत्नी अरुंधति द्वारा उसकी काम की पूर्ति ना होना ही है। वह अपनी पत्नी अरुंधती से स्पष्ट कहता है – "देती नहीं हो, तो क्या होगा।" (मिश्र 37) लेखिका ने यहां पति के पक्ष में प्रतिरोध खड़ा किया है कि पत्नी द्वारा इच्छा पूर्ति ना होने पर ही ऐसे संबंध में पति बढ़ते हैं। 'वाह किन्नी वाह!' का लूणिया किन्नी की तरफ बढ़ता है, तो वहाँ भी पत्नी से काम अतृप्ति ही प्रमुख है – "उसकी बहू सामान्य स्त्री थी। मांसल भी कम।...लेकिन वह किन्नी की तरह आंतरिक आनंद के कंगूरों को कभी भी स्पर्श नहीं कर पाती थी।...पर वह किन्नी के बिना अपने को पूर्ण नहीं समझता था, क्योंकि वह बड़े उत्साह और प्यार से समर्पन करती थी।...किन्नी से उसके संपूर्ण तुष्टिदायक संबंध और पत्नी से यांत्रिका आकर्षण। उसका किन्नी के मुकाबले में मुर्दा मछली होना भी था।" (शर्मा 72) काम की अतृप्ति चाहे स्त्री की हो या पुरुष की आज 21वीं सदी में इसे दोनों के पक्ष में विचार किया गया है और यहाँ सामाजिक रूढ़ अवधारणा के विरुद्ध प्रतिरोध दर्ज है।

2. 9.3. प्रतिशोध प्रेरित विवाहेतर संबंध –

प्रतिरोध के लिए जरूरी है कि वह मूल्य सापेक्ष हो। प्रतिरोध के नाम पर नैतिकता के निजीकरण द्वारा मूल्यविहीन आचरण मनमर्जीपन को जन्म देता है और तब प्रतिरोध के नाम पर जो कुछ भी किया जाता है, वह महज प्रतिशोध में बदल कर रह जाता है। अपने मन को जी पाने की कोशिश में बने विवाहेतर संबंध समाज की नजर में, नैतिकता की दृष्टि से भले ही सही ना हो, पर व्यक्ति स्वतंत्रता की दृष्टि से सही है और आज एडल्ट्री कानून के तहत अपराध भी नहीं है। वहीं प्रतिशोध प्रेरित ऐसे संबंध में अंतत: मानसिक संतुष्टि की जगह प्रताड़ना ही निहितार्थ है। कथा साहित्य में प्रतिरोध के नाम पर प्रतिशोध प्रेरित विवाहेतर संबंध का प्रतिरोध भी रचा गया है। किसी भी परिस्थिति में ऐसे संबंध सराहनीय नहीं, बल्कि 'नैतिकता के निजीकरण' से प्रदूषित है। मधु कांकरिया की कहानी 'चूहे को चूहा रहने दो' में कथानायिका गंगटोक घूमने आती है और अनजान युवक से दैहिक निकटता बनाती है, तो केवल पति के द्वारा हर बार लगाए गए बंदिशों के प्रतिशोध में। वह कहती है – "एक बार मैंने अपने छोटे भाई के मित्र से पति के सामने हिम्मत करके हाथ मिला लिया, तो पति ने उसके जाने के बाद दीवार पर मेरे हाथों को रगड़ दिया…जिससे उसका स्पर्श मिट जाए...आज शाम को एक सीमा तक अपने को किसी गैर मर्द के हवाले करके मैंने अपने उसी अपमान का बदला ले लिया है। मुझे संतोष है कि मैं

अब वह नहीं रही…उसकी परम पाकीजा, जो वह समझता है कि मैं हूं।" (कांकरिया 191) युवती द्वारा सोच समझकर अपनी शर्त पर अपनी इच्छा अनुसार युवक से संबंध बनाना और युवक को अतृप्त छोड़कर अलग हो जाने में अपने प्रतिशोध को पूर्ण देखना वास्तव में उसकी विकृत फैंटेसी का ही परिणाम है। वह आगे कहती है –

> "बहुत पहले मैंने विदेशी कहानी पढ़ी थी, जिसमें एक पत्नी पति की मृत्यु के पश्चात उसकी आंखों को विज्ञान की सहायता से किसी कृत्रिम मस्तिष्क से जुड़वाकर अपनी टेबल पर रखवाती हैं और एक-एक करके वह वह सब काम करती है, जिसके लिए उसके जीवन काल में उसका पति उसे रोकता था और जिसके लिए उसने अपनी पत्नी को हिदायत दे रखी थी कि उन आदेशों का वह उसकी मृत्योपरांत भी पालन करें। मृत पति की लाचार आँखें बस देखती रहती थी। जिन दिनों मैंने यह कहानी पढ़ी थी, मुझे यह फंतासी भर लगी थी, पर आज समझ गई हूं…यह कहानियां नहीं हाड़-मांस की जिंदगियों के जीवित दस्तावेज है।...जो कालांतर में कहानियाँ बन जाती है, ठीक वैसे ही जैसे जीवित जानवरों की हड्डियाँ और मांस कालांतर में चट्टान बन गए।" (कांकरिया 191)

अपनी फैन्टेसी के तहत वह भी प्रतिशोध प्रेरित प्रतिरोध की तरफ बढ़ती है। उसका मानना है कि इस प्रतिशोध में भी जीवन के कुछ मूल्य और नारी बोध है, पर सच्चाई तो यह है कि वजह चाहे जो भी हो, ऐसी प्रतिक्रिया स्वरूप बने विवाहेतर संबंध में प्रतिशोध तो समझा जा सकता है, पर प्रतिरोध नहीं।

2. 9. 4. लाभ प्रेरित व समझौता प्रेरित विवाहेतर संबंध –

विवाहेतर संबंध के अन्य अनेक कारणों में से एक कारण पति-पत्नी के बीच आपसी समझौते के तहत गैर स्त्री व गैर पुरुष के साथ बने दैहिक संबंध हैं। पति-पत्नी के मध्य आपसी समझौते के तहत लाभ के लिए बने विवाहेतर संबंध को 90 के दशक में अखिलेश ने 'जलडमरूमध्य' में ही दिखा दिया था। जिसके मूल में आर्थिक लाभ रहा। जिस कारण चिन्मय और मनजीत एक दूसरे के विवाहेतर संबंध के बारे में जान कर भी अंजान बने रहते हैं और अपनी प्रगति में 21वीं सदी में शरद सिंह की 'कस्बाई सिमोन' में कीर्ति और गीताश्री की 'इंद्रधनुष के पार' की 'आशा' ना केवल ऐसे संबंध में अर्थ लाभ के लिए आगे बढ़ती है, बल्कि अपने ही पति द्वारा प्रोत्साहित व संरक्षित भी है। यहाँ सामाजिकता के ऊपर व्यक्तिवादी व आस्तित्ववादी दर्शन हावी है। एक ओर सुगंधा कीर्ति से कहती है – "तेरे भी तो संबंध है पति के अलावा।" (सिंह 191) तब कीर्ति कहती है – "हां! है ना संबंध, लेकिन सदाशिव है मेरे साथ। उनकी जानकारी में है यह सब, उसको कई ठेके मेरे संबंधों के आधार पर मिले हैं।" (सिंह 191) दूसरी ओर गीताश्री की कहानी 'इंद्रधनुष के पार' में आंचल आशा से विवाहेतर संबंध के बारे में पूछती हुई कहती है – "तेरे पति को कोई समस्या नहीं होती?"(गीताश्री) आशा जवाब देती है कि उनके जीवन में कोई टैबू नहीं है – "नहीं...रोनू सब को जानता है, रोनू को भी तो इससे फायदा होता है...चल

छोड़।"(गीताश्री) आर्थिक लाभ ही नहीं, बल्कि पारिवारिक शांति व कलह से निपटारे के लिए भी पति-पत्नी के बीच समझौते के तहत ऐसे संबंध पनप रहे हैं। काशीनाथ सिंह का उपन्यास 'रेहन पर रग्घू' में सरला मीनू से कहती है – "अगर मुझसे पूछो, तो पत्नी को यह सलाह दे सकती हूं, वह अपने पति का प्यार पाना चाहती हैं, तो घर से बाहर प्रेम करने की छूट दे, उकसाए उसके लिए क्योंकि वह कहीं और किसी को प्यार करेगा, तो उसके अंदर का कड़वापन, रूखापन भरता रहेगा और इसका लाभ उसकी बीवी को भी मिलेगा और पत्नी भी ऐसा करें।"(सिंह 39) दांपत्य में मधुरता बनाए रखने का यह भी एक उपाय है और आज कथा जगत में यह उपाय परिलक्षित हो रहा है। गीताश्री की कहानी 'ताप' में मां बेटी से अपने पिता के लिए कॉलगर्ल की व्यवस्था करने कहती है, तो इसके पीछे की वजह दाम्पत्य की कड़वाहट से छुटकारा पाना है। सहकर्मी विप्लव अपने पिता के लिए लड़की की व्यवस्था कर रहा है तो इसके पीछे भी यही कारण है। जब बेटी (शालू) अपनी माँ से पूछती है कि कॉलगर्ल के आने से आपको तकलीफ नहीं होगी, तो माँ कहती है – "जो अभी मेरे साथ हो रहा है, वो कम है क्या? मैं जिस मुहाने पर खड़ी हूँ, वहाँ हर रास्ता तकलीफ से भरा है। ये रोज-रोज के अपमान, गाली...मैं जीती जागती औरत नहीं, ठंडा गोस्त हूँ...जिसे गरम नहीं किया जा सकता...। बासी कड़ी हूँ, उबाल लाने का प्रयत्न व्यर्थ है। मैं खत्म हो चुकी हूँ।" (गीताश्री 91)

'ताप' में पत्नी पति के लिए व्यवस्था करने की बात कर रही है, तो 'कस्बाई सिमोन' में प्रोफेसर पति, पत्नी के सामने व्यवस्था की बात करता है – "हाँ, मैं उन्हें अपने साथ सोने के लिए मजबूर करता हूं, तुम चाहो तो तुम्हारे लिए भी छात्रों की लाइन लगा दूं।"(सिंह 33) रूढ़ नैतिकता के विरोध में नैतिकता के निजीकरण से प्रभावित होकर समझौते के तहत बने ऐसे विवाहेतर संबंध प्रेम-काम के साथ, आर्थिक मामले से भी जुड़ा हुआ है, जो वैवाहिक संबंध को टिकाऊ बनाए रखने में सहायक भी हैं। एक समय ऐसा रहा कि दंपति में से किसी एक के भी विवाह के बाहर विवाहेतत्तर संबंध के बारे में पता चल जाए, तो पारिवारिक अशान्ति की सृष्टि होती थी। सामाजिक नैतिक मूल्य भी वहाँ खड़े हो जाते थे और उसके आधार पर चरित्र का मूल्यांकन किया जाता था, लेकिन अब समय बदल रहा है, जहाँ पुरुष आर्थिक फायदे के लिए और इच्छा को पूरा करने का अवसर सुलभ बनाने के लिए अपने ही जीवनसाथी को दूसरों के साथ अत्यंत सहजता के साथ छोड़ दे रहा है। यह चलन आ चुका है, तो रचनाकार ने इस चलन के विरुद्ध प्रतिरोध किया है कि ऐसा नहीं होना चाहिए। ऐसी सोच व्यक्तिवादी विचारधारा के तहत हावी है, लेकिन वैयक्तिकता की जगह यहाँ मनमर्जीपन हावी है। जो मापदंड समाज के लिए जरूरी सामाजिक माने गए वह व्यर्थ हो गए, यह अपेक्षित नहीं है और ऐसे चलन को विषय बनाया जा रहा है, तो इसके विरुद्ध रचनाकार है। यहाँ लेखिकाओं के द्वारा जो प्रतिरोध रचा गया है, वह बदलते समय की विकृत दिशा को प्रस्तुत करता है। पारिवारिक रिश्तों में भावनाओं का समाप्त हो जाना स्वस्थ परिवार के खिलाफ अवरोध है और इस अवरोध का प्रतिरोध रचनाए कर रही है।

2. 9. 5. नए के प्रति आकर्षण व सभ्यता के संकट से उत्पन्न विवाहेतर संबंध –

विवाहेतर संबंध के अन्य अनेक कारण में से कारण वैवाहिक जीवन की एक लीक पर चलने वाली व्यवस्था से ऊब व नए के प्रति आकर्षण भी हैं। भूमंडलीकरण, बाजारवाद के प्रभाव स्वरूप नई सभ्यता का अंधानुकरण और उसके तहत बन रहे नए विकृत मूल्य से उत्पन्न विकृति ऐसे संबंध को हवा-पानी दे रहे हैं। खुशवंत सिंह लिखते हैं – " यह एक सुखद प्रसंग होगा कि हम एक निरंतर बदलते व्यक्ति से भी प्रेम करते रहें।" (सिंह 133) जयश्री राय का उपन्यास 'औरत जो नदी है' कमल किशोर की कहानी 'सखी-सहेली' में ऐसे संबंध के पनपने के पीछे वैवाहिक जीवन का एक ढर्रे पर चलने के कारण उत्पन्न ऊब है। इन रचनाओं में विवाहेतर संबंध के पीछे का जो कारण बताया गया है, उसके पीछे न तो वैवाहिक जीवन में प्रेम और काम का अभाव है और ना ही अर्थ के लाभ के लिए नए संबंध की ओर आकर्षण, बल्कि बोरियत से नए के प्रति आकर्षण का जन्म है। 'औरत जो नदी है' में पति अशेष, पत्नी उषा की जगह दामिनी की तरफ इसी कारण बढ़ता है। अशेष विचार करते हैं –

> "दिनभर की सेवा, अच्छा भोजन और रात में बिस्तर पर देह का सुख, वह भी अपनी इच्छानुसार, अपने मन मुताबिक। उम्र की पहली उठान से एक ही इच्छा मन में पैदा होती रही थी, कोई औरत हो बिस्तर पर जो बिना ना-नुकूर किये मेरी हर बात मानती चली जाये, मैं जो कहूँ, वही करे, मुझे करने दे। उमा वैसी ही स्त्री थी। पति की इच्छा उसके लिए सर्वोपरि हुआ करती है। वह बिना किसी तरह का सवाल उठाए आज तक मैं जो कहता हूं, वह करती आई है। बिस्तर में भी। एक सुंदर स्त्री की जो आम धारणा हमारे देश में बनती है, उमा वैसी ही थी – गोरी, स्वस्थ और भरी-पूरी मुझे इससे ज्यादा और क्या चाहिए था मैं स्वयं को खुश मानता था...मेरे जैसे एक मध्यवर्गीय मानसिकता वाले पुरुष के लिए उमा एकदम सही औरत थी।" (राय 30)

बावजूद इसके दामिनी की तरफ अगर उनका आकर्षण बढ़ता है, तो वैवाहिक जीवन में एक तरह से ऊब और नए के प्रति आकर्षण के कारण। अशेष सोचता है – "उलझे बाल, थका और विरक्त चेहरा...दिन भर के कामों से ऊबी और चिरचिराई है कभी स्वयं को घर-गृहस्ती की बातों से अलग नहीं कर पाती, अधिकांश हाउसवाइफ की तरह। निजता के चरम क्षणों में भी वही घर बीच में खड़ा रहता है, धुँआ, चूल्हे और दाल-चावल के हिसाब-किताब के साथ। उसकी देह से ही नहीं, उसकी बातों और सोचो से भी उसकी रसोई की ही गंध आती है।"(राय 38) ऐसे में अशेष इस ऊब से मुक्ति के लिए प्रयास करता है पर सफल नहीं हो पाता है। इस मसाले की गंध को दूर करने के लिए वह खूब सोच-समझकर पत्नी को बुरा ना लगे इसलिए उसे परफ्यूम ट्राई करने कहता है, तो उस पर भी चिढ़ जाती है – "उमा चिढ़ जाती-अभी नहाऊँ! अरे सुबह-सुबह तो नहा लिया रसोई में घुसने से पहले। तुम्हारी स्वर्गवासी मां ने ही तो यह अच्छी आदत लगाई है। बिना नहाए रसोई की चीजों

को हाथ कहां लगाने देती थी...इसके बाद मैं चुप हो जाने में ही अपनी गनीमत समझता था।"(राय 38) परिणामत: दामिनी की ओर बढ़ता है। यहाँ पत्नी के रूढ़ नजरिए का प्रतिरोध है। 'सखी सहेली' में शीला का पति विवाहेतर संबंध की ओर प्रस्थान करता है तो इसकी वजह वैवाहिक संबंध की एकरसता से उत्पन्न नीरसता है। वह पत्नी शीला को बासी रोटी कहता है – "अरे, दस दिन आदमी छप्पन भोग भी खा ले, तो ग्यारहवें दिन उसको देखकर उबकाई आने लगती है।...तेरे साथ नहीं सो सकता मैं। समझी तू।"(कुमार 116) भूमंडलीकरण और बाजारवाद के प्रभाव ने ऐसे संबंध को हवा दी है, जो अपने आप में प्रयोग हैं। इस प्रयोग के प्रति आकर्षण भी विवाहेतर संबंध का कारण बना है, जिसमें प्रमुख 'वाइफ स्वाइपिंग' भी एक कल्चर है। अलका सिंहा का उपन्यास 'जीमेल एक्सप्रेस' में धमेजा इस नई संस्कृति की ओर इशारा करते हुए कहता है – "वाइफ स्वैपिंग का कांसेप्ट तो आजकल काफी लोकप्रिय हो रहा है, जिसमें पति-पत्नी, दोनों ही दूसरे जोड़ों से एक्सचेंज करने में बराबर के हिस्सेदार होते हैं। इससे पत्नियों की भी एकरसता टूटती है और उन्हें भी नएपन का सुख हासिल होता है। पूरी रात किसी नए साथी के संसर्ग में रहना, दोनों के जीवन में उत्तेजना पैदा करता है और वे जिंदगी का भरपूर मजा ले पाते हैं।" (सिन्हा 138) गीताश्री का लघु उपन्यास 'बाहों के दरमियां' में रति और रवि इसी संस्कृति से प्रभावित हैं। पति की चाहना के अनुसार अंतत: अपने कस्बाई सोच को त्याग रति भी इसमें शामिल हो जाती है। नए के प्रति आकर्षण से ऐसे संबंध केवल बड़े शहरों या उच्च वर्ग में ही नहीं पनप रहा, बल्कि आज मध्य वर्ग भी इसकी चपेट में है। 'पत्ताखोर' में बैंक कर्मी अपनी महिला मित्र को पति को 'फिक्स डिपाजिट' और प्रेमी को 'करंट अकाउंट' के रूप में जीने की सलाह देती है – "…अरे फिक्सट डिपोजिट तो एक है ही, क्यों न कई करेंट एकाउंट खोल लिया जाएँ, छोटे-छोटे कई करेंट एकाउंट, जब तक दिल करे, एकाउंट खुला रहे...दिल भरा की एकाउंट बंद। गृहस्थी भी संभली रहे...मियाँ से खिचर-खिचर खत्म और अपनी जिंदगी भी खुशहाल।" (कांकरिया 21-22) यानी नए को जी पाने के लिए, आनंद के लिए ऐसे संबंध को अपराध-बोध से मुक्त होकर अपनाया जा रहा है। अलका सिन्हा अपने उपन्यास 'जीमेल एक्सप्रेस' मे धमेजा के मुंह से इस अप-संस्कृति की ओर ध्यान खींचती है – "धमेजा ने बताया पुल पार्टी और स्विमिंग सेक्स जैसी पार्टियों की मांग आजकल बड़ी तेजी से बढ़ रही है। उसका तो यहां तक मानना था कि वह दिन दूर नहीं, जब ऐसी पार्टियों में जाना स्टेटस सिंबल की तरह लिया जाने लगेगा और जिस तरह हम हर साल योजनाबद्ध तरीके से छुट्टियों में घूमने का प्रोग्राम बनाते हैं, वैसे ही इस तरह की 'रिफ्रेशिंग' पार्टियों की भी खुलेआम योजना बना पाएंगे।" (सिन्हा 138) नएपन के नाम पर पश्चिम के अंधानुकरण और विकृत हो रही सभ्यता को दिखा रचनात्मक स्तर पर रचनाकार की ओर से ऐसी सभ्यता का डटकर प्रतिरोध किया गया है।

2.10. सहजीवन (लिव-इन रिलेशन) और प्रतिरोध –

सहजीवन यानी 'लिव इन रिलेशन' विवाह के बिना या विवाह से बाहर, वयस्क स्त्री और पुरुष का अपनी मर्जी से, वैवाहिक पार्टनर की तरह साथ रहते हुए जीवन जी लेना है। भारतीय समाज में विवाह ऐसी सामाजिक संस्था है, जिसमें तमाम खोखलेपन के बावजूद स्त्री और पुरुष को, पति और पत्नी के रूप में इसे निभाने की मजबूरी जुड़ी हुई है। भारतीय विवाह संस्थान की दमघोंटू प्रवृत्ति है कि इसके जुड़ते ही पति-पत्नी प्रमुख हो जाते हैं और पति-पत्नी बनते ही अधिकार से एकाधिकार की भावना से ग्रसित होकर एक-दूसरे के अंदर के स्त्री और पुरुष को भूल बैठते हैं, जबकि उसी पति में एक 'पुरुष' और पत्नी में 'स्त्री' रहती हैं और उसी स्त्री और पुरुष को जी पाने की कोशिश में तमाम तरह के विवाहेतर संबंध और लिव-इन की शुरुआत होती है। हालांकि लिव-इन के पीछे केवल विवाह संस्थान की निरर्थकता ही उत्तरदाई नहीं है, बल्कि नए के प्रति आकर्षण और विशेषकर महानगरों में मकान व आर्थिक बोझ की साझेदारी भी है। इन सबके वाबजूद इसके पीछे एक बड़ा कारण विवाह संस्थान, उसकी त्रुटियां व उससे जुड़ी कानूनी प्रक्रिया की दांवपेच है। कानूनी तौर पर 'लिव-इन' में जीवन प्रर्यंत साथ रहने की ना तो विवाह वाली मजबूरी है और ना ही जवाबदेही। यह मुक्त संबंध है, जब चाहे स्वेच्छा से इससे मुक्त हुआ जा सकता है, परंतु देखा यह गया है कि विवाह संस्थान के प्रतिरोध में जन्मा यह संबंध अंततः विवाह संस्थान की त्रुटियों से ग्रसित हो जाता है। एक समय बाद ऐसे संबंध भी एकाधिकार की मांग करते हैं, तो इसके पीछे स्त्री और पुरुष का रूढ़ मन है। दूसरी तरफ कानूनी मान्यता के बावजूद समाज की रूढ़ धारणा के कारण ऐसे संबंध सामाजिक प्रतिरोध को भी झेलने को विवश हैं। लिव इन के दो रूप हैं – १. पहला अविवाहित स्त्री और पुरुष का साथ रहकर सह-जीवन चुनना। २. दूसरा, विवाहित स्त्री और पुरुष का विवाह के बंधन में बने रहकर सहजीवन जीना। दोनों ही मामले में यह संबंध विवाह संस्थान की असफलता के प्रतिरोध में खड़ा होता है। हालांकि अपनी प्रगति में ऐसे संबंध भी विवाह संस्थान की त्रुटियों से ग्रसित हो, अनत: विवाह की परिणिति को ही झेल रहा है। इस कारण अपनी असफलता के कारण ऐसे संबंध का प्रतिरोध भी आज कथा-साहित्य में शुरू हो गया है, जिसे शोध की दिशा में प्रतिरोध की पहचान के लिए देखना जरूरी है।

2. 10. 1. लिव-इन रिलेशन को लेकर कानून –

भारत में लिव- इन को लेकर कोई स्पष्ट कानून नहीं है, पर समय-समय पर लिव-पर आए सुप्रीम कोर्ट के विभिन्न फैसले ही लिव-इन के लिए नाजीर हैं। घरेलू हिंसा अधिनियम 2005 की धारा 2(f) के अंतर्गत लिव-इन में साथ रहने वाले लोगों को संरक्षण प्राप्त है और संविधान के अनुच्छेद (section-12) के तहत 'राइट टू लाइफ' यानी 'जीने के अधिकार' की श्रेणी में से रखा गया है। कोर्ट ने लिव-इन के कई मामले में इसे 'पर्सनल

ऑटोनॉमी' व्यक्तिगत स्वायत्तता के चश्मे से देखने कहा है, ना कि सामाजिक नैतिकता के कटघरे में। इस प्रकार भारत में लिव इन अपराध नहीं है, यह पूर्णता वैध है। हालांकि इसकी अपनी कुछ खास शर्त है –

१. लिव-इन में रहने वाले जोड़े को लंबे समय तक एक दूसरे के साथ रहना होगा। एक रात के संबंध को लिव-इन नहीं माना जाएगा।

२. लिव-इन में रहने वाले व्यक्ति को एक ही घर में रहना होगा।

३. घर के कार्यों में एक दूसरे की सहायता करनी होगी और एक ही घर की वस्तु का उपयोग करना होगा।

४. ऐसे संबंध अपने अपने आप में वैध हैं, अतः समाज को इसकी जानकारी देनी होगी कि दो व्यक्ति लिव-इन में रह रहे हैं।

५. लिव-इन में रहने वाली जोड़ी का व्यस्क होना जरूरी है।

६. लिव इन में यदि लंबे समय तक रहा जाए, तो इससे विवाह मान लिया जाएगा और ऐसे में लिव-इन में रहने वाली महिला अलग होने पर भरण-पोषण की मांग भी कर सकती हैं यह उसके अधिकार की श्रेणी में है।

७. लिव-इन से उत्पन्न संतान को भरपूर स्नेह देना होगा और ऐसे संतान माता-पिता की संपत्ति में अधिकार भी रखती हैं।

2018 के पहले लिव-इन के लिए जरूरी था कि स्त्री और पुरुष दोनों ही व्यस्क होने के साथ अविवाहित हो या फिर तलाकशुदा हो। दोनों में से एक भी अगर विवाह के बंधन में है और इसके साथ ही लिव-इन में भी हैं, तो यह मान्य नहीं होगा। इसी कारण लिव-इन के कई फैसलों में शादीशुदा जोड़े को भारतीय दंड संहिता की धारा 494 के तहत अपराध मान 5 वर्ष की सजा हुई और जुर्माना का प्रावधान भी रहा। इसे 'एडल्ट्री' के कानून के अंतर्गत रखा गया, लेकिन साल 2018 में सुप्रीम कोर्ट ने 'एडल्ट्री' को अपराध की श्रेणी से मुक्त कर दिया और इसे जीने के अधिकार से जोड़ा। स्पष्ट है कि अब शादीशुदा जोड़े भी अपने विवाहित पार्टनर के अतिरिक्त किसी और के साथ अगर लिव-इन में रहते हैं या उनके संबंध हैं, तो पति और पत्नी में से कोई भी उन पर व्यभिचार का आरोप नहीं लगा सकता और ना ही कानून इसे अपराध मानता है। 494 के हटने के बाद अब शादीशुदा जोड़े भी लिव-इन में रह सकते हैं, हालांकि कानून की जानकारी के अभाव व लिव-इन के लिए अलग कानून के अभाव में कुछ मामले ऐसे भी हैं, जिनमें 2018 के बाद भी एडल्ट्री को अपराध मान लिया गया। जैसा कि 15 जून 2021 को इलाहाबाद हाईकोर्ट ने फैसला दिया, जिसमें लिव-इन में रहती हुई स्त्री, विवाहित थी और सुरक्षा की मांग की गई थी, लेकिन कोर्ट ने इस आधार पर उसकी मांग को खारिज कर दी और जुर्माना लगाया कि यह 'हिंदू विवाह अधिनियम' के खिलाफ है और इससे समाज में 'अवैध संबंध' बढ़ेंगे। हालांकि उसी कोर्ट द्वारा बताया गया अविवाहित और तलाकशुदा को लिव-इन में रहने की स्वतंत्रता है, जबकि वहीं कुछ समय पहले राजस्थान हाई कोर्ट ने शादीशुदा व्यक्ति को भी लिव इन में रहने की अनुमति दे दी थी।

एक तरफ समाज ऐसे संबंध को अनुचित मानता है, दूसरी तरफ कानून की तरफ से इसे जीने के पूरे अवसर मिल रहे है। जिस कारण इसे शोध की दिशा में जानना जरूरी है।

2. 10. 2. कथा-साहित्य में लिव-इन की परंपरा –

कथा-साहित्य में 'चित्रलेखा' में लिव-इन संबंध है, लेकिन वहां यह संबंध अपराध बोध मुक्त है। 'मिस पद्मा' में प्रेमचंद के यहां लिव-इन है, लेकिन वहाँ भी अंत में पत्नी की तरह एकाधिकार की चाहत बन जाती है। 'लिव इन रिलेशन' उपन्यास में लिव-इन संबंध के पीछे पति के पक्ष में पत्नी द्वारा अतृप्ति और परिवार-समाज द्वारा स्त्री स्वतंत्रता पर लगाए गए बंधनों के प्रविरोध में है। लिव-इन का कांसेप्ट होते हुए भी पुरुष पक्ष से यह विवाहेतर से जुड़ा हुआ प्रसंग अधिक बनता है। 'चित्रलेखा' घोषित लिव-इन न होते हुए भी लिव-इन है, तो 'लिव-इन रिलेशन' उपन्यास घोषित तौर पर लिव-इन होते हुए भी विवाहेतर संबंध तक सीमित है। 'मिस पद्मा' लिव-इन होते हुए भी रूढ़ स्त्री मन के कारण अंतत:अघोषित होते हुए भी 'विवाह' की नियति ही है। प्रेमचंद के 'गोदान' में मालती और मेहता के संबंध में विवाह न करने का निर्णय पारिवारिक जिम्मेदारी के कारण है, न कि अपनी मर्जी से जीवन जी पाने की चाहत, जो सह-जीवन का आधार है। 21वीं सदी में अपने को जी पाने की चाहत और कानूनी प्रावधान ने ऐसे संबंध को बल दिया है, तो बड़े शहरों और महानगरों में इसकी सामाजिक स्वीकृति ने फलने-फूलने का अवसर। 'गोरिल्ला प्यार', 'कस्बाई सिमोन', 'महुआ मदन रस टपके रे', 'औरत जो नदी है', लिव-इन संबंध पर केंद्रित रचनाएं है।

2. 10. 3. लिव-इन संबंध की ओर बढ़ने के कारण –

लिव-इन पाश्चात्य की अवधारणा है, लेकिन भारतीय समाज में भी ये अपनी जड़े फैला रहा है। महानगरों में ऐसे संबंध खुले आम फल-फूल रहे है, तो कस्बों में भी चोरी-छिपे नजर आने लगे है। वैवाहिक जीवन की त्रुटियों से जन्मा यह संबंध केवल इसी कारण नहीं अपने पैर पसार रहा, बल्कि इससे अलग नए को जी पाने का आकर्षण, महानगरों में आर्थिक बोझ को कम करने का उद्देश्य भी इससे जुड़ा है। बात चाहे जो भी हो ऐसे संबंध प्रचलित सामाजिकता, नैतिकता के प्रति प्रतिरोधी तेवर लिए हुए है। लिव-इन संबंध के पनपने के कई कारण है—

2. 10. 3. 1. विवाह संस्थान की त्रुटियों और निरर्थकता के प्रतिरोध में –

लिव-इन रिलेशन का एक प्रमुख कारण विवाह संस्थान की त्रुटियां और ऐसी संस्थान की वर्तमान निरर्थकता का बोध है। इसमें दो तरह के मामले जुड़े हुए है – १. विवाह संस्थान की व्यर्थता के बोध कारण दो व्यक्तियों का कभी भी, किसी भी परिस्थिति में विवाह की औपचारिकता में ना जुड़कर भी साथ रहने की इच्छा। २. विवाह पूर्व साथ रहकर एक दूसरे को समझना और इसके उपरांत विवाह संबंधी त्रुटियों का निवारण कर वैवाहिक बंधन में जुड़ना। दोनों ही स्थिति में लिव-इन या सह-जीवन विवाह संस्थान और उसकी त्रुटि के विरोध

में अस्तित्व में आया। भारतीय समाज में विवाह सामाजिक होने की पहली सीढ़ी है और इसे ना केवल एक जन्म का, बल्कि जन्म-जन्मांतर का संबंध माना जाता है। स्त्री-पुरुष का पति-पत्नी बनते ही एक-दूसरे पर अधिकार की लड़ाई शुरू हो जाती है और अपने अनुसार बना लेने का षड्यंत्र भी। भारतीय विवाह संस्थान की कंडीशनिंग ही इसी अनुसार हुई है। 'औरत जो नदी है' की दामिनी विवाह के संबंध में कहती है – "किसी को हम उसी रूप में स्वीकार नहीं कर पाते, जो वह है...रिश्ता जुड़ते हम उसे बदलने में लग जाते हैं, वह बना देना चाहते हैं, जो वह नहीं है और फिर इस गलत कोशिश में ना खुद खुश रह पाते हैं ना औरों को ही रहने देते हैं।" (राय 99) अपने अनुसार बना लेने की पितृसत्तात्मक सोच वैवाहिक जीवन में पति-पत्नी को प्रतिद्वंदी बना देती है और चूंकि तलाक कानूनी दांवपेच के साथ-साथ सामाजिक रूढ़ियों से ग्रस्त है, ऐसे में ना चाहते हुए भी उस विवाह को ढोते रहने की मजबूरी जुड़ी रहती है। इस कारण ऐसे में सहज, सह-जीवन चुनना है, ताकि जब तक रुचि मिले, तब तक साथ रहा जा सके और रुचियों के टकराव में आसानी से अलग हुआ जा सके। वुमन प्लानेट फाउंडेशन की फाउंडर व सोशल एक्टिविक्ट 'स्वाति बखारिया' का इस बारे में मत हैं – "दरअसल, हर इंसान की जिंदगी और रिश्ते की प्रति अपने अलग विचार होते हैं, कुछ लोगों को लगता है कि साथ रहने के लिए शादी की फॉर्मेलिटी की जरूरत नहीं है। उन्हें लगता है कि कमिटमेंट दिल की गहराई से होना चाहिए, सिर्फ रस्मों-रिवाजों में बंधे होने के कारण वो किसी के साथ ना रहे, बल्कि इसलिए रहे, क्योंकि दोनों दिल से एक-दूसरे के साथ रहना चाहते हैं।" (बखारिया) हिंदी कथा साहित्य में 'औरत जो नदी है' की दामिनी, 'गोरिल्ला प्यार' की अर्पिता 'कस्बाई सिमोन' की सुगंधा, 'महुआ मदन रस टपके रे' की महुआ चारों के अपने जीवन अनुभव है, जो विवाह संस्थान की असफलता की ओर संकेत करते हैं, परिणामस्वरूप चारों लिव-इन की ओर अग्रसर होती है। दामिनी विवाह को वेश्यावृत्ति मानती हैं और कहती हैं – "मेरे लिए तो ऐसी शादियां वेश्यावृत्ति ही है जिसमें दो जून की रोटी, कपड़े और छत के बदले में स्त्री को आजन्म गुलामी करनी पड़ती है...देह से और मन से भी।" (राय 127) 'कस्बाई सिमोन' की सुगंधा सोचती है उसकी मां को क्या मिला विवाह से, केवल पत्नी का टैग और बदले में जीवन भर का दर्द – "जब भी मैं विवाह के बारे में सोचती हूं तो मेरा मन मुझसे कहता, मां को क्या मिला विवाह करके? एक उपनाम ही तो ना? और एक टैग श्रीमती का।" (सिंह 63) विवाह संस्थान की असफलता उसे गहरे तक प्रभावित करती है, तभी रितिक के साथ सह-जीवन का चुनाव करती है। 'गोरिल्ला प्यार' की अर्पिता विवाह को बंधन मानती हैं। फ्रेम में जकड़ी हुई तस्वीर। लेखिका के स्वर में – "अर्पिता ने प्रेम किया, पर शादी उसे मंजूर नहीं थी कि शादी बंधन है और बंधना उसे स्वीकार नहीं। पत्नी के फ्रेम में तो वह छटपटाती रहती। घुट जाती। उसका प्रेमी दकियानूसी पति में बदल जाता।" (गीताश्री 61) 'महुआ मदन रस टपके रे' की महुआ देह की जरूरत को विवाह के बंधन में बांधकर पूरा करने को रुढ़ नैतिकता मानती है और अपने परिवार में मम्मी -पापा, चाचा-चाची, भाई-बहन के अनुभव को देख इसे 'बुलशिट' मानती है –

"मेरी समझ में नहीं आता कि इस नार्मल और नैचुरल नीड को पूरा करने के लिए शादी क्यों की जाए? नो मॉरल - वॉरल…बुलशिट...आई डॉन्ट बिलीव।" (रानी 177) अर्पिता पत्नी को फ्रेम में जकड़ी तस्वीर, तो दामिनी विवाह को 'वेश्यावृत्ति' व सुगंधा 'पत्नी का टैग' मानती है। महुआ इस संस्थान को ही 'मॉरल के नाम पर चलने वाली एक बुलशिट' की तरह देखती है और अपने अर्जित अनुभवों के आधार पर इस संस्थान की त्रुटि के विरोध में ये नायिकाएं लिव-इन की ओर प्रस्थान करती है। यहाँ विवाह का प्रतिरोध है।

2. 10. 3. 2. नए के प्रति आकर्षण और लिव-इन –

लिव-इन का एक दूसरा प्रमुख कारण फैंटेसी के तहत नए के प्रति आकर्षण है। लिव-इन संबंध भारतीय संदर्भ में नया संबंध है, हालांकि महानगर में मान्यता के बावजूद कस्बाई क्षेत्र में चलन में नहीं है। महानगरीय जीवन शैली को हम देखते, सुनते रहते हैं और यही देखना, सुनना उनके जैसे जीवन को जी पाने की फैंटेसी निर्मित करता है, जिसके तहत ऐसे संबंध के प्रति आकर्षण बढ़ता है। 'गोरिल्ला प्यार' की अर्पिता लिव-इन की तरफ बढ़ती है, तो फैंटेसी के तहत कुछ नया और अलग करने की चाहत में। उसके शब्दों में "समथिंग थ्रिलिंग" गीताश्री लिखती हैं – "अर्पिता को जड़ता नहीं सुहाती। रूटीनी जिंदगी से उसे बचपन से ही चिढ़ है। रिश्ते ऐसे हों कि उनमें रोमांच बचा रहे। कॉलेज में लड़कियां कहतीं, अर्पि को तो अलग तरह का कोई रिश्ता चाहिए। उसकी सबसे प्यारी सहेली मीनाक्षी इस बारे में पूछती तो अर्पिता कहती..."समथिंग थ्रिलिंग...।" आखिर जीवन में सनसनी, उत्तेजना, रोमांच ना हो तो जीवन कैसा।" (गीताश्री 60) नए को जी पाने की लालसा उसे लिव-इन की तरफ बढ़ा रही है। 'कस्बाई सिमोन' की सुगंधा के मन में भी लिव-इन के प्रति आकर्षण है – "बिना ब्याह किए किसी पुरुष के साथ पति-पत्नी के रूप में रहने की कल्पना ने मुझे रोमांचित कर दिया।" (सिंह 31) यहाँ तक कि वैवाहिक जीवन जी रही कीर्ति के मन में भी लिव-इन को लेकर आकर्षण है। वह सुगंधा से कहती है – "वैसे मजा आता होगा ना ऐसे रहने में? कोई टेंशन नहीं, कोई डर नहीं, अगर रितिक ने जरा भी ऊंची आवाज में कुछ कहा, तो तुम उसे छोड़ने की धमकी दे सकती हो, बीबी बन जाने पर यह चांस कहां?" (सिंह 96) वैवाहिक जीवन में पुरुष बात-बात पर अपनी इच्छा पूरी ना होने के कारण अलग होने की बात कर बैठता है, ठीक वैसे ही लिव-इन संबंध में पुरुष की तरह स्त्रियों के पास भी जब चाहे तब छोड़ने का, निर्णय लेने की सुविधा बनी रहती है। इस तरह के निर्णय लेने की सुविधा सहज ही स्त्री द्वारा प्रतिरोध को संभव बनाती है। उसे दाम्पत्य की पत्नियों की तरह पारिवारिक एवं सामाजिक नैतिकता की विवशता नहीं निभानी होती है। सुश्री शरत सिंह ने स्त्री पात्र द्वारा ऐसे संबंध में संभावित मुक्ति को दिखा कर यह स्पष्ट कर दिया कि पुरुष की तरह स्त्री को भी निर्णय का अधिकार है। इतना सच है कि पुरुष द्वारा तनिक भी ऊंची आवाज करने मात्र से अलग हो जाने का रोमांच अनुभव का विषय बनाया गया है, वह नैतिकता के निजीकरण की संभावना को भी बहुत हद तक सहज

ही उपलब्ध करा देता है। इसलिए यह स्वीकार पाना सहज ही संभव नहीं है कि प्रतिरोध एक रोमांच मात्र है। आखिरकार अलग होकर पुनः जब किसी के साथ लिव-इन में आएंगे, तो निजीकृत नैतिकता के कारण सतही निर्णय हमारे आचरण का हिस्सा बन जाएगा। चूंकि प्रतिरोध यहाँ प्रतिक्रिया से प्रतिबोध की ओर न जाकर सीधे-सीधे प्रतिकार की दिशा अपनाता है, इसलिए नई सदी की स्त्री के लिए ऐसे अनुभव तात्कालिक सुख के स्रोत बन सकते है, लेकिन प्रतिरोध का भ्रम ही दे पाएंगे।

2. 10. 3. 3. महानगरों में आर्थिक बोझ कम करने के लिए लिव-इन –

लिव-इन को लेकर जो पहली धारणा मन में बनती है, वह यह कि ऐसे संबंध केवल शारीरिक जरूरतों को पूरा करने के लिए ही बनाए जाते हैं, लेकिन ऐसा नहीं है। इसके और भी कई पहलू है। लिव-इन का एक पहलू महानगरों में जगह की कमी के कारण मकान की व्यवस्था व बढ़ते आर्थिक बोझ की साझेदारी भी है। अभिनेता सुशांत सिंह ने अपने इंटरव्यू में कहा था – "जब मैं फिल्मों में करियर बनाने मुंबई आया, तो मोलिना भी मेरे बिना नहीं रह सकी और वो दिल्ली से मुंबई आ गई। मुझे और मोलिना को एक साथ इसलिए रहना पड़ा, क्योंकि हमारे पास इतने पैसे नहीं थे कि हम दो अलग-अलग कमरों का किराया दे सकें।" (सिंह) 'कस्बाई सिमोन' में रितिक और सुगंधा भी एक मकान में रहने का निर्णय आर्थिक बोझ को कम करने के लिए लेते हैं और उनके दिल्ली वाले मकान मालिकन कहती भी है – "दिल्ली में भी आप लोगों जैसे बिना शादी के लोग रहने लगे हैं लेकिन कम ही हैं, वहाँ भी हमारे घर में जोड़ा मकान ढूंढते आया हुआ था। उनका कहना था कि वह साथ-साथ रहकर पैसे बचाना चाहते हैं।" (सिंह110) यहाँ सहज ही दो दृष्टिकोण बनते है, पहला यह कि महानगर में स्त्री भी अर्थ संचय के लक्ष्य को लेकर पहुंची है, और इसके लिए पुरुष के साथ रहने में भी उसे कोई गुरेज नहीं है और साथ-साथ रहते हुए संबंध बन जाए, तो भी चिंता की बात नहीं। दूसरा दृष्टिकोण यह है कि ऐसे मामले बहुत कम है। कम होते हुए भी यदि ऐसे संदर्भ को विषय बनाया गया है, तो यह समय और समाज की दिशा का संकेत अवश्य ही है। कहा जा सकता है कि स्त्री-पुरुष की एक साथ उपस्थति मात्र जिस समाज में अनैतिक और आपत्तिजनक महसूस होती रही है, उसी समाज में आज इनका साथ में संबंध में रहने पर भी समाज ने इसे हल्के में लेना शुरू कर दिया है। ऐसे सहजीवन के प्रति समाज के प्रतिरोध को हम होते पाते है, तो दूसरी ओर इसका बढ़ता चलन स्वयं में समाज की रूढ़ अवधारणा के विरुद्ध प्रतिरोध है।

2. 10. 4. लिव इन संबंध के प्रति समाज का नजरिया –

लिव-इन का मामला प्रेम-कम का है। लिव-इन यानी सह-जीवन कानूनी मान्यता के बावजूद सामाजिक उपेक्षा का शिकार है। ऐसे संबंध को लेकर हमारा समाज रूढ़ धारणा से ग्रसित है और नैतिकता की कसौटी पर इसे गलत और अवैध संबंधों का हितैषी ही अधिक मानता है, बावजूद लिव-इन संबंध को कानूनी संरक्षण प्राप्त

है। कानून और समाज में लिव-इन को लेकर एक प्रतिरोधात्मक रवैया है। कस्बों में ऐसे संबंध की स्थिति भले जटिल है, परंतु महानगर में ऐसे संबंध फल-फूल रहे हैं। भारतीय परिवेश में लिव-इन का अर्थ सिर्फ सेक्स संबंध से ले लिया जाता है,जबकि लिव-इन का एक पक्ष जरूर प्रेम और काम से जुड़ा है। ऐसे संबंध केवल सेक्स संबंध नहीं है। मुंबई के मनोज वशिष्ठ के अनुसार – "हम जब भी लिव इन की बात करते हैं, तो सबसे पहले दिमाग़ में प्रीमैरिटल सेक्स की ही बात आती है, जबकि ये रिश्ता इससे कहीं ज़्यादा है। ऐसे रिलेशनशिप सिर्फ एक-दूसरे के साथ फिज़िकल होना नहीं है। इसमें ज़िम्मेदारी, साथ और शादी के पहले एक-दूसरे को समझने का मौक़ा देना है, जिससे शादी की मुश्किलें कम हो जाएं. सिर्फ मज़े (फन) और शारीरिक ज़रूरतों को पूरा करने के लिए साथ रहना उचित नहीं है। इसके साथ की ज़िम्मेदारियों को भी स्वीकार करना ज़रूरी है।" (वशिष्ठ) लिव- इन का अगला स्टेज शादी को मानना और शादी की मुश्किलों को कम करने के लिए ही लिव-इन का चुनाव करना लिव-इन के प्रति रूढ़ सामाजिक सोच का ही परिणाम है। लिव-इन के के संदर्भ में मनोज वशिष्ठ की इस सोच में दूरदृष्टि का अभाव है। इस ओर शिक्षक धीरज ध्यान आकर्षित करते हैं – "भले ही हम ख़ुद को कितना भी आधुनिक मान लें, मगर ऐसे रिश्ते को हमारा समाज अब भी पचा नहीं पा रहा है। इसे पश्चिमी देशों जैसी सामाजिक स्वीकृति मिलना बहुत दूर की कौड़ी लगती है। रिश्ते के टेस्ट-ट्रायल का जो विचार लिव-इन से जुड़ा है, मैं उससे सहमत नहीं हूं। किसी के साथ कुछ दिन रहने के बाद यदि सही जीवनसाथी की तलाश करना संभव होता, तो लव मैरिज फेल नहीं होती। लव मैरिज में एक-दूसरे को सालों तक जानने के बाद भी शादी की परिणति तलाक़ के रूप में ही होती है।" (धीरज) लिव-इन टेस्ट-ट्रायल से जुड़ा मामला है, ऐसे में इसका विवाह में बदलना और उस विवाह का टिकाऊँ होना अपने आप में एक प्रश्नचिन्ह है। लिव-इन सामाजिक व कानूनी बंधन से मुक्त प्रेम-काम का मुक्त मामला है, लेकिन हमारे समाज की कंडीशनिंग ऐसी है कि व्यक्ति को कैसे जीना है, यह समाज द्वारा ही निर्धारित होता है। सुश्री शरद सिंह का उपन्यास 'कस्बाई सिमोन' में प्रोफेसर का कथन लिव-इन जोड़ा सुगंधा और रितिक के प्रति, समाज की इस सच्चाई को चरितार्थ करता है – "हम जिस समाज में रहते हैं, उसमें प्रत्येक व्यक्ति के जीने के ढंग का अधिकार सिर्फ और सिर्फ समाज के हाथों में होता है।" (सिंह १२०) व्यक्ति के ऊपर समाज भारतीय समाज की परिपाटी है, ऐसे में लिव-इन संबंध समाज के ऊपर व्यक्ति की दलील पर आधारित है। भले ही ऐसे संबंध व्यक्ति हित में प्रगतिमूलक है, पर समाज के साथ प्रतिरोधमूलक ही अधिक है। लिव-इन संबंध को लेकर समाज में भी दो भाग में बटा हुआ है – एक ओर कस्बाई समाज, दूसरी ओर महानगरीय समाज। महानगरीय समाज ऐसे संबंध को लेकर प्रगतिशील है। दूसरे शब्दों में कहा जाए, तो इतना हाय-तौबा नहीं है, वहीं कस्बे में यह स्थिति नहीं है। सुगंधा और रितिक के रिश्ते के बारे में जब सुगंधा के आफिस में कार्यरत सावरकर को पता चलता है, तो सुगंधा को समझाने के क्रम में वह समाज के विभाजन पर प्रकाश डालता – "तुम नीना गुप्ता, सुष्मिता सेन या करीना कपूर नहीं हो, तुम एक कस्बे की और

मध्यवर्ग की लड़की हो, यह सब पैसे वालों और महानगरों के जीने के तरीके हैं, तुम जैसी लड़कियां दुख ही पाती हैं, चैन, सुकून,अधिकार और सम्मान नहीं। आगे तुम समझदार हो।" (सिंह 98) हालांकि महानगरों में ऐसे संबंध की स्वीकृति के पीछे के कारण का जिक्र करते हुए सुशांत सिंह का मंतव्य हैं – "लिव-इन को लेकर बड़े शहरों में स्थिति बेहतर है...इसकी वजह ये है कि लोगों के पास एक-दूसरे की ज़िंदगी में झांकने का टाइम नहीं है...साथ ही अब इस बारे में सुनने की लोगों को आदत हो गई है... हां, छोटे शहरों में अब भी लोग ऐसे रिश्तों को पचा नहीं पाते..." (सिंह) यही कारण है कि कस्बे में रहने वाली 'गोरिल्ला प्यार' की अर्पिता जब लिव-इन जैसे संबंध के बारे में सोचती है, तो उसकी सहेली मीनाक्षी कह बैठती है – "यह क्या अधर्म करने का इरादा बनाए हुए है अर्पिता।" (गीताश्री 60) ऐसे रिश्ते को अधर्म से जोड़ती है। सुगंधा की मां को जब उसके लिव-इन के रिश्ते के बारे में पता चलता है तो उसे सामाजिक नियम को लेकर आगाह करती हैं – "पागल तो नहीं हो गई? बिना शादी किए भी कोई किसी के साथ यू खुलेआम रहता है?... बात तो सच है दकियानूसी ही सही, लेकिन मैं कहूंगी जरूर...यह याद रखना कि हमारा समाज अभी भी पुरानी परंपराओं का कट्टर पोषक है, वह तुम्हें चैन से जीने नहीं देगा..." (सिंह १08) यह जानते हुए कि बात दकियानूसी है, पर समाज की ऐसी कंडीशनिंग है जिसमें ऐसे संबंध स्वीकार नहीं है। सुगंधा को हर बार घर बदलने पड़ते है, समाज के सामने रितिक को कभी भाई तो कभी पति बताना पड़ता है। प्रोफेसर मकान मालिक का सुगंधा और रितिक से समाज में रिश्तों के समीकरण के बारे में कहना हमारी सामाजिक व्यवस्था की रूढ़ता की ओर संकेत करता है – "हमारे भारतीय परिवेश में, हमारे मन मस्तिष्क में परंपराएं इस तरह ठूँस-ठूँस कर भर दी जाती है कि उनमें भले-बुरे को छाँटने की कला हम भूल चुके होते हैं। यहाँ बंद दरवाजों के पीछे बनने वाले प्रतिकूल रिश्ते मान्य होते हैं, खुली सड़क पर बनने वाले अनुकूल रिश्ते नहीं।" (सिंह 117) और समाज की इसी सोच के कारण ऐसे रिश्ते को लेकर जीने का मतलब आज भी छिपछिपाकर जीना है। प्रोफ़ेसर मकान मालिक सुगंधा और रितिक से कहते हैं – "समाज छिपकर सब कुछ करने की अनुमति देता है...आप खुलकर करेंगे तो समाज का निशाना बनेंगे।" (सिंह 120) ऐसे में निशाना बनने से बचना है, तो ऐसे संबंध को समाज के सामने छिपा कर रखना है और नहीं तो दूसरा रास्ता, जो रितिक के पिता समझाते हैं, विवाह कर लेना ही बचता है। यानि जिस संस्थान के प्रतिरोध में यह संबंध पनपा, उसी की आड़ में इसे जीना। रितिक के पिता सुगंधा को समझाते हुए कहते है – "तुम अभी समझ नहीं रही हो, हम जिस समाज में रहते हैं उसके भी कुछ नियम कायदे होते हैं और नियमों को हमें मानना पड़ता है, विवाह जैसे नियम संबंधों को सुरक्षित रखते हैं।" (सिंह 93) लिव-इन में रहने वाले साथी नहीं चाहते हुए भी, अपने संबंधों को समाज में छिपाकर रखने को मजबूर होते हैं और कहीं न कहीं अपराध बोध से ग्रसित भी। सुगंधा कहती हैं – "यद्यपि मुझे संकोच नहीं होना चाहिए था किंतु फिर भी मुझे ऐसा लगा कि मैं कोई ऐसा काम कर रही हूं जो मुझे नहीं करना चाहिए, यानी समाज के सामने खुलकर आना चाहिए उससे कुछ भी गोपन नहीं

रखना चाहिए।" (सिंह 85) हमारी सामाजिक बनावट का ही परिणाम है कि ऐसे संबंध को जीने वाला भी एक समय बाद समाज के दवाब, उसके रवैये के कारण इसे गलत मानने लगता है। मूल्य समाज के लिए बनते है और बदलते भी है, लेकिन जब मूल्य विशेष के सामने समाज व्यक्ति को विवश कर देता है, तब नए मूल्य की जरूरत बन पड़ती है। इस नए मूल्य के केंद्र में पुराने मूल्य के विरुद्ध प्रतिरोध निहित होता है। यह प्रतिरोध समाज से ऊपर व्यक्ति को महत्त्व देता है।

2. 10. 5. प्रेम काम के लिव-इन मामले में स्त्री-प्रतिरोध –

लिव-इन संबंध की शुरुआत भारतीय विवाह संस्था की असफलता का प्रतिरोध है और ऐसे संबंध में स्त्रियों की रूचि का कारण वैवाहिक संस्थान का स्त्रियों के प्रति घोर अमानवीय व्यवहार। विवाह में स्त्रियों को रोटी, कपड़ा और मकान के बदले कृतदास समझने की पितृसत्तात्मक परंपरा ने विवाह के प्रति उनमें प्रतिरोधात्मक चिंतन को भरा। आज जब स्त्रियां आर्थिक रूप से स्वाबलंबी हुई है, अपने लिए रोटी, कपड़ा, मकान की व्यवस्था करने में सामर्थ्यवान, तो ऐसी संस्थान के विरोध में आ रही है। हालांकि विवाह का एक बड़ा मामला प्रेम और काम से जुड़ा हुआ है। यह प्रेम और काम व्यक्ति की प्राकृतिक जरूरत है, जिसे सामाजिक तरीके से जीने के लिए विवाह संस्था बनाई गई, लेकिन इस संस्थान में प्रेम-काम के मामले में स्त्री की स्थिति दोयम दर्जे की ही रही। परिणामत: समानता में इस जरूरत को जीने के लिए लिव-इन की तरफ स्त्रियां मुखर हुई, क्योंकि सह-जीवन का कॉन्सेप्ट समानता पर आधारित है। इसमें कोई मालिक नहीं, ना ही कोई दास। प्रेम-काम के मामले में दोयम दर्जे की साझेदारी के विरोध में इस संबंध की ओर स्त्रियों का कदम अपने आप में प्रतिरोधात्मक हैं। जयश्री राय का उपन्यास 'औरत जो नदी है' की दामिनी विवाह के बारे में कहती हैं – "मेरे लिए तो ऐसी शादियां वेश्यावृत्ति ही है जिसमें दो जून की रोटी, कपड़े और छत के बदले में स्त्री को आजन्म गुलामी करनी पड़ती है – देह से और मन से भी" (राय 127) और इसीलिए लिव-इन का रास्ता चुनती है। 'गोरिल्ला प्यार' की अर्पिता के अनुसार शादी बंधन है और बंधना उसे स्वीकार नहीं – "पत्नी की प्रेम में तो छटपटाती रहती...घुट जाती...उसका प्रेमी दकियानूसी पति में बदल जाता।"(गीताश्री 61) तो 'कस्बाई सिमोन' की सुगंधा का मानना है कि विवाह में पत्नी के टैग के सिवा और कुछ नहीं मिलता। पुरुष तो इसमें मुक्त रहते हैं, पर स्त्रियाँ नहीं। अत: विवाह संस्थान की त्रुटि के प्रतिरोध में आर्थिक आत्मनिर्भरता के बाद मुक्त रूप से प्रेम और काम को जीने की लालसा में स्त्रियों का लिव-इन की ओर प्रतिरोधात्मक प्रस्थान हुआ। विवाह एक सामाजिक संस्थान है। इसे सामाजिक संरक्षण प्राप्त है। यह कानूनी दांवपेच में बंधा है। वहीं सहजीवन पूरी तरह मुक्त, परंतु देखा यह गया कि जिस विवाह संस्थान की एकाधिकार की भावना के विरोध में सहजीवन अस्तित्व में आया, सहजीवन में भी उसी एकाधिकार की भावना का जन्म हुआ। प्रेम-काम के इस मुक्त मामले में एक समय बाद प्रेम-काम ही पीछे छूट जा रहा है। विवाह के विरोध में उपजी यह व्यवस्था विवाह की ही कंडीशनिंग

से ग्रसित हो गया और प्रेम गौण हो गया। कानून में भी माना है कि लंबे समय तक लिव-इन साथी साथ में रहे, तो उसे विवाह मान लिया जाएगा। लिव-इन संबंध में आने के समय 'कस्बाई सिमोन' की सुगंधा सोचती हैं – "इसमें मुझे अपनी स्वतंत्रता दिखाई दी...मैं जब चाहे तब मुक्त हो सकती थी।" (सिंह 31) किंतु अंत में रितिक से अलग होने पर भी वह हर किसी के साथ में उसी को अनुभव करती है। तलाकशुदा होकर या विधवा होकर एक स्त्री अपने वैवाहिक जीवन, उसकी यादों से जैसे मुक्त नहीं हो पाती, वैसे ही सुगंधा सह जीवन में रहकर रितिक से मुक्त नहीं हो पाती। स्वयं सुगंधा के शब्दों में – "मैं अब किसी भी पुरुष को देखती हूं या किसी पुरुष के ताप को अनुभव करना चाहती हूं तो मेरा मन उससे तुलना करने लगता है। यदि इसकी जगह वह होता तो क्या वह भी ऐसा कर पाता। वह इसकी अपेक्षा सभ्य था, यह नहीं है। कभी-कभी तुलना इस सीमा तक जा पहुंचती है कि चुंबन, आलिंगन और काम की सभी कलाओं के दौरान वह मेरे और अन्य पुरुष के बीच खड़ा होता है, संजोए हुए अनुभव बनकर।" (सिंह 11) लिव-इन में रहते हुए वह प्रेमिका से पत्नी में ही नहीं, बल्कि दुखियारी बहू में भी तब्दील हो जाती हैं। रितिक की मां द्वारा सुगंधा के चरित्र पर लांछन लगाना, तरह-तरह की गालियां देना, मकान मालिकों व समाज के सामने रितिक को कभी मुंह बोला भाई, तो कभी पति के रूप में परिचय कराना, लिव-इन में रहते हुए भी रितिक की हर बात को यहां तक कि कंडोम की जगह, रितिक के चाहने पर और खुद के ना चाहते हुए भी पिल्स लेना, बड़े घर की जरूरत को महसूस ना करते हुए भी रितिक का मन रखने के लिए बड़ा घर खरीदना, रितिक की काम तृप्ति के साथ उदर तृप्ति का पूरा बोझ अपने ऊपर रखना, करवाचौथ का व्रत रखना आदि काम लिव-इन में रहते हुए लिव-इन संबंध की धज्जियां उड़ा रहा है। यह ऐसे संबंध का प्रतिरोध ही है। जिन सामंती मूल्यों से मुक्ति की दिशा में लिव-इन की सोच की अवधारणा आकर्षित और प्रेरित करती है, उसी लिव-इन को रचनाकार ने सामंती मूल्यों से ग्रसित दिखाया है। विवाह के प्रतिरोध में अनिवार्य बन पड़ा लिव-इन इस दिशा में स्वत: प्रतिरोध का एक विषय बन जाता है। स्वयं सुगंधा के शब्दों में गर्भधारण को रोकने के लिए पिल्स लेने के संदर्भ में कहना – "रितिक ने हमेशा की तरह मुझे विवश किया कि मैं गर्भ नहीं चाहती हूं, तो मुझे ही अपनी सुरक्षा को साधना होगा...पहली बार रितिक ने मेरा कहना माना था, दूसरी बार, तीसरी बार भी, फिर ना जाने कौन सी बार से उसने मुझे कांट्रेसेप्टिव के सहारे छोड़ दिया, मुझे ठीक से याद नहीं। पता नहीं क्यों मैंने भी इसे सुगमता से स्वीकार कर लिया, बिना किसी हील हुज्जत के। निसंदेह, यह स्त्री का अपना दोष है कि वह पुरुष को धीरे धीरे कर असीमित छूट देती चली जाती हैं। मैंने भी रितिक को छूट दे दी थी। इस छूट का लाभ उठाते हुए रितिक ने बराबरी का सबब भुला दिया। वह स्त्री की देह पर पुरुष के वर्चस्व का सबब दोहराता चला गया।" (सिंह 124 -126) और सुगंधा इस सबको रिश्तो को बचाए रखने के लिए बर्दाश्त करती चली गई। हालांकि इस संबंध में कोई कानूनी दांवपेच नहीं था, ना ही सामाजिक बाध्यता। मुक्त होने के सारे अवसर होने के बावजूद उसका इससे मुक्त ना हो पाना उसके पत्नी में बदल जाने का ही सूचक

है। स्वयं लेखिका सुश्री शरद सिंह के शब्दों में – "मैं जब अपने उपन्यास कस्बाई सिमोन के लिए लिव-इन रिलेशन की बारीकी से जांच पड़ताल कर रही थी, तब मैंने पाया कि यदि कोई कस्बाई(छोटे शहर की) युवती लिव-इन में रहती है, तो किस तरह और कितनी तेजी से वह विवाहिता पत्नी के रूप में ढल जाती है। आसपास का सामाजिक परिवेश, भारतीय पुरुष का स्वामित्व भाव उसे समानता की पटरी से उतार कर दोयम दर्जे पर पहुंचा देता है। भारतीय स्त्री के लिए संबंध को तोड़ पाना अभी भी आसान नहीं है, सामाजिक ही नहीं, भावनात्मक स्तर पर भी। लिव इन रिलेशन का कांसेप्ट भारतीय सामाजिक परिवेश में आग का दरिया है...जो तैर सके वह उसमें उतरे और जो तैरने का साहस ना रखता हो, वह एक बार ठहर कर विचार करें, स्वयं को तौले, क्योंकि ऐसे संबंधों में सबसे अधिक मानसिक पीड़ा और सामाजिक प्रताड़ना यदि किसी को सहन करनी पड़ती है तो वह है स्त्री।" (सिंह) 'गोरिल्ला प्यार' की अर्पिता भी इन्द्र के साथ लिव-इन में रहते हुए प्रेमिका से पत्नी में बदल जाती है। यद्यपि उसने अपने जीवन का जो फॉर्मेट तय किया था, उसके अनुसार – "इस जीने के तरीके में स्पष्टता रहेगी, कोई छिपाव नहीं, कोई कालातीत प्रतिबद्धता नहीं, प्रतिबद्धता और चीजों के लिए अच्छी है।" (गीताश्री 69) पर फिर भी न जाने किस डर से बॉस के साथ बार में अकेले जाने की बात अपने लिव-इन पार्टनर इंद्र को नहीं बतलाती है, उससे छिपाती है। इंद्र कहता है – "तुमने मुझसे झूठ बोला, तुम वहां थी, उसके साथ और मुझसे मेरा दोस्त एस. एम. एस. करके बता रहा था और तुमसे मैंने पूछा, तो तुमने कहा बॉस के पास हूं... केबिन में"(गीताश्री 57) हालांकि अर्पिता के झूठ के पीछे वह सच है, जो कभी उसकी सहेली मीनाक्षी ने कॉलेज लाइफ में उससे कहा था कि हर रिश्ता एक समय बाद एकनिष्ठता की मांग करता है और ना चाहते हुए भी लिव-इन भी इसी एकाधिकार की भावना से ग्रसित हो दांपत्य में ही तब्दील हो जाता है, तभी बॉस के साथ अर्पिता का बार में जाना इंद्र को अच्छा नहीं लगता और अपने प्रतिरोध को जताने के लिए इंद्र उसे बिस्तर पर चरम आवेग के क्षण में वैसे ही छोड़ कर चला जाता है। 'कस्बाई सिमोन' में सुगंधा का लिव-इन पार्टनर रितिक, नितिन से सुगंधा के संबंध होने के शक में उसे रखैल तक कह देता है। इस एकाधिकार की मांग पुरुष ही नहीं स्त्री भी करती है। जयश्री राय का उपन्यास 'औरत जो नदी है' में दामिनी और अशेष के संबंध में इसे देखा जा सकता है। दामिनी, अशेष के रेचल से दैहिक संबंध और पत्नी से स्वस्थ संबंध के बारे में जानकर उसे छोड़ देती है। लिव-इन में रहते हुए भी अशेष पर अपना एकाधिकार चाहती है। विवाह के विरोध में लिव-इन आया और लिव-इन में भी विवाह वाली एकाधिकार की मांग हुई, तो उसका विरोध हुआ, लेकिन महत्वपूर्ण यह है कि लिव-इन के प्रतिरोध में, स्त्री प्रतिरोध की दिशा क्या रही। वह कितनी बोध सहित रही और कितना बोध रहित। अर्पिता अपने लिव-इन पार्टनर इंद्र के किए के प्रतिरोध में आकाश से रात भर के लिए शारीरिक संबंध बनाती है। जिस मुक्त प्रेम-काम की तलाश में लिव-इन में आती है वहां प्रेम और काम दोनों अतृप्त रह जाता है और प्रतिशोध प्रमुख हो जाता है। फेसबुक ऑन कर लिखती हैं – "मर्द ढूंढ रही हूं.... मिलेगा क्या?" (गीताश्री 63)

यद्यपि इंद्र के प्रभाव से वह मुक्त नहीं है, इसीलिए आकाश से कहती है कि उसे ऐसी जगह उसके साथ रात बितानी है, जहां ना तो उसका बेड हो और ना ही उसका फ्लैट यानी इंद्र की याद न हो और ऐसा करती भी है, लेकिन बाद में इंद्र का माफी के लिए फोन आने पर अपनी रूलाई रोककर कह तो देती है– "इट इज टू लेट इंद्र" (गीताश्री 65) पर लेखिका के शब्दों में उसका चेहरा जल बुझ रहा होता है। यह जलना बुझना उसके अंदर के द्वंद्व को दर्शा रहा है। विभा रानी की कहानी 'महुआ मदन रस टपके रे' की महुआ, मदन से दैहिक रूप से अतृप्त रहने की बात मदन के सामने रखती है और मदन के तिरस्कार पर प्रतिशोध में जिगोल (पुरुष) खरीदकर रिश्ता बनाती है और रिश्ता बनाते हुए सोचती है – "देखा मदन डीयर तुमने। पा लिया मैंने,जो अब तक मैं खोज रही थी।" (रानी 182) लेकिन मदन के माफी मांगने पर वापस उससे जुड़ जाती है, उस पर मुक्कियाँ बरसाती हुई कहती है —"आ नहीं सकते थे? मैसेज नहीं कर सकते थे?"(रानी 182) महुआ का प्रतिरोध बोध शून्य प्रतिशोध से आगे नहीं नजर आता। 'कस्बाई सिमोन' की सुगंधा अपने लिव-इन पार्टनर रितिक के उसे रखैल कहने पर उससे संबंध तोड़ देती हैं, पर आगे ऋषभ व विशाल में रितिक को ही खोजती रह जाती हैं। उसका आगे बनाया संबंध भी सिर्फ दैहिक रह जाता है, रितिक के जैसा भावनात्मक जुड़ाव महसूस नहीं करती। स्त्रियों का पति के संदर्भ में जिस प्रेम रहित काम आचरण का विरोध रहा, वैसा ही अनुभव सुगंधा, ऋषभ और विशाल के संदर्भ में अपने रूढ़ मन के कारण महसूस करती हैं। 'औरत जो नदी है' की दामिनी को अशेष के संबंध के बारे में पता चलता है तो वह उससे अलग हो जाती है, लेकिन प्रतिरोध के नाम पर प्रतिशोध का रास्ता अख्तियार करती है। मर्द से बराबरी को वह प्रतिरोध समझती हैं और इसी कारण अशेष को 'आपाद मस्तक लिंग' महसूस करवाते हुए कहती है –"बात इतनी सी है कि अब तक तुम्हीं थे और अब…तुम भी हो।"(राय 130) साथ ही कहती है– "अगर तुम जैसे मर्द घाघरा पलटन बना सकते हैं तो हम औरतें पतलून पलटन नहीं बना सकती।" (राय 133) जिस काम को करते हुए पुरुष गलत रहा, उसी काम को करते हुए एक स्त्री सही हो जाए यह संभव नहीं है। जयश्री राय 'अशेष' के माध्यम से एक बहुत बड़े सवाल को सामने रखती है और नारीवादी द्वारा रचे गई एकतरफा प्रतिरोध का प्रतिरोध रचती है। जहां वह अशेष से कहलाती है – "जिस काम को उसने अपने निर्वाण का मार्ग बनाया, वही मेरे लिए एक कलंक क्यों कर बन गया?....संभोग किसी के लिए शरीर से की गई प्रार्थना है, तो किसी के लिए घर्षण की एक ग्लानी मात्र या लंपट होने का आजीवन आक्षेप" (राय 136)

इस प्रकार लिव-इन जिस मुक्त प्रेम-काम को लेकर आया, वह भी मुक्त नहीं रह गया। स्त्री और पुरुष दोनों ही ओर से एक दूसरे के साथ प्रेम और काम के मामले में एकाधिकार की चाहत से ग्रसित हो गया। 'फिर बिन फेरे हम तेरे'. का संबंध फेरे बिना पति-पत्नी के रिश्ते की रूढ़ियों से ग्रसित हो गया और इसमें प्रतिरोध का स्वर अपनी मूल में प्रतिरोध न रहकर मनमर्जीपन में बदल गया। प्रेम-काम संबंध के बारे में मृदुला गर्ग लिखती है – "अस्तित्ववादी दर्शन की यह उक्ति है कि "व्यक्तित्व की जिस स्वाधीनता से प्रेम के आकर्षण और भावावेग

का जन्म होता है, प्रेम, अपनी अंतिम परिणति में उसकी ही बलि चाहता है। इस तरह वह एक अंतर्विरोधी संवेदना है, प्रेम के बजाय मोह पर लागू होती है।" (गर्ग 45) लिव-इन भी इसी मोह से ग्रसित होकर अपने मूल रूप से बिखर गया।

2. 11. जिगोलो : स्त्री प्रतिरोध का नया संदर्भ –

स्त्री और पुरुष के बीच प्रेम और काम को लेकर जो रूढ़ धारणा अब तक बनी है, उसमें यह स्पष्ट माना गया है कि पुरुष प्रेम रहित काम की ओर अग्रसर रहता है और स्त्रियां काम से अधिक प्रेम को महत्व देती है। प्रेम रहित काम की ओर उन्मुख होने के कारण मृदुला गर्ग के पुरुष पात्र आलोचना के केंद्र में रहे हैं। किंतु वर्तमान में स्त्रियां भी प्रेमहीन काम की ओर उत्साहित होकर अग्रसर हो रही है। काम प्राकृतिक जरूरत है, जो लिंग भेद से परे हैं और अगर किसी भी कारण इसकी अतृप्ति बनी रहती हैं, तो इसकी पूर्ति की कोशिश स्त्री हो या पुरुष दोनों द्वारा की जाती हैं। कृष्णा सोबती की 'मित्रो' अपनी इसी अतृप्ति की पूर्ति के लिए घर से बाहर कदम रखती हैं, हालांकि स्त्री-संबंधित रूढ़ नैतिकता से ग्रसित होने के कारण सोबती सामाजिक मूल्य के नाम पर मित्रों को वापस घर की दहलीज पर लौटा लाती है। मित्रो का लौट आना समाज की नजर में, सामाजिक मूल्य के संरक्षण की दिशा में प्रगतिशील रहा, एक आदर्श बन गया, लेकिन इस आदर्श स्थिति में उसकी शारीरिक जरूरतों की, जो प्राकृतिक है उपेक्षा की गई, जो प्राकृतिक है उसे सामाजिक तरीके से पूरा करने का प्रयास किया जाता है और जब वह सामाजिक तरीके से वह पूरा नहीं होता, तो उसे जीने का दूसरा तरीका अपनाया जाता है, जो समाज की नजर में, उसके मूल्य की कसौटी पर गलत हो सकता है, परंतु जैविक दृष्टि से गलत नहीं है। एक समय तक पुरुष अपनी शारीरिक जरूरत की पूर्ति के लिए वेश्यागमन करते रहे, वहीं जब स्त्रियां आत्मनिर्भर हुई, पूँजी उसके हाथ में आई, तो उसने भी अपनी शारीरिक जरूरतों को पहचाना, ऐसे में उसकी जरूरतों की पूर्ति के लिए 'जिगोलो' जैसे वर्ग का जन्म हुआ। अलका सिन्हा अपने उपन्यास के पात्र धमेजा के मुंह से करवाती है –"इंसान के शरीर को भूख भी लगती है और प्यास भी। तुम कितने दिन उपवास रख लोगे?..." भूख तो भूख है, इसमें पुरुष भूख या स्त्री भूख का क्या मतलब है? यह तो हो सकता है कि पुरुष भूख जहां चार रोटी खाकर मिटती हैं, वही स्त्री भूख दो रोटी से मिट जाती हो, मगर भूख तो दोनों को लगती है।" (सिन्हा 139) ऐसे में इस भूख की तृप्ति प्रमुख हो जाती है। पेट की भूख और शरीर की भूख में अंतर है, तो तृप्ति का तरीका भी अलग है। स्त्रियों द्वारा अपनी भूख को पहचानना और उसकी तृप्ति के लिए दांपत्य से बाहर मार्ग खोजना अपने आप में यौन-शुचिता संबंधी पारंपरिक धारणा का प्रतिरोध है। जिगोलो, पुरुष वेश्यावृत्ति से जुड़ा मामला है, जिसमें खरीदकर अपनी शारीरिक जरूरतों की पूर्ति होती है। यह महानगरों में फल-फूल रहा है, लेकिन इसके अंतर्गत पुरुषों के साथ जुड़ी विडंबना, उनका शोषण, कानून के अभाव में न्याय की नाउम्मीदी व समाज में उनकी मजबूरी को

समझने की समझ नदारत है, तो दूसरी ओर अपनी जरूरत की पूर्ति के लिए स्त्रियों का इनकी तरफ बढ़ता आकर्षण है। ऐसे में जिगोलो का मामला स्त्री यौन-शुचिता संबंधी पारंपरिक धारणा 'प्रेम रहित काम' का प्रस्थान है। अत: आज तक जिस 'प्रेम रहित काम' के विरोध में स्त्रियाँ रहीं, आज खुद भी उसी दिशा में अग्रसर हो, अपने द्वारा रचे प्रतिरोध पर ही प्रतिरोध खड़ा कर रही हैं, तो पुरुष वेश्यावृत्ति पर प्रकाश डाल पुरुष वेश्यावृति के कारण, इस पेशे में उनके साथ जुड़ी विडंबना व उनके हित में प्रतिरोध को भी स्त्री-प्रतिरोध के अंतर्गत रखा है।

2. 11. 1 पुरुष वेश्यावृत्ति की विडंबना और प्रतिरोध –

जिगोलो पुरुष वेश्यावृत्ति से जुड़ा मामला है। इसका वर्तमान में छोटा-मोटा नहीं, बल्कि बृहद बाजार है। इसकी बातौर साइट्स है, जो कंपनी द्वारा संचालित है। एजेंट है, अपने एग्रीमेंट है और तो और इसकी मार्केटिंग भी हैं। वेश्यावृत्ति की तरह कानूनी तौर पर 'लिगल' ना होने के बावजूद इसका बहुत बड़ा मार्केट फैला हुआ है, जहां पुरुष वेश्या को खरीदा-बेचा जाता है। ब्यूटी पार्लर, फैशन शोज्स, मसाज पार्लर, मैगजीन आदि के द्वारा इन पुरुष वेश्याओं की जानकारी उपलब्ध कराई जाती है। अलका सिन्हा का उपन्यास 'जीमेल एक्सप्रेस' के पात्र देवेंद्र त्रिपाठी जब इंटरनेट पर 'जिगोलो' के बारे में सर्च करते हैं, तो हैरान रह जाते हैं – "हैरान हूं कि इसकी बाकायदा एक साइट है, जिसमें जिगोलो का इतिहास, समकालीन परिप्रेक्ष्य में इसकी प्रासंगिकता और स्थिति, विभिन्न देशों में इसके प्रचलित स्वरूप ... जैसी हर तरह की जानकारी उपलब्ध है। इसकी साइट पर आप खुद को इनरोल भी कर सकते हैं और ऑनलाइन एक दूसरे के संपर्क में आ सकते हैं।" (सिन्हा 109) यानि आज जिगोलो का एक बड़ा मार्केट है, जो इनकी मांग को दर्शाता है। जिगोलो का वर्ग भारत में कैसे पनता और कैसे फल-फूल रहा है इसका संकेत करते हुए अशफाक अहमद अपने उपन्यास 'जूनियर जिगोलो' में लिखते हैं :

> "कभी जिस्म बेचने के धंधे पर औरतों की मोनोपोली थी, लेकिन अब मर्द भी इस धंधे में बराबर का शरीक है। ठीक है कि उसके पास जीबी रोड जैसे इलाके नहीं, लेकिन अलग-अलग ज्यादातर मेट्रो सिटीज में उनकी मंडियां होती हैं। उनके क्लब वगैरह होते हैं और ढेरों एजेंसी और दलालों के जरिए बड़े ऑर्गेनाइज तौर पर यह धंधा चलता है। नाईंटी वन के बाद बढ़ी हुई आर्थिक खुशहाली ने इस धंधे की नींव डाली थी, लेकिन बाद के इंटरनेट के प्रचार-प्रसार के साथ बैढ़ते ग्लोबल कम्युनिकेशन और पोर्न सर्फिंग ने भारत के बड़े शहरों के संपन्न वर्ग की भूखी और जरूरतमंद औरतों के बीच एक ऐसा बाजार जनरेट किया है जो दुनिया के पश्चिमी और उन्मुक्त संस्कृति वाली औरतों से पिछड़ना नहीं चाहती| अगर वे खरीद सकती है तो यह भी खरीद सकती हैं। बिकने लायक, जरूरतमंद और शौकीन मर्दों ने भी अपनी एबिलिटी पहचानी और इस बाजार का हिस्सा बन गए। अब जब बाजार मौजूद था – बिकने और खरीदने वाले लोग मौजूद थे, तो हम जैसे कारोबारी लोगों को इंटरेस्ट लेना ही था, जो इस धंधे को बाकायदा ऑर्गेनाइज तरीके से ला सके।"(अहमद 57)

अर्थात् इस वर्ग का उदय स्त्री की आर्थिक आत्मनिर्भरता के साथ अपनी शारीरिक जरूरतों की पहचान एवं पश्चिमी संस्कृति के अंधानुकरण से जुड़ा मामला है। तो पुरुष पक्ष में उनकी जरूरत व शौक से जुड़ा मामला है। 'जूनियर-जिगोलों' की रितिका जो ऐसे व्यवसाय को चलाती है, इसके बड़े बाजार की ओर संकेत करती हुई जिगोल अशोक को इस धंधे के बारे में बताती है कि किस प्रकार एजेंसीज इसके अंतर्गत काम करती है –

> "मेन चीज यह है कि एक्टिव कंडीशन में तुम लोग हमारी एजेंसी के साथ दस साल तक के लिए अनुबंधित हो। इस बीच ना तुम कोई दूसरी एजेंसी ज्वाइन कर सकते हो, ना ही इंडिविजुअली धंधा कर सकते हो। हां, रिटायर हो सकते हो लेकिन मिनिमम एक साल सर्विस देने के बाद। यह साल भर की शर्त भी इसलिए हैं कि तुम्हारी ब्रांडिंग-मार्केटिंग पर जो हमारा इन्वेस्टमेंट होगा, वह हमें रिटर्न में मिल सके। एग्रीमेंट तोड़ने की सूरत में एक करोड़ का मुआवजा भरना पड़ेगा और इसके सिवा भी तुम सर्विस के दौरान एजेंसी को चिट नहीं कर सकते, मतलब कस्टमर से डायरेक्ट डिल नहीं कर सकते। ऐसा करते पकड़े जाने पर पहली बार में तीन बार की बुकिंग पेमेंट देनी होगी और दोबारा में पूरे महीने की| तीसरी गलती पर एक लाख का जुर्माना अदा करना होगा।"(अहमद 99)

ऐसे व्यवसाय में पुरुष के आने का प्रमुख कारण आर्थिक असमर्थता और बेरोजगारी हैं, हालांकि इसके अलावा अन्य कारण में नए के प्रति आकर्षण, नौकरी का झांसा, नौकरी में उच्च पदस्थ महिला से लाभ, पहले से ही शोषण के शिकार, नौकरी से परिवार की आपूर्ति में अक्षम आदि अनेक वजह जुड़े हुए हैं। 'जूनियर जिगोलो' का अशोक हो या 'देह के पार' का अविनाश मजबूरी में इस पेशे से जुड़ता है। जयश्री राय की कहानी 'देह के पार' का जिगोल अविनाश अपनी आर्थिक मजबूरी का जिक्र करते हुए नव्या से कहता है – "देह का स्वाद मैं जमाने से भूल गया हूं जे, दूसरों की जरूरतें पूरी करते-करते एक मशीन बन कर रह गया हूं। कई जगह आश्रय लिया, कई जगह नौकरी की। हर जगह दो रोटी और एक छत के लिए शरीर को बंधक रखना पड़ा।" (राय) 'जूनियर जिगोलो' के अशोक के इस काम में आने का कारण बेरोजगारी ही रही। उपन्यास 'जीमेल एक्सप्रेस' में 18-20 वर्षीय इंजीनियरिंग युवक कहता है कि किस प्रकार पढ़ने के लिए उसके परिवार में कर्ज बढ़ गया और नौकरी ना मिल पाने की स्थिति में उसे इस पेशे में आना पड़ा – "खुशी से कोई नहीं आता इस धंधे में, नौकरी मिलने पर खुद ही छोड़ देता है यह सब...।" (सिन्हा 115) इस पेशे में पुरुषों के साथ ज्यादती जुड़ी हुई है, इसे 21वीं सदी के लेखक-लेखिकाओं ने कथा-साहित्य में विषय बना प्रेम-काम के मामले में प्रतिरोध को खड़ा किया है। जयश्री राय 'अविनाश' के माध्यम से पुरुष यौन शोषण के इस पक्ष पर कहलवाती है – "अय्याश अफसरों, अधिकारियों से लेकर बूढ़ी, अधबूढ़ी सेठानियों, रईसों की पत्नियों तक, किसी ने दया नहीं की, पूरी-पूरी कीमत वसूल की हर मदद के लिए...पहले पहल बहुत तकलीफ होती थी। बाद में सब सह गया...आदत हो गई।" (राय) यह एक रूढ़ धारणा है कि पुरुषों के साथ बलात्कार नहीं होता, बल्कि होता है और ऐसे धंधे में

कई बार इसी कारण उसे खरीदा भी जाता है। अलका सिन्हा के उपन्यास 'जी-मेल एक्सप्रेस' में जिगोल बताता है – "वह मेरे हाथ पैर बांधकर मुझ पर जबरदस्ती करती है और मैं उसे करने देता हूं..." उस लड़के ने बताया कि इस महिला का कभी रेप किया गया था और वह छटपटा कर रह गई थी। इस तरह जबरदस्ती कर वह अपनी भड़ास मुझ पर निकालती है। मुझे छटपटाते देखकर वह संतुष्ट होती है...इसी संतुष्टि के मुझे पैसे मिलते हैं। मुझे पैसों की जरूरत है और उसे संतुष्टि की।"(सिन्हा122) वेश्यावृति को लेकर कानून है और वो लिगल भी है, लेकिन कानून के अभाव में ऐसे पेशे में काम करने वाले जिगोलो की सामाजिक व शारीरिक सुरक्षा की कोई व्यवस्था नहीं होती। हालांकि जिन कस्टमरों के सामने उपलब्ध होते हैं, उन्हें इनसे सुरक्षित रखने की पूरी व्यवस्था कंपनी के द्वारा की जाती हैं। उपन्यास 'जूनियर जिगोलों' में मेल प्रॉस्टिट्यूट बतलाता है – "हम किसी को नाम से नहीं जानते। इस धंधे में पर्सनल जानकारी शेयर नहीं की जाती है।...मैसेज में ही हमें समय और जगह की जानकारी दे दी जाती है। इससे ज्यादा हम अपने क्लाइंट के बारे में कुछ नहीं जानते।" (सिन्हा 115) अगर शारीरिक सुरक्षा की बात की जाए तो वह भी जिगोलो के लिए नदारत हैं। रितिका अशोक को बतलाती है – "इसके लिए धंधे में उतरते ही एचआईवी टेस्ट कराना पड़ता है, जिसकी रिपोर्ट जिगोलो की एजेंसी के पास रहती है और वह कस्टमर को यह श्योरिटी देती है कि उसके आइटम में कोई बीमारी नहीं है। बाकी कस्टमर अपनी तरफ से ऐसी कोई श्योरिटी नहीं देता, लेकिन हमें भरोसा करना पड़ता है कि वे सेफ हैं।"(अहमद 73) हालांकि इस पेशे से जुड़ा पुरुष शारीरिक कमजोरी से भी ग्रसित हो जाता है और इससे उसकी अपनी शादीशुदा जिंदगी भी प्रभावित होती है। इस पेशे में पुरुष विडंबनाओं से ग्रसित हैं और इस विडंबनापरक व्यवस्था के विरोध में प्रतिरोध को खड़ा किया है। काम की तृप्ति स्त्री का भी मौलिक अधिकार है, लेकिन जिगोल को खरीदने के पीछे काम-तृप्ति के अलावा पुरुषों द्वारा स्त्रियों को खरीदने का अनुभव जैसा अनुभव स्वयं में उन्हें खरीदते हुए करना, प्रतिशोध को ही जन्म देता है। साथ ही विवाह में स्त्री के साथ उसकी इच्छा के विरुद्ध बनाए गए संबंध को स्त्री पक्ष को सदा बलात्कार ही महसूस हुए और इसके जवाबी आचरण में जिगोल के साथ एक स्त्री, पुरुष के साथ बलात्कार करने का ही सुख लेती है। इन दोनों संदर्भों में प्रतिशोध की भावना आई है, जबकि काम-तृप्ति का लक्ष्य विवाह संस्थान के समानांतर वर्ग विशेष द्वारा प्रतिरोध का सूचक है ।

2. 11. 2. पुरुष वेश्यावृत्ति और स्त्री-प्रतिरोध –

जिगोलो की ओर स्त्रियों के बढ़ने के कई कारण है और ये कारण प्रेम-काम के मामले में रूढ़ नैतिकता और सामाजिकता के विरोध में स्त्री के प्रतिरोध को दर्शाता हैं। यौन शुचिता संबंधी कड़े पितृसत्तात्मक नियम ने स्त्री की यौनेच्छा को सदियों तक दबाकर रखा, इसे पाप से जोड़कर देखा गया। ऐसे में जब स्त्री आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर हुई और अपनी अन्य जरूरतों की पूर्ति के लिए स्वतंत्र हुई, तो अपनी देह की भूख को भी पहचाना

और इसे पाप-पुण्य के बंधन से आजाद कर एक प्राकृतिक जरूरत के रूप में देखा। ऐसे में इसकी पूर्ति के लिए जिगोलो जैसे वर्ग का जन्म हुआ। अशफाक अहमद लिखते हैं –

> "शारीरिक जरूरतों के मारे सिर्फ मर्द ही नहीं होते,बल्कि औरतें भी होती हैं, दोनों की परिस्थितियों में फर्क भी हो सकता है और वे सामान भी हो सकती है, लेकिन यह तय है कि अब अपनी इच्छाओं का दमन करके वे सक्षम औरतें घुट-घुट कर जीना नहीं चाहतीं और उन्होंने खरीद कर वह खुशी हासिल कर लेने की कला सीख ली है और उनकी जरूरतों के मद्देनजर एक आर्गेनाईज्ड बाजार भी खड़ा हो गया है, जहां हर बड़े शहर में स्पा, पार्लर, डिस्कोथेक, क्लब, कॉफी हाउस जैसी जगहें हो गई हैं या सरोजनी नगर, कमला नगर मार्केट, पालिका बाजार, लाजपत नगर, जनकपुरी डिस्ट्रिक्ट सेंटर जैसी कई ओपन मार्केट मौजूद हैं, यहां बाकायदा जिगोलो ट्रेनर, कोऑर्डिनेटर, एजेंसीज और कंपनी तक अपनी हिस्सेदारी के लिए मौजूद हैं और एक तयशुदा कमीशन पर नए-नए लड़के यह काम धड़ल्ले से कर रहे हैं।"(अहमद भूमिका)

जिगोलो का संबंध स्त्री की आर्थिक आत्मनिर्भरता से जुड़ा मामला है, लेकिन इसके साथ ही अन्य कुछ मामले भी इसमें जुड़े हुए हैं। कुछ एडवेंचर, नए को जी पाने की चाहत, पति से ज्यादा माँगने पर दुत्कार की शिकार, शादी न करना, पति से दूर रहना तो कुछ-कुछ परिस्थिति में सेक्स डिजॉडर व प्रतिशोध, भड़ास निकालने के लिए औरते पुरूषों को खरीदती है। अशफाक अहमद लिखते हैं –

> "अब यह डिमांड वाली औरतें होती कौन है...कोई शौकिया लड़की या औरत भी हो सकती है, जिसे बाहर के खाने की तरह सिर्फ सेक्स चाहिए, कोई कमिटमेंट नहीं...जिम्मेदारियों से बंधी कोई बड़ी उम्र तक कुंवारी रह गई लेडी भी हो सकती है जिसकी कंडीशन शादी की इजाजत ना देती हो और यूं ही उम्र गुजरी जा रही हो...कोई ऐसी शादीशुदा महिला भी हो सकती है, जिसका पति अपनी नौकरी या बिजनेस के चलते अक्सर बाहर रहता है और बीवी को जरूरत भर भी शादी का सुख नहीं दे पाता है...कोई ऐसी शादीशुदा महिला भी हो सकती है जिसका पति पक्का औरतखोर हो और जहां-तहां मुंह मारता रहता हूं और इस चक्कर में बीवी को वह शारीरिक सुख नहीं दे पाता तो उसे चाहिए...और यह मर्द के संसर्ग की भूखी औरतें या लड़कियां, अपर क्लास की भी हो सकती हैं, अपर मिडिल क्लास की भी और मिडिल क्लास की भी।" (अहमद 72)

ऐसी स्त्रियां हर वर्ग से आती है, हालांकि अपनी जरूरतों की पूर्ति के लिए इससे अलग विवाहेतर संबंध, लिव इन भी उपाय हैं, लेकिन इन दोनों ही मामलों में खुलासा सामाजिक प्रतिष्ठा के खिलाफ है अर्थात् जगजाहिर होने का खतरा बना रहता है साथ ही कमिटमेंट और एकाधिकार की भावना और उससे उत्पन्न वैवाहिक विसंगतियां से दूषित भी। ऐसे में आर्थिक आत्मनिर्भरता से जिगोलों को खरीदकर जरूरत पूरी करना अपनी

मर्जी, अपनी चॉइस से तृप्ति का अवसर उपलब्ध कराता है। 'जूनियर जिगोलों' में जिगोल विवेक अशोक को समझाते हुए कहता है – "अब जिस्म की भूख तो हर किसी को लगती है...आदमी का क्या है, कहीं भी मुंह मारने दौर पड़ता है। कोई पटी हुई तो ठीक और न पटी हुई तो पैसों से खरीद ली। औरतों को सामाजिक मर्यादाओं के चलते इस मामले में सब्र करना पड़ता था। उसके सामने दो खतरे रहते हैं...पहला कि आदमी कहीं मुंह मारता पकड़ा जाए तो थोड़ी हाय तौबा के बाद मामला शांत और औरत पकड़ी जाए तो जिंदगी भर की बदनामी। दूसरा कि किसी के साथ रिलेशन बनाना हमेशा रिस्की रहता है क्योंकि मर्द स्वभाव से पजेसिव होता है। औरत ने जरा सी ढील दी नहीं कि वह उसे अपनी प्रॉपर्टी समझने लगता है। अब सपोज कि उसे सिर्फ सेक्स चाहिए था लेकिन इसके लिए पार्टनर पालने के चक्कर में उसने जी का जंजाल पाल लिया।" (अहमद 72) अर्थात् जिगोलो काम तृप्ति के मामले में स्त्रियों के लिए एक सुरक्षित ऑप्शन है जिसमें ब्लैकमेल होने का खतरा नहीं, ना ही अन्य तरह की परेशानी, जिस कारण ऐसे संबंध के प्रति स्त्रियों की रुचि बढ़ी। जिगोलो अपनी शारीरिक जरूरतों के प्रति सचेत स्त्रियों का यौन-शुचिता संबंधी नैतिकता को खुली चुनौती की दिशा में प्रतिरोध है।

2. 12. आत्मरति (सेल्फ सेक्स) और स्त्री-प्रतिरोध –

प्रेम और काम के मामले में प्रतिरोध से जुड़ा एक मामला 'सेल्फ लव' और 'सेल्फ सेक्स' से जुड़ा है। विवाह संस्थान की अपनी संरचना के कारण जब प्रेम-काम की पूर्ति इसमें हो पाना कठिन प्रतीत हुआ और अनेक संदर्भ इससे जुड़ गए, तो एक तरफ चोरी-छिपे विवाहेतर संबंध, तो दूसरी तरफ ढोल पीटकर लिव-इन संबंध की शुरुआत हुई, हालांकि इन दोनों संबंध की नियति भी विवाह वाली ही रही। वैवाहिक जीवन की रूढ़ी और एकाधिकार की भावना से एक ओर ऐसे संबंध दूषित हो गए, दूसरी ओर समाज के सामने उजागर होने पर प्रतिष्ठा की हानि के साथ कानूनी दांवपेच से त्रस्त। ऐसे में शारीरिक जरूरतों की पूर्ति के लिए वेश्यावृत्ति की तर्ज पर स्त्री की आत्मनिर्भरता के साथ जिगोलो जैसी संस्था का जन्म हुआ। इसमें पैसे खर्च कर ऐसे व्यक्ति की उपलब्धता सहज हुई, जिसमें ना कोई कानूनी दांव-पेंच हो, ना ही सामाजिक सम्मान हानि का डर और ना ही एकाधिकार की भावना साथ ही ना ही उससे उत्पन्न विसंगति की नियति को झेलने की ही मजबूरी। यह पूर्णत: दैहिक रहा, लेकिन आर्थिक आत्मनिर्भरता का अभाव, कस्बाई समाज, औरतों का घरेलू संस्कार साथ ही नैतिकता, मूल्य से बना रूढ़ स्त्री मन, शारीरिक बनावट आदि अनेक कारण रहे, जिस कारण जिगोलो से भी शारीरिक भूख की पूर्ति अधिकांश में संभव न हो सकी। ऐसे में शारीरिक जरूरतों की पूर्ति के लिए प्राकृतिक के प्रतिरोध में कृत्रिम की व्यवस्था का जन्म हुआ और सोलो सेक्स, सेल्फ लव की धारणा विकसित हुई। हाल ही में 'क्षमा बिंदु शर्मा' का एक लड़की और लड़का दोनों के संपर्क में आने के बाद अनत: खुद से शादी का फैसला लेना और शादी करना, सेल्फ लव व सेल्फ सेक्स की ओर समाज के बढ़ते कदम उदाहरण है, तो बाजार में ऐसे

कई उपकरण उपलब्ध है जो इसे संभव बना रही है और फैमिलियर बिजनेस साइट पर इसकी धड़ल्ले से बिक्री जारी है।

सामाजिक संरचना में नैतिकता की कसौटी पर एक स्त्री के लिए किसी भी परिस्थिति में, किसी भी उम्र में सेक्स के बारे में सोचना भी पाप है। ऐसे में विवाह के बाद पति के सामने भी अपनी इच्छा को रखना पत्नी के चरित्र हनन के लिए काफी है। हमारे समाज की संरचना ही ऐसी है और स्त्री की शिक्षा में ऐसे मूल्य को विकसित किया गया है कि अपनी इस इच्छा को सामने रखने पर वह स्वयं भी अपराधी महसूस करने लगती है। 'कथा के गैर जरूरी प्रदेश में' अरुंधति के अंदर सेक्स की इच्छा जगती है, पर वह जानती है कि अपने पति के सामने भी इस इच्छा को रखेगी तो परिणाम क्या होगा – "अगर इस जरूरत को झपट लेने की बलवती, आकांक्षा पैर फैलाने लगे, तो सबसे पहले उसी की नजर में गिर जाएगी, जिसके प्रति देह का आकर्षण और प्यार की हिलौरे उठ रही हैं। सारी शिक्षा-दीक्षा, संस्कार सब व्यर्थ चले जाएंगे। मिलेगा दुत्कार और जगत बिना सोचे समझे काटकर गाड़ देंगे।" (मिश्र 39) और इसीलिए अपनी इस इच्छा को दबाने का भरपूर प्रयास करती है – "इस इच्छा को नियंत्रित करने की, मारने की कितनी असफल कोशिशें...वे तमाम दिन, वे तमाम रातें, जब अपने आप से चिढ़ती, खींजती रही हैं वे...ओफ।" (मिश्र 39) और अंतत: पूर्ति के लिए पति की जगह सोलो सेक्स का रास्ता चुनती है। अरुंधती के बारे में कथा लेखिका लिखती हैं – "जाने कब उन्होंने अपना ब्लाउज उतारा, जाने कब अपने को प्यार करते-करते अपने में डूब गई...गला, कंधा, पेट, जांघें...जाने किस आवेश में अपने हाथों अपने को जोर से भींच लिया...सोलो सेक्स।" (मिश्र 39) हालांकि इसे विकृति कही जा सकती है, परंतु राकेश बिहारी के शब्दों में 'यह विकृति नहीं प्राकृतिक जरूरत को जीने की शक्ल' में सामने आया है। नीलाक्षी सिंह की कहानी 'उस बरस के मौसम', की नायिक डॉ अंतरा मालिक भी जीवन में प्रेम और अपने प्रेमी के अभाव में 'सोलो सेक्स' का रास्ता चुनती है। वंदना राग की कहानी 'छाया युद्ध' की शायना भी सोलो सेक्स को चुनती है, क्योंकि पति सिद्धार्थ मां के मरने के बाद शायना से उसकी मां बनने की उम्मीद करता है और उसकी जरूरतों को धिक्कार देता है। लेखिका के शब्दों में – "उसने अपने दिन के कामों को अंजाम दे, सिद्धार्थ को एक मैसेज किया, 'कैसे हो जानम?' जवाब आया, 'क्यों तंग कर रही हो, जाओ कहीं घूम आओ। कुछ पैसे फूंको, तुम्हें अच्छा लगेगा।" (राग 170) इतना ही नहीं जब उसके करीब आना चाहती है, तो झल्लाने लगता है – "ये क्या हरकत है? मैं इतना थका हुआ हूं और तुम्हें खेल सूझ रहा है?"(राग 172) और अंतत: जब उसे पता चल जाता है कि पति से इच्छापूर्ति संभव नहीं है, तो बाथरूम में जा खुद को पतली नाइटी, बिखरे बाल, गहरे रंग की लिपस्टिक में सजा, बार गर्ल जैसे तैयार हो अपने को देख आईने में चूमती है और खिलखिलाकर हँस पड़ती है। राकेश बिहारी इस अंत को दो रूप में देखते हैं – "शायना के बार गर्ल के वेश में आने के बाद उसकी खिलखिलाहट में सिद्धार्थ की हिचकियों के गुम होने के प्रतीक का क्या अर्थ है? क्या शायना का यह नया रूप

सिद्धार्थ को नए सिरे से रिहा कर उसे अपने दांपत्य में वापस लाने के लिए किया गया एक और जतन है? या फिर अब वह सिद्धार्थ को उसके हाल पर छोड़ कर उससे इतर भी कोई विकल्प तलाशने के लिए मानसिक रूप से तैयार हो रही है?" (बिहारी 13) मेरे विचार से यह शायना का सिद्धार्थ से अलग अन्य विकल्प तलाशने के लिए की गई मानसिक तैयारी है और यह अन्य विकल्प सेल्फ लव व उससे अधिक सोलो सेक्स हो सकता है, क्योंकि बाथरूम में अपनी हथेली को होठों के पास ले जाकर खुद पर फ्लाइंग किस उछालती है और फिर खुद को देख खिलखिला कर हँस पड़ती है। प्रियंका ओम की कहानी 'विष्णु ही शिव है' की बाल विधवा भी सेक्स की जरूरत को महसूस करती हैं और स्वयं ही अपनी जरूरत को सोलो सेक्स के द्वारा पूरी करती हैं, पर अगले ही पल अपराध बोध से ग्रसित हो जाती है –

> "फिर कुछ याद आते ही हाथ खींच लिया — छि:,छि:! दुष्कर्म वाले हाथ। फिर संदूक रखा चाकू उठाती हैं, इस चाकू से वह अपने लिए दातुन बनाती हैं...उसे काटती है, छीलती हैं...वह अपनी हथेलियों की मैली चमड़ी भी छीलकर निकाल देगी...हथेली को खुरचने का प्रयास...गंदी चमड़ी उतार देगी। फिर हार कर असहाय-सी चाकू दूर फेंक देती है। उसे स्वयं से घृणा होने लगी, हथेलियों को आंचल से रगड़-रगड़कर साफ़ करने की कोशिश करते हुए वह आत्म मंथन में उलझ जाती है, क्यों स्वयं को रोक पाना संभव नहीं हुआ, क्यों देह के समक्ष उसकी तपस्या बौनी हो जाती है।" (ओम 190)

यहाँ रूढ़ नैतिकता से निर्मित रूढ़ स्त्री मन ही है, जो सेक्स को गलत मान रही है। ऐसे में स्त्री को इस रूढ़ मन को प्रतिरोध की दिशा में तोड़ना होगा। काम प्राकृतिक है इसे समझना होगा और जब इस दिशा में रूढ़ सोच चाहे स्त्री की हो, पुरुष की हो या समाज की हो, बदलेगी तभी स्वस्थ समाज बनने की दिशा में प्रस्थान होगा, क्योंकि मानसिक रूप से तृप्ति ही आचरण में विकृति को आने से रोक सकती है। इस प्रकार काम तृप्ति कहीं न कहीं मानसिक तृप्ति से भी जुड़ी हुई है और अकेले में ये करना यानि अतृप्तियों के सारे कारणों के विरुद्ध एक पहल है, जो स्वयं में एक प्रतिरोध है।

निष्कर्षत: यह देखते हैं कि 21वीं सदी में प्रेम-काम संबंधी स्त्री-प्रतिरोध का स्वर समग्रता लिए है। 21वीं सदी के पहले अधिकांश रचनाकारों ने पुरुष की कामवृति के प्रतिरोध में लेखन किया, जबकि 21वीं सदी में यह प्रतिरोध लैंगिक दुराग्रह से मुक्त है। मूल्य, नैतिकता, सामाजिकता, परंपरा के परिप्रेक्ष्य में प्रेम के साथ कामवृत्ति को व्यक्ति के सहज गुण के रूप में स्वीकार करने की जगह एक समय स्त्री द्वारा उसके दमन पर जोर दिया जाता रहा, वहीं व्यक्तिवादी, आस्तित्ववादी, मनोविश्लेषणवादी विचारधारा के प्रभाव से 60-70 के दशक में कृष्णा सोबती, मृदुला गर्ग के यहाँ उस पर खुल कर चर्चा होने लगी। 'मेरी देह, मेरी मर्जी' जैसी अवधारणा मजबूत होने लगी। परिणामत: 21वीं सदी तक आते-आते प्रेम-काम के मामले में जिगोलो

और आत्मरति जैसे प्रसंग भी जुड़ने लगे। एक ओर साहित्य में पुरुष को उसके कामातुर आचरण के कारण गलत ठहराया जाता रहा है, तो दूसरी ओर स्त्री की कामेच्छा को उसके अधिकार के रूप में देखा जाता रहा। इस तरह स्त्री विमर्श पूरी तरह एकतरफा हो गया, लेकिन स्त्री-विमर्श के इस एकाकी दृष्टिकोण का प्रतिरोध अब 21वीं सदी में दर्ज हुआ है। 21वीं सदी में स्त्री द्वारा घोषित पुरुष के तथाकथित बुरे कामाचार को बराबरी के नाम पर अपनाते चले जाने को लक्ष्य-उपलक्ष्य की पृष्ठभूमि में विषय बना प्रतिरोध का जो प्रतिशोधी स्वरूप विकसित हुआ है, उसे एक नकारात्मक दिशा-बोध के रूप में पहचाना गया है। साथ ही प्रेम-काम संबंध में स्त्री-पुरुष का एक-दूसरे के विपरीत और प्रतिरोधी होने के मूल में निहित कारक तत्व 'फैंटेसी' की पहचान की गई है। रूढ़ नैतिकता और 'फैंटेसी' से वैवाहिक, विवाहेतर या लिव-इन संदर्भों के द्वंद्वग्रस्त होने की पड़ताल हुई है। प्रतिरोध की दिशा में 'प्रेम रहित काम' और 'काम रहित प्रेम' की जगह 'प्रेम सहित काम' की अवधारणा मजबूत की गई है। प्रतिरोध की सृजनात्मकता इस बात में उपलब्धि समान है कि 21वीं सदी का लेखन प्रेम-काम संबंधी वस्तुगत आचरण को विषय बनाता है, न कि स्त्री और पुरुष को। इस नाते 21वीं सदी के पहले नैतिकता के नाम पर रूढ़ नैतिकता से आगे मनमर्जीपन का चलन रहा, जिसका बेहद जरूरी प्रतिरोध अब निर्मित हुआ है। साथ ही इसके भरपूर संस्कार का प्रयास भी किया गया। समग्रता में अब विमर्श की दिशा किसी एक पक्ष को उसके कमाचरण के कारण बुरा कहकर उसमें आत्ममुग्धता की नहीं रही, बल्कि इस बुरे के होने के पीछे के कारणों की तलाश कर उसका प्रतिरोध दर्ज करने की रही है। प्रतिरोध पुरुष के घोषित बुरे आचरण का अंधानुकरण नहीं है, बल्कि प्रतिरोध के नाम पर घटित ऐसे मनमर्जीपन की आलोचना है, जो स्वयं 21वीं सदी में स्त्रीवादियों द्वारा की जा रही है। समग्रता में आज प्रेम-काम के मामले में प्रतिरोध का स्वर प्रतिशोध की दिशा में नहीं है, बल्कि लक्ष्य-उपलक्ष्य की पृष्ठभूमि में फैशन सरीखे प्रतिरोध को सृजनात्मक आयाम उपलब्ध कराने की दिशा में अग्रसर है।

संदर्भ-ग्रंथ

अनामिका. *तिनका-तिनके पास*. वाणी प्रकाशन, 2008.

---, *मन मांजने की जरूरत*. सामयिक प्रकाशन,2008.

अहमद,अशफाक.*जूनियर जिगोलो*. ग्रडियस पब्लिशिंग हाउस, 2020.

ओम, प्रियंका. "विष्णु ही शिव है." *कामुकता का उत्सव : प्रणय,वासना और आनंद की कहानी,* संपादक रंगनाथन,जयंती, वाणी प्रकाशन,2020. पृष्ठ-188-201.

ऋषिराज, गौतम."अनगिनत परिधियों वाला वृत." *कामुकता का उत्सव: प्रणय,वासना और आनंद की कहानी*, संपादक रंगनाथन,जयंती, वाणी प्रकाशन, 2020. पृष्ठ-150-160.

कांकरिया,मधु."चूहे को चूहा रहने दो."*बीतते हुए*, दूसरा संस्करण,राजकमल प्रकाशन,2017.पृष्ठ177-192.

---, "नामर्द." *बीतते हुए*,दूसरा संस्करण, राजकमल प्रकाशन,2017. पृष्ठ 9-19.

---, "बीतते हुए." *बीतते हुए*,दूसरा संस्करण, राजकमल प्रकाशन,2017. पृष्ठ 67-77.

---, "दरअसल मम्मी." *बीतते हुए*, दूसरा संस्करण, राजकमल प्रकाशन,2017. पृष्ठ 118-124.

---, "बड़ा पोस्टर." *बीतते हुए*, दूसरा संस्करण, राजकमल प्रकाशन,2017. पृष्ठ 100-117.

कात्यायनी, *प्रेम,परंपरा और विद्रोह*.प्रथम संस्करण, परिकल्पना प्रकाशन,2008.

कुमार,आशुतोष.संपादक, "संपादक की ओर से बातचीत." आशय पत्रिका,वर्ष-4,अंक 5-6 (संयुक्तांक),सितम्बर 2005-2006. पृष्ठ 1-13.

कुमार,कमल."सखी-सहेली." *कामुकता का उत्सव : प्रणय,वासना और आनंद की कहानी,* संपादक रंगनाथन,जयंती, वाणी प्रकाशन,2020. पृष्ठ-106-120.

कुलश्रेष्ठ ,मनीषा."एडोनिस का रक्त और लिलि के फूल." *कामुकता का उत्सव : प्रणय,वासना और आनंद की कहानी.* संपादक रंगनाथन,जयंती, वाणी प्रकाशन,2020. पृष्ठ 126-140.

गीताश्री, "गोरिल्ला प्यार." *स्वप्न में वसंत:स्त्री यौनिकता की कहानी*, संपादक बिहारी,राकेश,शिल्पायन प्रकाशन, 2014. पृष्ठ 57-65.

---, "ताप." *प्रार्थना के बाहर और अन्य कहानियाँ*, वाणी प्रकाशन,2013. पृष्ठ 83-95.

---, "देह का मुक्ति प्रसंग.'' *स्त्री आकांक्षा के मानचित्र*, सामयिक प्रकाशन, 2008. पृष्ठ 81-85

---, "स्त्री का यौन-जीवन:कामना का नीलकुसुम' *स्त्री आकांक्षा के मानचित्र*, सामयिक प्रकाशन, 2008. पृष्ठ 110-113

गर्ग,मृदुला. *उसके हिस्से की धूप*. नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 2002.

---, "एक और विवाह." *संगति-विसंगति (संपूर्ण कहानियाँ, खण्ड-1)*. नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 2004. पृष्ठ-26-36.

---, *कठगुलाब*. दूसरा पेपरबैक संस्करण,भारतीय ज्ञानपीठ,2001.

---, "प्रेम जितना सहज है, उतना जटिल." आशय पत्रिका, संपादक कुमार.आशुतोष, वर्ष-4,अंक-5-6 (संयुक्तांक),सितम्बर 2005-2006. पृष्ठ 40-47.

---, "मेरी तरफ से." *चित्तकोबरा*, सातवाँ संस्करण, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 2004.

---, *मेरे साक्षात्कार*, किताबघर प्रकाशन, 2012.

चतुर्वेदी,जगदीश्वर.एवं सुधा सिंह, *कामुकता, पॉर्नोग्रफी और स्त्रीवाद*. आनंद प्रकाशन, 2007.

चौहान, नीलिमा. "कैद में है बुलबुल" पतनशील पत्नियों के नोट्स. वाणी प्रकाशन,2017. पृष्ठ 11-28

---, "ताले जज़्बातों वाले" पतनशील पत्नियों के नोट्स. वाणी प्रकाशन, 2017. पृष्ठ 51-89

जैनेन्द्र, *समय और हम*,प्रथम संस्करण,पूर्वोदय प्रकाशन,1961.

जोशी,प्रज्ञा."देह (व्यापार)और प्रेम : कुछ नोट्स" आशय पत्रिका, संपादक कुमार,आशुतोष,वर्ष-4,अंक,5-6,(संयुक्तांक),सितम्बर 2005-2006. पृष्ठ 186-191.

पांडेय,मनीषा. "स्टारी – स्टारी नाइट्स" *स्वप्न में वसंत:स्त्री यौनिकता की कहानी*. संपादक बिहारी,राकेश, शिल्पायन प्रकाशन, 2014. पृष्ठ141-156.

पुष्पा, मैत्रेयी."औरतों की नैतिकता के नियम पुरुषों ने दिए हैं", *समय संवाद और स्त्री प्रश्न*.तरसेम गुजराल,भावना प्रकाशन,2015 पृष्ठ 113-116.

---, *चर्चा हमारा*.सामयिक प्रकाशन,2009.

प्रमीला के०पी०, 'स्त्री-अस्मिता और पुरुष-विनिर्माण", *स्त्री:यौनिकता बनाम आध्यात्मिकता*.पहला संस्करण, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 2010. पृष्ठ 32-42.

बिहारी, राकेश.संपादक, "देह और प्रेम के कुहासे के बीच सपनों का वर्णन." *स्वप्न में वसंत:स्त्री यौनिकता की कहानी*. संपादक बिहारी,राकेश, शिल्पायन प्रकाशन, 2014. पृष्ठ 3-26.

भंडारी,मन्नू. *उत्तर-औपनिवेशिकता के स्त्रोत और हिन्दी साहित्य*. डॉoकृष्ण, प्रणय, हिन्दी परिषद् प्रकाशन, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, 2008.

माजी,महुआ."चन्द्रबिन्दु" *स्वप्न में वसंत:स्त्री यौनिकता की कहानी*. संपादक बिहारी,राकेश, शिल्पायन प्रकाशन, 2014. पृष्ठ 157-165

मिश्र,अल्पना."कथा के गैर जरूरी प्रदेश में" *स्वप्न में वसंत:स्त्री यौनिकता की कहानी*. संपादक बिहारी,राकेश, शिल्पायन प्रकाशन, 2014. पृष्ठ 27-40.

---, "हे अहिल्या", *कब्र भी कैद औ' जंजीरें भी*. दूसरा संस्करण, राजकमल प्रकाशन.2015. पृष्ठ 110-120.

राग,वंदना.“छायायुध्द” *स्वप्न में वसंत:स्त्री यौनिकता की कहानी*. संपादक बिहारी,राकेश, शिल्पायन प्रकाशन, 2014. पृष्ठ 166-174.

राजकिशोर, *स्त्री-पुरुष: कुछ विचार*, वाणी प्रकाशन,2000.

रानी,विभा.“महुआ मदन रस टपके रे ” *स्वप्न में वसंत:स्त्री यौनिकता की कहानी*. संपादक बिहारी,राकेश,शिल्पायन प्रकाशन, 2014. पृष्ठ 175-183.

राय. जयश्री, *औरत जो नदी है*. वाणी प्रकाशन, 2019

---, “एक रात” *कामुकता का उत्सव : प्रणय,वासना और आनंद की कहानी*. संपादक रंगनाथन,जयंती,वाणी प्रकाशन,2020. पृष्ठ 49-63.

---, “वर्जित सुख” *तुम्हें छू लूँ जरा*.सामयिक प्रकाशन,2017. पृष्ठ 90-102.

वर्मा,अर्चना.*अस्मिता विमर्श का स्त्री-स्वर*.मेधा बुक्स,2008.

विपिन,चौधरी,“सांप” *कामुकता का उत्सव : प्रणय,वासना और आनंद की कहानी*. संपादक रंगनाथन,जयंती,वाणी प्रकाशन,2020. पृष्ठ 136-149.

शर्मा चंद्र, यादवेन्द्र. “पिछला दरवाजा.” *वाह किन्नी वाह*. वाणी प्रकाशन, 2009. पृष्ठ 122-128 .

---, “*वाह किन्नी वाह*”,*वाह किन्नी वाह*. वाणी प्रकाशन, 2009. पृष्ठ 33-44.

सिन्हा,अलका,जी-*मेल एक्सप्रेस*.किताबघर प्रकाशन,2018.

सिंह,कंचन,“लिव इन रिलेशन--रिश्तों की नई परिभाषा”, मेरी सहेली https://www.merisaheli.com/live-in-relationship/

सिंह, काशीनाथ, *रेहन पर रग्घू* .राजकमल प्रकाशन पेपरबैक, 2010,

सिंह, खुशवंत. *औरतें, सेक्स लव और लस्ट*. हिन्दी रूपांतरण, हिन्दी पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड द्वारा सुरक्षित,2016.

सिंह, सुश्री शरद.कस्बाई सिमोन. द्वितीय संस्करण,सामयिक प्रकाशन,2017.

तीसरा अध्याय

घरेलू महिला कामगारों का प्रतिरोध

- **भूमिका**

3.1. घरेलू कामगार : आशय व स्थितियाँ

3.2. शहरीकरण, विकास और घरेलू कामगार का उदय

3.3. घरेलू कामगार : प्रकार और स्थितियाँ

3.4. काम के प्रति प्रतिरोधात्मक रवैया : मालकिन बनाम घरेलू कामगार

3.5. मध्यवर्गीय आचरण घरेलू कामगार के प्रति : प्रतिरोधमूलक

3.5.1. घरेलू कामगार बनाम मध्यवर्गीय सामाजिक नजरिया

3.5.2. घरेलू कामगार के प्रति मध्यवर्गीय गाली-गलौज व मारपीट का आचरण

3.5.3. मध्यवर्गीय अवसरवादी आचरण और घरेलू कामगार

3.5.4. घरेलू कामगारों के प्रति मध्यवर्गीय अच्छा आचरण

3.5.5. मध्यवर्गीय समझौतापरक आचरण

3.6. घरेलू महिला कामगार का आचरण मध्यवर्ग के प्रति

3.6.1 मालिक सदस्य के प्रति घरेलू महिला कामगार का आचरण

3.6.2 मालकिन सदस्य के प्रति घरेलू महिला कामगार का आचरण

3.7. घरेलू महिला कामगार का शोषण व प्रतिरोध

3.7.1. दैहिक शोषण

3.7.2. श्रम का शोषण

3.7.3. मानसिक शोषण

3.8. घरेलू महिला कामगार के प्रति पुलिस-प्रशासन का नजरिया

3.9. घरेलू महिला कामगारों का अस्मिता-बोध व प्रतिरोध

3.10. घरेलू महिला कामगार : परिवार व प्रतिरोध

3.10.1. कामगार का अपना परिवार व प्रतिरोध

3.10.2. मालिक वर्ग का परिवार व प्रतिरोध

3.10.2.1. मालिक बनाम घरेलू महिला कामगार

3.10.2.2. मालकिन बनाम घरेलू महिला कामगार

3.11. मध्यवर्ग के बीच हाशियाकृत : मध्यवर्ग के प्रति लालायित

3.12. घरेलू महिला कामगार से प्रभावित और प्रताड़ित मध्यवर्ग

- **निष्कर्ष**

तीसरा अध्याय
घरेलू महिला कामगारों का प्रतिरोध

घरेलू महिला कामगार वर्तमान समय में विशेषकर मध्यवर्गीय परिवार का भले ही एक सदस्य न हो, लेकिन परिवार के हर एक सदस्य की दिनचर्या को सुविधाजनक बनाने के लिए ही नहीं, बल्कि उसके सामाजिक मान-प्रतिष्ठा को बनाए रखने में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। इसके वाबजूद इनके योगदान को वह मान-सम्मान परिवार के सदस्यों की ओर से नहीं मिलता। इसके पीछे घरेलू काम को लेकर बनी हुई पारंपरिक नजारिया है। इस नजारिए से स्वयं घरेलू कामगार भी ग्रसित हैं। दास, नौकर के आगे घरेलू कामगार कहलाने की यात्रा में अवश्य ही उनके श्रम को नैतिक महत्त्व मिला, लेकिन उसके श्रम के प्रति न तो स्वयं उनका और न ही मालिक सदस्यों का नजरिया सम्मानजनक रहा। विडंबना है कि ऐसी यथास्थिति में भी घरेलू कामगारों के हित में मानवीय परिवेश की वकालत की जा रही है। यही कारण है कि 21वीं सदी के कथा साहित्य में इसे शोध का विषय बनाया गया। इस वर्ग का असंगठित होना विशेषकर राजनीतिक स्तर पर और किन्हीं निजी एजेंसी के अंतर्गत कार्य करने को विवश होना, इनके लिए अंतर्विरोध खड़ा करता है, तो दूसरी ओर इसके प्रतिरोध को नए ढांचे उपलब्ध कराता रहता है। घरेलू काम करवाने के लिए घरेलू महिला कामगार सहज-सुलभ जरिया है, तो साथ ही इनके साथ घटित यौन संदर्भ और उसके प्रति महिला कामगारों का सहज होते जाना, प्रतिरोध का जरूरी स्वरूप निर्मित करता है। घरेलू कामगार अधिनियम भले ही तैयार है, लेकिन संवैधानिक स्वीकृति मिलने के आसार कम होने के कारण घरेलू महिला के द्वारा किए गए प्रतिरोध स्वभावत: परिवार के सदस्यों के संदर्भ में अमानवीय तक हो जाते है और फिर इन कामगारों पर मध्यवर्गीय परिवार की निर्भरता कई दशकों तक चलने वाली विवशता में बदल जाती है। प्रतिरोध का द्वंद्वमूलक स्वरूप विवशता के साये में कुछ अधिक ही फल-फूल रहा है। इन बहुआयामी संदर्भों की परंपरा और प्रगति को उद्घाटित करना इस अध्याय का अभीष्ट है।

3.1. घरेलू कामगार : आशय व स्थितियां –

घर परिवार में दैनिक जरूरत के छोटे-बड़े काम में न्यूनतम भुगतान के बदले हमारी सहायता करने वाला वर्ग घरेलू कामगार कहलाया। सरकारी व गैर सरकारी संगठनों द्वारा वर्ष 2004-07 में घरेलू कामगारों के लिए 'घरेलू कामगार विधेयक' का खाका तैयार किया गया, जिनमें इन्हें परिभाषित करते हुए कहा गया – "ऐसा कोई भी बाहरी व्यक्ति जो पैसे के लिए या किसी भी रूप में किए जाने वाले भुगतान के बदले किसी घर में सीधे या एजेंसी के माध्यम से जाता है, जो स्थाई या अस्थाई, अंशकालिक या पूर्णकालिक हो, तो भी उसे घरेलू कामगार की श्रेणी में रखा जाएगा।" (कुमारी) आशय यह है कि भुगतान के बदले किसी भी घर में, किसी भी प्रकार का, फिर चाहे वो स्थाई रूप से या अस्थाई रूप से हो, काम करने वाला वर्ग घरेलू कामगार के रूप में

चिन्हित होता है। घरेलू कामगार के संदर्भ में एक दूसरा पक्ष यह है कि इस काम में पुरुष की अपेक्षा स्त्रियाँ अधिक जुड़ी हुई है, महिला बहुल कार्य होने के कारण इस काम को ही 'श्रम का जनानाकरण' कहा गया है। गैर-सरकारी संस्थान 'जागोरी' द्वारा घरेलू महिला कामगारो पर किए गए सर्वे में सुरभि टंडन मेहरोत्रा ने लिखा है – "... घरेलू कामगार के संदर्भ में 'श्रम का जनानाकरण' विचार का इस्तेमाल घरेलू काम के लिए बढ़ती महिलाओं की संख्या और काम की सुरक्षित व व्यवस्थित स्थितियों की कमी और यूनियन को महत्त्व ना देने, दोनों को ही दर्शाने के लिए किया गया है।" (मेहरोत्रा 3) स्त्री बहुल काम होने के कारण इस काम का ही स्त्रीलिंग कर दिया गया है, क्योंकि इसमें काम करने वाली के साथ काम लेने वाली महिला ही अधिक होती है, इसके अतिरिक्त इस काम में सुरक्षा व इनके अपने संगठन का भी अभाव है। घरेलू कामगरों का कोई यूनियन नहीं है, जो कि इस क्षेत्र से जुड़ी महिलाओं की सुरक्षा और व्यवस्था के लिए संघर्ष कर सके। 'जागोरी' जैसी गिनी-चुनी संस्था इनके लिए काम कर रही है, इसके वाबजूद इस काम में महिलाओं की भागीदारी भूमंडलीकरण के घोषित होने के बाद निरंतर बढ़ती रही है। 'जागोरी' की सर्वे बतलाती है – "पिछले तीन दशकों में इनकी संख्या पुरुष कामगारों की तुलना में तेजी से बढ़ती दिखाई दी है। 2000- 2004 में कुछ बढ़ोतरी दिखाई दी। 2004 में राष्ट्रीय स्तर पर शहरी महिला श्रमिक दल में यह आंकड़ा बढ़कर 16 प्रतिशत हो गया। 2004-2005 में 30.05 लाख महिला कामगार की भारतीय शहरों में 1990-2000 से 200 प्रतिशत तक की बढ़ोत्तरी हुई है।" (मेहरोत्रा 1) महिलाओं की निरंतर बढ़ती संख्या के मद्देनजर 'श्रम का जनानाकरण' विशेषण उपयुक्त जान पड़ता है।

हर काम की तरह घरेलू सहायता का काम भी एक रोजगार ही है और इसमें महिला की संख्या ज्यादा है, ऐसे में घरेलू महिला कामगार को परिभाषित करते हुए ममता कुमारी लिखती हैं – "घरेलू महिला कामगार से आशय हैं, वह महिला जो किसी घर में घरेलू कार्य के लिए नियुक्त होती हैं तथा पारिश्रमिक के रूप में नकद रुपए या अन्य वस्तु लेती हैं, चाहे वह सीधे या किसी एजेंसी के द्वारा नियुक्त हो, घरेलू कामगार की श्रेणी में आती हैं।" (कुमारी) अन्य काम की तरह ये भी पारिश्रमिक के बदले में किया जाने वाला एक काम है, लेकिन देखा यह जाता है कि अन्य काम की तरह महिलाओं द्वारा किए जाने वाले घरेलू काम को काम के रूप में देखने का चलन अब भी कम है। इसे सेवा या गुलामी के रूप में देखा जाता रहा है। जिस कारण शुरुआत से ही अन्य क्षेत्र के कामगार की तरह इस क्षेत्र के कामगार के प्रति सम्मान की भावना की कमी रही है। मृदुला गर्ग अपनी कहानी 'किस्सा आज का' में लिखती हैं – "पुराने वक्तों में जिसे गुलाम या दास कहा जाता था, आजकल घरेलू कर्मचारी कहते हैं। शब्द बदलता है, अर्थ नहीं।" (गर्ग 693) यानी की भले ही आज हम गुलाम, दास शब्द का प्रयोग नहीं करते, उसकी जगह कामगार या कामवाली शब्द चलन में आ गए हो, लेकिन मध्यवर्गीय मानसिकता उनके प्रति, उनके काम के स्तर के कारण दासों वाला ही है। एक ओर मृदुला गर्ग का कथन बतलाता है कि किन्हीं दवाबों के तहत ऐसे कामगार के प्रति शब्दावली तो बदली, पर इनके प्रति सम्मान की भावना में कमी

दिखाई पड़ती है। मध्यवर्गीय मानसिक सोच या धारणा वही पुरानी वाली है। वहीं दूसरी ओर 'जागोरी' संस्था घरेलू कामगार पर किए सर्वे के आधार पर घरेलू कामगार की स्थिति के बारे में स्वीकारती हैं – "अब नौकर शब्द की जगह कामवाली शब्द का इस्तेमाल होने लगा है, जिससे पता चलता है कि पहले से उनका सम्मान बढ़ा है।" (मेहरोत्रा 55) चूंकि आज ये कामगार मध्यवर्गीय कामकाजी महिलाओं के परिवार को चलाने के लिए अनिवार्य रूप में जरूरी है और ये कामगार भी दासों की तरह मजबूर नहीं, बल्कि काम छोड़ने की स्थिति में भी है, अत: इनके प्रति पारंपरिक सख्त मध्यवर्गीय आचरण में नरमी जरूर देखने को मिल रही है। 'जागोरी' संस्था से जुड़कर घरेलू कामगार के लिए काम करने वाली सुरभि टंडन मेहरोत्रा घरेलू काम को सामाजिक पुनरुत्थान के काम के रूप में देखती है और घरेलू कामगार को मजदूर की जगह 'मददकारी हाथ' मानती हैं – "घरेलू काम में मानसिक, शारीरिक, भावनात्मक पहलू शामिल है...अत: घरेलू काम को ऐसा सामाजिक पुनर्रुत्पादन कार्य के रूप में देखा गया जो ना केवल श्रम प्रदान करता है, बल्कि लोगों के बीच सामाजिक रिश्ता भी प्रदान करता है।...कामगार यहाँ मजदूर है या फिर मददकारी हाथ।"(मेहरोत्रा 4) एक समय दास के रूप में इन्हें देखना प्रचलन में रहा, वहीं आज मददकारी हाथ के रूप में ऐसे कामगारों को चिन्हित किया जा रहा है, तो इसके मूल में इनके प्रति पारंपरिक रूढ़ हो चुकी धारणा का परिष्करण है, जो प्रतिरोध से ही प्रेरित है। घरेलू कामगार की अनिवार्यता के अनेक कारणों में एक अन्य पहलू यह भी है कि घरेलू कामगार मध्यवर्गीय प्रतिष्ठा के सूचक भी है। इसके बारे में आगे सुरभि टंडन मेहरोत्रा लिखती हैं – "घरेलू कामगार ना केवल अवांछित काम करते हैं, बल्कि घर का काम करते हुए मालिकों के लिए यह संभव बनाते हैं कि वह अपनी मध्यवर्गीय प्रतिष्ठा को कायम रखें।" (मेहरोत्रा 54) अर्थात् मध्यवर्गीय परिवार में ऐसे कामगार की उपस्थिति केवल मददकारी हाथ के रूप में ही नहीं है, बल्कि मध्यवर्गीय समाज में प्रतिष्ठित होने एवं सम्मानित जीवन जी पाने का एक पहलू भी है।

घरेलू कामगार के संदर्भ में इन परिभाषाओं से स्पष्ट है कि घर के छोटे-बड़े हर काम में सहयोग करने वाला वर्ग घरेलू कामगार है। भले ही समय के साथ इनके सम्बोधन की शब्दावली में परिवर्तन आया है। दास, मददकारी हाथ तो कभी मध्यवर्गीय प्रतिष्ठा के घोतक के रूप में चिन्हित किया गया हो और इस काम में औरतों की बहुलता के कारण इस काम को ही 'काम का जनानाकरण' कहा गया हो, लेकिन आज इनके बिना मध्यवर्ग का जीवन चल पाना संभव नहीं है। यह वर्ग मध्यवर्गीय परिवार में खाद-पानी की तरह जरूरी है। ऐसे में इस वर्ग को शोध का विषय बनाना इनके साथ की विडंबना पर विचार करना और इनके संदर्भ में साहित्य, समाज और कानून के समीकरण की पड़ताल करना इनके प्रतिरोध को वैचारिक दिशा में स्त्री-प्रतिरोध को वर्गीय परिप्रेक्ष्य से ऊपर समग्रता में देखने का जरूरी प्रयास है।

3.2. शहरीकरण, विकास और घरेलू कामगार का उदय –

शहरीकरण, भूमंडलीकरण के दौर में पूरा विश्व एक वैश्विक गाँव (ग्लोबल विलेज) में बदल रहा है। अर्थ की संस्कृति कायम हो रही है। ऐसे में वैश्विक विकास के साथ मध्यवर्ग को भी अपने विकास के अवसर उपलब्ध हुए, फलस्वरूप मध्यवर्गीय घर की महिलाएं कामकाजी हो गई। ऐसे में उनके घर को सुचारू रूप से चलाने के लिए मददगार हाथ अनिवार्य हुए और लगातार शहरों में ऐसे कामगार की मांग बढ़ी। गिरीश मिश्र ने अपने लेख 'भूमंडलीकरण का वैचारिक आधार' में लिखा है –

> "उदारवाद की मान्यता है कि ज्वार आने पर छोटी-बड़ी सब नौकाएं ऊपर उठती है, अर्थात् आर्थिक समृद्धि की दर बढ़ने पर समाज के हर व्यक्ति को फायदा पहुँचता है। निचले तबके को ट्रिकल डाउन के जरिए समृद्धि के फायदे मिलते हैं। उदाहरण के लिए किसी धनी व्यक्ति की जितनी ही अधिक गाड़ियां होगी, उसे उतनी ही अधिक ड्राइवर और साफ-सफाई करने वालों की जरूरत होगी। इस प्रकार उसकी कमाई का एक बड़ा भाग छीज़कर लोगों को मिलेगा।" (मिश्र 33)

आशय यह है कि उदारवाद में एक के विकास से दूसरे के विकास के अवसर स्वत: बन जाएंगे। यह एक चेन की तरह काम कर रहा है, ठीक यही समीकरण घरेलू महिला कामगार के मामले में है। जैसे-जैसे मध्यवर्ग शहरीकरण से प्रभावित हुआ, आर्थिक रूप से सबल हुआ, अपनी जरूरत व प्रतिष्ठा के अनुसार अपने घरों में कामवाली रखने लगा। फलत: निम्न वर्ग की घरेलू महिलाओं के लिए इन मध्यवर्गीय परिवारों में रोजगार की संभावनाएँ बढ़ी एवं गांव से शहर की ओर इनका पलायन हुआ। यह वर्ग भी किन्हीं सुविधाओं के साथ जीवन-यापन को अपना लक्ष्य बनाने लगा। जयंती रंगनाथन की कहानी 'मोह, माया,मंडी' में विकास का ट्रिकल डाउन नजर आता है। लेखिका के शब्दों में – "जिन-जिनके घर की लड़कियां बाहर काम करती हैं, सबके घर मोबाइल आ गया है, टीवी है, पेट भर खाना खाते हैं।" (रंगनाथन) मतलब यह है कि भूमंडलीकरण ने रोजगार के अवसर उपलब्ध कराएं, तो अपनी आर्थिक स्थिति को सबल बनाने के लिए मध्यवर्गीय स्त्री रोजगार में गई। मध्यवर्ग का विकास हुआ और मध्यवर्ग के विकास के कारण इस वर्ग को अपने घर में कामवाली की जरूरत महसूस हुई, फलस्वरूप कामवाली को रोजगार मिला। इससे उनकी आर्थिक स्थिति में भी फर्क नजर आने लगा। अपनी आर्थिक स्थिति के प्रतिरोध में नए रोजगार की तलाश में ऐसे काम में निम्न आर्थिक आय की स्त्रियाँ जुड़ी, ताकि उन्हें भी आर्थिक रूप से विकास के अवसर मिले।

3.3. घरेलू कामगार : प्रकार और स्थितियाँ –

काम के प्रकार के अनुसार घरेलू कामगार के तीन मुख्य प्रकार बनते हैं –

1. पूर्णकालिक घरेलू कामगार
2. अंशकालिक घरेलू कामगार

3. लिव-इन घरेलू कामगार

1. पूर्णकालिक घरेलू कामगार के अंतर्गत वह घरेलू कामगार आते हैं, जो पूरे दिन के लिए किसी एक मालिक के घर में हर तरह का या किसी एक तरह का पूरे दिन का काम करते हैं, लेकिन रात में अपने घर लौट जाते है।
2. अंशकालिक घरेलू कामगार से तात्पर्य, जो किसी एक घर में कुछ घंटे या कई घरों में कुछ घंटों के लिए एक या अलग-अलग तरह के काम करते है।
3. लिव-इन घरेलू कामगार जिन घर में काम करते हैं, वहीं नियोक्ता परिवार के साथ रात में भी रहते है, इसलिए इनका काम 24 घंटे का रहता है।

विदेशों में जहाँ घरेलू कामगार संबंधित बेहतर कानून है, वहीं भारत में इन्हें 'श्रमिक' के रूप में मान्यता भी नहीं मिल पाई है। घरेलू कामगार के हक को लेकर आजादी के उपरांत 1959 में 'घरेलू कामगार बिल' (कार्य की परिस्थितियां) बनाई गई, लेकिन यह सिर्फ कागज तक ही सीमित रही। 2004 -2007 में घरेलू कामगार विधेयक का खाका बना, लेकिन यह भी पास नहीं हो सका। अंतत: 'असंगठित श्रमिक सामाजिक सुरक्षा अधिनियम 2008' और 'कार्यस्थल पर महिलाओं का यौन शोषण रोकथाम निषेध और निवारण' 2013 में बने कानून में घरेलू कामगार को शामिल किया गया। (कुमारी) तमाम प्रयास के बावजूद कानून का नजरिया इन कामगारों की स्थिति में सुधार के प्रति प्रतिरोधमूलक है। इनके लिए आज तक कोई बिल नहीं बन पाया है, इनसे संबंधित बिल आज भी संसद में पड़ा हुआ है। इसी का परिणाम है कि इनकी वेतन, छुट्टी आदि की स्थिति चिंतनीय है। कृष्ण बलदेव वैद ने अपने उपन्यास 'एक नौकरानी की डायरी' में नौकरानी शानो के माध्यम से घरेलू कामगारों के वेतन, छुट्टी संबंधित चिंतनीय स्थिति पर सवाल खड़ा कर इनके हित में प्रतिरोध को दिशा दी हैं। शानो अपनी डायरी में दर्ज करती हैं – "अगर यह लोग हम लोगों को ठीक पगार दे, तो इन्हें और कुछ देना ही ना पड़े, लेकिन पगार देते हुए तो इनकी जान जाती है।" (वैद 22) इसी तरह इन कामगारों के लिए कोई बिल व कानून ना होने के कारण इनके लिए ना तो छुट्टियों का प्रावधान है और ना ही काम कब तक हाथ में रहेगा इसकी जानकारी। जागोरी के सर्वे में एक महिला घरेलू कामगार बतलाती है – "कुछ कामगारों को साप्ताहिक अवकाश मिलता है। मालिकों से बहुत मोलतोल के बाद ही वेतन सहित अवकाश मिल पाता है। बीमारी के लिए अवकाश भी मालिकों की भलमनसाहत पर ही निर्भर करता है। प्रसव या फिर बीमारी के लिए लंबी छुट्टी लेने पर नौकरी के छूट जाने के तथ्य सामने आए हैं। कुछ को अपनी नौकरी से तब भी हाथ धोना पड़ता है, जब वह छुट्टी लेकर अपने गांव चली जाती है।" (मेहरोत्रा 9-10) कथा साहित्य में भी ऐसी स्थिति को विषय 'एक नौकरानी की डायरी', 'नाम में बहुत कुछ रखा है', 'उमा महेश', 'बराबरी का खेल' रचनाओं में बनाया गया है और उनकी इस स्थिति का प्रतिरोध किया गया है। हमारे यहाँ घरेलू कामगारों के हित में कानून का अभाव है। गरीब तबके से स्त्रियों के जुड़े होने के कारण शिक्षा का भी अभाव, साथ ही असंगठित क्षेत्र होने

के कारण शहरों में एजेंट द्वारा मालिक घरों में नियुक्ति का मामला भी बनता है। वहाँ भी इनका शोषण ही अधिक होता है। कुछ मामले में तो एजेंट इनके लिए जिन घरों की व्यवस्था करते हैं, बदले में एग्रीमेंट के तहत इनकी कमाई का बड़ा हिस्सा इनकी सुरक्षा व अन्य अनेक कारण से हड़प लेते हैं। कई ऐसे भी मामले बनते हैं, जहाँ एजेंट घरेलू महिला कामगारों को घरेलू काम के नाम पर अपने साथ शहर ले जाकर देह व्यापार के सुपुर्द कर देते हैं, पर कानून व प्रशासन के सहयोग के अभाव में इन्हें नियंत्रित कर पाना या कानून का पहरा लगा पाना संभव नहीं हो पा रहा। भले ही ये मामला कानून का है, लेकिन साहित्य में कामगारों की इन स्थिति-परिस्थिति को विषय बना इस ओर कानूनी ध्यान आकर्षण की चिंता कर कथाकारों ने कानून में इन कामगारों के प्रति जो प्रतिरोधी परिवेश है, उसका प्रतिरोध रचा है।

3.4. काम के प्रति प्रतिरोधात्मक रवैया : मालकिन बनाम घरेलू कामगार –

घरेलू काम स्त्री संस्कार से जुड़ा काम है, पर देखा यह जा रहा है कि इस काम के प्रति घर-परिवार की पढ़ी-लिखी महिलाओं के अंदर रुचि का अभाव पाया जाता है और इस रुचि के अभाव का कारण इस काम के प्रति सम्मान की भावना की कमी है। एक ओर मृदुला गर्ग ने 'किस्सा आज का' कहानी में वकीलन से छोटे से छोटे घरेलू काम को 'बड़ी मुश्किल है' के तकिया कलाम द्वारा प्रतिरोध का विषय बनाया है, तो दूसरी ओर 21 वीं सदी में क्षमा शर्मा ने 'रोशनी के अच्छे दिन में' मालकिन प्रतिमा द्वारा घरेलू काम के प्रति रूचि के अभाव को कुछ इस प्रकार प्रतिरोध का मुद्दा बनाया है — "रोज-रोज खाना बनाना भी कितनी बड़ी आफत है।" (शर्मा 124) घरेलू काम के प्रति संस्कार में होने के बावजूद इस काम को पढ़ी-लिखी महिलाओं द्वारा आफत समझा जा रहा है। सरिता निर्झरा की कहानी 'बड़ी उम्र की औरत' में मालकिन की स्वीकारोक्ति है कि इस काम के प्रति उनका कोई लगाव नहीं है — "मुझे यह कहने में कहीं कतई गुरेज नहीं की रसोई बनाने के, नारी सहज गुण से मुझे कोई खास लगाव नहीं है" (निर्झरा 11) घरेलू काम को स्त्री सुलभ गुण के अंदर देखा जाना वर्तमान विमर्श के दौर में विवादास्पद है, लेकिन स्त्री सुलभ गुण होने के बावजूद इस काम को पढ़ी-लिखी महिलाओं द्वारा आफत समझा जाना और इस काम को करने से खुद को पीछे रखने की मुख्य वजह इस काम के प्रति सहयोग व सम्मान की भावना की कमी है। सुरभि टंडन मेहरोत्रा लिखती हैं — "हमारी संस्कृति में घर के काम की जिम्मेदारी ना केवल औरतों की है, बल्कि सच्चाई यह है कि पुरुषों को आदेश देने की भी आदत है।" (मेहरोत्रा 53) स्पष्ट है कि भारतीय समाज की बनावट ऐसी है, जिसमें इस काम की पूरी जिम्मेदारी औरतों के ऊपर रहती है। घर के पुरुष सदस्य की ऐसे काम में भूमिका की बात करें, तो इस काम में बराबर का भागीदार होने की बात तो बहुत दूर है, उनमें सहयोग की भावना भी नहीं नजर आती है, ऊपर से आदेश देकर काम के बोझ को बढ़ाने की प्रवृति अलग। शिल्पी झा की कहानी 'बराबरी का खेल' की मालकिन भावना जो खुद वर्क फॉर्म होम कर रही है, बावजूद घर की पूरी जिम्मेदारी को अकेले वहन करने को मजबूर है। लेखिका भावना के मनोभाव को

लिखती हैं — "...मैंने चिल्लाकर कहना चाहा...तभी दूध वाले को हक है कि वह मेरी कॉल के बीच में हिसाब करने आ जाए...तभी बैंक के काम...कोरियर करना, हफ्ते की बच्चों के स्कूल के छोटे-बड़े सारे फंक्शन अटेंड करना, रिश्तेदारों को डॉक्टर से दिखाना, उनकी शॉपिंग कराना यह सब मेरी जिम्मेदारी है।" (झा) ऐसे में परिवार के किसी भी सदस्य से सहयोग की उम्मीद रखना बेमानी है। पति द्वारा पानी मांगने पर और जवाब में भावना का कहने पर — "सारे काम करती हूं, कम से कम पानी तो लगा लो तुम में से कोई" (झा) तब पति से जवाब मिलता है — "क्यों नहीं, कल से खाना भी खुद ही पड़ोस लिया करेंगे और कहो तो परसों से बना भी लेंगे अपना-अपना। जो काम खुद नहीं कर सकती उसके लिए कामवाली रखो, नहीं तो अपने आइडियल्स बोझ हमारे ऊपर मत डालो।" (झा) स्त्री चाहती है कि पुरुष इस काम में उसका सहयोग करें, पर इस काम के प्रति संस्कारित होने के बावजूद आज इस काम के प्रति स्त्रियों में अरुचि है, तो पुरुष संस्कार में जब इसे शामिल नहीं किया गया है, तब उसके द्वारा सहयोग मिल पाना संभव नहीं दिखता। ऐसी स्थिति में घर के काम को चलाने के लिए पढ़ी-लिखी आत्मनिर्भर महिलाएं घरेलू कामगार पर निर्भर होती है।

घरेलू काम के प्रति सम्मान का अभाव, हीनता-बोध, वेतन और नौकरी की अनिश्चितता के कारण इस काम से जुड़ी हुई महिला कामगार भी इस काम से केवल मजबूरी में ही जुड़ती है। सुरभि टंडन मेहरोत्रा लिखती हैं — "ज्यादातर कामगार के विचार में उन्होंने यह 'काम' इसलिए चुना, क्योंकि उनके पास अन्य कोई विकल्प नहीं था।...उन्होंने कहा कि इस नौकरी से उन्हें पैसा कमाने की क्षमता तो मिली, मगर यह फैक्ट्री, ऑफिस या स्कूल में नौकरी करने जैसा नहीं है। घरेलू काम से ना तो उन्हें काम का सम्मान मिलता है ना ही ऑफिस जैसी सुविधाएं व बोनस।" (मेहरोत्रा 44) एक ओर ऐसे काम के प्रति सामाजिक दृष्टि स्वस्थ न होने के कारण सम्मान का अभाव कामवाली झेलती है, तो दूसरी ओर घरेलू कामगार के हित से संबंधित कानून के अभाव में सुविधा की भी कमी उन्हें झेलनी पड़ती है। इस कारण ऐसे काम के प्रति आज कामवाली का आचरण भी प्रतिरोधी हो उठा है। कृष्ण बलदेव वैद का उपन्यास 'एक नौकरानी की डायरी' की शानो काम के प्रति प्रतिरोध दर्ज करते हुए लिखती है — "मैं ना नौकरानी का काम करना चाहती हूं, न नौकरानी कहलवाना चाहती हूं।" (वैद 23) नौकरानी का सम्बोधन न चाहना कार्य के प्रति और ऐसे कार्य करने के कारण समाज में बनी छवि के प्रति विरोधात्मक रवैया है। कार्य के प्रति प्रतिरोध का चरम ही है कि यह घरेलू कामगार अपने बच्चों को अर्थात् भावी पीढ़ी को इस काम में नहीं लगाना चाहती हैं। उर्मिला शुक्ला की कहानी 'कारी, तुम फिर मिलना'में कारी बताती है — "मंगलू के घर से भागने के बाद उसने कई घरों में काम किया, पर बात बनी नहीं। उससे पेट तो भर जाता था, मगर पेट भर लेना ही तो उसका लक्ष्य नहीं है, उसे तो बच्चों को पढ़ाना था।" (शुक्ल) घरेलू काम अपनी न्यूनतम पारिश्रमिक के कारण केवल पेट भरने का मामला है, जबकि जीवन का लक्ष्य केवल पेट भरना नहीं है, सम्मान का जीवन भी जीना है। कारी भी चाहती है कि वो और उसके बच्चे सम्मान का जीवन जी पाएं,

इसलिए इस काम से विदा ले अपना चाय का स्टॉल खोलती है। उषा किरण खान की कहानी 'उमा-महेश' में नौकरानी मालकिन से कहती हैं — "दीदी जी, आपका आशीर्वाद रहेगा, तब यह भी पढ़-लिखकर आपकी तरह टीचर बनेगी, मेरी तरह बर्तन नहीं घिसेंगी।" (खान 32) यहां घरेलू कामगार का प्रतिरोध किसी व्यक्ति विशेष के प्रति नहीं, बल्कि ऐसे काम के प्रति हैं। 'उमा-महेश' की उमा बच्चों को पढ़ाकर टीचर बनाना चाहती है, क्योंकि बर्तन मांजना सम्मानजनक नहीं है। सिर्फ वही नहीं, बल्कि उसका पूरा का पूरा वर्ग पैसे खर्च कर पढ़ाने का समर्थक है, क्योंकि इस काम में सम्मान की भावना का अभाव है।

शोभा सिंह की कहानी 'नाम में बहुत कुछ रखा है' की नौकरानी 'रानी' अपने बच्चों को पढ़ाना चाह रही है, तो प्रतिभा की कहानी 'लहूलुहान कौन?' का घरेलू बाल नौकर पिंटू पढ़ना चाह रहा है, इन सबका उद्देश्य पढ़-लिखकर इस काम से छुटकारा पाना ही है। काम के प्रति प्रतिरोध पिंटूराम के चचेरे भाई के कथन में नजर आता है, जब वह कहता है — "यार पिंटू, कब तक झाड़ू-पोछा और बर्तन करता रहेगा। मुझे फैक्ट्री में काम मिल गया है। तू भी चल। दोनों साथ रहेंगे। यहां सारा दिन काम करता है हजार मिलता है। वहां ढाई हजार मिलेगा बोनस मिलेगा।" (प्रतिभा) आशय यह है कि झाड़ू-पोंछा, बर्तन का काम गंदे काम की श्रेणी में गिना जाता है। घरेलू काम के अतिरिक्त जो अन्य काम है, भले ही उसमें मेहनताना कम ही क्यों न हो और श्रम और समय अधिक भी लगे, पर सम्मान से जुड़ा है। इसलिए ऐसे काम की जगह फैक्ट्री में दिहाड़ी मजदूरी हो या मॉल का काम, कामगार उसे करना अधिक पसंद करते है। सुरभि टंडन मेहरोत्रा उल्लेख करती है — "यह सोच सांस्कृतिक विचारधारा से जुड़ी हुई है कि बर्तन मांजने का काम गंदा और कमतर माना जाता है।...कामगारों के नजरिए से उनके पास कोई अन्य चुनाव ना होने की वजह से व हीन काम करते हैं।..." (मेहरोत्रा 56) ऐसे में ये काम सिर्फ और सिर्फ मजबूरी का पर्याय है। प्राय: सभी कामवाली नहीं चाहती कि उनकी बेटियां इस पेशे में आए। गीताश्री की कहानी 'डाउनलोड होते हैं सपने' में कामवाली सुमित्रा कॉलगर्ल व बार डांसर तक के काम का सफर नौकरानी के काम से बेहतर समझती है। इसके पीछे का कारण इस काम के कारण समाज में जो सोच बन रही है, उसका प्रतिरोध है। रोहित सर के ग्रुप में डांस का ऑफर आने पर वह हवा में उड़ने लगती है, बशर्ते इस पेशे में कामवाली के काम से भी अधिक अनिश्चितता के साथ एक्स्पोज़र होने का खतरा है। रोहित सर सुमित्रा से करते हैं — "हम आपको अभी मंथली पैसा नहीं देंगे, पर हर शो के तीन हजार रूप देंगे।...पूरी तरह समर्पित होकर डांस में लगना होगा। कपड़े में नखरे नहीं। हर साइज के एक्सपोजर वाले भी पहनने पड़ेंगे...इज्जत पूरी मिलेगी...बहुत नाम है हमारे ग्रुप का।" (गीताश्री 59) सुमित्रा डांस ग्रुप में जुडने को लेकर सोचती हैं — " क्या ही अच्छा होता कि मुझे नाचने गाने का ही काम मिल जाता...कहीं...वे स्टेज पर भीड़ में नाचते हैं लड़की-लड़कियां...हमें उसी ग्रुप में काम दिलवा दो ना...प्लीज... कम से कम इज्जत की दो रोटी तो खा सकूंगी।" (गीताश्री 59) यहाँ स्पष्ट है कि कामवाली का काम इज्जत का काम नहीं है। किसी भी पेशे जुड़ा व्यक्ति उस पेशे

से अपनी पहचान बनाना चाहता है, परंतु यह एक ऐसा पेशा है जिससे जुड़कर लोग अपना नाम नहीं बनाना चाहते हैं और ना ही अपने बच्चों को इस काम में लाना चाहते हैं, ये सोच ऐसे काम के प्रति इन कामगारों का प्रतिरोध ही है।

एक ओर मध्यवर्गीय पढ़ी-लिखी नौकरीपेशा औरतों की घरेलू काम के प्रति सोच अच्छी नहीं है, महिलाएं इस काम को नहीं करना चाहती। तो दूसरी ओर, कथा-साहित्य व समाज में नजर रहा है कि कामवाली भी अपने बच्चों को ऐसे काम से दूर रखना चाहती है। अतः यहाँ काम के प्रति प्रतिरोध की जो दिशा है, वो भविष्योन्मुखी है। जब कामवाली ऐसे काम को हीन समझकर सम्मान व सुविधा के अभाव को देखकर ऐसे काम से दूरी बना रही है और अपने बच्चों को भी दूर कर रही है, तो ऐसे काम के लिए घरेलू कामगार पर निर्भर मध्यवर्गीय परिवार का भविष्य किस संकट से ग्रस्त होगा यह चिंतनीय है। आज विदेशों में घरेलू कामगारों के लिए कानून है, वहाँ काम करने के लिए कामगार नहीं मिलते। भारत का भविष्य भी उसी दिशा की ओर अग्रसर है और इसके पीछे ऐसे काम के प्रति सामाजिक सोच है। काम के प्रति सामाजिक सोच का प्रतिरोध कथा साहित्य में दर्ज हुआ है।

3.5. मध्यवर्गीय आचरण घरेलू कामगार के प्रति : प्रतिरोधमूलक —

घरेलू काम न सिर्फ घर के काम को सुचारू रूप से चलाने वाले कामगारों के हाथों का काम है, बल्कि मध्यवर्गीय प्रतिष्ठा से भी जुड़ा हुआ है। सुरभि टंडन मल्होत्रा लिखती हैं — "घरेलू कामगार ना केवल अवांछित काम करते हैं, बल्कि घर का काम करते हुए मालिकों के लिए यह संभव बनाते हैं कि वे अपनी प्रतिष्ठा को भी कायम रख सके।" (मेहरोत्रा 54) कथा साहित्य में परंपरा में अमरकांत की कहानी 'बहादुर' व मृदुला गर्ग की कहानी 'किस्सा आज का' में भी घरेलू कामगार को मध्यवर्गीय परिवार में प्रतिष्ठा का सूचक माना गया है। अमरकांत 'बहादुर' कहानी में घर में नौकर के आने पर मालिक की मानसिकता के बारे में स्पष्ट करते हैं — "मैं अपने को बहुत ऊंचा महसूस करने लगा था...अब मैं मोहल्ले के लोगों को पहले से भी तुच्छ समझने लगा। मैं किसी से सीधे मुंह बात नहीं करता। किसी की ओर ठीक से देखता भी नहीं था।...कई बार पड़ोसियों को सुना चुका था, जिसके पास कलेजा है, वही आजकल नौकर रख सकते हैं। घर में सवांग की तरह रहता है। निर्मला भी सारे मोहल्ले में शुभ सूचना दे आई थी, आधी तनख्वाह तो नौकर पर ही खर्च हो रही है, रुपया पैसा कमाया किसलिए जाता है।" (अमरकांत 5-6) अर्थात् नौकर-नकरानी रख पाना भारतीय मध्यवर्गीय समाज में प्रतिष्ठा का सूचक है और उदारवाद के दौर में स्त्रियों के कामकाजी होने के बाद अनिवार्य आवश्यकता भी। इसके वाबजूद मध्यवर्गीय परिवार का आचरण घरेलू कामगार के प्रति कई दृष्टि में प्रतिरोधमूलक ही बना हुआ है, जो निम्न है -

3.5.1. घरेलू कामगार बनाम मध्यवर्गीय सामाजिक नजरिया

3.5.2. घरेलू कामगार के प्रति मध्यवर्गीय गाली-गलौज व मारपीट का आचरण

3.5.3. मध्यवर्गीय अवसरवादी आचरण और घरेलू कामगार

3.5.4. घरेलू कामगार के प्रति मध्यवर्गीय उपेक्षित आचरण

3.5.5. मध्यवर्गीय समझौतापरक आचरण

3.5.1. घरेलू कामगार बनाम मध्यवर्गीय सामाजिक नजरिया –

घरेलू महिला कामगारों के प्रति सामाजिक नजरिया प्रतिरोधमूलक रहा है। घरेलू काम को परिभाषित करते हुए सुरभि टंडन मेहरोत्रा लिखती हैं — "सफाई करना(झाड़ू लगाना, पोछा लगाना, धूल की सफाई), धुलाई (कपड़ों व बर्तनों की) या कपड़े धोने वाली मशीन में कपड़े धोना, सुखाना, उन्हें तह लगाना, खाना बनाना या फिर खाने की तैयारी में मदद करना घर की देखभाल करना या फिर घर के लिए खरीददारी करना, घरेलू काम में बच्चों और बुजुर्गों की देखभाल भी शामिल है।" (मेहरोत्रा 8) इस प्रकार हर प्रकार का श्रम घरेलू काम है, पर इसके प्रति सामाजिक नजरिया पुराना सामंतवादी ही है। मृदुला गर्ग लिखती हैं — "पुराने वक्तों में जिसे गुलाम या दासी कहा जाता था आज घरेलू कर्मचारी कहते हैं। शब्द बदलता है, अर्थ नहीं।" (गर्ग 693) घरेलू कामगार को दास समझने की प्रथा आज भी कायम है, तभी मालकिन का वर्ग यह उम्मीद करता है कि उसका उतरन, जूठा यह वर्ग वैसे ही स्वीकार करते रहे, जैसा सदियों से करता रहा है। प्रियंका ओम की कहानी 'जट्टा और चिरैया' में मालकिन 'दुल्हिन' नौकर जट्टा को जूठा देने की बात करती है — "जूठे प्लेट का बचा हुआ अपनी थाली में उलट ले" (ओम 138) घरेलू कामगार के प्रति हीन सोच का परिणाम है। परंपरा में मृदुला गर्ग मालिक वर्ग का घरेलू कामगारों के प्रति हीन सोच का पर्दाफाश करती है, जहां वकीलन रामकली के संबंध में कहती है – "नौकरी दिन-रात चौबीस घंटे की, पर छह सौ रुपए माहवार तनख्वाह और सुबह-शाम दोनों वक्त का खाना, ऊपर से चाय अलग, साथ में रात की बची रोटी, अरे कौन हमें खानी होती है, अंगूरी। अन्न अपमानित हो फिंकता फिरे वह भी अच्छा नहीं लगता।" (गर्ग 693) अत: इस वर्ग को अपना जूठा, बच-खुचा देने में मालकिन वर्ग गर्व अनुभव करता है, साथ ही उम्मीद पालती है कि इन चीजों को पाकर ये वर्ग इनके प्रति कृतज्ञ महसूस करे। मध्यवर्गीय अहम् आधारित सोच का परिणाम है कि जरूरत ना हो या फिर इच्छा न हो, तब भी मालकिन वर्ग के उतरन को लेने को यह वर्ग बाध्य हैं। कृष्ण बलदेव वैद अपने उपन्यास 'एक नौकरानी की डायरी' में शानो के माध्यम से नौकरानी के प्रति इस सामाजिक रूढ़ सोच का प्रतिरोध दर्ज किया है। शानो कहती है — "...मैंने जूठा खाना और पहनना छोड़ दिया है।...इनकार कर देती हूँ, भले ही देनेवालियों को बुरा लगे। लेकिन अगर कोई पीछे ही पड़ जाए तो लेना पड़ता है, लेकिन उन कपड़ों को मैं नहीं पहनती, माँ ही पहनती है।" (वैद 21) घरेलू महिला कामगार के प्रति मालकिन वर्ग की यह रूढ़ सामाजिक सोच है कि उनके द्वारा दिए

गए उतरन इन कामगारों को न केवल लेना पड़ेगा, बल्कि पा कर खुश भी होना होगा और अगर नौकरानी की आर्थिक स्थिति अच्छी हो या अन्य कोई भी कारण से वे इसे लेने से माना कर दे, तो इस वर्ग के बुरा मान जाने जैसे तथ्य इनके अहम् आधारित आचरण और नौकरानी की अच्छी स्थति के प्रति इनके विरोध को दर्शाता है। शानो द्वारा ऐसे उतरन को लेने से मना करना और मजबूरी में लेकर भी नहीं पहनना अपने प्रति बनी-बनाई मध्यवर्गीय सामाजिक सोच का मौन प्रतिरोध है। वो मुखर होकर मालकिनों से ऐसी चीजे न लेने के कारण को नहीं बताती, बल्कि मजबूरी में अगर ले भी लेती है, तो उपयोग में नहीं लाती।

नौकरानी के प्रति ऐसी ही एक सामाजिक रूढ़ सोच का परिणाम है कि मालिकन वर्ग कामवाली को अपने एहसान तले दबे देखना चाहती है, न कि उसकी उन्नति के लिए किसी भी स्तर पर प्रयासरत। गीताश्री 'डाउनलोड होते हैं सपने' कहानी में कामवाली सुमित्रा के माध्यम से इस तथ्य को रखती हैं। जहाँ मालकिन कहती हैं — "पहले खुद को कामवाली जैसी बनाओ, फिर काम खोजो।" (गीताश्री 59) अर्थात् कामवाली है, तो उसे कामवाली की तरह ही दबे-कुचले हुए रहना पड़ेगा। ऐसी स्थिति का उजागर कृष्ण बलदेव वैद ने भी 'एक नौकरानी की डायरी' में किया है, शानो कहती है — "अगर नौकरानिया ज्यादा साफ-सुथरे कपड़े पहनना शुरू कर दे, तो मालकिन हैरान होने लगती हैं, इसके पास इतने पैसे कहां से आ जाते हैं, जरूर हेराफेरी करती होगी।" (वैद 62) एक कामवाली की प्रति रूढ़ सामाजिक सोच ही है, जिसके तहत यह माना जाता है कि कामवालियाँ चोर होती हैं, अपराधी होती हैं और झूठ बोलती हैं। कृष्ण बलदेव वैद आगे दर्ज करते हैं कि काम पर छुट्टी लेने पर भी नौकरानियों के प्रति मालकिन की क्या सामाजिक सोच बनती है – "हम नौकरानियों के बारे में मालकिनों की सबसे बड़ी शिकायत यही है कि हम झूठ बोलती हैं और चोरी करती हैं। जब भी कोई नौकरानी कहती हैं कि उसे बुखार हो गया था, उसका बच्चा बीमार पड़ गया था या उसका कोई मर गया था, तो मालकिने मान लेती है कि नौकरानी झूठ बोल रही है।" (वैद 83) गीताश्री की कहानी 'माई री मैं टोना करिहों' की मालकिन मिताली नौकरानी सिल्बी की छुट्टी पर उससे जो कुछ भी कहती है, उसकी रूढ़ सामाजिक सोच का ही परिणाम है — "... कितना भी तुम लोगों के लिए किया जाए, तुम लोग कभी सगे नहीं हो सकते, हमारी परेशानियों से तुम्हारा कोई लेना देना नहीं होता...बस अपने बारे में सोचते हो।" (गीताश्री 117) यह रूढ़ हो चुकी सामाजिक सोच का ही परिणाम है, जिसके तहत यह आशा रहती है कि कामवाली के बच्चे भी कामवाली ही बने। हालांकि कामगार का वर्ग ये उम्मीद करता है कि मध्यवर्ग उसकी स्थिति में सुधार के लिए सहायता करेगा। 'उमा-महेश' में उमा कहती है — "दीदी आपके ही आश्रय बेटी पढ़ रही है। आप जानती हैं ना कि मोहल्ले की सभी मालकिन इसे काम पर लगाने को कहती है।" (खान 30) इस वर्ग के प्रति मध्यवर्ग का प्रतिरोध उमा के इस कथन में नजर आ रहा है, तो मध्यवर्गीय सोच के प्रति कामवाली का प्रतिरोध भी यहाँ स्पष्ट है।

अभावग्रस्त को अपराधी मान लेना भी एक रूढ़ सामाजिक सोच है। इस सोच का प्रतिरोध क्षमा शर्मा की कहानी 'रोशनी के अच्छ दिन' की रोशनी को लेकर मालकिन के आचरण में और कृष्ण बलदेव वैद का उपन्यास 'एक नौकरानी की डायरी' में नौकरानी शानों की डायरी में दर्ज है। 'रोशनी के अच्छे दिन' में मालकिन प्रतिभा नौकरानी रोशनी के आने पर घर की सारी कीमती चीजों में ताला लगती हैव– "फिर डायनिंग टेबल पर रखे दो चांदी के रुपयों को ताले में रखा। कई पड़ोसिने बता चुकी है कि रोशनी हाथ की सफाई करती है। हालांकि प्रतिमा के यहां उसने कभी ऐसा नहीं किया। या किया हो, तो पता ना चला हो। इसलिए पहले ही कीमती चीज ताले में रख दो। ना कोई उठाएगा, न कोसोगे।" (शर्मा 124) कामगार के प्रति यह सामाजिक सोच है चूंकि ये अभावग्रत है तो अपराधी भी। पहले चोरी जैसे मामले से निपटारे के लिए मारपीट से काम लिया जाता था, पर अपनी प्रगति में यह तो तय है कि मारपीट अब संभव नहीं, इसलिए मालकिन वर्ग द्वारा सतर्कता का रास्ता अपनाया जा रहा है।

अपने प्रति मालकिन वर्ग की रूढ़ सामाजिक सोच को कामवाली भी समझ रही है और केवल तब तक मुखर नहीं होती, जब तक अन्य उपाय न होता। शानो की मां जो खुद नौकरानी का काम करती हैं, शानो को भी हिदायत देती है — "बकती है तो बकने दे, तू चुपचाप काम करती है, जिस दिन कोई और घर मिल जाएगा तो छोड़ देना।" (वैद10) मध्यवर्गीय सामाजिक रूढ़ सोच जो इनको लेकर बनी हुई है, उसके प्रति प्रतिरोधी तेवर है। यहाँ कामवाली का कहना कि दूसरा घर मिलते ही काम छोड़ देना, अपने आप इस वर्ग के प्रतिरोध को सचित्र कर दे रहा है। यहाँ मध्यवर्गीय सोच के विरुद्ध नौकरानी गाली-गलौच या चोरी-चकारी नहीं करती है, बल्कि चुपचाप दूसरे काम के हाथ आते ही निकल जाने की सोच रखती है। यहाँ अपने वर्ग के बारे में मध्यवर्गीय सोच के प्रति प्रतिरोध का मौन स्वर निर्मित हो रहा है।

3.5.2. घरेलू कामगार के प्रति मध्यवर्गीय गाली-गलौज व मारपीट का आचरण –

घरेलू कामगार को दास समझने की प्रथा भारतीय समाज में आज भी बनी हुई है, इसके तहत परंपरा से उनके प्रति मारपीट का आचरण देखने को मिलता है। प्रेमचन्द की कहानी 'सौभाग्य की कोड़े', अमरकांत की 'बहादुर' में इस स्थिति को देख सकते हैं। अपनी प्रगति में प्रतिभा की कहानी 'लहूलुहान कौन?' प्रियंका ओम की 'जट्टा और चिरैया' कहानी में ऐसी घटना को दर्ज करा घरेलू कामगार के प्रति मध्यवर्गीय मार-पीट के आचरण का प्रतिरोध लेखिकाओं ने भी दर्ज किया है। वर्तमान में, बहुलता में अब मार-पीट की जगह समझौते के तहत मालिक और नौकर-नौकरानी का रिश्ता चल रहा है, फिर भी इस काम से जुड़े बच्चों के प्रति मारपीट का आचरण नजर आता है। भारतीय कानून में घरेलू काम में बच्चों को लगाना अपराध है। बाल श्रम को 'खतरनाक' की श्रेणी में रखते हुए 18 वर्ष से काम आयु के बच्चों को इस काम में लगाने की मनाही है, इसके बावजूद यह काम धड़ल्ले से महिला कामगारों के बच्चों द्वारा लिया जा रहा है और उनके प्रति मारपीट का

आचरण कायम है। 'लहूलुहान कौन?' में बालक पिंटू राम मैडम की मारपीट से खौफजदा नजर आता है — "पिंटू को लगा जैसे किसी ने लात घुसे से उसे पीटकर कान मरोड़ दिया हो। मुड़कर देखा तो ऐसे क्रोधित काली माता के दर्शन हो गए।" (प्रतिभा) प्रियंका ओम की कहानी 'जट्टा और चिड़ैया' में जट्टा के बारे में मालकिन कहती है — "कुकर तो तुम इस जन्म में भी हो, ठाकुरों की देखा-देखी छगनलाल को छज्जू-छज्जू कहता है। अपन औकात में रहा जट्टा।" (ओम 137) ऐसे प्रसंग को रखकर रचना के स्तर पर कामगार के प्रति और उनके बच्चों के प्रति ऐसे आचरण के विरोध में प्रतिरोध को लेखिकाओं ने खड़ा किया है।

3.5.3. मध्यवर्गीय अवसरवादी आचरण और घरेलू कामगार —

घरेलू कामगारों के प्रति मध्यवर्गीय आचरण अवसरवादी रहा है। ऊपर से भले ही वह उनकी भलाई की बातें करते हो, पर वास्तविकता में यह वर्ग अवसरवादी है। गीताश्री की कहानी 'माई री मैं टोना करिहों' में मालकिन मिताली एजेंसी के माध्यम से नौकरानी का बंदोबस्त करने जाती है, और जब उसे पता चलता है कि नौकरानी 'सिल्बी' अपनी बेटी 'एलीना' को अपने साथ रखना चाहती है, तो सोचती है — "अच्छा होगा, दोनों मां-बेटी साथ रहेगी, एक से दो भले।" (गीताश्री118) आशय यह है कि कामवाली तो मिल ही रही है, साथ में उसकी बेटी भी मिल जाएगी, तो दोनों मिलकर काम करेगी।

कविता वर्मा की कहानी 'निश्चय' में मालकिन रेनू नौकरानी मंगला को अपने शराबी पति के मार-पीट के आचरण को सहन न करने की हिदायत देती है। मंगला को उसके शराबी पति के घर से निकालकर अपने घर पर रखती है। उसके चोट पर मरहम भी लगाती है, उसे अपने घर के सदस्य जैसा प्रेम देने का ढोंग करती है। इसके पीछे उसकी भलमनसाहत नहीं, बल्कि रोज-रोज की नौकरानी की किल्लत से छुटकारा पाने की सोची-समझी साजिश है, क्योंकि जब खुद उसकी बेटी शराबी पति से छुटकारा पाने के लिए मां के घर आती है, तब मालकिन अपनी बेटी को जबरदस्ती पति के पास भेजना चाहती है और बेटी द्वारा पूछने पर कि 'मंगला का तो अपने साथ दिया, फिर मेरे साथ ऐसा क्यों कर रही हैं।' तब रेनू अपने अवसरवादी आचरण का खुद पर्दाफाश करती हुई कहती है –

> **"**मंगला की बात और है। वह निम्न वर्ग की है। उसके लिए खाना,कपड़ा, सिर पर छत ही काफी है। उससे खुद की तुलना मत करो। उसे तो इन चीजों का लालच देकर, मैंने उसे अपने घर में इसलिए रखा, ताकि रोज-रोज की बाई की किल्लत खत्म हो जाए। तुमने देखा नहीं उसका पति कितनी बार यहाँ आया उसे ले जाने, मैंने उसे मंगला से मिलने ही नहीं दिया, नहीं तो यह बाई भी हाथ से निकल जाती। गोपाल दो बार मुझसे आकर मिल कर गया था और उसने कभी शराब न पीने की कसम भी खाई थी। बेटा जब उन जैसा निचले तबके का आदमी अपना परिवार बचाने के लिए शराब छोड़ सकता है, तो

> शशांक तो पढ़ा-लिखा समझदार है। उसपर उसके परिवार का भी दबाव है। मंगला का कोई सोशल स्टेटस तो है नहीं कि शादीशुदा या तलाकशुदा होने का उस पर कोई असर पड़े। लेकिन तुम्हारे पति को छोड़कर यहां रहने से तुम्हारे, हमारे, शशांक के परिवार सभी के बारे में बातें बनेगी। समाज में थू-थू होगी। लोग दस बात पूछेंगे, क्या कहोगी तुम, पति के हाथों पिटती थी? कितनी शर्मनाक बात होगी, क्या फर्क रह जाएगा नहीं, असली बस्तियों में रहने वालों और हमने।" (वर्मा)

मध्यवर्ग के अवसरवाद का कुरूप रूप है, जो अपने लाभ के लिए कामवाली का बसा-बसाया घर तोड़ देती है और उसे इसका एहसास भी नहीं होने देती। नौकरानी को लगता है कि मालकिन ने उसपर एहसान किया है। 'लहूलुहान कौन?' में मालकिन नौकर पिंटू राम को पढ़ाती हैं तो अपने सोशल स्टेटस में वाहवाही के लिए, ना कि उसके प्रति सुधारात्मक रवैया के कारण। मालकिन को जब पता चलता है कि पिंटू राम को पढ़ाने का श्रेय उसकी ही पड़ोसी ले रही है, तो नाराज हो जाती है। इतना ही नहीं जब उन्हें एहसास होता है कि पिंटू राम पढ़ने-लिखने के लिए उनके घर में काम कर रहा है और एक बार पढ़-लिख गया, तो घर से चला जाएगा, तब सीधे-सीधे उसे पढ़ाने से ना नहीं कहती, बल्कि अपना अवसरवादी आचरण दिखाती है। काम का बोझ बढ़ा देती है, ताकि छुट्टियां खत्म हो जाए और उसे पढ़ाना भी ना पड़े — "मैडम ने घोषणा कर दी थी कि आज ही सारे घर के पर्दे धोने हैं। पिंटू दिन पर दिन व्यूह में घिरे जा रहा था।...मैडम रोज ऐसा ही कोई काम बता देती,जिसमें सारा दिन निकल जाता।...घर की इतनी सफाई तो मैडम ने कभी नहीं कराई।" (प्रतिभा) छुट्टियों के बाद जब पिंटू राम मैडम से पढ़ाने को कहता है, तो उस पर चिल्लाती है — "इन दोनों को पढ़ाने के बाद इतना दिमाग नहीं बचता कि मैं तुझे पढ़ा सकूं।"(प्रतिभा) हालांकि जब वह काम छोड़कर जाने लगता है, तो वापस अपनी भलमनसाहत का जाल बुनती है, पर पिंटू राम नहीं फंसता। यहाँ लेखिका ने इस वर्ग के प्रति मध्यवर्गीय अवसरवादी मानसिकता को उजागर कर प्रतिरोध को स्वर दिया है। सूर्यवाला की कहानी 'सुनंदा छोकरी की डायरी' में भी मध्यवर्गीय दोगली अवसरवादी मानसिकता का प्रतिरोध दर्ज हुआ है। जहां बालिका नौकरानी को खाना खिलाते वक्त मालकिन कहती है — "शरमाने का नई" (सूर्यवाला 79), लेकिन बच्ची द्वारा चपाती माँगने पर कह देना — "लेने को मना नई पर जास्ती चपाती... नुकसान करती।" (सूर्यवाला 79) बालिका के पूछने पर कि क्या 'भात' मिलेगा, तब कहती है — "चपाती, भात का बात नई, ज्यादा खाने से पेट में दरद होगा, जास्ती दरद होता, तो डॉक्टर लोग सुआ सरीख इंजेक्शन घोंपता।" (सूर्यवाला 79) ऊपरी तौर पर दिखावटी आचरण रखती है कि उसे पेट भरकर खिलाएगी, ताकि कामवाली का काम में मन लगा रहे, लेकिन मांगने पर अपनी मीठी बोली के साथ अपने अवसरवादी चेहरे को भी दिखा देती है।

इन प्रसंगों के द्वारा घरेलू महिला कामगारों के प्रति मध्यवर्गीय अवसरवादी आचरण का खुलासा किया गया है। यह खुलासा मध्यवर्ग के विरुद्ध प्रतिरोधी मन तैयार कर रहा है। मध्यवर्ग का ऐसा आचरण किसी भी कीमत पर स्वीकार योग्य नहीं है।

3.5.4 घरेलू कामगारों के प्रति मध्यवर्गीय अच्छा आचरण —

आज घरेलू कामगार मध्यमवर्गीय परिवार की एक अनिवार्य आवश्यकता है। इनके प्रति पहले जैसे मारपीट के आचरण में अब कमी आई है, साथ ही मध्यवर्ग का इनके प्रति सुधारात्मक रवैया भी कथा साहित्य में विषय बन पाया है। प्रतिभा की कहानी 'लहूलुहान कौन?', गीताश्री की कहानी 'माई री मैं टोना कारिहों ', दीप्ति गुप्ता की कहानी 'अनबुझ रिश्ता', प्रियंवदा की कहानी 'ये हौसला', क्षमा शर्मा की कहानी 'रोशनी के अच्छे दिन', उषा किरण खान की कहानी 'उमा-महेश', शोभा सिंह की कहानी 'नाम में बहुत कुछ रखा है', कृष्ण बलदेव वैद का उपन्यास 'एक नौकरानी की डायरी', बेबी हालदार का आत्मकथात्मक उपन्यास 'आलो आंधारि' में थोड़े-बहुत अंश में मध्यवर्गीय सुधारात्मक आचरण कामगार के प्रति दर्ज हुआ है। 'लहूलुहान कौन?' में मैडम पिंटू राम को पढ़ाती है, हालांकि इसका श्रेय किसी और को मिलने पर नाराज होती है, पर पति के समझाने पर फिर उसे साक्षर बनाने की मुहिम में जुड़ जाती है। मालिक भी पिंटू राम की पढ़ाई का सपोर्ट करते हैं और उसे समझाते है — "मन लगाकर पढ़ना। पढ़ाई बिना आदमी की जिंदगी जानवर जैसी है। पढ़ाई बीच में मत छोड़ना और न मैडम के गुस्से से घबराना।...पढ़ाई छोड़ मत देना। जिंदगी में बड़ी काम आएगी।" (प्रतिभा) क्षमा शर्मा की कहानी 'रोशनी के अच्छे दिन' में मालकिन प्रतिमा रोशनी के साथ नौकरानी होने के कारण हेय व्यवहार नहीं करती, बल्कि उसे ऊपर सोफे पर बैठने के लिए कहती हैं — "प्रतिमा बोली – ऊपर कुर्सी पर बैठ।"(शर्मा 126) 'नाम में बहुत कुछ रखा है' में मालकिन, नौकरानी 'रानी' को अपनी बेटी को पढ़ाने के लिए प्रोत्साहित करती है और शायद उसी का परिणाम है कि रानी बेटी के बाल-विवाह से पीछे हट जाती हैं।

'उमा-महेश' में मालकिन मालती उमा के बच्चों को शिक्षित करने के लिए खुद पढ़ाती है। मलकिन वर्ग के बदलते आचरण व कामगार के प्रति बहनापे को कहानी 'ये हौसला' और 'माई री मैं टोना करिहों' में विशेष रूप से दर्ज किया गया है। 'ये हौसला' में मालकिन के शब्दों में — "अक्सर अपनी बातें मुझसे साझा करती थी, चाहे तकलीफ, परेशानियां हो या फिर कोई खुशी की बात हो, यहाँ तक कि अगर किसी ने उसकी मेहनताने की रकम भी बढ़ाई, तो भी आकर बताएगी। कभी किसी की बुराई करते हुए नाराज हो जाएगी, तो किसी की तारीफ करते हुए बेहद खुश। हम दोनों का रिश्ता बेहद दोस्ताना था। वह अपने सारे हिसाब-किताब मुझसे करवाती, मैं अक्सर पैसे की सही रखरखाव, सेविंग को लेकर उसे समझाती रहती थी, कभी डांट भी लगाती थी।" (प्रियंवरा 56)

जहां एक ओर 'ये हौसला' में मालकिन और नौकरानी का दोस्ताना रिश्ता है, वहीं 'माई री मैं टोना करिहों' में बहनापा। माई री मैं टोना करिहों' में मालकिन, नौकरानी सिल्बी की बेटी की जिम्मेदारी लेती है — "सिल्बी तुम चिंता मत करो, मैं जब तक जिंदा हूं, एलीना का ख्याल रखूंगी, तुम निश्चिंत हो जाओ, कहीं ले जाने की जरूरत नहीं, मैं देखूंगी इसकी बीमारी को, मुझपर छोड़ो।" (गीताश्री 129) दीप्ति गुप्ता की कहानी 'अनुबुझ रिश्ता' में नौकर और मालिक का संबंध ऐसा है कि घर के बच्चों के लिए नौकर हरिया अनुकरणीय हीरो है। जो बाते बच्चे किसी से भी नहीं करते है, वह हरिया काका से कहते है। यहां तक कि जब हरिया काका बीमारी की वजह से काम छोड़ देते हैं, तब भी परिवार उनसे मिलने आता है, जिसे देख वह खुशी के आंसू से भर जाते हैं। उपन्यास' एक नौकरानी की डायरी' में अखबार वाले साहब और बिजी का रिश्ता नौकरानी शानो के साथ सम्मान व प्रेमपूर्वक है। बेबी हालदार का आत्मकथात्मक उपन्यास 'आलो आंधारि' तो मालिक वर्ग के बदलते आचरण का ज्वलंत उदाहरण है। तातुश की सहायता से बेबी अपने जीवन को ना केवल संभालती है, बल्कि आगे भी बढ़ती हैं और मालिक वर्ग के प्रयास का ही फल निकलता है कि सांतवी पास कामवाली आत्मकथात्मक उपन्यास लिख पाती है। मालिक वर्ग के इस आचरण को कथा-साहित्य में दर्ज कर कथाकारों ने मध्यवर्ग के प्रति कामगारों की रूढ़ हो चुकी सोच का प्रतिरोध दर्ज किया गया है। आज अगर कामगार को लेकर मध्यवर्ग का आचरण एक ओर रूढ़ नजर आता है, तो मध्यवर्ग के प्रति भी कामगार का आचरण रूढ़ हो चुका है। कामगारों का विचार है कि ये वर्ग कभी इनकी भलाई के बारे में सोच ही नहीं सकता। 21वीं सदी की रचनाओं में दोनों का एक-दूसरे के प्रति रूढ़ हो चुके आचरण की प्रतिरोधी रचनाएं भी शामिल हैं, जिसमें प्रतिरोध को मुकम्मल दिशा मिलती है।

3.5.5 मध्यवर्गीय समझौतापरक आचरण —

आज मध्यवर्गीय आचरण घरेलू कामगार के प्रति द्वन्द्वमूलक ना होकर समझौतामूलक दिशा में अग्रसर है, तो इसके पीछे का मुख्य कारण भूमंडलीकरण का प्रभाव, नव-मध्यवर्ग का जन्म और घरेलू कामगार की अनिवार्य आवश्यकता है। घरेलू कामगारों के साथ मध्यवर्गीय समझौतापरक आचरण को 20वीं सदी के अंतिम दशक में आई चित्रा मुद्गल की कहानी 'सुख' में मालकिन सुमंगला और नौकरानी फुली के संदर्भ में देखते है। नौकरीपेशा सुमंगला (मालकिन) को घर में अपनी बच्ची की देखभाल के लिए कामवाली की नितांत जरूरत होती है, इसी कारण कामवाली 'फुली' के साथ हर स्तर पर समझौता करती है। कामवाली काम पर बनी रहे इसलिए उसके छोड़ कर जाने की स्थिति में यहां तक कहती है — "… कोई और मांग हो, तो निसंकोच बताओ...गरज मेरी, पूरी करूंगी।" (मुद्गल 58) वहीं 21वीं में कहानी 'बराबरी का खेल', 'लहूलुहान कौन?', 'लौट आओ तुम', 'महानगर की खामोश-सी एक लड़की', 'एक नौकरानी की डायरी' में मध्यवर्गीय समझौतापरक आचरण देख सकते हैं। 'बराबरी का खेल' में मालकिन कहती है — "… कामवालियों को

आजकल कालेधन की तरह जमाने से छुपा कर रखा जाता है।" (झा) इसके पीछे का मूल कारण उल्लेख करती हुई लिखती हैं — "इस देश में आप सरकार, फिल्मकार किसी को भी रोज गरिया दे सकते हैं, लेकिन कामवालियों को जरा-सा टोकना और पैरों पर कुल्हाड़ी मारने जैसा है।"(झा) आशय यह है कि टोका नहीं कि वो काम छोड़कर चली जाएगी। ऐसे में कामकाजी महिला द्वारा घर-बाहर दोनों में संतुलन बना पाना कठिन हो जाएगा। आज मध्यवर्ग की इस मजबूरी को कामवाली भी समझती है। शानो के अनुसार — "मुझे निकाल देने की धमकियाँ वह अक्सर देती है, निकालती नहीं। निकालेगी नहीं, आजकल नौकरानियाँ आसानी से नहीं मिलती।" (वैद 11) इसी सजगता का परिणाम है कि मालकिन का वर्ग अब मारपीट से नहीं, बल्कि समझौते के तहत इस वर्ग से काम लेने को बाध्य हैं। 'बराबरी का खेल' में नौकरानी बिना बताए चार दिन तक छुट्टी पर रहती हैं। मालकिन के घर में तूफान मच जाता है, पर वह उसके आने पर कुछ नहीं कह पाती। अपने क्रोध को मन में दबा कर बैठती है — "मैंने जैसे-तैसे अपने शब्दों को काबू में किया, पता चला पीछे की कोठी के दर्शन इसे भी हो गए और हिसाब करने आई हैं।" (झा)

एक समय था जब कामगार का वर्ग आतंकित था कि कहीं मालिक वर्ग इन्हें काम से न निकाल दे, आज मालकिन भी आतंकित है कि कहीं कामवाली काम न छोड़ दे । इसलिए कामवाली द्वारा अनुचित करने पर भी मालकिन अपने हाव-भाव से जरूर थोड़ा-बहुत अपनी नाराजगी व्यक्त कर दें, पर मुख खोलने से पहले दस बार सोचती है। 'माई री मैं टोना करिहों' की मालकिन मिताली बिना नौकरानी के गंभीर समस्या से जूझ रही होती है, इसीलिए समझौते के तहत कामवाली सिल्बी को उसकी मानसिक रूप से अस्वस्थ बेटी एलिना के साथ घर पर रखने को राजी हो जाती है। लेखिका के शब्द में — "सारी शंकाओं पर उसकी जरूरत हावी हो गई थी। सच है कि मिताली भी बिना मेड के गंभीर समस्याओं का सामना कर रही थी, बिना मेड घर और ऑफिस दोनों को संभालना बहुत दुष्कर होता जा रहा था।" (गीताश्री121) एक समय था जब बच्चें वाली कामवाली को मालिक वर्ग काम पर नहीं रखता था, वहीं इस कहानी में कामवाली को उसकी विक्षिप्त बच्ची के साथ घर में रखना समझौते के तहत मध्यवर्ग के बदलते आचरण का ही परिणाम है। यहाँ मालकिन के आचरण में जो परिवर्तन नजर आ रहा है, वो समझौता के तहत है, न कि मध्यवर्गीय सोच में परिवर्तन का परिणाम।

'लहूलुहान कौन?' की मैडम यह जानते हुए की पिंटू राम उससे पढ़ना-लिखना सीख लेगा, तो उसकी नौकरी छोड़ कर चला जाएगा। उसे डांटती-डपटती नहीं, बल्कि चालाकी से काम लेती है। काम का अतिरिक्त बोझ डाल पढ़ने के समय में कटौती करती है, पर मुंह खोल कर ना पढ़ाने की अपनी मंशा व्यक्त नहीं करती है। इसके पीछे उनका समझौतावादी आचरण ही है। लेखिका लिखती हैं —

> "वह जानती थी कि मात्र हजार रुपए में सारा दिन, सारे काम करने वाला नौकर कहीं नहीं मिलेगा आजकल। इनके भी मुंह खुले हुए हैं। मिसेज बत्रा के घर में जो नौकर है 2500 रुपए भी लेता है और नखरे अलग करता है। मिसेज गुप्ता ने जो मेड एजेंसी से ली वह भी 2500 रुपए लेती है और हर साल उस एजेंसी को जो सिक्योरिटी देनी पड़ती है वह अलग। फिर सबसे बड़ी बात इस दुनिया में शायद पिंटू ही है, जो उसका गुस्सा चुपचाप सहता है। उसके अपने बच्चे तक जवाब दे देते हैं, पर पिंटू कभी जवाब तक नहीं देता।" (प्रतिभा)

पिंटू राम जब मालकिन की चालाकियों को समझ उनके घर के काम को छोड़ वहाँ से जाने लगता है तब भी मालकिन उसके साथ समझौता करना चाहती है और कहती है कि उसको पढ़ा देंगी — "अरे नहीं, जब शाम को बच्चों को पढ़ाऊँगी तो तुझे भी पढ़ा दूँगी" (प्रतिभा) मालकिन वर्ग का यह कथन बतलाता है कि अब पहले वाली बात नहीं रह गई कि काम छोड़ने की बात पर नौकर-नौकरानी को मारा- पीटा जा सकता है,जैसा कि अब तक होता आया था, बल्कि अब एक ही उपाय बचा है, ऐसे कामगारो से समझौता। यहाँ भी मालकिन पिंटू राम को मारती-पिटती या गुस्सा नहीं करती है, बल्कि एक प्रकार समझौता करना चाह रही है कि वो घर का काम करता रहे और उसके पढ़ने की इच्छा को मालकिन पूरा करेगी। घरेलू कामगारों के साथ मालकिन सदस्य के समझौतापरक आचरण को बहुत ही बारीकी से जाकिया जुबैरी ने अपनी कहानी 'लौट आओ तुम' में विषय बनाया है। जहां मालकिन का आलस, टीवी सीरियल्स के प्रति लगाव का परिणाम है कि नौकरानी 'बीवी' मालकिन की भूमिका में और मालकिन 'आपा' नौकरानी से भी गई गुजरी भूमिका में पहुँच जाती है। इस सच से वाकिफ होने के वाबजूद मालकिन समझौते के तहत शांत बनी रहती है। मालकिन को कहाँ बैठना है, क्या खाना है, कैसे कॉटन अपने कमरे में लगानी है सबकुछ नौकरानी 'बीबी' तय करती है। यहां तक कि अपने ही पति के कमरे में अपने ही पति साथ सोने के लिए मालकिन 'आपा' को नौकरानी 'बीबी' से इजाजत लेने को मजबूर है, परंतु इतने के वाबजूद नौकरानी को निकालने की कंडीशन में नहीं है। लेखिका लिखती हैं — "आपा का जी चाहा वे इसी कमरे में सो जाए, मगर पूछा तो है नहीं" (जुबैरी) बीवी और साब के बीच के अनैतिक संबंध को जानकर भी चुप्पी ही नहीं साध लेती, बल्कि आतंकित भी है कि कहीं नौकरानी को यह न पता चल जाए कि वो उनकी जासूसी कर रही है — "साब जी की सवारी ऊपर आ रही थी।... कंधों पर चढ़ कर बीवी के। कहीं...बीवी ने मुझे देख तो नहीं लिया होगा...? भगवान करे ना देखा हो...। वे लोग ये ना समझे कि मैं जासूसी करने लगी हूं। मैं ऐसा कभी नहीं कर सकती।" (जुबैरी) एक समय रहा जब कामवाली के मालिक सदस्य के साथ अनैतिक संबंध को लेकर कामवालियों के मन में डर बना रहता था कि कहीं मालकिन को इसकी भनक न लग जाए, क्योंकि ऐसा हुआ तो काम हाथ से चला जाएगा। वहीं, प्रवासी पृष्ठभूमि पर लिखी गई जाकिया जुबैरी की यह कहानी बतलाती है कि मध्यवर्गीय महिला, कामवाली पर इस कदर निर्भर हो रही है कि वो इस

डर से आतंकित है कि कहीं कामवाली के अपने ही पति (मालिक) से अनैतिक संबंध के बारे में उसे पता है, यह जानकर कामवाली नाराज न हो जाए और काम छोड़कर न चली जाए। कामगारों की अनिवार्यता के मद्देनजर समझौते के तहत अपनाए गए आचरण का विकृत परिणाम यहाँ दर्ज है और ऐसे भविष्य की ओर अग्रगति लिए हमारे समाज का प्रतिरोध है।

इस प्रकार कथा साहित्य में यह स्पष्ट है कि मध्यवर्गीय आचरण घरेलू महिला कामगार के प्रति अपनी परंपरा में मार-पीट के करीब रहा, तो भूमंडलीकरण के बाद इनकी अनिवार्यता ने इनके प्रति अवसरवादी, समझौतापरक आचरण को जन्म दिया है। अधिकतर मामलों में इन कामगारों के प्रति मध्यवर्गीय आचरण में अगर कोई सकारात्मक पहल नजर आती है, तो अधिकांश में केवल मजबूरी के तहत। इसके वाबजूद कुछ मामले में मध्यवर्ग इनकी स्थिति में सुधार भावना के साथ अवश्य ही प्रयासरत है। घरेलू कामगारों के प्रति मध्यवर्गीय रूढ़ आचरण और मध्यवर्ग के प्रति घरेलू कामगारों की भी रूढ़ हो चुकी सोच को कथा-साहित्य ने विषय बनाकर एक-दूसरे की रूढ़ छवि के विरोध में प्रतिरोध को दर्ज किया है।

3.6. घरेलू महिला कामगार का आचरण मध्यवर्ग के प्रति —

एक ओर प्रतिरोध की दिशा में घरेलू कामगार के प्रति मध्यवर्गीय आचरण की पड़ताल जरूरी दिशा रही, तो दूसरी तरफ घर-परिवार में काम करने वाली घरेलू महिला कामगार का मध्यवर्ग के मालिक-मालकिन के प्रति नजरिए को देखना भी प्रतिरोध की दिशा में अनिवार्य कदम है। घरेलू कामगार मध्यवर्ग का अहम हिस्सा है, उसका कर्मक्षेत्र घर-परिवार होता है, इसी कारण उसे घर-परिवार के हर रामायण और महाभारत की खबर होती है। 'एक नौकरानी की डायरी' की शानो कहती है – "मैं सबकी नजरों पर नजर रखती हूं, उन्हें टटोलती रहती हूं।" (वैद 21) ऐसे में मध्यवर्गीय परिवार का उसके प्रति जो आचरण रहता है, उसे वो भलीभांति समझती है और उसकी नजर में भी मालिक व मालकिन की छवि बनती है। घरेलू कामगार जिन घरों में काम करती है, वहाँ मालिक सदस्य और मालकिन सदस्य के प्रति इनका आचरण कहीं समझौतापरक है और कहीं बिल्कुल विरोध में, इसके कारणों का विश्लेषण प्रतिरोध को मुकम्मल दिशा देने के लिए जरूरी है —

1. मालिक सदस्य के प्रति घरेलू महिला कामगार का आचरण
2. मालकिन सदस्य के प्रति घरेलू महिला कामगार का आचरण

3.6.1 मालिक सदस्य के प्रति घरेलू महिला कामगार का आचरण —

घरेलू काम महिला के हिस्से का काम है। ऐसे में घरेलू महिला कामगार का भी सीधा संबंध परिवार की महिला यानी की मालकिन से हैं, किंतु इसका कर्मक्षेत्र 'घर-परिवार' होने के कारण प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप

से परिवार के पुरुष सदस्य से भी इनका पाला पड़ता है और ऐसे में परिवार के पुरुष सदस्य का इनके प्रति और इनका पुरुष सदस्य के प्रति आचरण को प्रतिरोध की दिशा में देखना एक महत्वपूर्ण बिंदु बन जाता है। उपन्यास 'एक नौकरानी की डायरी' में मालिक सदस्यों के नौकरानियों के प्रति आचरण को लेकर सचेत करती हुई कामवाली शानो की माँ अपनी कामवाली बेटी शांति उर्फ शानो से कहती है – "मालक लोग बहुत कमीने होते हैं, उनका कोई भरोसा नहीं।... मालकों से बच कर रहना चाहिए, मालकों के बेटे से भी।" (वैद 9) शानो की माँ की इस हिदायत के पीछे का कारण परिवार के पुरुष सदस्य द्वारा कामवालियों के श्रम के शोषण के साथ ही साथ दैहिक शोषण का भी संदर्भ है और इस पर तुर्रा यह कि वह इसे अपना हक समझते हैं — "नौकरानी के साथ बेहयाई करना साब लोग अपना हक समझते हैं।" (वैद 34) ऐसा नहीं है कि नौकरानी मालिक का उसके प्रति इस प्रकार के दैहिक आचरण के प्रति अनजान रहती है, बल्कि कभी मजबूरी के तहत, तो कभी लाभ पाने के लिए समझौते के तहत चुप्पी साधी रहती है। 'एक नौकरानी की डायरी' में शानो जब बंगालिन के घर में सिंक में बर्तन धो रही होती है, उस समय मालिक का उससे सटकर दैहिक सुख लेने की उनकी मानसिकता को वो समझती है, पर समझौते के तहत चुप रहती है — "मैंने भी सोचा कि साब को सुख मिलता है, तो मेरा क्या जाता है। मैं चुपचाप बर्तन मलती रही।" (वैद 14) यहाँ मजबूरी के तहत शानो चुप है। 'डाउनलोड होते हैं सपने' की सुमित्रा को ऐसे किस्से सुनने में मजा आता है, जहाँ मालिक कामवाली का पक्ष लेते है — "और ये कोठी वाले...फ्लैट्स वाले घरों में सबसे ज्यादा मेड की तरफदारी यही लोग तो करते हैं और अपनी बीवियों से भिड़ जाते हैं कई बार। मां किससे सुनाती है, तो सुनकर उसे बड़ा मजा आता है।" (गीताश्री 58) मजा आना दर्शाता है कि कामवाली मालिक वर्ग के ऐसे आचरण के प्रति समझौते की दिशा में ही है, क्योंकि इससे लाभ उसे भी होता है। जाकिया जुबैरी की कहानी ''लौट आओ तुम!' में नौकरानी साहब की इसी कमजोरी का फायदा उठाकर खुद मालकिन बन बैठती है, बिना किसी अपराध-बोध के। उसे मालकिन से कोई डर नहीं, अगर कोई डर है तो बस इतना ही डर है कि कहीं साहब उसके हाथ से ना निकल जाए — "बीवी की आंखें चमक उठी। यही तो वह चाहती थी...। आपा सफल ना होने पाए। परेशान हो जाए...अगर साब जी को कहीं आपा की आदत फिर से पड़ गई, तो वापस आकर फिर से नए सिरे से जाल बुनना होगा...मकड़ी के जाल को हवा का हल्का-सा स्पर्श भी बिखेर देता है। बीबी फिर से बिखरना नहीं चाहती थी। अपने वतन, अपनी झोपड़पट्टी छोड़कर परदेस में जम जाना कोई आसान काम नहीं होता...।" (जुबैरी) ऐसे संबंध से अगर कामवालियों को लाभ मिलता है, तो अधिकांश में वो भी पीछे नहीं हटती। इसके पीछे के मनोविज्ञान को कृष्ण बलदेव वैद शानो की डायरी के माध्यम से दर्ज करवाते हैं। वह लिखती है — "सभी नौकरानी जितनी शिकायत मालकिनो की करती हैं, उतनी मालिकों की नहीं, उनका सीधा वास्ता अक्सर मालकिन से ही पड़ता है। मालिक अक्सर ओट

में रहते हैं। वहीं खड़े-खड़े बेहयाइया करते रहते हैं। नौकरानी को मालकिनो की चिक-चिक मालिकों की बेहयाई से ज्यादा बुरी लगती है।" (वैद 83)

यद्यपि मालिक बेहयाई करते हैं, परंतु मालकिन की तरह तानों की बौछार या घृणास्पद नहीं मानते। इसके साथ ही मालिक के शह के कारण कामवालिया मालकिन के द्वारा होने वाले श्रम के शोषण से बचती है, साथ ही जिन सुविधाओं को अपने परिवार में अर्जित करने में असफल रहती है वह भी उपलब्ध होती है। मालिक से मिले सुरक्षाकवच के प्रति यह वर्ग सजग है और मालिक के शह पर मालकिन के व्यवहार के प्रति भी प्रतिरोधी हो उठता है। जाकिया जुबैरी की कहानी में 'लौट आओ, तुम!' में मालकिन 'आपा' के बुलाने पर नौकरानी 'बीबी' ऊपर जाना भूल जाती है, लेकिन जब मालिक तसल्ली देते हुए कहते हैं — "कोई बात नहीं कभी-कभी गलती हो जाती है।" (जुबैरी) तो नौकरानी 'बीवी' निश्चिंत हो जाती है —"और उसको तसल्ली हो गई, अब किसी की कोई परवाह नहीं।" (जुबैरी) ऐसी सुविधा ही वजह है कि कुछ नौकरानियों को मालिकों की बेहयाई अच्छी लगती है, लेकिन इन सबके पीछे एक सत्य यह भी है, जो कृष्ण बलदेव वैध की 'एक नौकरानी की डायरी' की शानो लिखती है — "अच्छी लगे न लगे, बर्दाश्त तो सबको करनी पड़ती है।" (वैद 65) अत: मजबूरी के तहत हो या लाभ के तहत, कारण जो भी हो मालिक वर्ग की बेहयाई को सहने को यह वर्ग मजबूर है।

इस प्रकार 21वीं सदी की रचनाओं में मालिक सदस्य और महिला कामगार के इस पक्ष को उभारकर नौकरानी की प्रति मध्यवर्गीय पुरुष के दैहिक आचरण के प्रति और घरेलू महिला कामगार के ऐसे आचरण के प्रति समझौतावादी दृष्टि का रचना के स्तर पर प्रतिरोध दर्ज हुआ है। मालिक के साथ कामवाली का समझौतापरक आचरण भी अपने आप में अपनी यथास्थिति के प्रति प्रतिरोध है और अगर आज कानून में इनके लिए सुरक्षा, सुविधा की व्यवस्था रहती या मालकिन सदस्य इस प्रकार के शोषण होने पर इनके पक्ष में खड़ी होती, तो इस दिशा की ओर कामवालियों को अग्रसर ही नहीं होना पड़ता। अत: समग्रता में कामवालियों का ये समझौतावादी आचरण कानून और मालकिन के घरेलू महिला कामगार विरोधी आचरण का प्रतिरोध है।

3.6.2 मालकिन सदस्य के प्रति घरेलू महिला कामगार का आचरण —

घरेलू काम महिला का कर्मक्षेत्र है और इस काम को पेशे की तरह करने वालों में भी महिलाएं ही अधिक है। ऐसे में घरेलू कामगार का मालकिन परिवार की महिला के प्रति आचरण व मालकिन परिवार की महिला का घरेलू महिला कामगार के प्रति आचरण प्रतिरोध की दिशा में देखना जरूरी जान पड़ता है। आज की घरेलू कामगार सजग है, वह जानती है कि मध्यवर्गीय परिवार की वह एक अनिवार्य आवश्यकता है। मालकिनों का काम उसके बिना चल ही नहीं सकता, इसलिए भले यह मालकिन वर्ग उसे निकालने की खोखली धमकी

देता है, पर निकाल नहीं सकता। कृष्ण बलदेव वैद शानो के माध्यम से नौकरानी की मालकिन परिवार के प्रति सोच को सामने रखते हैं — "मुझे निकाल देने की धमकियां वह अक्सर देती रहती हैं। निकालती नहीं। निकालेगी नहीं, आजकल नौकरानियाँ आसानी से नहीं मिलतीं।" (वैद 11) यह बोध अपने आप में प्रतिरोध है। इसी का परिणाम है कि घरेलू कामगार के जिस आचरण पर यह मालकिन वर्ग प्रतिबंध लगा कर रखना है, कामवाली वही कर मजा का अनुभव करती है। मजा के लिए उन्हीं बातों को करना प्रतिरोध का ही एक तरीका है। शानो लिखती है — "बंगालिन और मोटी के गुसलखाने में मैंने कई बार चोरी-चोरी पेशाब किया है। डरते- डरते, जल्दी-जल्दी। सोचती हूं पकड़ी गई, तो क्या कहूंगी? कह दूंगी जोर से आ गया था, क्या करती...वैसे भी इस चोरी में मुझे खास मजा आता है।" (वैद 16) इतना ही नहीं मालकिन का गुसलखाना साफ करते समय गंदगी रह जाने पर पहले जैसा डर नहीं है, बल्कि जानबूझकर गंदा छोड़ देने की भी मानसिकता है, भले प्रत्यक्ष कुछ नहीं कहती, पर अप्रत्यक्ष रूप से बहुत कुछ कर जाती है — "उससे इतना भी नहीं होता कि बाल को खुद बाहर फेंक दें। कभी-कभी तो मैं उन्हें नाली में ही घुसेर देती हूं। फिर जब नाली बंद हो जाती है तो चिल्लाने लगती है। चिल्लाती रहे, मुझे क्या।" (वैद 11) यह बेपरवाही प्रतिरोध का ही रूप है।

आज घरेलू कामगार बांदी या दासी नहीं है, बल्कि सहूलियत व सम्मान के अभाव में काम छोड़कर जाने को स्वतंत्र, जिस कारण इससे मध्यवर्ग डरा हुआ है, तो कामगार भी सिर पर चढ़ा हुआ है। शानो की मां कहती है — "बकती है, तो बकने दे, तू चुपचाप काम करती रह, जिस दिन कोई और घर मिल जाएगा, तो छोड़ देना। मां कहती है, सब मालकिने बकती है।" (वैद 10) अर्थात् जिस दिन नया काम मिला उस दिन बिना बताए इनके काम से छुट्टी, हालांकि कामवाली की अनिवार्य आवश्यकता के वाबजूद मालकिन वर्ग बकने से पीछे नहीं हट रहा। मालकिन के अनुसार कामगार द्वारा जरूरत पर ली गई छुट्टी को भी बहानेबाजी का पर्याय समझे जाने को लेकर यह वर्ग सजग है, साथ ही कामवाली को चोर समझने की उनकी ओछी मानसिकता से भी परिचित। शानो लिखती है — "हम नौकरानियों के बारे में मलकिनों की सबसे बड़ी शिकायत यही कि हम झूठ बोलती हैं और चोरी करती हैं। जब कोई नौकरानी कहती है कि उसे बुखार हो गया था या उसका बच्चा बीमार पर गया था, उसका कोई मर गया था तो मालकिन मान लेती है कि नौकरानी झूठ बोल रही है।" (वैद 83) छुट्टियों के बाद जब कामवालियाँ काम पर वापस आती है, तो काम के दुगुने-तिगुने बोझ को ढोने को भी बाध्य होती हैं। 'नाम में बहुत कुछ रखा है' में नौकरानी रानी इस स्थिति की शिकायत दूसरी मालकिन से करती है और कहती है — "सब घरों में तीन दिन का काम जमा करके रखा था। ऊपर से डांट-डपट अलग। सामने वाली मैडम तो पैसा काट लेने की धमकी दे रही थी। आपका ही दिल दरिया है।" (सिंह) इस तरह मुखर होकर अपनी बात रखना प्रतिरोध का ही रूप है। अब तक नौकरानियां मौन थी, लेकिन अब वह मुखर हो रही है।

21वीं सदी के कथा साहित्य में घरेलू कामगारों के प्रति मालकिन वर्ग की दोहरी मानसिकता की पहचान भी हो रही है। किस प्रकार मलकिने नौकरानी से आतंकित रहती है कि नौकरानी उसके पति को ना फंसा ले, लेकिन बेटे के प्रति उतनी ही आश्वस्त और इसके पीछे मालिकन वर्ग की ओछी मानसिकता को लेकर कामवाली शानो सोचती है — "मोटी को अपने बेटे के बिगड़ने का कोई खतरा नहीं। मेरा ख्याल है कि अगर उसके बेटे नौकरानी को घूर-घार या छु-छा ले, तो मालकिनो को कोई तकलीफ नहीं होती, खुशी होती है, क्योंकि उन्हें भरोसा है कि उनके बेटे नौकरानी से छेड़-छाड़ भरे कर ले, उनसे फसेंगे नहीं।"(वैद 13) नौकरानी का अच्छा पहनना, अच्छा रहना भी मालकिनों को जरा नहीं भाता। शानो लिखती है — "अगर नौकरानियाँ साफ-सुथरे कपड़े पहनना शुरू कर दें, तो मालकिन हैरान होने लगती हैं। इसके पास इतने पैसे कहां से आ जाते हैं, जरूर हेराफेरी करती होगी।" (वैद 62) मालकिन की इन सारी चालाकियों के प्रति यह वर्ग सजग है। शानो लिखती है — "लेकिन... मैं भी जानती हूं कि कोई किसी नौकर-नौकरानी को बेटा-बेटी नहीं बनाता। काम करवाने के लिए बेटा-बेटी कह देने की बात और है।" (वैद 18) और इसका खुलासा एक न एक दिन होता ही है। अमरकांत की कहानी 'बहादुर' के संदर्भ में देवेंद्र चौबे का मन्तव्य हैं — "'नौकर', नौकर ही होता है। घर के लोग उसके साथ कितनी भी सहानुभूति क्यों ना दिखा लें, समय आने पर सब बदल जाते हैं तथा अंततः उससे उनका रिश्ता सिर्फ 'नौकर' और 'मालिक' का ही रह जाता है। जिसका एहसास हमेशा किसी बड़ी घटना से होता है।" (चौबे 61-62) 'एक नौकरानी की डायरी' में पिता की मृत्यु पर शानो जब काम पर कई दिनों की छुट्टी के बाद वापस जाती है, तो उसके प्रति मालकिनों का व्यवहार इस कथ्य की पुष्टि करता है।

अखबार में चोरी की खबर आने पर नौकरानी शानो को अपनी बेटी की तरह मानने वाली मालकिन बीजी शानो से चोर के बारे में इसलिए पूछती है क्योंकि उनका विश्वास है कि चोर नौकरानी ही हो सकती है और शानो नौकरानी है, उनकी ही बिरादरी की है, इसलिए उसे भी इसके बारे में जरूर पता होगा। यहाँ पता होना केवल पता होना नहीं बल्कि चोरी में शामिल होने का संकेत भी है। यहाँ घरेलू महिला कामगारों के प्रति सामुदायिक स्तर पर पूर्वाग्रह से ग्रसित मध्यवर्गीय सोच का बेवाक प्रतिरोध यहाँ रचा गया है। यही कारण है कि नौकरानी और मालकिन के बीच के संबंध में विरोध-प्रतिरोध का हमेशा बना रहता है और कोई भी नौकरानी किसी भी मालकिन के घर में अधिक देर तक नहीं टिकती — "कोई नौकरानी किसी घर में ज्यादा देर नहीं टिकती। किसी मालकिन को कोई नौकरानी ज्यादा देर तक पसंद नहीं आती । हर नौकरानी को मालकिनो की बकवास सुननी पड़ती है। सब मालकिने बकवास करती हैं, कोई कम कोई ज्यादा।" (वैद 65) नौकरानी की नजर में मालकिन का बोलना ही बकना या बकवास करना होना, मालकिन के प्रति उसके प्रतिरोधी मन को इंगित करता है।

इस प्रकार मालकिनों का आचरण कामवालियों के प्रति अमानवीय व सम्मानहीन ही अधिक है, जबकि कामवाली घोषित तौर पर उनकी मददकारी हाथ है, क्योंकि घर का काम स्त्री सुलभ काम माना गया है। मालिक वर्ग भले नौकारानी के प्रति देह लोलुप बने रहे, पर उसके आचरण में नौकरानी के प्रति हेय दृष्टि नहीं रहती। मालकिन के शोषणपरक रवैये से बचाने वाला सुरक्षाकवच भी मालिक प्रदान करते है। ऐसे में मालकिन के प्रति कामगार का नजारियाँ सीधा प्रतिरोधी बना रहता है, जबकि मालिक के साथ समझौतापरक, हालांकि ये समझौता भी अपनी यथास्थिति के प्रति विरोध की उपज है।

3.7. घरेलू महिला कामगार का शोषण व प्रतिरोध –

घरेलू महिला कामगार के शोषण के तीन आयाम उभरकर आते हैं – 1. दैहिक शोषण 2. श्रम का शोषण 3. मानसिक शोषण। इसके प्रति प्रतिरोधी स्वर 21वीं सदी के कथा साहित्य में दर्ज किए गए है।

3.7.1. दैहिक शोषण –

घरेलू महिला कामगार के शोषण का एक पक्ष दैहिकता से जुड़ा हुआ है, इसके बावजूद इसके मामले कानून में कम ही दर्ज होते हैं। दैहिक शोषण में मौखिक उत्पीड़न अर्थात् यौनिक जुमले से लेकर, यौनिक हाव-भाव व दैहिक संबंध तक शामिल है। सुरभि टंडन मेहरोत्रा लिखती हैं –

> "औरतों के साथ होने वाले यौनिक उत्पीड़न का दोषी उन्हें ही ठहराया जाता है। मालिक और कामगार के बीच सत्तात्मक संबंध और उनके साथ होने वाले भेदभाव या उनकी शिकायत को नकारा जाने का रवैया भी उन्हें चुप करा देता है। कानूनी जानकारी की कमी, शिकायत करने में आत्मविश्वास की कमी या भरोसा तोड़ने का लांछन भी जिम्मेदार हैं, हालांकि भारत में कार्यस्थल पर होने वाले यौन हिंसा से संबंधित कोई कानूनी धारा नहीं है, परंतु सर्वोच्च न्यायालय द्वारा जारी की गई 'विशाखा बनाम राजस्थान राज्य केस (1997)' का इस्तेमाल किया जाता है। इसके साथ ही नारीवादियो ने औरतों के समूह और वकीलों ने राष्ट्रीय महिला आयोग के साथ जुड़कर कार्यस्थल पर होने वाले यौन उत्पीड़न पर बिल ड्राफ्ट किया है। हालांकि इस बिल को 2010 में संसद में पेश किया गया, मगर इसमें घरेलू कामगारों को नहीं शामिल किया गया। अधिकारियों ने घरेलू कामगारों को इसमें ना शामिल करने का तर्क दिया कि घर जैसे स्थल पर हिंसा का कोई चश्मदीद गवाह मौजूद ना होने की वजह से हिंसा साबित करना कठिन हो जाएगा। घरेलू कामगारों के संगठनों, महिला व वकीलों के समूह ने इसका जोरदार विरोध किया।" (मेहरोत्रा 47)

घरेलू कामगार का दैहिक शोषण समाज और साहित्य की सच्चाई बनकर उभर रहा है, वहीं कानून में ऐसे कामगारों के शोषण को रोकने के लिए अलग से कोई कानूनी बिल नहीं है। कथा साहित्य में तमाम रचनाएं

घरेलू कामगार के दैहिक शोषण के पक्ष को व्यक्त कर रही हैं। दैहिक शोषण के संबंध में हिदायत देते हुए 'एक नौकरानी की डायरी' में शानो की मां शानो से कहती हैं — "मालक लोग बहुत कमीने होते हैं, उनका कोई भरोसा नहीं।...मालकों से बच कर रहना चाहिए, मालकों के बेटों से भी।" (वैद 9) इस सीख के पीछे का मनोविज्ञान कामवाली के प्रति मालिक का दैहिक आचरण है। चूंकि कामवाली गरीब परिवार से आती हैं, अपने परिवार में पैसे की तंगी को झेलती है। मालिक के परिवार में घर के भीतर काम करती है, अत: श्रम के साथ उसके देह का शोषण करना भी मालिक वर्ग अपना हक समझता है। शानो मालिकों के मनोविज्ञान पर अपनी डायरी में लिखती है — "नौकरानी के साथ बेहयाई करना साब लोग अपना हक समझते हैं।" (वैद 34) किसी भी पेशे से जुड़ी महिला के साथ पुरुष का दैहिक आचरण उसकी दूषित मानसिकता को दर्शाता है, लेकिन घरेलू महिला कामगार के साथ यौनिक आचरण को मालिक वर्ग द्वारा अपना हक समझना अपने आप में चिंताजनक है और तुर्रा यह कि इसके लिए नौकरानी का सुंदर होना यह कम उम्र का होना जरूरी नहीं, बल्कि पेशे अनुसार कामवाली होना ही पर्याप्त है। नौकरानी की शोषण का आधार उसकी उम्र, रंग, रूप, व्यवहार नहीं, बल्कि मालिकों की नजर में 'मुफ्त का माल' होना है — "...जवान और खूबसूरत भी जरूरी नहीं, साब लोग तो अधेड़ और बदसूरत और गंदी नौकरानी को भी नहीं छोड़ते। मुफ्त का माल।" (वैद 69)

इसी सोच का परिणाम है कि कार्यस्थल पर यह घरेलू कामगार सबसे अधिक दैहिक शोषण की शिकार हैं। गीताश्री की कहानी 'माइ री मैं टोना करिहों' में नौकरानी सिल्बी की बेटी एलीना मालिक की संतान है, जो सिल्बी के दैहिक शोषण के पक्ष को सामने रखता है। मिताली, सिल्बी को अपने घर काम के लिए लाने जाती है, तब एजेंसी वालों से पता चलता है — "देखो मिताली, इसके पति के बारे में ठीक-ठाक तो मुझे भी पता नहीं, पर हां, उड़ती हुई एक बात पता चली थी कि वह कोई बड़ा मालिक है, जिसके यहां सिल्बी काम करती है और एलीना उसी की बेटी है।" (गीताश्री122) अकेली सिल्बी ही नहीं, बल्कि यह अधिकांश घरेलू महिला कामगार का सच है। इसी कारण सिल्बी अपनी बेटी एलीना को लेकर आतंकित है और मालकिन से कहती हैं — "मैं नहीं चाहती कि इसे अपनी जैसी जिंदगी दूं...बिनब्याही मां बन जाए यह...।" (गीताश्री 128) मतलब आतंक है कि उसकी तरह कहीं उसकी बेटी के देह का भोग मालिक सदस्य न कर लें। कहानी 'डाउनलोड होते हैं सपने' में कामवाली सुमित्रा की मां सुमित्रा को कामवालियों के साथ घटित स्थिति को व्यक्त करती हुई कहती है — "अरे हम औरतें क्या होती हैं? इतने लोग गुजरते हैं ऊपर से कि कभी ना कभी तो, किसी ना किसी का पहली बार होता ही है, किसे-किसे बताऊं! चल भाग यहां से! हम झुग्गियों की औरतों को इस्तेमाल की चीज समझते हैं लोग, धंधेवालियों पर तो पैसा फूंक आते हैं, हम तो फ्री में हैं।" (गीताश्री 55) आर्थिक तंगी के कारण ऐसी परिस्थिति में मुंह बंद रखना नौकरानी की मजबूरी बन जाती है। यह मजबूरी आतंक को जन्म देती है और मालिक वर्ग के प्रति मौन, मानसिक प्रतिरोध को भी। एक नौकरानी के मन में हर समय अपनी असुरक्षा का भाव

बना रहता है। तभी अखबार वाले साब के हँसने पर शानो समझती है — "मेरा ख्याल था कि कोई बुरी हरकत करेगा, लेकिन उसने मुझे छुआ तक नहीं।" (वैद 17) नौकरानी के शोषण के विरोध में कानून का अभाव है, लेकिन कानून के अभाव के साथ मालकिन का परिवार अपने ही घर में काम कर रही महिला कामगार की सुरक्षा को लेकर आँख मुँदा हुआ है। घर की महिला (मालकिन) भी घरेलू महिला कामगार के ऐसे शोषण को देखकर तब तक आंख मूंदे ही रहती है, जब तक इनकी वजह से उसकी स्थिति में कोई खतरा ना नजर आए। शानो लिखती है — "मेरा ख्याल है कि अगर उनके बेटे नौकरानी को घूर-घार या छू छा ले, तो मालकिनो को कोई तकलीफ नहीं होती, खुशी होती है, क्योंकि उन्हें भरोसा है कि उनके बेटे नौकरानी से छेड़छाड़ भले कर ले, उनसे फसेंगे नहीं" (वैद 13) परिवार के पुरुष सदस्य द्वारा होने वाले शोषण को लेकर मालकिन का वर्ग कितना सचेत है, इसे 21वीं सदी के कथा-साहित्य में प्रतिरोध की दिशा में विषय बनाया गया है।

नौकरानी के शोषण से इन मालकिनों को कोई फर्क नहीं पड़ता। इनके प्रति मालकिनों को कोई सहानुभूति नहीं होती, बस मतलब है कि पति नहीं फँसना चाहिए, बेटा भले ही कुछ भी क्यों ना कर ले अर्थात् करके रफा-दफा कर देने पर उन्हें आपत्ति नहीं और कई बार तो ऐसे मामले सामने आने पर वह खुद भी इन मामलों को रफा-दफा करने में उनकी मदद करती है। जिसका परिणाम है कि ऐसी कामवालियों की बस्तियों में पेट साफ करने वाली यानी अवैध संतान को गिराने वाली डाक्टरनियों का बिजनेस चलते रहता है और एक कामवाली हमेशा इस आतंक से आतंकित रही है कि उन्हें कब इनकी शरण ना लेनी पड़े। शानो अपनी डायरी में लिखती है – "जब से डॉक्टरनी आई है। मैंने डरना शुरू कर दिया है, कहीं मुझे भी इसके पास ना जाना पड़े।" (वैद 68) इन कामगारों के दैहिक शोषण का पक्ष शानो की डायरी दर्ज कर रही है। ऐसे प्रसंग दैहिक शोषण के विरोध में लेखकीय प्रतिरोध का स्वर निर्मित कर रहा है। मालकिन वर्ग की दोहरी मानसिकता के विरोध के स्वर को भी मजबूत किया गया है।

3.7.2. श्रम का शोषण –

घरेलू महिला कामगार के शोषण का दूसरा बड़ा मामला श्रम के शोषण से हैं। घरेलू कामगार के श्रम व वेतन से संबंधित कोई कानून ना होने के कारण इनके द्वारा किए गए श्रम का उपयुक्त मूल्य इन्हें नहीं मिलता। बीमारी आदि के कारण अवकाश की स्थिति से लौटने के बाद इन्हें श्रम के अतिरिक्त बोझ को ढोना पड़ता है। इसके अतिरिक्त निर्धारित काम से अतिरिक्त काम कराना, पार्टियों, मेहमान के आने पर अतिरिक्त श्रम व समय का बोझ इन्हें वहन करना पड़ता है। इतने के वाबजूद इन्हें किसी भी तरह का अतिरिक्त भुगतान या सुविधाएं नहीं मिलती। कथा-साहित्य में घरेलू कामगार के शोषण के इस पक्ष को बखूबी उभारा गया है। परंपरा में 'अमरकांत' ने बालक 'बहादुर' और मृदुला गर्ग ने 'किस्सा आज का' में बालिका रामकली से मालकिन

परिवार के लोगों द्वारा लिए जाने वाले अतिरिक्त श्रम को दिखा श्रम के शोषण को विषय बनाया। वहीं अपनी प्रगति में 21वीं सदी में कथा साहित्य में लेखक-लेखिकाओं ने इस पर कलम चला घरेलू कामगारों के श्रम के शोषण के पक्ष का प्रतिरोध रचा है। शोभा सिंह की कहानी 'नाम में बहुत कुछ रखा है' की नौकरानी रानी शिकायत करती नजर आती है कि किस प्रकार अवकाश से लौटने पर मालकिन द्वारा अवकाश काल का पूरा काम जमा करके रखा हुआ करवाया जाता है, ऊपर से डांट-डपट अलग और पैसे काटने की धमकी दी जाती है। जरूरत के समय ली गई छुट्टी को भी मालकिन का वर्ग शक की निगाह से देखता है और बदले की भावना से डबल, ट्रिपल काम भी लेता है। इसका उद्देश्य सफाई कराना या काम पूरा कराना नहीं, बल्कि श्रम का शोषण है। शानो, पिता की मृत्यु पर ली गई छुट्टी के बाद जब काम पर लौटती है, तब मालकिन का आचरण इसे स्पष्ट करता है — "उसने पिछले चार नागों की कसर निकलवाने के लिए दो बार झाड़ू दिलवाया। दो बार पोंचा लगवाया, दो बार डस्टिंग करवाई। बर्तन भी दो बार मलवाएँ। बर्तनों का ढेर इतना बड़ा था कि मुझे लगा कि पिछले चार दिनों से इकट्ठे हुए पड़े थे।" (वैद52) ये प्रसंग ऐसे कामगारों के श्रम के शोषण के पक्ष को वर्णित कर इनके पक्ष में और मालकिन की मानसिकता के विपक्ष में प्रतिरोधी स्वर को मजबूती दे रहा है।

3.7.3. मानसिक शोषण –

घरेलू महिला कामगार के दैहिक और श्रम के शोषण के साथ एक अन्य मामला मानसिक शोषण व आतंक से भी जुड़ा हुआ है। घरेलू कामगार जिस परिवार में काम करती हैं, वहां के पुरुष सदस्य द्वारा दैहिक शोषण के विचार से आतंक में जीती हैं — " मेरा ख्याल था कि वह कोई बुरी हरकत करेगा, लेकिन उसने मुझे छुआ तक नहीं।" (वैद 17) यह ख्याल अपने आप में आतंक है। इतना ही नहीं मालकिनों द्वारा समय-समय पर तरह-तरह के दिए गए मानसिक आघात से भी पीड़ित होती है। जैसे घर में चोरी हो जाए, तो सबसे पहले नौकरानी को शक के कटघरे में रखा जाता है, क्योंकि वह गरीब है इसलिए मान लिया जाता है कि चोर भी है। शानो लिखती है — "सब मालिकनो की अलमारियों में ताले लगे रहते हैं। चीनी और अचार तक अलमारियों में रखती हैं। सब नौकर-नौकरानी को चोर समझते हैं।" (वैद 20) इसी मध्यवर्गीय मानसिकता का परिणाम है कि चोरी होते ही या घर में कोई भी अनहोनी घटते सबसे पहले नौकरानी पर शक किया जाता है और उसे पकड़ कर ले जाया जाता है या उनके साथ तरह-तरह का शोषण होता है।

एक नौकरानी हर समय इस आतंक में जीती है कि मालिक परिवार कभी भी, बिना किसी पूर्व सूचना के उसे काम से निकाल सकता है। काम पर देर से पहुंचने, ना पहुंचने या अन्य किसी भी कारण से नौकरानी को मालकिन की बकवास सुननी पड़ती है। शानो अपनी डायरी में लिखती है — "सब मालकिने बकवास करती हैं। कोई कम, कोई ज्यादा।" (वैद 65) नौकरानी द्वारा जरूरत पड़ ली गई छुट्टी, उसकी अपनी समस्या को भी

मालकिनों द्वारा बहानेबाजी के पर्याय के रूप में देखा जाता है। उनके द्वारा काम छोड़ने की इच्छा को अकड़ और अगर उनके द्वारा दिए गए बासी उतरन लेने से मना कर दे, साफ-सुथरी सज-धज कर रहने लगे तो काम मिलना भी मुश्किल हो जाता है। मालकिन वर्ग का चाहना है 'कामवाली है इसलिए कामवाली की तरह रहे।' और कामवाली की तरह रहने का मतलब है हमेशा गुलामों जैसा मजबूरी वाले आचरण की चाह। जबकि किसी भी पेशे से जुड़ा व्यक्ति उस पेशे से अपने जीवन स्तर को ऊपर उठाना चाहता है, लेकिन कामवाली ऐसा सोचे और अपने आचरण में दर्शाए, तो उसका काम ही छूट जाता है। ऐसे में ना चाहते हुए भी कामवाली का आचरण अपनाना, नौकरानियों के लिए मानसिक तनाव का कारण बनता है। जिन घरों में यह काम कर करती है, खाना बनाती है, बर्तन धोती है, उन्हीं प्लेटों में खा नहीं सकती। गुसलखाने धोती है,पर उसका उपयोग नहीं कर सकती। मध्यवर्ग का यह आचरण मानसिक रूप से प्रताड़ित करने वाला ही है, जिसे साहित्य में विषय बना कथाकारों ने ऐसे आचरण के प्रति प्रतिरोध के स्वर को मजबूत किया है।

3.8. घरेलू महिला कामगार के प्रति पुलिस-प्रशासन का नजरिया –

घरेलू महिला कामगार के प्रति पुलिस, प्रशासन के शोषणमूलक नजरिए को उभारकर इनके हित में कानूनी ढांचे की कमी का कथा साहित्य में प्रतिरोध दिखता है। कामगार गरीब तबके की मजदूर है और इनके हित में भारत में कानून का अभाव है। ऐसे में घरेलू कामगारों, उसके परिवार के प्रति पुलिस, प्रशासन का नज़रिया न्यायपरक होने की जगह शोषणमूलक ही अधिक है। घरेलू महिला कामगार निजी घरों में काम करती है, ऐसे में इनके साथ होने वाले दैहिक, मानसिक, श्रम के शोषण के प्रति चश्मदीद गवाह का अभाव रहता है। दूसरी ओर, आर्थिक रूप से कमजोर होने के कारण व पारिवारिक सहयोग के अभाव में अपने साथ होने वाले शोषण के खिलाफ मुखर नहीं हो पाती है। घर-परिवार को सुचारू रूप से चलाने वाली मददकारी हाथ के प्रति पुलिस, प्रशासन का नजरिया भी पूर्वाग्रह से दूषित है। कामवाली जिन घरों में काम करती है, उन घरों में कोई भी अवांछित घटना घटती है, तो सबसे पहले कामवाली को पकड़कर ले जाया जाता है — "जब भी कोई वारदात होती है तो सबसे पहले नौकरानी या नौकर को ही क्यों पकड़ लिया जाता है।" (वैद 216) शानो का यह प्रश्न इस कार्य से जुड़े कामगारों के प्रति पुलिस-प्रशासन के रूढ़ नजरिए को दिखलाता है। कामवाली होने मात्र से चोर मान लिया जाता है। पुलिस को असली कातिल नहीं मिलता, तो खानापूरी के लिए नौकर-नौकरानी को ले जाते हैं — "पुलिस वालों को अक्सर असली चोर या कातिल तो मिलता नहीं, नौकरानियो को खानापूरी के लिए पकड़ लेते हैं।" (वैद 107) इतना ही नहीं नौकरानी को ले जाकर बिना किसी सबूत के ना केवल अनिश्चितकाल तक रखा जाता है, बल्कि मारा-पीटा व दैहिक शोषण तक किया जाता है। इस संदर्भ में ललिता कहती है — "बगैर किसी सबूत के नौकरानियों की धर-पकड़ शुरू कर देते हैं पुलिस वाले।...यह हरामी सारी

चोरियाँ-चकारियाँ खुद करवाते हैं और फंसा देते हैं नौकरानियों को।" (वैद105) नौकरानी को पकड़कर एक ओर उसका शारीरिक शोषण करते हैं, वहीं दूसरी और उसे छुड़वाने के लिए उसके घरवालों से अच्छी रकम भी वसूल करते हैं। इस प्रकार दैहिक और आर्थिक दोनों प्रकार के शोषण का मामला कानून की तरफ से इनके विरोध में जुड़ता है, जिसका खुलासा समाज में भले ना हो रहा हो, परंतु इसे कथा साहित्य जरुर व्यक्त कर रहा है और प्रशासन के रूढ़ नजरिए के प्रति प्रतिरोधी स्वर मजबूत हो रहा है।

3.9. घरेलू महिला कामगारों का अस्मिता-बोध व प्रतिरोध –

प्रतिरोध के मूल में अस्मिता अनिवार्य तत्त्व है। अस्मिता का मूल तत्व हम क्या है और दूसरों की नजर में हमें कैसे स्वीकार किया जा रहा है। आज की घरेलू महिला कामगार भले ही आर्थिक रूप से मजबूत ना हो पाई हो, पर अपनी अस्मिता के बोध से परिपूर्ण है। कथा साहित्य में उनका प्रतिरोध कानूनी अभाव और आर्थिक विवशता में मौन ही अधिक है, परंतु मुखर प्रतिरोध करती नायिकाएं भी नजर आ रही है। कविता वर्मा की कहानी 'निश्चय' की नौकरानी मंगला अपनी अस्मिता की रक्षा की दिशा में प्रतिरोध करती हैं। कथा के प्रारंभ में अपने शराबी पति गणेश द्वारा मारपीट के आचरण के कारण वह उससे अलग होकर स्वयं कमा कर रहना तय करती हैं। मालकिन के परिवार द्वारा यह सांत्त्वना मिलने पर कि वह उसकी सहायता करेंगे, वह उनके पीछे आँख मूँद कर नहीं चली आती, बल्कि विचारती है — "एक अनजान घर में यूं ही रहने के लिए चले जाना भी क्या सुरक्षित होगा? क्या रेनू दीदी हमेशा ऐसे ही प्रेम से रखेगी।" (वर्मा 36) पति द्वारा माफी मांगने पर और परिवार द्वारा समझाए जाने पर भी अपने आत्मसम्मान को किनारे रख वापस नहीं जाती। जब कई सालों बाद उसे पता चलता है कि मालकिन का परिवार उसे अपने पति से जानबूझकर दूर कर अपने साथ रख रहा था, ताकि उनकी नौकरानी की रोज-रोज की किल्लत समाप्त हो जाए। ऐसे में एक पल के लिए भी समय गवाए बिना, अपने आत्मसम्मान को समेट वह वहाँ से चली जाती हैं — "मंगला उठ खड़ी हुई उसके चेहरे पर निश्चय था कि अब वह अपने फैसले खुद करेगी, अब वह किसी से कुछ न हीं कहेगी, न ही पूछेंगी। उसने अपना सामान संभाला, कपड़े रखे, दूसरे दिन सुबह वह उठी, पेटी उठाई, फिर देहरी पर पहुंची, लेकिन एक पल को भी हिचके बिना उसे पार कर लिया।"(वर्मा 43)

महिला कामगार ही नहीं, बल्कि बालक (नौकर) में भी अस्मिता-बोध है। इसे विषय बनाकर लेखिकाओं ने लिंग से ऊपर उठ पूरे वर्ग के हित में प्रतिरोध दर्ज किया है। यहाँ स्त्री-लेखन में घरेलू कामगार के हित में प्रतिरोध निर्मित किया गया है। 'लहूलुहान कौन?' में भी जब बाल नौकर पिंटू राम को यह एहसास हो जाता है कि मालकिन उसे पढ़ाना ही नहीं चाहती, तो एक पल भी उनके घर वहां नहीं रुकता है। मालकिन द्वारा समझौते का प्रयास करने पर भी वह तुरंत उस घर से निकल जाता है और अपना प्रतिरोध जता देता है। 'जीवट' की नायिका फुलवा पारिवारिक कलह से तंग आ पति को छोड़ने का साहस रखती है। सिर्फ इतना ही नहीं,

बल्कि अपने बच्चों को पाने के लिए जिस आदमी को शहर में अपने खर्चे पर पालती है, जब वह उसके साथ पति जैसा ही बुरा आचरण करता है, उसकी अस्मिता पर चोट पहुंचाता है, तो शेरनी बन उसे दहाड़ कर निकाल देती है। वह सोचती है — "अगर मैं उसे छह महीने खिला सकती हूं, तो अपने बच्चों को क्यों नहीं? मुझे किसी के सहारे की क्या जरूरत है, औरत हूं, तो क्या? अपने लिए पति को छोड़कर शहर आई, अब अपने बच्चों को भी लेकर आऊंगी। क्यों मैं किसी की मदद की आस करूं?" (वर्मा 27) यहाँ प्रतिरोध का स्वरूप बदला लेने तक सीमित नहीं है, इसमें अस्मिता का बोध और अपनी सीमा की पहचान है।

क्षमा शर्मा की कहानी 'रोशनी के अच्छे दिन' में कामवाली रोशनी भी अस्मिता-बोध से परिपूर्ण है। अपनी मालकिन प्रतिमा को वह बतलाती है कि शराबी पति से बहन की शादी करवा, उसने छुटकारा पाकर शहर में मजे से खूब कमा कर खूब खा रही है। अब खुद की ही नहीं, बल्कि बच्चों की भी जरूरत पूरा करने में सक्षम है — "यहीं पुल के नीचे झूग्गी ले ली है। दिन भर तो कोठियों में रहती हूँ। वहीं खाती-पीती हूँ। सोने वहां चली जाती हूँ।...झुग्गी में टीवी भी लगवा लिया है। ना कोई टोकने वाला, ना दिन की चिक-चिक। जो मर्जी आए खाती हूं, पहनती हूं और एक दिन तो सहेलियों के साथ जाकर फिल्म भी देख आई।" (शर्मा 129) मतलब यह है कि अपनी क्षमता के अनुसार अपने जीवन में सकारात्मक सुधार लाने के लिए ये कामवालियां तैयार है। अपने होने का बोध है और इसी कारण उस होने को सार्थक बनाने का संघर्ष भी। मालकिन का वर्ग सोचता है कि नौकरानी है, तो जितना चाहे उसपर बक सकती है, बातें सुना सकती है। दबी, कुचली ही रहेगी, लेकिन आज नौकरानी के अंदर यह बोध है कि अच्छी नौकरानी मिलती नहीं, इसलिए मालकिन के हर हुकुम को अंधों की तरह मानने को वह मजबूर नहीं है। निकाल देने की धमकी मालकिन दे सकती है, पर निकालेगी नहीं, क्योंकि अच्छी नौकरानी आजकल मिलती नहीं है। अपने काम और वेतन को लेकर भी एक बोध इनमें काम कर रहा है। मालिक वर्ग की नजर में ऐसे काम आत्मनिर्भरता की परिभाषा में नहीं है, पर नौकरानी इसे आत्मनिर्भरता की दिशा में मानती हैं। 'रोशनी के अच्छे दिन' में मालकिन अपनी बेटी के विवाह के संबंध में पूछने पर नौकरानी रोशनी से कहती है कि बेटी की अभी शादी नहीं करनी है, पहले अपने पैरों पर तो खड़ी हो जाए। उस समय कामवाली रोशनी कहती हैं — "मैं तो एक अक्षर नहीं पढ़ी, फिर भी अपने पांव पर खड़ी हूं।" (शर्मा 129) नौकरानी का यह कहना और समझना अस्मिता-बोध ही है। 'बराबरी का खेल' में मालकिन के शब्दों में — "छह महीने में तीसरी बार था जब कामवाली बिना बताए काम छोड़ कर चली गई। जब से पीछे नई बनी बीस मंजिला अल्ट्रा लग्जरी अपार्टमेंट्स में लोग रहने आने शुरू हुए थे, हमारी सोसाइटी की पुरानी लायल बाइयों के भाव आसमान छूने लगे थे।।"(झा) कामवाली अपने हक की बात रखती है — "पिच्छे की कोठी में बस झाड़ू-पोछा का तीन हजार रेट है दीदी। डस्टिंग का भी इत्ता ही।"(झा) अपने काम व वेतनमान को लेकर यह मोल-तोल इनकी अपने काम की अनिवार्यता के प्रति सजगता और अस्मिता का ही हिस्सा है।

कहानी 'लहूलुहान कौन?' में बालक पिंटू राम के अंदर अस्मिता-बोध से उत्पन्न प्रतिरोध तब नजर आता है, जब वह अपनी स्थिति में सुधार के लिए हर कीमत पर पढ़ना चाहता है। जब उसे पता चलता है कि वास्तविकता में उसकी मालकिन उसे शिक्षित करना ही नहीं चाहती। जैसे ही उसे यह एहसास होता है, उसी क्षण वह अपने पैसे लेता है और चलते बनता है। मालकिन उसे रोकने के लिए तरह-तरह के प्रपंच करती है, पहले डराती है और कहती है — "जब बेत पड़ेगी, तो पता चलेगा। यहीं रुक जा, साथ-साथ पढ़ाई हो जाएगी।"(प्रतिभा) फिर गिरगिरती भी है — "अरे नही, जब शाम को बच्चों को पढ़ाऊंगी, तो तुझे भी पढ़ा दूंगी।" (प्रतिभा) लेकिन पिंटू राम एक बार मैडम की मानसिकता को जान वहाँ वापस नहीं रुकता। कहता है– "बेंत खा लूंगा। वैसे भी छुट्टी अब अगले साल पड़ेगी।" (प्रतिभा) अपनी अस्मिता की दिशा में बालक पिंटू राम का यहाँ प्रतिरोध है। घरेलू महिला कामगार की अस्मिता 'ये हौसला' कहानी में भी नजर आती है। जहाँ कामवाली गार्गी परिवार के खिलाफ जाकर अपनी नाबालिक बेटी की शादी रुकवाती है — "मैंने निर्णय ले लिया कि जो गलती मेरे मां-बाप ने किया, मैं बिल्कुल नहीं करूंगी...हां सारे रिश्तेदार मेरे खिलाफ बहुत कुछ बोल रहे थे, कोई बात नहीं। कोई मुझे सनकी कह रहा था, तो कोई बच्ची का जीवन बर्बाद करने वाली मां, लेकिन मैं ही जानती हूं कि बच्ची का जीवन मैंने बर्बाद नहीं किया आबाद किया है।" (प्रियंवरा 57)

'उमा महेश' में उमा के अंदर अस्मिता-बोध तब जागता है, जब उसे पता चलता है कि पति दूसरी स्त्री के चक्कर में है। वह पति की चिंता छोड़ अपने बारे में सोचती है और कहती है — "दीदी जी, लगातार आठ दिनों तक मैं उसका खाना लेकर जाती रही, कभी पूरी, कभी भात, कभी पराठा। नवें दिन गई तो उसने मुझे गाली दी, मेरे बाल नोचे, कहा कि मादर...तुम खुद घर में मच्छी-मांस खाती हो, मेरे लिए रुखा-सूखा, इससे तो अच्छा दूसरी औरत है।...वहाँ खड़ा सिपाहियों ने हमें छुड़ाया और बताया कि एक औरत मछली, दारू लेकर आई थी। दीदी जी, आते वक्त सोचने लगी किसका सोग करूं, क्यों ना सुख से रहूं? उमंग में भर हंसने लगी उमा।" (खान 35) 'रोशनी के अच्छे दिन' में नौकरानी रोशनी की अस्मिता वहां भी नजर नजर आती है, जब वह केवल अपने बल पर परिवार को चुनौती देते हुए बेटी की शादी तय कर देती है और कहती है — "...तब मेरे पीछे भी सब पड़ गए। कहने लगे कि अगर तूने इस लड़के से शादी की तो हममें से कोई भी नहीं आएगा। मैंने भी कह दिया, तुम्हें बुला कौन रहा है, मत आना। जितने कम लोग आएंगे, उतना खर्चा बचेगा। वैसे भी आकर सब बातों में कमियां ही कमियां तो निकालेंगे। मैंने यह भी कहा कि मेरी लड़की के लिए शादी के रुपए जुटा दो और पक्की नौकरी वाला लड़का ढूंढ दो, तो इस लड़के से नहीं करूंगी। शादी में तो कुछ नहीं करोगे और आ गए कहने वाले के यहां शादी ना करूं। बस मैंने किसी की नहीं सुनी। मेरी लड़की, मैं जानू, जिससे मर्जी उसकी शादी करूं।" (शर्मा 127)

अतः ये सारे प्रसंग अपने आप में इस तथ्य की पुष्टि कर रहे हैं कि आज घरेलू कामगार अपनी अस्मिता के बोध से परिपूर्ण है और उसकी रक्षा की दिशा में अपना परिवार हो या मालकिन का परिवार उनके द्वारा किए जा रहे अनुचित के प्रतिरोधी मे भी है।

3.10. घरेलू महिला कामगार : परिवार व प्रतिरोध –

घरेलू महिला कामगार का संबंध दो तरह के परिवार से हैं, एक मालिक का परिवार अर्थात् उसका कर्म स्थल, दूसरा उसके स्वयं का परिवार। इन दोनों ही परिवार में ऐसे कामगार कई तरह के शोषणपरक संबंध को जीती हैं, जिसे कथा साहित्य में विषय बना घरेलू महिला कामगारों के साथ घटित प्रतिकूल परिस्थिति का प्रतिरोध किया गया है।

3.10.1 कामगार का अपना परिवार व प्रतिरोध –

घरेलू महिला कामगार गरीब तबके से हैं, ऐसे परिवार में अधिकांश में पुरुष सदस्य दिहाड़ी मजदूर, रिक्शा चालक, ठेले वाले होते हैं। इनकी अपनी कमाई द्वारा परिवार का संचालन संभव नहीं होता। आर्थिक दुर्बलता के कारण इनके परिवार की महिलाओं को ऐसे काम में लगना पड़ता है, लेकिन परिवार के लिए कमा कर लाने वाली इन महिलाओं के परिवार के पुरुषों का दृष्टिकोण इन महिलाओं के प्रति, इनके काम के प्रति उपेक्षा से भरा रहता है। ये अकेली अपने घर का व मालिक के घर का काम के बोझ का वहन करती हैं। ऐसे में परिवार से सहयोग की जगह उपेक्षा और लांछन मिलता है। कृष्ण बलदेव वैद की नायिका शानो घरेलू महिला कामगार के परिवार का इनके प्रति जो दृष्टिकोण बनता है, उसे स्पष्ट करती हुई लिखती है — "सभी नौकरानियों के घरवाले उन पर शक करते हैं, समझते हैं, उनकी बीवियां साब के साथ रंगरेलियां मनाती है।" (वैद 65) अर्थात् घरेलू महिला कामगार के प्रति यह रूढ़ धारणा है कि वो भोग की वस्तु है, मुफ्त का माल है। उनके प्रति यह नजरिया केवल मालिक परिवार का ही नहीं है, बल्कि उसका स्वयं का परिवार भी उनके प्रति ऐसी ही सोच रखता है।

अपने स्वयं के परिवार में भी घरेलू काम से जुड़ी महिलाएं सुरक्षित नहीं रहती। परिवार के पुरुष सदस्य द्वारा यौन उत्पीड़न की शिकार होती हैं। 'नाम में बहुत कुछ रखा है' कहानी की घरेलू कामगार रानी बतलाती है कि कैसे उसके स्वयं के श्वसुर उसके साथ दैहिक संबंध बनाना चाहते थें — "उस दिन मैं बेफिक्री से सब काम निपटा पर्दा खींचकर नहाने बैठी थी कि मुआ आ गया। पीछे से पकड़ लिया।...हाथ का लोटा उसके माथे पर दे मारा और भागी कमरे की ओर।"(सिंह) 'माई री मैं टोना करिहों' की सिल्बी संकेत करती है कि उसकी 10 वर्षीय बेटी एलीना का उसके ही परिवार में शोषण हुआ, जिसके बाद उसे दौरे पड़ने लगे। 'डाउनलोड होते हैं सपने' में स्वयं पिता द्वारा बेटी की अस्मत पर हाथ डाली जाती है। पिता कहता है — "साली, नखरे करती है,

एकदम अपनी मां पर गई है, शरीर है दर्द तो होगा ही, पहली बार है ना, बाद में तो खुद ही मजे आएंगे।" (गीताश्री 55) जब इसकी जानकारी बेटी सुमित्रा मां को देती है, तो उनकी ठंडी प्रतिक्रिया इस वर्ग की स्त्री के पारिवारिक शोषण के पक्ष पर मुहर लगाती हैं — "हैरान रह गई सुमित्रा कि मां को अचरज ना हुआ। जैसे उन्हें उम्मीद रही हो पिता से...मां को इतना ठंडा पाकर उसकी हिम्मत बढ़ गई।" (गीताश्री 55) अपने परिवार में दैहिक शोषण का एक पक्ष इनके साथ बनता है। साथ ही मालिक के परिवार द्वारा भी कामवाली के दैहिक शोषण के प्रति इनका परिवार सचेत नहीं रहता। साथ देना तो दूर की बात, बल्कि उन्हें मतलब केवल इन महिलाओं के पैसे से होती है और अपनी दारू से। अधिकांश में पैसे के लिए ऐसे परिवार के सदस्य अपनी घरवाली का सौदा करने से भी पीछे नहीं हटते। इस संदर्भ में गीताश्री लिखती हैं — "झुग्गियों के अय्याश मरद बीबियों को मारपीट कर भी सुधा आंटी के पास लाते थे।...साली घर पर पड़ी रोटी तोड़ती है, कुछ करा दो, जरा पाँच-छह मरद छू लेंगे, तो अपवित्र नहीं हो जाएगी। वैसे ही कौन-सी सीता मैया थी, शादी से पहले भी तो सब कुछ करे बैठी है।... अपने यार के साथ...।" (गीताश्री 56) इनके खुद के परिवार का इनके प्रति रूढ़ धारणा है कि ये चारित्रिक दृष्टि से गिरी हुई ही होती है। यहां रचनाकारों ने इस वर्ग की महिलाओं के प्रति प्रचलित रूढ़ धारणा के प्रति वैचारिक प्रतिरोध दर्ज किया है।

घरेलू महिला कामगार अपने परिवार में न केवल हर तरह से दैहिक शोषण की शिकार है, बल्कि परिवार के सदस्य द्वारा गाली-गलौज मारपीट की भी शिकार है। इसके साथ ही परिवार की गाड़ी चलाने के लिए अकेली जिम्मेदार भी। यहाँ तक कि इनकी कमाई भी इनके परिवार के पुरुष सदस्य द्वारा मारपीट कर छीन ली जाती है। गाली-गलौज का माहौल बना रहता है। कविता वर्मा की कहानी 'निश्चय', गीताश्री की 'डाउनलोड होते हैं सपने' क्षमा शर्मा की कहानी 'रोशनी के अच्छे दिन' प्रियंवरा की कहानी 'ये हौसला', उषा किरण खान की कहानी 'उमा-महेश', सूर्यवाला की कहानी 'सुनंदा छोकरी की डायरी', कृष्ण बलदेव वैद का उपन्यास 'एक नौकरानी की डायरी' में इस वर्ग के इस पक्ष को सामने रखा गया है और उनके हित में प्रतिरोध का स्वर मजबूत किया गया है। प्रियवंदा की कहानी 'ये हौसला' की कामवाली गार्गी कहती है — "दीदी उसका आना तो मेरे लिए किसी नरक से कम नहीं।" (प्रियंवरा 56) इसके पीछे का कारण हर तरह का शोषण है। आगे गीताश्री 'डाउनलोड होते हैं सपने' में लिखती हैं — "यह कामवालियों की बस्ती थी जहां पर रात होते ही कराहे और आहे पूरे माहौल पर छा जाती थी।" (गीताश्री 57) ऐसी महिलाओं के पारिवारिक माहौल से पर्दा उठाता है। सुमित्रा मारपीट के आलम के बारे में लिखती है — "उसका बाप देसी के नशे में आकर मां के चेहरे पर तो नोंचता ही था, पर उसने नोच-नोच कर उसके सिर के बालों को भी, उसकी मां को गंजा कर दिया था।"(गीताश्री 57) परिवार के पुरुष सदस्य द्वारा मार-पिट सहते रहना इनकी मजबूरी बन जाती है।

आर्थिक स्थिति से कमजोर होने के कारण परिवार की गाड़ी चलाने के लिए जरूरी है कि ऐसे परिवार में दोनों सदस्य मिलकर कमाएं और घर के खर्चों में मिलकर हाथ बटाएं, लेकिन सच्चाई तो यह है कि ऐसे परिवार में कमाने वाले चार हाथ भले हो जाते है, पर घर को चलाने की व बच्चों को पालने की पूरी जिम्मेदारी का निर्वाह सिर्फ घर की महिलाओं के ऊपर बोझ के रूप में रहती है। घर का पुरुष सदस्य जो कमाते है, उसे अपनी दारु में उड़ा देता है। शानो लिखती है — "मां न होती तो हम मर गए होते।" (वैद 9) 'रोशनी के अच्छे दिन' में भी यह स्थिति नजर आती है कि किस प्रकार कामवाली रोशनी का पति अपनी पूरी कमाई दारू में उड़ा देता था — "जितना कमाता है दारू में खर्च करता है।" (शर्मा 127) 'उमा-महेश' की उमा बताती है कि पति से घर चलाने के लिए उसकी कमाई के पैसों को मांगने पर दैहिक अत्याचार और मारपीट झेलना पड़ता है — "मेरे मांगने पर वह मार-पीट करता है, देता कुछ नहीं है।" (खान 34) इतना नहीं घर की औरतों द्वारा कमाई गई रकम को भी अपनी अय्याशी के लिए छीनने पर आमादा रहता है। गीताश्री की कहानी 'डाउनलोड होते है सपने' में नौकरानी सुमित्रा कहती है — "फ्लैटों में झाड़ू-पोछा करके जो पैसा आता था उसका बाप वह सब छीन लेता था।" (गीताश्री 56) ऐसे परिवार की महिला ना केवल गाली- गलौज, मारपीट, आर्थिक, दैहिक शोषण की शिकार है, बल्कि इनके पति द्वारा इन्हें छोड़कर कभी भी दूसरा विवाह कर लेने के लिए औपचारिक प्रक्रिया की जरूरत भी नहीं होती, जो कहीं ना कहीं घरेलू महिला कामगार की अपने परिवार में दुर्गति की ओर इशारा करता है। ऐसे परिवार में अपनी जरूरत के हिसाब से पुरुष पुनर्विवाह के लिए स्वच्छंद है। शानो लिखती है — "हम लोगों में बाकायदा तलाक होता कहां है, मर्द लोग जब उसका मन किसी और पर आ जाए तो पहली औरत को 'छोड़' देते हैं।" (वैद 140) 'ये हौसला' में गार्गी का पति 'तुम फिर मिलना कारी' में कारी का पति दूसरा विवाह कर ऐसे संबंध बनाता है। कामवाली के परिवार की ऐसी सच्चाई का ही परिणाम है कि शानो विवाह के प्रतिरोध में आती है और कहती है — "मैं शादी नहीं करूंगी, बच्चे नहीं जनूगी।" (वैद 14), हालांकि कहीं-कहीं ऐसे परिवार सपोर्टिव भी होते हैं। साहित्यकारो ने इसे भी विषय बनाया है। 'बराबरी का खेल' में कामवाली बताती है कि किस प्रकार पति द्वारा घर के कामों में सहायता की जाती है। वह कहती हैं — "हां तो...कमाएंगे दुनू गोटे भाभी, तो घर इक्के गो कइसे देख लेगा अकेले? उसको तो रिक्शा चलाना है उ तो पाँच मिनट लेटो निकल जाएगा ना भाभी... हमारा तो डूटी का टाइम है। फेन रात को यहां से जाकर हम तो घर में लड़का लोगों का खाना बनाती हूं, घर आते जाते दस बज जाता है। इसी से भोर में हमारा आंखें नहीं खुलता है भाभी।" (झा) सुबह का काम उसके पति द्वारा किया जाता है।

अत: घरेलू महिला कामगार अपने परिवार में जिन स्थितियों को झेलती है, उसको विषय बना एक ओर ऐसी स्थिति का प्रातरोध दर्ज किया है, तो 'बराबरी का खेल' जैसी कहानी लिख संबंध कैसा होना चाहिए, इसे भी दिशा दी है।

3.10.2. मालिक वर्ग का परिवार व प्रतिरोध —

घरेलू महिला कामगार जिन परिवारों में काम करती हैं, वहाँ उनका संबंध कई स्तर पर शोषणमूलक रहता है, जिसे उभारकर कथा साहित्य में उसके हित में वैचारिक प्रतिरोध का स्वर रचा गया है। एक ओर अपने परिवार में यह कामगार हर तरह के शोषण को झेंलती है, वहीं दूसरी और मालिक परिवार में भी इनका समीकरण मालिक व मालकिन के साथ समझौतापरक व शोषणमूलक अधिक दिखता है।

3.10.2.1. मालिक बनाम घरेलू महिला कामगार —

घरेलू महिला कामगार जिन परिवारों में काम करती हैं, वहां काम के संबंध में मालिक सदस्य से भले ही उसका सीधा सामना नहीं होता, परंतु चूंकि इनका कर्मस्थल घर-परिवार है, तो उनकी उपस्थिति से प्रभावित जरूर होती है। घरेलू महिला कामगार जिन परिवारों में काम करती है, वहां के पुरुष सदस्य द्वारा दैहिक शोषण की शिकार होती है, हालांकि उसकी दिशा वर्तमान साहित्य में प्रतिरोधमूलक की जगह समझौतामूलक ही नजर आ रही है। सिंक में बर्तन धोते समय मालिक सदस्य द्वारा उससे सटकर दैहिक सुख को लेते देख कामवाली शानो सोचती है — "साब को अगर इससे सुख मिलता है, तो मेरा क्या जाता है।" (वैद 14) अब तक बेहयाई के पीछे सीधा-सीधा नकार था, अब समझौते की दिशा में कामवाली आगे बढ़ रही है। शानो आगे कहती है — "नौकरानियों को मालकिनों की चिख-चिख मालिकों की बेहयाई से भी ज्यादा बुरी लगती है।" (वैद 66) इस बदलते समीकरण को मूल्यप्रेरित कहा जाए या मूल्यविहीन, इसे प्रतिरोध की दिशा में तय करना जरूरी है। एक सत्य यह भी है कि परिवार के पुरुष सदस्य कामवाली का दैहिक शोषण करते है पर घृणास्पद नहीं मानते, मनुष्यता का आचरण दिखाते है और मालकिन के काम के अतिरिक्त बोझ से भी बचाते है। यही कारण है कि अपने साथ होने वाले शोषण को महिला सदस्य बर्दाश्त कर लेती है, बल्कि इसके फायदे भी गिनती हैं। गीताश्री की कहानी 'डाउनलोड होते है सपने' में कामवाली की स्वीकारोक्ति है — "और यह कोठी वाले...फ्लैट्स वाले... घरों में सबसे ज्यादा मेड की तरफदारी यही लोग तो करते हैं और अपनी बीवियों से भिड़ जाते हैं कई बार।" (गीताश्री 58) अपने प्रति मनुष्यता का आचरण स्वाभाविक चाहत होती है हर किसी की, ठीक वैसे ही इन कामगारों की भी है, लेकिन मालकिन द्वारा इसकी पूर्ति नहीं होती, ना ही इसके स्वयं के परिवार द्वारा। ऐसे में मालिक सदस्य द्वारा सुविधा व सम्मान को अर्जित कर एक समझौतपक संबंध की ओर घरेलू कामगार बढ़ती है। मालकिन व अपने स्वयं के परिवार के तिरस्कृत आचरण के कारण जीवन की स्वाभाविक चाहत में जो बाधा सृष्टि हुई, जब उसकी पूर्ति मालिक सदस्य द्वारा होती दिखती है, तब प्रतिरोध की दिशा में ऐसे स्वर की सृष्टि हो रही है। आशय यह है कि स्वाभाविक चाहत बाधित हुई, तो उस चाहत को जी पाने की दिशा में वर्तमान परिस्थिति का प्रतिरोध है।

3.10.2.2 मालकिन बनाम घरेलू महिला कामगार –

घरेलू कामगारों का सीधा संबंध परिवार की मालकिन से रहता है। ऐसे कामगारों के प्रति मालकिन की रूढ़ सोच रहती है कि पैसा देती है, तो बक भी सकती है। इसी सोच का प्रतिरोध साहित्य में 21वीं सदी में कहीं मौन रूप से आचरणगत और कहीं मुखर रूप से नजर आ रहा है। कामगार के प्रति महिला सदस्य की सोच को शानो अपनी डायरी में दर्ज करती है — "हम नौकरानियों के बारे में मालकिनो की सबसे बड़ी शिकायत यही कि हम झूठ बोलती हैं और चोरी करती हैं। जब भी कोई नौकरानी कहती है कि उसे बुखार हो गया था या उसका बच्चा बीमार पड़ गया था या उसका कोई मर गया था तो मालकिन मान लेती है कि नौकरानी झूठ बोल रही है।" (वैद 86) कामगार की भी अपनी जरूरत हो सकती है, लेकिन इनके प्रति मालकिन वर्ग की रूढ़ धारणा है कि कामवाली है, तो झूठ बोलेगी, चोरी करेगी। इसी रूढ़ धारणा का परिणाम है कि मालकिन वर्ग अपने घर के आचार की शीशी तक को अलमारी में बंद करके रखती है, जिसके प्रति कामगार आज सचेत है। भले मालकिन के ऐसे आचरण के प्रतिरोध में अपनी आर्थिक स्थिति के कारण मुखर नहीं हो पा रही हैं ये कामगार, इसका अर्थ यह बिल्कुल नहीं की वे लापरवाह है। अतिरिक्त काम करवाने के लिए यही मालकिने गिरगिट की तरह रंग भी बदलती है जिसकी पहचान आज कामगार को है। कृष्ण बलदेव वैद ने शानो की डायरी के माध्यम से मालकिन वर्ग की इस चलाकियो का पर्दाफाश कर उनके ऐसे आचरण के विरोध में प्रतिरोध खड़ा किया है — "लेकिन मां भी जानती है और मैं भी कि कोई किसी नौकर-नौकरानी को बेटा-बेटी नहीं बनाता। काम करवाने के लिए बेटा-बेटी कह देने की बात और है।" (वैद 18) मध्यवर्गीय आचरण के प्रति आज का कामगार सचेत है, भले मुखर नहीं हो पा रही हो। उसका सोचना और कथाकारों द्वारा इस सोच को दर्ज करना मध्यवर्गीय सोच का प्रतिरोध है।

3.11. मध्यवर्ग के बीच हाशियाकृत : मध्यवर्ग के प्रति लालायित –

देश का वो वर्ग जो प्रत्यक्ष रूप से देश के राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक संदर्भो को दशा और दिशा के परिप्रेक्ष्य में प्रभावित करता है, मध्यवर्ग कहलाता है। मध्यवर्ग की समस्या भूख मिटानी नहीं, बल्कि भौतिक सुख-सुविधा के साथ सामाजिक प्रतिष्ठा को कायम रखना है। ऐसे में यह वर्ग निर्भर करने लग गया घरेलू कामगारों पर। इस कारण मध्यवर्गीय परिवार में उनकी सुख-सुविधाओं को सहेजने के लिए घरेलू कामगार की जरूरत बढ़ने लगी। घरेलू कामगार मध्यवर्ग की इन सारी सुख-सुविधाओं को सहेजने के वाबजूद आधिकारिक तौर पर उसका भोग नहीं कर सकता है, इसलिए यह मुख्यधारा के बीच हाशियाकृत है। देवेंद्र चौबे लिखते हैं – "यह सवाल उठता है कि जब वे घर, परिवार और समाज की मुख्यधारा के अंदर रह रहे हैं, तब कैसे एवं क्यों हाशिये की जिंदगी जीने को विवश है।"(चौबे 58) वास्तव में मध्यवर्ग के बीच हाशियाकृत वर्ग के रूप में इसकी पहचान

इसलिए की गई है कि यह वर्ग मध्यवर्गीय सुख-सुविधाओं के बीच न केवल जीता है, बल्कि इन सुविधाओं को भोग के योग्य मध्यवर्ग के लिए उपलब्ध भी कराता है। अपने सामने उन्हें भोग करते हुए देखता है, लेकिन अपनी आर्थिक सीमा के कारण उसका स्वयं भोग नहीं कर पाता। मध्यवर्ग के बीच सुविधाओं के साथ रहकर, सुविधाओं के भोग को यह वर्ग आर्थिक रूप से असमर्थ होने के कारण वंचित रहता है और मध्य वर्ग के बीच हाशियाकृत हो जाता है। एक ओर दलित, आदिवासी वर्ग वर्ग सुविधाओं से वंचित जीवन जीने को विवश है। इन सुविधाओं के बारे में यह वर्ग मात्र कल्पना करता है, लेकिन घरेलू कामगार के साथ स्थिति अलग है। यह वर्ग दिन-रात ऐसी सुविधाओं को मालिकों के घर में अपने इर्द-गिर्द पाती है। ऐसे में मध्यवर्गीय सुविधाओं को पाने की कोशिश लगातार इस वर्ग के द्वारा की जाती है, वह लालायित रहती है। जिसे 21वीं सदी के कथा साहित्य में विषय बनाया गया है। गीताश्री की कहानी 'डाउनलोड होते हैं सपने', कृष्ण बलदेव वैद का उपन्यास 'एक नौकरानी की डायरी', प्रतिभा सिंह की कहानी 'लहूलुहान कौन?', जयंती रंगनाथन की कहानी 'मोह, माया,मंडी', सूर्यवाला की कहानी 'सुनंदा छोकरी की डायरी', जाकिया जुबैरी की रचना ''लौट आओ तुम !'' के माध्यम से मध्यवर्गीय जीवन को, उसके सुख-सुविधाओं को जीने के लिए लालायित और इसे भोग पाने के लिए नैतिक-अनैतिक रास्ते को अपनाता इस वर्ग का संघर्ष नजर आता है। यह संघर्ष अपनी वर्तमान परिस्थिति के प्रति इनके प्रतिरोधी स्वर की शिनाख्त करती है। गीताश्री अपनी कहानी 'डाउनलोड होते हैं सपने' में दिखाती हैं कि किस प्रकार मध्यवर्ग के बीच रहने के कारण कामवाली के सपने भी उन्हीं की तरह जी पाने की लालसा 'अपलोड' तो तुरंत हो जाते हैं, लेकिन उन सपनों के 'डाउनलोड' होने में पूरी जिंदगी निकल जाती है। कामवाली सुमित्रा जिन घरों में काम करती है, उन घरों की सुख-सुविधा को देखती है और सोचती है — "आखिर कमी क्या थी उसमें? अच्छी खासी तो है। खोड़ा कॉलोनी में पैदा ना होकर हाईवे के पास वाली फ्लैट्स की आलीशान दुनिया है, वहाँ पैदा हुई होती, तो आज वह भी "कुछ-कुछ होता है" वाली अंजली जैसी होती! उत्ती ही सुंदर उतनी ही कोमल, बड़े लोगों के फ्लैट उसे अपनी तरफ खींचते थे, पर वह केवल झाड़ू-पोछे के लिए वहां नहीं जाना चाहती थी, वह जाना चाहती थी लड़कों की गर्लफ्रेंड बन कर! जहां उसके बालों में नई-नई कलरिंग हो, हाई हील हो, छोटी ड्रेस हो, डांस हो और उस पर फिदा होने वाले कम से कम दो-तीन लड़के तो हो...।" (गीताश्री 54) मतलब यह है कि जिन इलाकों में यह वर्ग काम करता है उनकी जीवन शैली से प्रभावित होता है और ऐसे में अपनी प्रदत जीवन शैली के प्रति प्रतिरोध उत्पन्न होता है। कामवाली का चाहना अवचेतन में अप्राप्य के प्रति प्रतिरोध है। प्रतिभा की कहानी 'लहूलुहान कौन?' में बालक पिंटू राम जिस परिवार में काम करता है, उस परिवार के मालिक जैसा बनना चाहता है ना कि अपने पिता जैसा। साहब का कौन-सा रूप उसे पसंद है मन ही मन विचार करता है, तो पाता है — "साहब ने टीवी ऑन कर लिया और चाय की चुस्कियां के साथ मैच देखने लगे। साहब का यह रूप भी पिंटू राम को बहुत पसंद था। सुबह अखबार पढ़ते साहब और शाम

को इत्मीनान से मैच देखते साहब।" (प्रतिभा) अर्थात् उसे भी एक सुविधा वाली जिंदगी चाहिए, ना की जैसी जिंदगी वह और उसका परिवार जी रहा है वैसी। केवल मध्यवर्गीय परिवार में रहने के कारण ही इस वर्ग का मन उनके जैसा जीवन जीने को लालायित नहीं होता, बल्कि मनोरंजन के साधन भी इस वर्ग को सपने दिखाते हैं। यह वर्ग पर्दे पर जो कुछ देखता-सुनता है, जिन घरों में काम करता है, वहाँ उसे सच होते देखता है और उसे भोगने को लालायित हो उठता है। सूर्यवाला की कहानी 'सुनंदा छोकरी की डायरी' में सुनंदा का पिता बालिका सुनंदा से कहता है — "हां रै फिल्ल्म में दिखता नई? कितना-कितना छोकड़ा-छोकड़ी पेले एकदम गरीब होता पर बाद में खूप मेहनत करके तदबीर लड़के मस्त पइसा कमाता।...अरे ये अपना अमिताभ पेले कैइसा था क्या? जंजीर में, कुली में कितना त्रास मिला उसकू? पर बाद में क्या फस्ट क्लास लाइफ़ बनाया।... नंदी तू पन वैसइच करने का। करेगी न...मैं बोली करेगी...बाबा करेगी…खी खी खी खी।" (सूर्यवाला 82) आशय यह है कि सुविधाओं को देखकर, उसके बारे में सुनकर उन सुविधाओं को भोगने की उनकी भी अपनी फैन्टेसी बनती है, भले ही सामर्थ्य न जुट पा रहा हो। ऐसे में उनका आचरण स्वत: प्रतिरोध की दिशा में बढ़ने लगता है। कामगार का वर्ग अपने सपनों को पूरा करने के लिए, मध्यवर्गीय जीवन जीने के लिए कई तरह के रास्ते अपनाता है, जो कभी नैतिकता की कसौटी पर सही उतरता है तो कभी गलत, पर अपने सपनों की दिशा में सही व प्रतिरोधी ही। 'एक नौकरानी की डायरी' में शानो की सोच के माध्यम से वैचारिक प्रतिरोध को रचा है वैद जी ने। शानो से कहलवाते हैं – "इतनी ऊंच-नीच तो ना हो कि कुछ लोग ऐश करें, कुछ भूखे मरे, कुछ लोग हुक्म चलाएं, कुछ लोग जी-जी करते रहें, कुछ लोग कारों में घूमें, कुछ को जूते भी नसीब ना हो।" (वैद 23) इसी भेदभाव को मिटाने, अपने सपनों को पूरा करने के लिए 'लहूलुहान कौन?' का बालक पिंटू राम मेहनत के रास्ते को अपनाता है और निर्णय लेता है कि साहब जैसा बनने के लिए, अपने सपनों को पूरा करने के लिए वह पढ़ाई करेगा, चाहे मास्टर की छड़ी ही क्यों ना खानी पड़े — "उसे साफ और स्पष्ट दिखाई दे रहा था कि एकमात्र यही रास्ता है जो उसे साहब जैसा बना सकता है। शांत पर रौबदार, सलीकेदार, सुलझा और शालीन आदमी, जिससे बात की जा सके।" (प्रतिभा) जयंती रंगनाथन की कहानी 'मोह माया और मंडी' की पारो शहर में काम करने का रास्ता चुनती है और शहर में काम दिलवाने वाले एजेंट शंकु से कहती है — "शंकु, ऐसा करना इस बार मुझे भी भेज दे शहर।...मुझे भी पैसे कमाने दे। पक्का घर बन जाएगा मेरा भी, आगे के लिए भी कुछ बचा लूंगी।" (रंगनाथन) गीताश्री की नायिका कॉलगर्ल बनने तक को भी तैयार हो जाती है और अपनी नैतिकता तय करती हैं — "कभी-कभी सही मंजिल तक पहुंचने के लिए गलत रास्ते पर चलना पड़ता है, वह चलेगी। वह खुद कहां जा रही है, उसके सपने उधर ले जा रहे हैं सपनों का कसूर है।" (गीताश्री 59) गीताश्री कामवाली सुमित्रा के मनोभाव को लिखती हैं — "अगर वापस जाती है तो उसके हाई हील, कलर बालों वाले सपनों का क्या होगा। वापस जाएगी तो वही फ्लैट वालियों के घरों में झाड़ू-पोछा वाली बनकर रह जाएगी?" (गीताश्री 59) उसे झाड़ू-पोछा

वाली बनकर नहीं रहना है, बल्कि मध्यवर्गीय हाई हील, कलर्ड वाली जिंदगी जीनी है इसलिए अपनी नैतिकता निर्मित करती हैं और अपनी वर्तमान परिस्थिति के प्रति प्रतिरोध दिखाती है।

जयंती रंगनाथन की कहानी 'मोह माया और मंडी' की शंकु जो खुद नौकरानियों के लिए एजेंट के रूप में काम करती है, अपनी बेटी को मैडम के हाथों शहर काम करने भेज देती है। शहर के घरों की तमाम कुरूपता और सच्चाई को जानते हुए बेटी को भेजने में हिचकती नहीं। अपने निर्णय को लेकर उसके मन में उथल-पुथल मचती हैं, परंतु पैसे की गर्मी के आगे यह उथल-पुथल समाप्त हो जाता है। लेखिका लिखती हैं — "बैजन की मोटरसाइकिल के पीछे जब काले बैग को कस के पकड़े हुए बैठी, तो बस पैसे की गर्मी की तपिश से वह तरने लगी।"(रंगनाथन) जाकिया जुबैरी की कहानी ''लौट आओ तुम!'' में कामवाली 'बीबी' विदेशी पृष्ठभूमि में सुविधाओं को भोगने के लिए जिस घर में काम करती है, उस घर के पुरुष सदस्य को अपने जाल में फँसाती है। लेखिका नौकरानी 'बीवी' की सोच को सामने रखती हैं। नौकरानी 'बीबी' आतंक में है कि कहीं घर का मालिक सदस्य उसके चंगुल से ना निकल जाए, क्योंकि उसके निकलने का अर्थ है प्राप्त सुख-सुविधा से वंचित हो जाना – "...अगर साब जी को कहीं 'आपा' की आदत फिर से पड़ गई, तो वापस आकर फिर से नए सिरे से जाल बुनना होगा...बीबी फिर से बिखरना नहीं चाहती थी। अपने वतन, अपनी झोपड़पट्टी छोड़कर परदेस में जम जाना कोई आसान काम नहीं होता...फिर विलायत में बरफ की ठंडक। अंग्रेजी बोलते भारतीय मूल के बच्चे, सर्दियों में काले-काले नंग धड़ंग ऊंचे-ऊंचे पेड़ और ऊपर से काली-काली लंबी-लंबी रातें...। अगर साबजी ना होते तो रात काटे ना कटती।" (जुबैरी) अर्थात् किसी भी कीमत में अपने सपनों को पूरा करने को तत्पर है।

इस प्रकार मध्यवर्ग के बीच हाशियाकृत यह वर्ग मध्यवर्गीय जीवन जीने के लिए कभी नैतिक, तो कभी नैतिकता का निजीकरण कर सुख-सुविधाओं को बटोरने का प्रयास करता है, जिसमें सामाजिक असमानता व अप्राप्य के प्रति इस वर्ग का प्रतिरोध नजर आता है। हालांकि नैतिकता के निजीकरण के द्वारा मध्यवर्गीय सुख-सुविधाओं को भोगने के लिए घरेलू कामगार द्वारा अपनाया गया हर आचरण प्रतिरोध नहीं है, क्योंकि प्रतिरोध के मुकम्मल होने के लिए उसका मूल्य सापेक्ष होना जरूरी है, लेकिन फिर भी ऐसे मनमर्जीपन वाले आचरण की तरफ कदम बढ़ाना अपने आप में यथास्थिति के प्रति प्रतिरोध है।

3.12. घरेलू महिला कामगार से प्रभावित और प्रताड़ित मध्यवर्ग –

एक ओर यदि घरेलू कामगार अपने हित में प्रस्तावित कानून व बिल के अभाव में कम वेतन, छुट्टी आदि अनेक मामलों में दैहिक, मानसिक व श्रम के शोषण के शिकार हैं। इनके काम को अन्य असंगठित क्षेत्र के कामगारों के काम की तरह काम का दर्जा या मूलभूत सुविधाएं नहीं मिल पा रहा, तो दूसरी ओर मध्यवर्ग की इन पर निर्भरता को लेकर भी यह वर्ग सचेत हो चुका है, जिससे मध्यवर्ग प्रभावित व प्रताड़ित भी है। आज

कामवाली को यह बोध है कि मध्यवर्ग उसे घर के काम से निकालने की खोखली धमकी जरूर दे सकता है, पर अपनी लाचारी के कारण निकालने की परिस्थिति में बिल्कुल भी नहीं है। कामवाली शानो को विश्वास है — "मुझे निकाल देने की धमकियां अक्सर देती रहती हैं। निकालती नहीं। निकलेगी नही, आजकल नौकरानियाँ आसानी से नहीं मिलती।" (वैद 11) नौकरानी का यह बोध उसे वह हर कुछ करने को स्वतंत्र कर देता है, जिससे मालकिन वर्ग के सामने परेशानी खड़ी हो। 'एक नौकरानी की डायरी' में शानो मालकिन के मना करने के बाद भी मालकिन का गुसलखाना उपयोग में लाती है। इसके पीछे की वजह जरूरत नहीं, बल्कि मजे लेने के लिए — "बंगालिन और मोटी के गुसलखाने में मैंने कई बार चोरी-चोरी पेशाब किया है।...सोचती रहती हूँ पकड़ी गई...कह दूंगी जोर से आ गई थी, क्या करती...वैसे भी इस चोरी में मुझे खास मजा आता है।" (वैद 16) यह मजा प्रतिरोध का सूचक है कि मालकिन जिन चीजों को मना किया है, वही करेंगे। एक नौकरानी जिन घरों में काम करती है, उन घरों की जरूरत से भलीभांति परिचित होती है। ऐसे में कई बार इनके द्वारा जानबूझकर भी घर में परेशानी खड़ी कर दी जाती हैं। कामवाली मध्यवर्गीय कामकाजी महिला की मजबूरी है। अत: उस मजबूरी का पूरा फायदा भी ये कामवालियाँ उठाती है। परंपरा में चित्रा मुद्गल ने 'सुख' कहानी में नौकरानी 'फुली' के व्यवहार में इसे दिखाया है, प्रगति में कृष्ण बलदेव वैद अपने उपन्यास 'एक नौकरानी की डायरी' में शानों के माध्यम से रखते हैं। शानो बाथरूम साफ करने के क्रम में बाथरूम की गंदगी को मालकिन को परेशान करने के लिए वहीं नाली में घुसेड़ देती है। अपनी डायरी में दर्ज करती है — "इतना भी नहीं होता कि बाल को खुद बाहर फेंक दें। कभी-कभी तो मैं उन्हें नाली में ही घुसेड़ देती हूं। फिर जब नाली बंद हो जाती है, तो चिल्लाने लगती है। चिल्लाती रही, मुझे क्या।" (वैद 11) मालिक वर्ग की असुविधा के प्रति वर्ग विशेष की लापरवाह दृष्टि को उपन्यासकार ने यहां नोटिस में लिया है।

घरेलू कामगार बिल आज भी संसद में विचार के लिए पड़ा हुआ है, फलत: इनकी छुट्टी और वेतन संबंधित कोई कानून नहीं है। इसका नुकसान एक ओर इस वर्ग को उठाना पड़ रहा है, तो वहीं दूसरी ओर मालिक वर्ग को भी। यह कामगार बिना किसी पूर्व सूचना के कभी भी, किसी का भी काम छोड़कर चली जा सकती हैं और ऐसे में भले ही मालिक के परिवार में अव्यवस्था ही क्यों ना आ जाए। साथ ही बिना किसी पूर्व सूचना के जब चाहे, जितने दिन चाहे छुट्टी ले सकती हैं और अधिक डांट-फटकार पर काम भी छोड़ सकती हैं। 'बराबरी का खेल' कहानी में कामवाली बिना किसी सूचना के पाँच दिन तक अनुपस्थित रहती है। जब वापस आती है, तब मालकिन ना चाहते हुए भी डर से चुप्पी साधी रहती है कि कहीं काम छोड़कर ना चली जाए — "शुरू हो गए तुम्हारे नाटक भी, फोन नहीं कर सकती थी तुम, मैंने जैसे-तैसे अपने शब्दों को काबू में किया, पता चला पिच्छे की कोठी के दर्शन इसे भी हो गए और हिसाब करने आई है।" (झा) मालकिन वर्ग की इन कामगारों पर निर्भरता से उत्पन्न आतंक का ही सूचक है कि मालकिन को अपने शब्दों पर काबू रखना पड़ता है।

एक ओर घरेलू महिला कामगारों का दैहिक शोषण एक सत्य बनता है, तो दूसरी अपनी दैहिकता का उपयोग भी ये महिलाएं करती है। अत: कामवालियों के आचरण के प्रति मालकिनों की सोच को भी एकदम बेजा नहीं कहा जा सकता। अगर मालकिन का वर्ग समझता है कि नौकरानी उनके पति को फास लेगी, तो कथा साहित्य इस सत्य की पुष्टि भी करता है। जकिया जुबैरी की कहानी 'लौट आओ तुम!' में नौकरानी 'बीबी' साहब को अपने जाल में फंसा कर मालकिन 'आपा' की जगह ले चुकी है और मालकिन की इतनी दुर्दशा हो गई है कि सब कुछ जान कर भी चुप रहने को न केवल विवश है, बल्कि पति के कमरे में जाने, उनके साथ सोने की इजाजत के लिए भी कामवाली पर निर्भर। 'डाउनलोड होते हैं सपने' में गीताश्री भी कामवाली के ऐसे आचरण की ओर संकेत करती है। सुमित्रा को उसकी मां बतलाती है कि किस प्रकार कोठी वाले मालिक नौकरानियों के लिए अपनी बीवी से लड़ जाते हैं। आज कामवाली अपनी दैहिकता का उपयोग अपने सपनों को पूरा करने की दिशा में लगा रही है।

परंपरा में चित्रा मुद्गल की कहानी 'सुख' में इसे देख सकते है, जहां नौकरानी 'फूली' काम छोड़ देती है, क्योंकि घर में कोई मर्द नहीं है। यहां संकेत है कि किस प्रकार अपनी दैहिकता का उपयोग अपने लाभ के लिए कामवाली करना चाहती है, लेकिन चूंकि मर्द नहीं है, तो उसका उपयोग नहीं कर सकती, इसलिए काम छोड़ देती है। अपनी प्रगति में 21 वीं सदी में इस संदर्भ को जाकिया जुबैरी की कहानी 'लौट आओ तुम !'और गीताश्री की कहानी 'डाउनलोड होते हैं सपने' में है। कामवाली अपनी सुविधा की पूर्ति में अपनी दैहिकता को लगा रही हैं। ऐसे में मालकिन का वर्ग विवश है। अत: एक ओर कामवाली का शोषण मध्यवर्गीय परिवार में होता है, तो दूसरी ओर अपनी जरूरत के तहत आज मध्यवर्गीय समाज भी इससे कई तरह से प्रताड़ित है। कानून के अभाव में कामवाली की मनमानी को सहने को विवश। इसे कथा साहित्य में विषय बना इनके द्वारा किए जा रहे गलत का प्रतिरोध भी किया गया है।

निष्कर्षत: हम पाते हैं कि घरेलू महिला कामगार भले ही मूक समझौता के साथ काम करती रहती है, पर इसकी कार्य शैली स्वयं में प्रतिरोध का पर्याय बन जाती है। एक ओर इन्हें अपने घर-परिवार में सामंती मन:स्थिति के साथ गुजर-बसर करना पड़ता है, तो दूसरी ओर मलिक सदस्यों के परिवार में कोई संवैधानिक स्थिति नहीं बन पाने के कारण इनका अस्तित्व समझौतापरक बना हुआ है। ऐसे प्रसंग उनके प्रति जरूरी संवेदना की मांग कर मध्यवर्गीय परिवारों के विरुद्ध प्रतिरोध की जमीन तैयार करते हैं। रचनाकार द्वारा उनकी विवशता का जिक्र सहज ही मालिक सदस्यों के विरुद्ध हमें खड़ा करता है। एक सच यह भी है कि आज का मालिक सदस्य सौ साल पहले वाला नहीं रह गया। मालिक वर्ग को भी इनके साथ समझौते के स्तर पर आना पड़ रहा है। यदि मालिक सदस्य कभी शिकारी रहा, तो आज शिकार भी बन रहा है। घरेलू कामगारों पर पूरा का पूरा निर्भर हो चुका है, तभी विरोध-प्रतिरोध का सपाट मामला आपसी व्यवहार-बोध से संस्कारित हो

जाता है। समझौते में दोनों हैं और दोनों तरफ प्रतिरोध का विचार लाचार है। आज मलिक सदस्य अधिक लाचार दिख रहा है, क्योंकि व्यवस्था घरेलू महिला कामगारों के प्रति अधिक संवेदनशील है। यही कारण है कि घरेलू कामगारों की समझौतापरक मनोवृति के प्रति संवेदना का वैचारिक संस्कार प्रतिरोध के लिए स्वस्थ दिशा है। यह तभी संभव है जब घरेलू महिला कामगार और मालिक सदस्यों के परस्पर द्वंद्वग्रस्त संबंधों के मूल में निहित त्रासद स्थितियों को भली भांति विषय बनाया जाए और यह काम 21वीं सदी के कथा साहित्य में बखूबी किया गया है। पहली त्रासदी यह है कि चाहे घरेलू महिला कामगार हो या मालिक सदस्य, दोनों ही काम को हीन भावना से लेते हैं। मलिक सदस्य घर के काम को हीन समझ कर करना नहीं चाहते और दूसरी ओर इसी काम को घरेलू महिला कामगार भी हीन समझती है। इसीलिए तो अपनी संतान को इसमें नहीं आने देने की पूरी कोशिश करती है। इस दिशा में जिस काम को स्वयं घरेलू महिला कामगार हीन समझती है, उसे ही करके अपने को मलिक सदस्यों के बीच सम्मानित भी महसूस करना चाहती है। विडंबना है कि जिस काम को घरेलू महिला कामगार सम्मान की नजर से स्वयं नहीं लेती है, उसे ही करते हुए मलिक सदस्यों से अपने प्रति अच्छे भाव की उम्मीद करती है और जब-जब ऐसी उम्मीद आहत होती है, तब-तब उसकी कार्यशैली स्वयं में प्रतिरोध की शैली बन जाती है। दूसरी त्रासदी यह है कि मध्यवर्गीय सुख-सुविधाओं के बीच घरेलू महिला कामगार स्वयं को हाशियाकृत जीवन-बोध के साथ पाती है। तीसरी स्थिति यह है कि एक ओर घरेलू कामगार के लिए सुरक्षा, अधिकार एवं दायित्व-बोध संबंधी संवैधानिक प्रावधान का अभाव है और दूसरी ओर आर्थिक मजबूरी जिसके कारण उसे काम करने के अलावा और कुछ उपाय नहीं दिखता। इतना जरूर है कि नए काम की तलाश में वह वर्तमान काम से जुड़ी रहने को विवश रहती है। ऐसी त्रासद स्थितियों के बीच ना तो मलिक सदस्य की और से आक्रामक आचरण दिखता है और ना ही घरेलू महिला कामगार की ओर से, लेकिन दोनों तरफ कार्यशैली एवं आचरण में प्रतिरोध का दर्शन किया जा सकता है। अंततः इस अध्याय में यह स्थापित है कि तमाम संवेदनशील संदर्भों के बावजूद घरेलू कामगार और मालिक सदस्य परस्पर समझौते की स्थिति में बने तो रहते हैं, लेकिन एक ओर कामगारों की कार्यशैली क्षण-प्रतिक्षण प्रतिरोध से आगे प्रतिशोध तक बनी रहती है, महज आर्थिक मजबूरी में, तो दूसरी ओर मलिक सदस्य नई कामवाली की तलाश में सदा विवश, लाचार रहते हैं। पक्ष-प्रतिपक्ष के परस्पर आचरण द्वंद्वग्रस्त रहकर प्रतिरोध का ही विषय बनते हैं। इनका समाजशास्त्रीय एवं मनोवैज्ञानिक चित्रण यह दर्शाता है कि जब तक घरेलू महिला कामगार के प्रति संवेदना से काम लिया जाता रहेगा, तब तक लाचार प्रतिरोध की मन:स्थिति से घर-परिवार को मुक्ति नहीं मिलेगी। महिला कामगारों के पक्ष में और मालिक सदस्यों के विरुद्ध खड़ा होने की जगह जिन त्रासदियों का ऊपर जिक्र किया गया है, उसका सुविचारित प्रतिरोध किया जाना जरूरी है। यही कारण है कि घरेलू महिला कामगार के प्रसंग को महज संवेदना से आगे वैचारिक धरातल पर लाना जरूरी है, तभी स्त्री विमर्श का अछूता अध्याय सुदिशा को प्राप्त हो पाएगा। इसलिए घरेलू

महिला कामगार के मामले में स्त्री विमर्श का प्रतिरोधी सरोकार भी मेरे इस अध्याय का महत्वपूर्ण अंग बन जाता है।

संदर्भ-ग्रंथ

अमरकांत. बहादुर, https://www.hindisamay.com/

ओम, प्रियंका. "जट्टा और चिड़ैया" *रेखाएं बोलती हैं, भाग-2*, सम्पादन गीताश्री, शिवना प्रकाशन, मार्च 2019. पृष्ठ 135-142

कुमारी, ममता. घरेलू महिला कामगार के बहाने कुछ बाते. https://www.hindisamay.com/

खान, उषा किरण. "उमा-महेश." *उषा किरण खान की लोकप्रिय कहानियाँ*. प्रभात प्रकाशन, 2015. पृष्ठ 30-35

गर्ग, मृदुला. "किस्सा आज का", *संगति-विसंगति (संपूर्ण कहानियाँ, दो खण्ड)* नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 2004. पृष्ठ -

गीताश्री, "डाउनलोड होते हैं सपने", हंस पत्रिका, वर्ष-30, अंक-8, वर्ष -मार्च 2016. पृष्ठ- 54-60.

---, "माई री मैं टोना करिहों." *स्वप्न, साजिश और स्त्री मन*. सामयिक प्रकाशन,2015. पृष्ठ 117-130 .

चौबे, देवेंद्र. *समकालीन कहानी का समाजशास्त्र,* प्रकाशन संस्थान नई-दिल्ली, 2001.

जुबैरी, जाकिया. 'लौट आओ तुम !', https://hindi.matrubharti.com/book/read/content/19883464/lout-aao-tum-1

झा, डॉ शिल्पी. "बराबरी का खेल" मन पाखी (मन के पंख न थकते हैं न डरते), 2 अक्टूबर 2015. https://mannpakhi.blogspot.com/2015/10/blog-post.html#more

निर्झरा, सरिता. "बड़े उम्र की औरत" *चाँद, जमीन और औरते*, बोधि प्रकाशन, 2022. पृष्ठ 7-19.

प्रतिभा, लहूलुहान कौन?. प्रतिलिपि.कॉम. 5 मई 2016, https://hindi.pratilipi.com

प्रियंवरा, "ये हौसला", संसदीय मंजूषा, वर्ष-5, अंक-1, जुलाई 2016, पृष्ठ 56-57

मिश्र, गिरीश, "भूमंडलीकरण का वैचारिक आधार", परस्पर पत्रिका, अंक- 12, फरवरी -2010. पृष्ठ- 31-34.

मुद्गल, चित्रा. "सुख" *जिनावर कहानी संग्रह*, किताबघर प्रकाशन, 1996. पृष्ठ 38-50.

मेहरोत्रा, सुरभि टंडन. "आदर और सम्मान". *घरेलू कामगार: स्थितियाँ, हक और जिम्मेदारियां*, अनुवाद श्रीवास्तव, सीमा. जागोरी, 2010.पृष्ठ 42-47.

---, "परिचय". *घरेलू कामगार: स्थितियाँ, हक और जिम्मेदारियां*, अनुवाद श्रीवास्तव, सीमा. जागोरी, 2010. पृष्ठ 1-14.

---, "मालिकों/नियोक्ताओं का नजारियाँ". *घरेलू कामगार: स्थितियाँ, हक और जिम्मेदारियां*, अनुवाद श्रीवास्तव, सीमा. जागोरी, 2010. पृष्ठ 52-56.

रंगनाथन, जयंती. मोह, माया, मंडी, समाचार 4 मीडिया. कॉम, 5 जनवरी 2017, https://www.samachar4media.com/

वैद, कृष्ण बलदेव. *एक नौकरानी की डायरी*, राजपाल प्रकाशन, 2009.

वर्मा, कविता, "निश्चय." *परछाइयों के उजाले*. मानक संस्कृति प्रकाशन.2014, पृष्ठ 35-43.

---,"जीवट." *परछाइयों के उजाले*. मानक संस्कृति प्रकाशन. 2014, पृष्ठ 35-43.

शर्मा. क्षमा, "रोशनी के अच्छे दिन" *पराँठा ब्रेकअप और अन्य कहानियाँ*, प्रथम संस्करण, वाणी प्रकाशन, 2022. पृष्ठ 122-130.

शुक्ल, उर्मिला. तुम फिर मिलना कारी, प्रतिलिपि. कॉम. 28 अगस्त 2018. https://hindi.pratilipi.com

सिंह, शोभा. नाम में बहुत कुछ रखा है, जनसत्ता 3 मार्च 2019. https://www.jansatta.com/

सूर्यवाला, "सुनंदा छोकड़ी की डायरी" *साँझवाती*, प्रभात प्रकाशन, 2015. पृष्ठ 78-87.

चौथा अध्याय
स्त्री का राजनीतिक प्रतिरोध

- **भूमिका**

4.1. स्त्री-राजनीति का स्वरूप

4.2. महिला आरक्षण व स्त्री-राजनीति

4.2.1. महिला आरक्षण बनाम पुरुष राजनेता का नजरिया

4.2.2. महिला आरक्षण बनाम महिला राजनेता का नजरिया

4.3. राजनीति में महिलाओं का आगमन

4.3.1. राजनीतिक रणनीति व स्त्री का राजनीतिक प्रवेश

4.3.2. महत्वाकांक्षा की पूर्ति हेतु राजनीतिक प्रवेश

4.3.3. जनकल्याण के उद्देश्यपरक आयाम के तहत आई स्त्रियाँ

4.3.4. मजबूत पारिवारिक पृष्ठभूमि (सॉलिड बैकग्राउंड) के तहत राजनीति में आई स्त्री

4.4. स्त्री-राजनीति : परिवार व समाज, प्रतिरोधमूलक

4.5. स्त्री देह की राजनीति

4.5.1. पुरुष राजनेता और स्त्री देह

4.5.2. स्त्री देह : सुरक्षाकवच बनाम स्त्री-राजनीति

4.6. चुनाव प्रचार सत्ता व व्यवस्था : पुरुष राजनीति बनाम महिला राजनीति

4.7. दलगत अनुशासन व स्त्री-राजनीति

4.8. स्त्री-राजनीति व वोटरों की अपेक्षा

4.9. स्त्री-राजनीति का भविष्य : समझौता व पलायन

- **निष्कर्ष**

चौथा अध्याय
स्त्री का राजनीतिक प्रतिरोध

21वीं सदी तक आते-आते, भूमंडलीकरण, बाजारवाद की स्वीकार की स्थिति ने स्त्री-मुक्ति की विभिन्न संभावनाओं को सामने रखा। ऐसी स्थिति में शिक्षा, चिकित्सा आदि अनेक क्षेत्रों के साथ राजनीति में भी स्त्री का पदार्पण हुआ। राजनीति के संदर्भ में प्रफुल्ल कोलाख्यान ने लिखा हैं – "राजनीति मूलत: 'सत्ता विमर्श' है।...राजनीतिक आंदोलन का मकसद 'सत्ता की संरचना' में परिवर्तन के माध्यम से 'समाज की संरचना' में परिवर्तन करना होता है।" (कोलाख्यान 2) ऐसे में स्त्री के मामले में समाज की सोच में परिवर्तन के लिए राजनीति में स्त्री के आगमन को जरूरी माना गया। अतः स्त्री-प्रतिरोध की दिशा में स्त्री के राजनितिक प्रतिरोध को उसके सामाजिक जीवन में परिवर्तन के उद्देश्य की दिशा में देखा जाना जरूरी रहा। भारतीय संदर्भ में हमारे राष्ट्रवादी नेताओं ने माना कि स्त्रियोचित्त गुण (त्याग, ममता, बलिदान, सहानुभूति आदि) से परिपूर्ण होने के कारण राजनीति में स्त्री का आगमन न केवल उसके लिए, बल्कि पूरे समाज के लिए हितकारी होगा। गांधी स्त्रियोचित्त गुण के कारण स्त्री-राजनीति के केवल पक्ष में ही नहीं रहे, बल्कि स्वाधीनता आंदोलन में उनकी सक्रिय भागीदारी की कोशिश भी करते रहें और इसी गुण के कारण स्वाधीनता बाद भी राजनीति में स्त्रियों की सहभागिता के लिए प्रयासरत रहे। पश्चिम में स्त्रीवादी आंदोलन स्त्रियों के राजनीतिक अधिकार, महिलाओं के वोट के अधिकार को लेकर ही उभरा, क्योंकि उनका भी मानना रहा कि राजनीतिक आधिकार ही महिलाओं को अन्य सामाजिक अधिकार प्रदान करा सकता है। ऐसे में महिला के स्वयं के सामाजिक जीवन में परिवर्तन व समाज के उत्थान के लिए राजनीति में उसके आगमन को जरूरी समझ संवैधानिक प्रक्रिया में महिला आरक्षण की मांग रखी गई और वर्तमान में पंचायत व नगरपालिका में 33% सीटें महिलाओं के लिए आरक्षित भी हो गई साथ ही 50% आरक्षण की मांग भी जारी है, हालांकि विधानसभा में आरक्षण का मुद्दा अपने राजनीतिक दांवपेच के कारण अब तक पास ना हो सका, लेकिन सभी पार्टियों ने पार्टी स्तर पर अपने चुनावी घोषणा-पत्र में स्त्रियों के लिए सीटें आरक्षित की। एक ओर गांधी, टैगोर ने स्त्री-राजनीति को स्त्रियोचित्त गुण के कारण सकारात्मक माना, वहीं दूसरी ओर मृदुला गर्ग एक दूसरे पक्ष पर प्रकाश डालते हुई लिखती हैं – "स्त्री ज्यादा सहिष्णु है और यह की वो अगर सत्ता में आई तो वह ज्यादा सकारात्मक रहेगी।...यह हमारी मान्यता है...लेकिन हम देख रहे हैं कि जब भी कोई स्त्री सत्ता में आती है, वैसा ही व्यवहार करती है, जैसा पुरुष करता है। सत्ता का अपना समीकरण है और वह वही होता है।"(गर्ग 52) समग्रता में एक पक्ष स्त्री-राजनीति के प्रति आशावादी रहा, तो दूसरा यथार्थपरक। सारे सकारात्मक प्रयास के बावजूद स्त्री की राजनीति भागीदारी के मार्ग में जो अवरोध है, उसका प्रतिरोध तो 21वीं सदी के साहित्य में दर्ज है, साथ ही किन अवरोधों के कारण स्त्री-राजनीति पुरुष-राजनीति से

भिन्न नहीं हो पा रही है, उसकी तलाश भी इस अध्याय में की गई है। तमाम अवरोधों के विरुद्ध में प्रतिरोध कर स्त्री को जो राजनीतिक भागीदारी मिली, आज उस प्रतिरोध पर भी तमाम विसंगतियों के कारण विचार जरूरी हो गया है। इस दिशा में 21वीं सदी का साहित्य संवेदना के स्तर पर ही नहीं विचार से भी समृद्ध है। राजनीति में जब एक स्त्री आती हैं, तो राजनेता, परिवार व समाज का उसके प्रति विरोधाभाषी नजारियाँ नजर आता है। उसकी अपनी राजनीति दलगत अनुशासन, पुरुष राजनीति की रणनीति व सत्ता, शक्ति के केंद्रीकरण तक सीमित हो जाती हैं और किस प्रकार की रणनीति के तहत राजनीति में बने रहने व सेवामूलक कार्य को कर पाने की संभावनाएँ बनती हैं, नहीं तो पलायन ही भविष्य रह जाता है, इसे 21वीं सदी में हिंदी कथा साहित्य ने विषय बनाकर स्त्री-राजनीति के पक्ष में प्रतिरोध को रचा है, जिसे इस अध्याय में विषय बनाया गया है।

4.1. स्त्री-राजनीति स्वरूप —

स्त्री का राजनीति में आना या लाया जाना दोनों भारतीय चुनावी रणनीति का महत्वपूर्ण हिस्सा है। वर्तमान समय को स्त्री-युग कहना गर्व का विषय प्रतीत होता है, तो इसके पीछे केंद्रीय भाव यह है कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में स्त्री के प्रतिनिधित्व को सुनिश्चित किया जाए और इस नाते दशकों से स्त्री के राजनीतिक आरक्षण की पहल समय-समय पर होती रही है। पंचायत और नगर निगम में यह संभव भी हो गया है, लेकिन संसद में अभी इसकी स्वीकृति प्रतीक्षारत है। यह जगजाहिर है कि राजनीति को स्त्री की जरूरत है। इसलिए है कि एक स्त्री, स्त्री समाज के प्रति राजनीतिक निर्णयों में कुछ व्यावहारिक भूमिका निभा पाएंगी, लेकिन जब किसी अन्य के बलपर या माध्यम से कोई कुछ हासिल करता है, तब उसे उसके अनुसार चलने की नैतिकता का निर्वाह भी करना पड़ता है। राजनीति में आई स्त्रियां सत्ता या विपक्ष दल के नेता के प्रति नैतिक दायित्व के तहत राजनीतिक गतिविधियों के साथ आगे बढ़ती है। ऐसी स्थिति में उनका स्वतंत्र अस्तित्व बने और विकसित हो, जैसा कि स्त्री के हर क्षेत्र में प्रवेश से सहज ही अपेक्षा बनती है, संभव नहीं हो पाता। जब यह संभव नहीं हो पाता, तब उनके विरुद्ध या तो स्त्री को खड़ा होना पड़ता है या एक समझौते में आना पड़ता है। समझौते में आने की विवशता स्त्री-संवेदना का स्रोत बनने के कारण धीरे-धीरे मौन प्रतिरोध की आवश्यकता ही महसूस कराती है। यदि राजनीति में आई स्त्री की कुछ निजी महत्वाकांक्षाएं राजनीतिक निर्णय के संदर्भ में हैं, तो उन्हें कैसे और कहां तक व्यवहार में जगह मिलेगी? यह इस बात पर निर्भर करता है कि राजनीति में पहले से बने राजनेता और अन्य स्त्रियों का इस नई स्त्री के प्रति कैसी भावना है, अन्यथा स्त्री का राजनीतिक इस्तेमाल पुरुष नेता भी करने को बेताब रहते हैं और स्त्री नेता भी इसमें कोई कोर-कसर नहीं छोड़ती, बस तरीका अलग-अलग है। इसके पीछे के कारणों की पड़ताल 21वीं सदी के कथा साहित्य ने बखूबी की है। ऐसे में जैसे-जैसे भारतीय लोकतांत्रिक प्रणाली में राजनीति जटिल होती जा रही है, स्त्री का राजनीतिक प्रतिरोध भी वैसे-वैसे बहुआयामी और तीव्र होता जा

रहा है। स्त्री-राजनीति का इस बहुआयामी स्वरूप अध्ययन स्त्री के राजनीतिक प्रतिरोध को मुकम्मल दिशा देने के लिए आवश्यक है, जिसे प्रस्तुत करना इस अध्याय का अभीष्ट है।

4.2. महिला आरक्षण व स्त्री-राजनीति —

राजनीति में महिला आरक्षण मुख्यधारा में महिलाओं को लाकर उनको सशक्त करने का प्रयास है। राज्य सभा की पूर्व सांसद, लेखिका, अनुवादक सरला माहेश्वरी का मन्तव्य हैं — "राजनीति में महिलाओं की भागीदारी का प्रश्न सीधे तौर पर नीति-निर्णायक निकायों में महिलाओं की भूमिका से जुड़ा हुआ है। इसमें महिलाओं की चिंताजनक स्थिति नीतियों को तय करने में उनकी भागीदारी की अनुपस्थिति का संकेत देती है। यह सत्ता में महिलाओं की भागीदारी से जुड़ा पहलू है।" (महेश्वरी) ऐसे में महिलाओं की नीति निर्धारक भूमिका को सुनिश्चित करने के लिए आरक्षण एक जरूरी अवसर के रूप में दिखाई देता है। एक ओर गांधी, टैगोर से लेकर आम लोगों की यह धारणा रही है कि स्त्री अधिक सहिष्णुक है, स्त्रियोचित्त गुणों से परिपूर्ण होने के कारण जब वो सत्ता में आएंगी, तो समाज कल्याण अधिक होगा। महिला राजनीति को लेकर रवींद्रनाथ टैगोर के जो विचार रहे, उसका उल्लेख प्रणव मुखर्जी संसद में अपने भाषण में कहते हैं — "महिला किसी भी राष्ट्र के भविष्य का निर्माण करती है और उसे गढ़ती है...उसका दिल पुरुष से कहीं अधिक मजबूत और साहसी होता है...वह मनुष्य की प्रकृति में सर्वोच्च प्रेरणा होती है।" (मुखर्जी 8) तो दूसरी ओर, उनके स्वयं के पक्ष में भी यह माना गया कि सत्ता समाज परिवर्तन का माध्यम है, ऐसे में सत्ता में प्रवेश कर अपने सामाजिक स्थिति में सुधार लाने में स्त्रियां तब सक्षम होगी, जब स्वयं उनका प्रतिनिधित्व सत्ता में आएगा। मुख्यधारा में पुरुषों के साथ स्त्री को भी बराबरी का अवसर उपलब्ध हो सके, इसलिए राजनीतिक आरक्षण की बात सामने आई। संविधान के अनुच्छेद 73, अनुच्छेद 74 में संशोधन कर स्त्री के राजनीतिक आरक्षण की व्यवस्था की गई। इसके तहत पंचायत में महिलाओं के लिए 33% सीटें आरक्षित की गई। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद सितंबर 1996 में महिला आरक्षण विधेयक को लोकसभा में भी प्रस्तुत किया गया, ताकि लोकसभा में भी महिलाओं के लिए सीटें आरक्षित हो सके, किंतु कई बार यह प्रयास असफल होने के बाद 2008 में राज्यसभा में संविधान के अनुच्छेद 105 संशोधन कर इसे पेश किया गया। मार्च 2010 में यह विधेयक राज्यसभा में पारित भी हो गया, लेकिन विभिन्न राजनीतिक दलों की अपनी राजनीति के कारण इस विधेयक पर सर्वसम्मति अभी तक नहीं बन पाई, इसलिए लोकसभा में महिला आरक्षण भी अब तक पास नहीं हो सका है। इसके वाबजूद विभिन्न पार्टियों ने अपने-अपने चुनावी घोषणा पत्र में पार्टी स्तर पर महिला के लिए सीटें आरक्षित की है और ग्रामीण क्षेत्र में 'पंचायती राज अधिनियम 1992' संशोधन कर महिलाओं के लिए 33% आरक्षित सीट की संख्या बढ़ाकर 50% करने की मांग की गई है और कई राज्य में 50% कर भी दी गई है। स्त्री आरक्षण को लेकर सरकार और

समाज का एक नजरिया है जिसके तहत आरक्षण के मुद्दे उठते रहे हैं, लेकिन इसे लेकर पुरुष-राजनेता और स्त्री-राजनेता के प्रतिरोधमूलक नजरिए को हिंदी कथा साहित्य में 21वीं सदी में विषय बना प्रतिरोधी नजरिए की पड़ताल हुई है।

4.2.1. महिला आरक्षण बनाम पुरुष राजनेता का नजरिया —

स्त्री-प्रतिरोध के राजनीतिक संदर्भ की सही पड़ताल के लिए जरूरी है कि महिला आरक्षण को लेकर पुरुष राजनेता के नजरिए की पड़ताल की जाए। आरक्षण संवैधानिक प्रयास है। उसे व्यावहारिक बनाने की दिशा में विभिन्न दलों में पुरुष राजनेता के समानांतर स्त्री-राजनेता की मात्र उपस्थिति ही नहीं, बल्कि कार्य करने के सुअवसर व सहयोग की उपलब्धता भी जरूरी है। महिला आरक्षण, महिला सशक्तिकरण व समाज कल्याण से जुड़ा मामला रहा, लेकिन देखा यह गया कि आरक्षण की मजबूरी के तहत सत्ता तो महिलाओं के हाथ में आ गई, लेकिन मालिक पुरुष (पति, पिता) ही बने रहे। महिला आरक्षण उद्देश्यपरक होने की जगह पुरुष द्वारा अपनी पारिवारिक विरासत के रूप में अपनी राजनीति को चमकाने का, सत्ता बनाए रखने का जरिया मात्र बन गई। कवयित्री वंदना शर्मा लिखती हैं — "क्योंकि पुरुषों ने पॉलटिक्स को अपना ऐसा अखाड़ा बना डाला है, जहां या तो स्त्रियाँ ऊँचे पदों तक आ नही पातीं या उनके खानदान की स्त्रियों के सिवाय ऊँचे पद पर किसी सामान्य स्त्री को टिकने ही नही दिया जाता अथवा उनके द्वारा 'नियुक्त' स्त्री मात्र स्टार प्रचारक, शोपीस या कठपुतली बना कर रख दी जाती है! अजब विरासत छाप राजनीति का दौर है यह!"(शर्मा) वंदना शर्मा का यह कथन महिला आरक्षण के प्रति पुरुष राजनेता के प्रतिरोधी आचरण की बखिया उधेड़ रहा है। कथा-साहित्य की परंपरा में 'फैसला' कहानी में वसुमति के संदर्भ में मैत्रयी पुष्पा ने इस तथ्य को रखा है कि कैसे सत्ता में स्त्री आ जाती है, लेकिन फैसला पुरुष के ही हाथ में रहता है। वहीं प्रगति में 21वीं सदी में उपन्यास 'त्रिया हठ','अग्निलीक', 'ये आम रास्ता नहीं','हसीनाबाद', कहानी 'तैंतीस परसेंट','यीशू की कीलें' इस तथ्य को सामने रखती है। 'अग्निलीक' उपन्यास में जब मुखिया व सरपंच दोनों सीट आरक्षण के तहत रिजर्व हो जाती हैं, तो मुखिया लीलाधर अपनी बेटी रेवती व सरपंच अकरम अंसारी अपनी पत्नी नाज़ बेगम को पारिवारिक विरासत को बचाने के लिए चुनाव में खड़ा कर देते हैं। रेवती के पिता व फूफा की चिंता का केंद्र बिंदु स्वयं उसके फूफा मनन चौधरी के शब्दों में — "देवली पंचायत की मुखिया और सरपंच दोनों सीट महिला रिजर्व हो गई है।...अब समस्या यह है कि परिवार में कौन चुनाव लड़ेगा।"(सुलभ 239) आरक्षण को उसके उद्देश्यपरक अर्थ में पूरा करने की दिशा में चिंतन न होकर चिंता का केन्द्रबिन्दु पारिवारिक विरासत को बचाना है। परिवार से नेता खड़ा करना है, जिसकी राजनीति में रुचि हो या न हो, राजनीतिक सरोकारों से कोई मतलब हो या न हो, पर सत्ता की बागडोर अपनों के हाथ के माध्यम से अपने हाथ में बनी रहनी चाहिए। रेवती की चुनाव व राजनीति में कोई

रुचि नहीं है। वह कहती है — "राजनीति में हमारी जरा भी रुचि नहीं है फूफा जी।...हम अपने हिसाब से अपना कैरियर बनाकर जीना चाहते हैं।"(सुलभ 240) इसके बावजूद उसके फूफा और पिता उसे राजनीति में खड़े होने के लिए बाध्य करते है। इसलिए कि परिवार की सत्ता, परिवार के पास बनी रहे, किसी दूसरे के हाथ ना चली जाए। रेवती जब कहती है — "बाबा, हम तो यही नहीं समझ पा रहे कि जब परिवार में कोई है नहीं चुनाव लड़ने लायक, तो चुनाव लड़ने की जरूरत क्या है।"(सुलभ 240) इस पर मनन चौधरी जवाब देते हैं — "बबुनी, अपने हिसाब से जीने के लिए जरूरी है कि ताकत अपने हाथ में हो।...घर-परिवार और समाज की सत्ता अपने हाथ में हो। ताकत और सत्ता तुम्हारे दुआर पर खड़ी है। ठुकराओ मत इसे। हमारी बात की पेट में छिपी बात को समझो।"(सुलभ 241) अत: आरक्षण का उद्देश्य सत्ता में स्त्री की भागीदारी को प्रोत्साहित करना नहीं, बल्कि अपनी पारिवारिक सत्ता व शक्ति, प्रतिष्ठा को बचाना है। मैत्रेयी पुष्पा का उपन्यास 'त्रिया हठ' में मीरा के मामा जी अपनी पत्नी को चुनाव में खड़ा करते है, तो पारिवारिक विरासत को बचाने के उद्देश्य से आरक्षण की मजबूरी के तहत। मीरा के मामा जी के शब्दों में — "जाती हुई प्रधानी साल रही थी, काए से की अबकी बार महिला सीट आ गई। बस, तुम्हारी मामी के नाम का पर्चा भरना पड़ा।"(पुष्पा 21) महिला सीट पर भी नेता पुरुष ही बने रहेंगे, इसलिए कोटा पूर्ति के लिए कागज पर महिला उम्मीदवार को खड़ा कर दिया गया।

नीलिमा सिन्हा ने अपनी कहानी 'तैंतीस परसेंट' में भी दिखाया है कि आरक्षण की सीट पर जीतकर रूपा जिलाध्यक्ष बन कर संसद में आती है, तो इसके पीछे उसकी राजनीतिक सूझबूझ, राजनीति में रुचि व समाज कल्याण का मामला नहीं है, बल्कि पति प्रदीप द्वारा महिला आरक्षण की मजबूरी के तहत अपनी सीट को पत्नी के माध्यम से बचाना है। स्वयं लेखिका के शब्दों में — "जब पार्टी ने अनायास इस बार अपने सांगठनिक चुनाव में तैंतीस प्रतिशत सीटे महिलाओं के लिए आरक्षित कर दी, तो प्रदीप ने अपनी पहुँच, पैरवी के बूते अपने स्थान पर अपनी पत्नी को जिलाध्यक्ष बनवा दिया।"(सिंहा 49) रूपा का जिलाध्यक्ष बनना नहीं, बल्कि बनवा देना शब्द अपने आप में महिला आरक्षण की पोल खोल रहा है। रजनी गुप्त का उपन्यास 'यें आम रास्ता नहीं' में मृदु को चुनाव में, राजनीति में खड़ा किया जाता है, आरक्षण की मजबूरी के तहत ही। पार्टी में चर्चा होती है — "पिछड़े वर्ग की महिला है, पढ़ी-लिखी है, बोल्ड है, दबंग है, सो नेतागिरी के लिए इससे ज्यादा और क्या चाहिए हमें?" (गुप्त 70) आरक्षण के पीछे पुरुष राजनेता की सोच की पोलपट्टी खोल रहा है।

नीलिमा सिन्हा की कहानी 'तैंतीस परसेंट' में स्त्री राजनेता भगवानो देवी की स्वीकारोक्ति है — "हम तो लाख मना किए रहे कि हमको इ सभ में मति डालो, बाकिर महेन्दर बाबू सूनिस नही। कहिस कि महिला आरच्छन का कोटा है दलित के नाम पर चुनाव हो जाएगा। हमरा बेटवों कहिस कि माय रे! "हां कई दे! बड़ा पद है महेन्दर बाबू के किरिपा से मिल जाएगा.....।"(सिन्हा 52) इस प्रकार आरक्षण की मजबूरी के तहत व पारिवारिक विरासत व प्रतिष्ठा को बचाए रखने के लिए राजनीति में स्त्री को पद तो मिल गए, लेकिन वास्तविक

सत्ता की बागडोर पुरुष ने अपने हाथ में रखें। मैत्रयी पुष्पा का उपन्यास 'त्रिया हठ' के देवेश के शब्दों में — "देख लो कि मामी चुनाव में उतरी हैं। मामा ने उतारी है, जानते हैं कि अनपढ़ है, कहाँ जाएगी प्रधान बनकर, बात-बात में पति से पूछेगी। उन्होंने केहर की बहू को इस पद के लिए खड़ा क्यों नहीं किया? वह तो बी0 ए0 तक पढ़ी है। प्रायवेट ही सही, पढ़ी तो है। मामा को डर लगा होगा कि पढ़ी-लिखी बहू अपना राजकाज खुद चलाने लगी, तो उनके हाथ क्या रह जाएगा?" (पुष्पा 58) 'अग्निलीक' उपन्यास में भी मनन चौधरी सुजीत की पत्नी को चुनाव में खड़ा ना करके, रेवती को खड़ा करने के पक्ष में कहता है — "बाबूजी, सुजीत की पत्नी अगर मुखिया बन गई, तो सबसे पहले दोनों में तलाक हो जाएगा। आपका पोता उसके बदले मुखियागिरी करने लगेगा और यह बात वह लड़की बर्दाश्त नहीं करेगी। पढ़ी-लिखी समझदार लड़की है।" (सुलभ 237) पुरुष राजनेता की इस सोच के तहत सत्ता में तो स्त्री आ गई, पर वास्तविक राजनीतिक सत्ता पर पुरुष ही काबिज रहे। आरक्षण के वाबजूद पुरुष राजनेता का नजारियाँ स्त्री-राजनेता के प्रति प्रतिरोधी ही बना रहा, इस स्थिति को सामने रख कथा साहित्य में स्त्री-राजनीति को लेकर पुरुष राजनेता के रूढ़ सोच का प्रतिरोध दर्ज हुआ है।

4.2.2. महिला आरक्षण बनाम महिला राजनेता का नजरिया —

महिला आरक्षण व महिला राजनीति के प्रति पुरुष राजनेता का नजरिया भरे दुराग्रही रहा हो, अपनी सत्ता साधने का माध्यम, पर आरक्षण के तहत सत्ता में आई स्त्री का राजनीतिक नजरियाँ स्त्री के राजनीतिक प्रतिरोध की दिशा में उल्लेखनीय है। डॉ0 एम0 एन0 सिंह ने 'भारतीय राजनीति में महिलाओं की भागीदारी' शीर्षक लेख में लिखा है — "महिलाओं के लिए आरक्षण इसलिए भी जरूरी है कि महिलाओं की सामाजिक जीवन में भागीदारी ऐसी है कि सामाजिक ढांचे में कोई बड़ा परिवर्तन या नया प्रतिमान बिना उनके सहयोग के स्थापित नहीं किया जा सकता है। लेकिन आरक्षण देने से पहले इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि इसे लागू करने में सिर्फ खानापूरी नहीं की जाए, बल्कि योग्य महिलाएं लाई जाए, जिनकी नीतियों के निर्धारण में ठोस भूमिका हो। यहां एक बात जोर देकर कही जा सकती है कि नौकरी या राजनीति में आरक्षण हो, लेकिन वह योग्यता पर आधारित हो।"(सिंह 55) अत: आरक्षण का उद्देश्य तभी फलीभूत हो सकता है, जब आरक्षण के तहत राजनीति में आई महिलाएं सत्ता में आए, तो पर्याप्त योजना व जनकल्याण के साथ, ना कि केवल अपनी पारिवारिक-राजनीतिक विरासत के रक्षा स्वरूपा। आरक्षण के तहत अधिकांश में जो स्त्रियां राजनीति में आई है, राजनीतिक चेतना शून्य केवल पुरुष सत्ता की कठपुतली के रूप में ही हैं। कथा साहित्य में भी यह स्थिति परिलक्षित हो रही है। रजनी गुप्त का उपन्यास 'ये आम रास्ता नहीं' की बीना यादव, ऋषिकेश सुलभ का उपन्यास 'अग्निलीक' की रेवती और रेशमा, मैत्रयी पुष्पा का उपन्यास 'त्रिया हठ' की मीरा की मामी, नीलिमा सिन्हा की कहानी 'तैंतीस परसेंट' की रुचि, भगवानो देवी राजनीतिक आरक्षण की महिमा के तहत राजनीति में आई राजनीतिक सूझबूझ व चेतना से शून्य स्त्री रही, जो आरक्षण की मजबूरी के तहत राजनीति में लाई गई। वहीं दूसरी ओर 'ये

आम रास्ता नहीं' की मृदु और रत्ना 'अग्निलीक' की नाज बेगम, 'हसीनाबाद' की गोलमी आरक्षण के उद्देश्य को सार्थक करती राजनीतिक चेतना व जनहित को लेकर अभिप्रेरित स्त्री रही। कहानी 'तैंतीस परसेंट' में पति प्रदीप द्वारा पत्नी रुचि को राजनीति में लाया जाता है। रुचि की राजनीतिक सूझबूझ के बारे में नीलिमा सिन्हा लिखती हैं — "रुचि ने अभी जुम्मा-जुम्मा आठ दिनों पहले ही तो पार्टी की सक्रिय सदस्यता ग्रहण की है। उसे तो राजनीति का अलीफ-बी भी नहीं मालूम। वह तो यह भी नहीं जानती कि प्रदेश कार्यालय का नक्शा कैसा है और पार्टी के बड़े नेता कौन-कौन हैं? किसकी कितनी पहुँच पैरवी है? वगैरह।" (सिन्हा 50) बिना किसी राजनीतिक सूझबूझ और राजनीतिक ज्ञान के पार्टी में पद पर जगह मिल गई है, तो इसके पीछे आरक्षण की महिमा का कमाल है। यही कारण है कि जब ऐसी महिलाएं राजनीति में बनी रहती हैं, तो आम जनता को निराशा ही हाथ लगती है।

कहानी 'तैंतीस परसेंट' में भगवानो देवी महिला आरक्षण के कोटे के तहत सत्ता में आती है, तो राजनीतिक उत्थान की योजना को लेकर नहीं, बल्कि महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए। वह स्वयं कहती है — "...महेन्द्र बाबू सूनीस नहीं।...पईसा-रोपेया इहां किसको न सोहता है?...बाल-बच्चा के खातिर तो दुनिया मरता है। सोचे कि चल भाई...।" (सिन्हा 52) मैत्रेयी पुष्पा का उपन्यास 'त्रिया हठ' में मीरा की मामी चुनाव में खड़ी है, उनका कहना है — "हमने तो कह दी है कि बेटा, चुनाव में ठाड़े तो हम रहेंगे, जीत गए तो काम तुमको ही उठाना होगा।" (पुष्पा 22) ये कथन अपने आप दर्शाता है कि किस प्रकार मामीजी जैसी राजनीतिक चेतना शून्य स्त्रियाँ, पारिवारिक विरासत को बचाने के उद्देश्य के तहत सत्ता में खड़ी होती है, जबकि समाज कल्याण से उनका कोई लेना देना नहीं है। जब मीरा कहती है — "तब तो आरक्षण बेकार गया!"(पुष्पा 22) उस पर निर्लज्ज की तरह जवाब देती है — "बेकार काए गया बिन्नू! हम जीतेंगे!... जीतकर मोड़ा को पदवी थमा देंगे। काए इनके बाप की विरासत देना जानते हैं पूत को? हमारे पास भी अनमोल चीज आ गई है।"(पुष्पा 22) पारिवारिक विरासत को बचाने में ही अपनी जीत समझती हैं। 'ये आम रास्ता नहीं' की पंचायत प्रमुख बीना यादव के पास जब मृदु गरीब बच्ची के एडमिशन के लिए मदद मांगने जाती है, तब दो टूक जवाब मिलता है — "ऐसा है बहन, पति से पूछे बगैर तो हम एक पैसा तक नहीं दे सकते। न कुछ लिखकर या साइन करके देने से मना किए हैं वे।"(गुप्त 120) कथा-साहित्य में स्त्री आरक्षण का एक पक्ष यह दिख रहा है कि कैसे आरक्षित सीट पर महिला राजनीति में आ तो जा रही है, लेकिन अपनी राजनीति करने या राजनीति के माध्यम से अपना या समाज का कल्याण करने की कोई चेतना ही नहीं है। उनकी सोच और आचरण आरक्षण के उद्देश्य के प्रतिकूल ही नहीं प्रतिरोधी भी है। ऐसी स्थिति के पीछे के कारण पर चंद्रकांता का मन्तव्य हैं — "मुख्यधारा की तरह राजनीति में भी महिलाओं कि उपस्थिति मिसिंग है। पॉलिसी मेकिंग और डिसीजन मेकिंग राजनीति के दो प्रमुख बिंदु हैं, लेकिन महिलाओं का सामाजीकरण या वैचारिक कंडिशनिंग इस तरह से होने ही नहीं दी जाती कि वे राजनीति

में भागीदारी का सोचें। राजनीति में स्वप्रेरित महिलायें कम हैं। जहाँ हैं, वहां भी या तो परिवारवाद का प्रभाव है या उन पर राजनीतिक उम्मीदवारी थोप दी गयी है। यह एक बड़ा कारण है कि स्थानीय निकायों में एक तिहाई आरक्षण के बावजूद महिलाओं की राजनितिक उपस्थिति प्रभावी नहीं हो पायी है।"(चंद्रकांता) यह एक बहुत बड़ा कारण है स्त्री-राजनीति से निराशा हाथ लगने का, लेकिन एक दूसरा पक्ष चेतना सम्पन्न महिलाओं का भी है।

आरक्षण के तहत राजनीति में आने वाली सारी स्त्रियां राजनीतिक चेतना शून्य पुरुष का मोहरा मात्र नहीं, बल्कि अपनी राजनीतिक सूझ-बुझ व पुरुष राजनेता का मोहरा बनने से इंकार करती स्त्रियां भी परंपरा से प्रगति में हिंदी कथा साहित्य में है। परंपरा में मैत्रेयी पुष्पा की कहानी 'फैसला' में वसुमति राजनीति में आती है, तो राजनीतिक आरक्षण के तहत है, पर अंतत: अपने फैसले लेती हैं और अपना वोट अपने पति को नहीं देती है। फलत: संयोगवश उसका पति उस एक वोट से चुनाव हार जाता है। प्रगति में ऋषिकेश सुलभ का उपन्यास 'अग्निलीक' में नाज बेगम है। नाज बेगम आरक्षण के तहत चुनाव में खड़ी तो होती है, पर अपने पति अकरम अंसारी की कठपुतली बनने को तैयार नहीं होती। रज्जन पासवान से दो टूक कहती है — "पासवान जी, अब आप अपने दोस्त से राय सलाह छोड़कर मेरे साथ इस मामले में बतियाइए। अगर आप लोग चाहते हैं कि इज्जत बनी रहे, तो मेरा साथ दीजिए। हमारी सलाह है कि आप भी अपनी औरत को मुखिया का इलेक्शन लड़ने के लिए तैयार कीजिए।...इस बार खेल बदला हुआ है। हम अकरम बाबू नहीं हैं कि कौनो कलवारिन के ठीहा पर जाकर गरदन रख दे, और जिबह हो जाए।"(सुलभ 230) महिला आरक्षण व स्त्री-राजनीति का एक पक्ष उनका मोहरे के रूप में बने रहना और पुरूष के द्वारा अपनी सत्ता साधने का माध्यम है, तो दूसरा सकारात्मक पक्ष यह भी है कि अपना फैसला करने की सूझबूझ लिए स्त्रियाँ भी नजर आ रही हैं। भले कथा साहित्य में ऐसे प्रसंग कम नजर आ रहे है, पर महिला आरक्षण के प्रति पुरुष राजनीति के प्रतिरोधी तेवर और महिला राजनेता की उदासीनता के खिलाफ ये प्रसंग प्रतिरोध के सूचक है।

4.3. राजनीति में महिलाओं का आगमन —

आरक्षण के तहत राजनीति में महिलाओं का आना और लाया जाना एक तथ्य है, तो इसके अतिरिक्त अन्य अनेक कारण है, जिसके तहत राजनीति की जमीन पर स्त्रियाँ आ रही है। महिला अधिकारी, कार्यकर्ता नाइस हसन के कथनानुसार — "राजनीति में महिलाओं का आना किसी निश्चित प्रक्रिया के तहत नहीं हो पा रहा है। कुछ नेताओं की पत्नियाँ, बेटियाँ मजबूरी में आ गई। कुछ को किसी नेता की मौत के बाद जगह मिली। कुछ गलैमर के कारण आई। कुल मिलाकर वंशवाद और वोट पॉलिटिक्स को ही बढ़ावा मिला।" (हसन) भारतीय राजनीति में राजनीतिक रणनीति के तहत, सालिड बैकग्राउंड के तहत, महत्वाकांक्षा व जनकल्याणकारी योजना के मद्देनजर, सेवामूलक कार्य करने के उद्देश्य के तहत राजनीति में महिलाओं का

आगमन हुआ है। इन सभी मामले में राजनीति की जमीन स्त्री के लिए और समाज के लिए प्रगतिमूलक कितनी है और प्रतिरोधी कितनी है, इसे 21वीं सदी के कथा साहित्य में विषय बनाकर स्त्री-प्रतिरोध के राजनीतिक संदर्भ को समग्रता में देखने की कोशिश हुई है।

4.3.1. राजनीतिक रणनीति व स्त्री का राजनीतिक प्रवेश —

स्त्री-राजनीति का एक पक्ष यह देखने को मिलता है कि जैसे चुनाव सामने आता है, ऐसी स्त्रियों को पार्टी में टिकट मिल जाता है या कार्यकर्ता के रूप में सामने आती है, जिनका राज्य और राजनीतिक सोच से कोसों दूर तक कोई संबंध नहीं होता, बल्कि पार्टी द्वारा अपनी राजनीति को साधने के लिए वोट बैंक को अपनी तरफ करने के लिए राजनीतिक रणनीति के तहत राजनीति में प्रवेश करा दिया जाता है। मीना पाठक लिखती हैं — "भारतीय परिवारों की तरह भारतीय राजनीति में भी पुरुषों का दबदबा रहा है।...राजनीतिक पार्टियाँ महिलाओं को एक बड़ा वोटबैंक तो मानती हैं, पर प्रत्याशी के रूप में उन्हें टिकट देने से हिचकिचाती हैं। यही सब कारण है कि राजनीति में महिलाओं की भागीदारी कम है।"(पाठक) वोट बैंक की राजनीतिक रणनीतियों के तहत महिलाओं का राजनीति में आगमन होते रहा है। वास्तविक राजनीति के इस पक्ष को हिंदी कथा साहित्य में २१वीं सदी में बखूबी उभारा है और सत्ता-पक्ष द्वारा स्त्री-पक्ष में जो राजनीतिक रणनीति चलाई जा रही है उसका प्रतिरोध किया गया है।

गीताश्री का उपन्यास 'हसीनाबाद', रजनीगुप्त का उपन्यास 'ये आम रास्ता नहीं', नीलिमा सिन्हा की कहानी' तैंतीस परसेंट' में राजनीति के इस पक्ष को विषय बनाया गया है। गीताश्री का उपन्यास 'हसीनाबाद' में रामबालक सिंह कला-जगत की नाचने-गाने वाली गोलमी को राजनीति में लेकर आते है, इसके पीछे गोलमी की राजनीति में रुचि या रामबालक सिंह का स्त्री-राजनीति को प्रोत्साहित करना नहीं, बल्कि अपने पार्टी के हित को साधना रहा। रामबालक सिंह का कथन है — "यह तो लोगों को अपनी तरफ खींचने की गजब ताकत रखती थी! इसमें बहुत कुछ था, जो इस्तेमाल किया जा सकता था। बहुत कुछ। इसे पहचानने का मतलब था लॉटरी लगना।" (गीताश्री 131) अर्थात् अपनी पार्टी के लिए वोट खींचने के लिए गोलमी को राजनीति में लाते हैं। ठाकुर सजावल सिंह भी गोलमी का उपयोग राजनीतिक रणनीति के तहत चुनाव प्रचार में करना चाहते हैं। 'हसीनाबाद' की गोलमी ही नहीं, बल्कि रज्जो भी इसी रणनीति के तहत लाई जाती है। रजनी गुप्त का उपन्यास 'ये आम रास्ता नहीं' की मृदु, बलात्कार पीड़ित कुंजू, 'यीशू की कीलें' की भारती राजनीति की जमीन पर पुरुष राजनेता द्वारा राजनीतिक रणनीति के तहत लाई जाती हैं। मृदु को राजनीति में लाने के कारण के पीछे स्वीकारोक्ति है कि वह ब्राइट नहीं है, ना ही कोई पॉलीटिकल बैकग्राउंड, ना ही एक्सपोजर, फिर भी उसके साथ खड़ी नेहा गिड़वानी जैसी पढ़ी-लिखी, शार्प, मेहनती-हिम्मती स्त्री की जगह मृदु को पार्टी में स्थान मिलता है, तो केवल राजनीतिक रणनीति के तहत पिछड़े वर्ग के वोट के लिए। पार्टी के कथनानुसार — "कुछ भी कहो मगर रिजर्व

कोटेवाली तो नहीं है न? मृदु को लेना ही पड़ेगा। पिछड़े वर्ग की है, स्त्री है और बोलना भी आता है उसे।"(गुप्त 90) किरण सिंह की कहानी 'यीशू की कीलें' में भारती को राजनीति में इसी वोट बैंक की रणनीति के तहत लाया जाता है। जब दीदीजी शिवेंद्र से पूछती है कि उसमें क्या कमी है, जो उसकी जगह पार्टी भारती को नेता बनाना चाहती है, तब शिवेंद्र कहते हैं — "हमारे पार्टी सुप्रीमो सताई हुई, गरीब, हाशिया की स्त्रियों को आगे लाना चाहते हैं।" (सिंह 110) और इसके पीछे के उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं — "महिला सशक्तिकरण लोकसभा के लिए दस साल का एजेंडा है। दो हजार उन्नीस में पार्टी सुप्रीमो को प्रधानमंत्री बनना है।" (सिंह 110) हसीनाबाद में रामखेलावन सिंह रज्जो को पार्टी में लाते हैं, तो महिला और दलित कार्ड के तहत अपनी राजनीति साधने के लिए। गीताश्री लिखती हैं — "रामखेलावन सिंह की पार्टी रज्जो को लेकर महिला और दलित कार्ड खेलने की तैयारी में जुट गई थी। उसे बाकायदा उसी रूप में प्रमोट किया जा रहा था।" (गीताश्री 230) इतना ही नहीं, बलात्कार जैसी घटना में बलात्कारी को सजा दिलवाने की जगह बलात्कार पीड़िता को मिली मीडिया कवरेज का फायदा उठा उसे राजनीति में खड़ा करने की सोच स्त्री को लेकर होने वाली अवसरवादी राजनीति की पोल खोल रही है। रजनी गुप्त का उपन्यास 'ये आम रास्ता नहीं' में स्वयं बलात्कार पीड़ित कुंजू के शब्दों में — "दीदी, मैं सचमुच भाग्यशाली हूं जिसे मीडिया ने इतना कवरेज दिया। कल नेशनल डेमोक्रेटिक पार्टी वाले लोग आए थे, वह हममें नेता बनने की संभावनाएं देखने लगे हैं। कह रहे थे, तू इतनी बोल्ड है, तेरे जैसी लड़की को तो पार्टी में होना चाहिए?" (गुप्त 143) और कुछ दिन बाद खबर आती है कि अगले चुनाव में वह नेता जी की सरपरस्ती में चुनाव लड़ेगी। इस प्रकार राजनीतिक रणनीति के तहत इन स्त्रियों को चुनाव में स्थान दिया जाता है। ऐसे प्रसंग को साहित्य में विषय बना स्त्री-राजनीति द्वारा पार्टी हित साधने की, चुनाव जीतने की जो रणनीतियाँ बनती रहती है, जिसमें जनकल्याणकारी योजना और महिला आरक्षण के उद्देश्य का ह्रास और जीतना प्रमुख हो जाता है, उसका प्रतिरोध है।

4.3.2. महत्वाकांक्षा पूर्ति हेतु राजनीति में स्त्री का आगमन —

राजनीति में अपनी पहचान व महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए आने वाली ऐसी स्त्रियों की भी कमी नहीं है, जो केवल पद, प्रतिष्ठा, धन-दौलत के लोभ में राजनीति में कदम रखती है। सुधा अरोड़ा लिखती हैं — "राजनीति में महिलाओं का प्रतिशत कम होना सिर्फ भारत की समस्या नहीं है! पूरे विश्व में इसे देखा जा रहा है। पिछले दिनों अमेरिका में लेडी क्लिंटन अगर चुनाव जीत जातीं, तो अमेरिका की पहली महिला प्रेसिडेंट होने का इतिहास रचतीं।...पर यह भी बहुत बड़ा सच है कि राजनीतिक महत्वाकांक्षा की मारी महिलाएं, देश के सामने कोई बड़ा आदर्श प्रस्तुत कर पाने में अक्षम रही हैं।" (अरोड़ा) 21वीं सदी के कथा साहित्य ने राजनीति के गलियारे में कदम रखने वाली महत्वाकांक्षा प्रेरित स्त्रियों को भी विषय बनाया गया है। चूंकि राजनीति पद, प्रतिष्ठा या धन-दौलत कमाने वाला कार्यक्षेत्र नहीं है, बल्कि समाजकल्याण का मार्ग है। ऐसी स्त्रियां जो

महत्वाकांक्षा प्रेरित हो राजनीति में कदम रखती है न कि कोई समाज कल्याणकारी योजना के तहत, उसका प्रतिरोध हुआ है।

भूमिका द्विवेदी की कहानी 'दांव' की पूनम यादव, गीताश्री की 'हसीनाबाद' की गोलमी व रज्जो, रजनी गुप्त की 'ये आम रास्ता नहीं' की मृदु का राजनीति के प्रति आकर्षण व उसमें प्रवेश का पहला कारण राजनीति के माध्यम से अपनी पहचान बनाना व अपनी महत्वाकांक्षा की पूर्ति है। मृदु के राजनीति में आने के पीछे के कारण के बारे में रजनी गुप्त लिखती हैं — "राजनीति का रोब, ग्लैमर और ताकत मृदु को अपने पास खींचती थी, सो इस तरफ आने के लिए वह कोई न कोई मौका तलाशती रहती।"(गुप्त 12) मृदु का राजनीति के प्रांगण में कदम रखने के पीछे का उद्देश्य सत्ता, ताकत और प्रसिद्धि की प्राप्ति रही। दूसरी ओर 'हसीनाबाद' की गोलमी व रज़्जो भी राजनीति में महत्वाकांक्षा के तहत आती हैं। गीताश्री, गोलमी के बारे में लिखती हैं — "गोलमी को हुनरमंद प्रेमी नहीं चाहिए, उसे कोई ठाट-बाट वाला साथी चाहिए, जो उसे सत्ता तक पहुँचा दे।" (गीताश्री 160) इतना ही नहीं जब चुनाव जीतती है, तो जिस गरीबी में वह जी कर आई थी, उस गरीबी का, उन लोगों का, यहाँ तक की अपनी कला को भी अपनी राजनीतिक पहचान बनाने के चक्कर में ही पीछे छोड़ देती है। गीताश्री, गोलमी के अंदर के बदलाव को लेकर संकेत करती हैं — "यह तो वही गंध थी जो उसे पसंद थी, मगर ये पसंद अब बदल गई थी। अम्मा भी जानती थी कि अब वह विवेल साबुन इस्तेमाल नहीं करती। यह सब छोटे लोगों की साबुन थी। अब वह पियर्स, लिरिल या फिर लक्मे सौंदर्य प्रसाधन इस्तेमाल करने वाली गोलमी थी। (गीताश्री 183) रज्जो भी रामखेलावन सिंह के साथ राजनीति में कदम रखती है, तो राजनीतिक चमक-दमक के तहत अपनी महत्वाकांक्षा की पूर्ति यश, पद, प्रतिष्ठा व गोलमी से स्वयं को श्रेष्ठ दिखाने की लालसा रही। गीताश्री, रज्जो के रामखिलावन जी की पार्टी में महिला मंडल के पद पर आसीन होने व गोलमी के खिलाफ खड़े होने के बारे में लिखती हैं — "रज्जो की वैसे ऐसी कोई खास मजबूरी नहीं थी कि वह गोलमी के खिलाफ खड़ी होती, मगर वह अपनी आकांक्षाओं के आगे विवश हो गई थी और अब रज्जो की बचपन की वह इच्छा उभर कर आ गई थी, जो आज तक वह दबाती हुई आई थी। वह थी गोलमी से मुकाबला।" (गीताश्री 175) भूमिका द्विवेदी की कहानी 'दांव' में राज्यपाल श्री रामदयाल जोगी जी की रखैल पूनम यादव राजनीति में आने व बने रहने के लिए जो दांव खेलती है, उसके पीछे का उद्देश्य अपने भविष्य को सुरक्षित करना है। महेश काका पूनम से कहते हैं — "पूनम बिटिया, कछु आपन जिनगी का भी रंगाई देख्यो तुम...उमिर होये रही हय बिटिया...बुढ़वा घाघ तुमका मार के मरी…तनिक विचारों बिटीवा...एकरे जीते जी तुम्हारा कछु भला नाय होये सकत..."(द्विवेदी130) अपने भविष्य को संवारने के उद्देश्य से पूनम यादव राजनीति के गलियारे में कदम रखती है। ऐसे में जरूरी सवाल यह खड़ा हो जाता है कि महत्वाकांक्षा प्रेरित इन स्त्रियों द्वारा समाज कल्याण कितना संभव हैं, ऐसे में स्त्री-राजनीति का भविष्य क्या है।

4.3.3. मजबूत पारिवारिक पृष्ठभूमि (सॉलिड बैकग्राउंड) के तहत राजनीति में आई स्त्री —

राजनीतिक चलन के तहत राजनीतिक बैकग्राउंड से स्त्री का राजनीति में सहज प्रवेश होता है, तो दूसरी तरफ महिला आरक्षण के कारण राजनीति में महिलाओं का प्रवेश अनिवार्य हुआ है, लेकिन इन सबसे ऊपर यह देखना जरूरी है कि मजबूत पारिवारिक पृष्ठभूमि लेकर राजनीति में आई स्त्रियां समाज व राष्ट्र के हित के लिए क्या कर पा रही है। समाज व राष्ट्र के हित में उनका प्रतिरोध कितना सकारात्मक है। विजय पुष्पम् लिखती हैं —

> "गांव पंचायत जैसे छोटे चुनावों में भी यदि महिला सीट है, तो प्रधान महिला भी जनरल मीटिंग्स में नही जाती है या नहीं जाने दिया जाता है। उसका पति ही या ससुर ही प्रधान कहा जाता है।...ये अलग बात है कि इंदिरा गांधी जैसी महिला देश की प्रधानमंत्री रही, लेकिन उसके पीछे उनकी सलाहियत कम और नेहरू परिवार से होने का आभामण्डल अधिक प्रभावी था। ऐसे ही नज़्म हेपतुल्ला, तारकेश्वरी सिन्हा, मोहसिना किदवई या शीला दीक्षित भी अपनी पारिवारिक पृष्ठभूमि की वजह से आगे आ पायीं। अन्य महिलाएं जो किसी प्रदेश में मंत्री या मुख्यमंत्री या किसी अच्छे पोर्टफोलियो में रहीं, उनके पीछे भी परिवार या किसी न किसी समर्थ व्यक्तित्व का हाथ रहा।" (पुष्पम)

रजनीगुप्त अपना उपन्यास 'ये आम रास्ता नहीं' में राजनीतिक बैकग्राउंड के साथ राजनीति में आई स्त्रियों के प्रति पुरुष राजनेता के नजरिए की बखिया उधेड़ती हुई लिखती हैं — "पॉलिटिक्स साली है ही ऐसी कुत्ती चीज।...यहाँ आई ज्यादातर औरतें या तो अपने पॉलीटिकल बैकग्राउंड की वजह से सालों से जमी है या किसी न किसी नेता के झोले में पड़े खूबसूरत गुलदस्ते की तरह सजी-धजी घूमती फिरती है और फिर इन्हें भी किस कदर बैकफुट पर धकियाने में जुटे रहते हैं नेता लोग।"(गुप्त 9) मजबूत बैकग्राउंड से आई महिला राजनेता के प्रति भी पुरुष राजनेता का नजरिया सही नहीं रहता है। आत्मकथा 'आपहुदरी' में रमणिका गुप्ता ने लिखा है कि इंदिरा गांधी को भी राजनीति में पुरुष राजनेता के अश्लील आचरण को सहना पड़ा। कॉग्रेस की वरिष्ठ नेता श्रीमती बनर्जी रामणिका गुप्ता की शिकायत पर उनसे कहती हैं — "ऐसा तो राजनीति में होता ही है। यह सब इंदिरा जी को भी झेलना पड़ा है।" (गुप्ता 396) तो दूसरी ओर, मनोरमा सिंह 'महिला विरोधी बयान और मर्दवादी बयानबाजी' शीर्षक लेख में लिखा है कि कैसे श्रीमती गांधी के साथ पर्सनल लाइन पार करने वाले को वह बर्दाश्त नहीं करती थी। मनोरमा सिंह लिखती हैं —

> "बीबीसी हिंदी की एक लेख में वरिष्ठ पत्रकार कुमकुम चड्ढा की बहुचर्चित किताब 'द मेरी गोल्ड स्टोरी-इंदिरा गांधी एंड अदर्स' के हवाले से जिक्र है कि श्रीमती गांधी के मामले में 'पर्सनल लाइन' पार करने की कोई हिम्मत और इजाजत किसी को भी नहीं थी। लोग उनके सामने तभी बोलते थे, जब वो बोलने का संकेत देती थी। उनकी किताब में वाकया है कि कैसे मध्यप्रदेश के उनके एक मंत्री ने

> कैबिनेट बैठक के दौरान उनके सौंदर्य की तारीफ कर दी थी, तो उन्होंने उन्हें तुरंत बाहर का रास्ता दिखा दिया था, अपने एक कैबिनेट मंत्री से भी एक बार वो इसी बात पर नाराज हो गई थी कि उसने उनके सौंदर्य की तारीफ कर दी थी।" (सिंह)

ऐसे में इंदिरा गांधी की तरह अस्मिता-बोध ही स्त्री के राजनैतिक प्रतिरोध को सही दिशा दे पाएगा, वरना समझौते के तहत सुरक्षाकवच की आड़ में स्त्री-राजनीति अपने अर्थ को पूर्ण नहीं कर पाएगी। स्त्री राजनेता के प्रति पुरुष राजनेता के विद्रूप पक्ष को उद्घाटित कर साहित्य में उनके हित में प्रतिरोध के स्वर को मजबूती दी गई है।

4.3.4. जनकल्याण के उद्देश्यपरक आयाम के तहत राजनीति में आई स्त्रियां —

राजनीति का एक सच है कि पुरुष राजनेता राजनीतिक रणनीतियों के तहत स्त्री को राजनीति में ला रहे हैं, तो महत्वाकांक्षा से प्रेरित होकर स्त्रियां भी राजनीति में आ रही हैं, लेकिन इन सबसे ऊपर एक सत्य यह भी है कि राजनीति की जमीन पर जनकल्याणकारी उद्देश्य को लेकर आई स्त्रियाँ हिंदी कथा साहित्य में नजर आ रही है और तमाम विसंगतियों और सीमाओं के वाबजूद स्त्री-राजनीति का यह पक्ष तमाम प्रतिकूल परिस्थितयों के प्रति एक सकारात्मक प्रतिरोध है।

'हसीनाबाद' की गोलमी भले महत्वाकांक्षा की पूर्ति के उद्देश्य से राजनीति में कदम बढ़ाती हैं, लेकिन सिर्फ महत्वाकांक्षा ही कारण नहीं रहा, बल्कि पूरे समाज का, स्त्रियों के उद्धार के लिए वो राजनीति का हिस्सा बनती है। गीताश्री लिखती हैं — "गोलमी किसी जाति के लिए नहीं, वह स्त्रियों के उत्थान के लिए बात करती थी, उनकी पढ़ाई-लिखाई और रोजगार की बात करती थी, लड़कियों को आर्थिक रूप से ताकतवर होने की बात करती थी, वैशाली के प्राचीन वैभव की बात करती थी।" (गीताश्री 171) 'ये आम रास्ता नहीं' की वरिष्ठ राजनेता 'रत्ना' व 'मृदु' जनकल्याण के उद्देश्य को लेकर राजनीति करती हैं। वरिष्ठ राजनेता 'रत्ना' इसके लिए हर स्तर पर समझौता तक करती है, तो मृदु हर स्तर पर फील्ड में उतर कर काम करती हैं। रजनी गुप्त मृदु के बारे में लिखती हैं — "...उसने खूब मेहनत से लोगों के बीच जा जाकर उनकी समस्याएं सुनी।...जगह-जगह जाकर लोगों से मिली, उनके साथ मीटिंगे कीं। निचले तबके के लोगों को अपनी पार्टी से जोड़ा, खास तौर पर महिलाओं को। वह सबसे पहले महिलाओं से ही मिलती। उनके बच्चों की खातिर दर्जनों बिस्किट के पैकेट ले जाती, फिर उनके स्वास्थ्य से जुड़ी समस्याओं पर उनके बीच बैठकर चर्चा करती। (गुप्त 69) इतना ही नहीं, आगे चलकर बलात्कार पीड़ितों की सेवा के लिए 'विश्रांति' नामक संस्था से भी जुड़ती है। किरण सिंह की कहानी 'यीशू की कीलें' में दीदी जी सत्ता में महिलाओं और मुस्लिम समाज के हित के उद्देश्य को लेकर आती है। वह भारती से कहती है — "भारती! पूरा हिंदुस्तान घूम कर देख लो, सबसे खराब हालत मेरे मुसलमान भाई बहनों की है। आज ये हिंदुओं की बदजाति से भी बदतर हालत में हैं। मैं इनके लिए क्या करूं? मैं बेबसी से बौरा रही हूं। मेरी

मदद करो।" (सिंह 117) इतना ही नहीं आगे कहती हैं — "भारती! क्या तुम्हें लगता है कि अदालत से इलाहाबाद वाली लड़की की आत्मा को न्याय मिल पाएगा? क्या अरिमर्दन जीत गया तो मेरे मुसलमान भाई-बहनों के लिए काम करेगा? क्या अरिमर्दन से अलग होकर मैं चुनाव लड़ूं तो जीत पाऊंगी? क्या अरिमर्दन एक औरत को इंसान समझेगा और समाज सेवा के लिए घर से निकलने की इजाजत देगा।" (सिंह 128) स्त्री-राजनीति का यह सकारात्मक पक्ष, राजनीतिक विसंगतियों के विरुद्ध एक जरूरी प्रतिरोध है।

आरक्षण ने स्त्री के राजनीतिक प्रवेश के द्वार को सुलभ बनाया और जनकल्याणकारी योजना के मद्देनजर राजनीति में स्त्री का आगमन अपने आप में स्त्री-राजनीति के प्रति एक सामंती रूढ़ विचार का प्रतिरोध है, जो यह मानता रहा कि राजनीति औरतों के योग्य नहीं है और औरत राजनीति के योग्य नहीं है, लेकिन आज जब आरक्षण के तहत तथा अन्य अनेक कारण जैसे राजनीतिक रणनीति, मजबूत पारिवारिक राजनीतिक पृष्ठभूमि , महत्वाकांक्षा प्रेरित हो स्त्री, राजनीति में आ रही या लाई जा रही है, तो 'विचार के प्रतिरोध' के साथ 'प्रतिरोध पर विचार' करना भी जरूरी हो जाता है। जिसपर 21वीं सदी में प्रतिरोध की दिशा में विचार किया गया है, ताकि इन विद्रुपताओं से पृथक हो आरक्षण के उद्देश्य को सार्थक करने की दिशा में स्त्री का राजनीतिक प्रवेश हो।

4.4. स्त्री-राजनीति : परिवार व समाज, प्रतिरोधमूलक —

महिला राजनीति व स्त्री राजनेता के प्रति पारिवारिक-सामाजिक नजरिया उसके राजनीतिक भविष्य की दिशा में जरूरी आयाम बन जाता है। भारतीय रूढ़िवादी समाज स्त्री का कार्यक्षेत्र घर-परिवार तक सीमित देखने का आदि है। इससे आगे उसकी कल्पना करता है, तो निश्चित समयावधि वाले ऐसे कर्मक्षेत्र तक जहां सुरक्षा अधिक व जोखिम कम है। ऐसे में राजनीति व स्त्री की जब बात आती है, तो राजनीति के प्रति सामाजिक नजरिया दोषपूर्ण होने के कारण यह देखा जाता है कि राजनीति में आई स्त्री के प्रति भी पारिवारिक-सामाजिक नजरिया दोषपूर्ण रहता है। आभा बोधिसत्व लिखती हैं —

> "जिस समाज में बेटियों को देर रात बाहर रहने के अंजाम से डराया जाता है, उस समाज में राजनीति में भागीदारी बहुत दूर की कौड़ी है। और तो और पिता, भाई, पति अक्सर उन महिलाओं को लांक्षित करते पाए जाते हैं, जिन महिलाओं ने अपनी मेहनत और लगन से समाज में अपनी जगह बनाई हों। तो कुल मिला कर स्त्री कुछ करे तो लांक्षण, और न करे तो कुढ़ मगज।" (बोधिसत्व)

परिवार और समाज का नजारियाँ स्त्री-राजनीति को लेकर न केवल दोषपूर्ण रहता है, बल्कि प्रतिरोधी भी हो उठता है और ये प्रतिरोध दिन-प्रतिदिन इतना सघन होने लगता है कि स्त्री को राजनीति छोड़ने तक को बाध्य कर देता है। स्त्री-राजनीति के प्रति परिवार और समाज के प्रतिरोधी रवैया को 21वीं सदी के साहित्य में उभारकर साहित्यकारों ने पारिवारिक-सामाजिक रुग्ण नजरिए का प्रतिरोध दर्ज किया है।

यह आम धारणा है कि राजनीति की जमीन पर अगर स्त्री है, तो जरूर दैहिक रूप से समझौते के तहत। गलत काम करके ही एक स्त्री-राजनीति में अपनी जमीन बना सकती है। ऐसे में अपने कार्यक्षेत्र राजनीति में तो महिला को पुरुष राजनेता के दैहिक आचरण से संघर्ष करना ही पड़ता है, वहीं पारिवारिक-सामाजिक धरातल पर भी उसका संघर्ष शुरू हो जाता है। 'ये आम रास्ता नहीं' में मृदु के राजनीति की जमीन पर आने के कारण पति तो पति उसके बच्चे तक उससे दूर हो जाते हैं और उसके चरित्र पर प्रश्नचिन्ह खड़ा कर देते हैं। पति के शब्दों में — "रात भर आवारा औरतों की तरह, बेलगाम घोड़ी की तरह इधर-उधर भटकती रहती हैं वह तो। इतना सज-धजकर पार्टी दफ्तर जाती है कि क्या बताएं आपको? ना जाने किस-किस के संग क्या-क्या नहीं करती होगी वह? बड़ी बदचलन औरत है वह तो।"(गुप्त 51) उम्मीद पाली जाती है कि घरेलू कार्य को पूरा कर अगर समय मिले तभी आगे बढ़े, वरना इसका क्या मतलब — "...कहा था ना, पॉलिटिक्सबाजी करनी हो, तो इस घर से बाहर रहकर करना। यहां रहकर प्लीज इस माहौल को खराब मत करो।" (गुप्त 76) उसके अपने बच्चे उससे कहते हैं — "किसने कहा आपसे ये सब करने को? क्यों पॉलिटिक्स में जा रही हो? अच्छी भली जिंदगी जी तो रही थीं आप। ये नया रोग पालने की क्या जरूरत है? खामाखा का चस्का लग गया इसका आपको तो।" (गुप्त 21) राजनीतिक बैठक में सज-संवरकर जाने को भी गलत नजरिए से देखा जाता है — "राजनीतिक बैठक में जा रही हो या किसी फैशन परेड में? सोनिया गांधी तक तो कितने सोबर तरीके से रहती हैं, तमाम राजनेत्रियां ऐसे भड़काऊ कपड़े तो कभी नहीं पहनती, फिर तुम्हीं क्यों ऐसे चमकीले भड़कवाले कपड़े पहनकर जाती हो? जरूर गंजू के साथ कहीं होटलबाजी करने का...।" (गुप्त 78) राजनीति और घर में एक का चयन करने को कहते हैं। यही डर नीलिमा सिन्हा की कहानी 'तैंतीस परसेंट' में रुचि को भी है, वह सोचती है — "राजनीतिक गहमागहमी में कहीं यह सब कुछ बिखर तो नहीं जाएगा? यह बसा बसाया घर, रुचि की यह जमी जमाई दुनिया, जिसे रुचि अब तक सूम के धन की तरह सेती आई है, कहीं सचमुच बिला तो नहीं जाएगा यह सब कुछ? (सिन्हा 50) 'यीशू की कीलें' में दीदीजी भी कहती हैं — "क्या अरिमर्दन एक औरत को इंसान समझेगा और समाज सेवा के लिए घर से निकलने की इजाज़त देगा।"(सिंह 128) अत: पारिवारिक नजारिया स्त्री-राजनीति के प्रति स्वस्थ नहीं है। परिवार के साथ समाज भी महिला राजनेता के प्रति स्वस्थ दृष्टि नहीं रखता। प्रत्यक्षा सिन्हा का मन्तव्य हैं — "राजनीति में महिलाओं की भागीदारी सामाजिक संरचना पर काफ़ी कुछ निर्भर करती है।" (सिन्हा) और सच्चाई भी यही है। मृदु के पॉलिटिक्स को लेकर समाज में स्त्री-पुरुष बातें बनाते हैं — "मृदु को देखो, इतना मेकअप करके कोई औरत है राजनीति करने जाती है? ये कैसी अजीब औरत है, इसे तो अपने बच्चों की जरा भी फिक्र नहीं।...इसे तो अपने घर गृहस्थी की जरा भी परवाह नहीं।...सोचो, जो रोज रात को 12 या 1बजे उसी गंजू के बगल में बैठ कर लौटे, तो क्या गुजरती होगी इसके पति पर?...और सुनो, वो गंजू ही इसे भर-भरकर गिफ्ट देता रहता?...कोई यूं ही नहीं दे देगा ये सब तोहफे?" (गुप्त 24) इस प्रकार परिवार व समाज

के नजरिए में स्त्री-राजनेता के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण का अभाव दिखता है। ये नजारिया उचित नहीं है, इसलिए रचनाकार की ओर से ऐसे नजरिए का प्रतिरोध लेखन के स्तर पर किया गया है।

4.5. स्त्री देह की राजनीति — राजनीति में स्त्री-राजनेता के प्रति पुरुष राजनेता का देह संबंधी नजारिया स्त्री-राजनीति के प्रति एक जरूरी प्रतिरोधी आयाम के रूप में प्रस्तुत है। दूसरी ओर, देह संबंधित नजरिए के प्रति स्त्री-राजनेता का नजरिया राजनीतिक अवरोधों के विरुद्ध जरूरी प्रतिरोध की सृष्टि कर रहा है। इसे दो आयाम के अंतर्गत देखा जा सकता है — क) पुरुष राजनेता और स्त्री देह ख) सुरक्षाकवच बनाम स्त्री-राजनीति

4.5.1. पुरुष राजनेता और स्त्री देह —

राजनीति का एक पक्ष देह शोषण से जुड़ा है। राजनीति में स्त्री के प्रति राजनेता का आचरण दैहिक रहता है। विजय पुष्पम् के अनुसार — "राजनीति में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी न होने के पीछे इस क्षेत्र में बढ़ता प्रदूषण भी है। यदि कोई दबंग लड़की या महिला यहाँ आना भी चाहती है, तो परिवार वाले असुरक्षा और पीठ पीछे होती आलोचना और भद्दी बातों को देखते हुए जाने की अनुमति नहीं देते। यदि विरोध करके किसी तरह आ भी जाये, तो राजनीति के खुर्राट भेड़िये साबुत निगल लेने को तैयार बैठे मिलते हैं।" (पुष्पम्) एक स्त्री चाहे कितने ही सकारात्मक पक्ष को लेकर या कितने ही सॉलिड बैकग्राउंड के साथ राजनीति में क्यों ना आए, पुरुष राजनेता की नजर में स्त्री राजनेता देह पहले, मंत्री या नेत्री बाद में नजर आती है। उपन्यास 'हसीनाबाद' में रामबालक सिंह इस कटु सत्य से पर्दा उठाते हुए कहते हैं — "राजनीति में वह महिला पहले, नेता बाद में और मंत्री सबसे बाद में मानी जाती हैं।"(सिंह 109) 'यीशू की कीलें' में अरिमर्दन सिंह कहता है – – "राजनीति में औरतों के सिर्फ दो नाम होते हैं – रंडी या चंडी।"(सिंह 109) रजनीगुप्त का उपन्यास 'ये रास्ता नहीं' में प्रदेश अध्यक्ष राजनीति में नई आई मृदु को राजनीति में स्त्री के प्रति पुरुष राजनेता के नजरिए की बखिया उधेड़ते हुए कहते हैं, जब मृदु राजनीति में औरतों के करियर के बारे में पूछती है — "सच ही सुनना चाहती है तो सुन, जंगली घासपूस के बीच खिले गूलर के फूल की तरह खिलती है राजनीति में आई औरतें, जिन्हें हर कोई लपककर अपने मुँह में गपक लेना चाहता है।"(गुप्त 11) राजनीति में आई औरतों को राजनेता किस तरह नींबू की तरह निचोड़ कर फेंक देते हैं। अपनी राजनीति को साधने के लिए उसके देह का इस्तेमाल करते हैं, कहानी 'यीशू की कीलें' में किरण सिंह इस यथार्थ को दिखलाती है। कहानी की पात्र भारती बताती है कि कैसे पार्टी अपने हित को साधने के लिए उसे कच्छी की तरह वर्जिनिटी की झिल्ली पहनाकर हर किसी के साथ सोने पर विवश करती रहीं। वह कहती है — "पार्टी जितनी बार घोटालों में फँसी, उतनी बार मुझे कच्छी की तरह वर्जिनिटी झिल्ली पहना दी जाती थी। जज, सीबीआई के अधिकारी, कारपोरेट दलाल मुझे केश से नाखून तक पहचानते हैं।...जिस सुबह बड़े-बड़े हिंदू-मुस्लिम नेता पार्टी के पक्ष में बयान देते थे, उससे पहले की रात मैं उनके कक्ष में होती थी।(सिंह 132) यह कथन स्त्री के प्रति राजनीति के विद्रुप आचरण का पर्दाफाश करता है। अगर

राजनेता सुंदर हो, तो उसके प्रति राजनेता के नजरिए का बयान करती हुई 80 वर्षीय स्त्री राजनेता 'रत्ना' मृदु से कहती है — "सचमुच ! सुंदर होना यहाँ अभिशाप बन जाता है। पहले तो वे उसकी सुंदरता के कसीदे काढ़ेंगे, आंखों की, रूप रंग की, चाल चुस्ती की, यहाँ तक कि उसकी काबिलियत की झूठमूठ तारीफें करेंगे, मगर हस्तगत होते ही सारी की सारी काबिलियत एक कोने में धरी रह जाएगी, फिर तो वह मुफ्त का माल बन जाती है।" (गुप्त 26) स्त्री-राजनेता कितनी ही जनकल्याणकारी योजना के तहत राजनीति में क्यों ना आए, पुरुष राजनेता की नजर में वह देह तक ही सीमित रहती है, हिंदी कथा साहित्य स्त्री-राजनीति के इस काले सच की बखिया उधेड़ रहा है। आत्मकथा 'आपहुदरी' में रमणिका गुप्ता ने भी स्वीकार किया है कि उनके प्रति बॉडीगार्ड, छुटभैया नेता, मुख्यमंत्री और राष्ट्रपति पद के दावेदार 'नीलम संजीव रेड्डी' तक ने दैहिक भोगवादी नजरिया रखा और वरिष्ठ कांग्रेस महिला नेता सुश्री बनर्जी से जब वह इसकी शिकायत करने जाती है, तब जवाब मिलता है कि आयरन लेडी इंदिरा गांधी तक को यह सब झेलना पड़ा — "ऐसा तो राजनीति में होता ही है। यह सब इंदिरा जी को भी झेलना पड़ा है।"(गुप्ता 396) उपन्यास 'ये आम रास्ता नहीं' में राजनेता 'रत्ना' वुमन सेंटर खोलना चाहती है, लेकिन वहां भी उसका दैहिक शोषण होता है। रजनी गुप्त लिखती हैं — "... एक बात तो सच है कि राजनीति में आई ज्यादातर स्त्री कार्यकर्ताओं को अमूमन लोग अपना भोग समझते रहने के आदी हो चुके हैं, गोया वह कोई खाने वाली चीज हो, जिसे खाना उनका जन्मसिद्ध अधिकार हो।" (गुप्त 13) राजनीति का स्त्री के प्रति ऐसे दैहिक आचरण से एक प्रश्न खड़ा होता है कि अगर राजनीति का स्त्री के प्रति ऐसा प्रतिरोधी आचरण है, तो स्त्री-राजनीति हो कैसे? आरक्षण का उद्देश्य कैसे पूरा होगा। स्त्री राजनीति में अपनी जमीन कैसे बनाएगी। ऐसे में राजनीति में औरत के बने रहने के मार्ग के बारे में रजनी गुप्त अपने उपन्यास में वरिष्ठ नेता के मुहँ से कहलवाती हैं — "यहां आई ज्यादातर औरतें या तो अपने पॉलिटिकल बैकग्राउंड की वजह से सालों से जमी है या किसी ना किसी नेता के झोले में पड़े खूबसूरत गुलदस्ते की तरह सजी-धजी घूमती फिरती है।" (गुप्त 9) और अगर यही सच है और स्त्री के राजनीति में बने रहने का एकमात्र उपाय है, तो स्त्री-राजनीति को लेकर पूरी राजनीति ही प्रतिरोध का विषय है और ऐसे में स्त्री-राजनीति का भविष्य प्रश्न के घेरे में खड़ा हो जाता है। विजय पुष्पम् का मन्तव्य हैं — "समय की मांग यही है कि अधिकाधिक महिलाएं राजनीति में आएं और महिला विषयक कानूनों को पारित करने में अपना योगदान दें, तभी आधी आबादी का दर्द कुछ कम होगा ।" (पुष्पम्) लेकिन कथा साहित्य में राजनीति में स्त्री देह के प्रति पुरुष राजनेता का जो देह लोलुप प्रतिरोधी नजारिया नजर आ रहा है, उसमें अधिकाधिक भागीदारी साकार कैसे हो, यह चिंता का विषय है।

4.5.2. सुरक्षाकवच बनाम स्त्री-राजनीति —

हिंदी कथा साहित्य में गीताश्री का उपन्यास 'हसीनाबाद', रजनीगुप्त का उपन्यास 'ये आम रास्ता नहीं' किरण सिंह की कहानी 'यीशू की कीलें' राजनीति में स्त्री के देह शोषण के कटु यथार्थ को सामने रखता है।

राजनीति में स्त्री को देह से ऊपर नहीं देखा जाता है और पुरुष राजनेता चाहे छूटभैया हो या उच्चपदस्थ मंत्री, स्त्री देह के प्रति लोलुप नजरिए को रखते है। ऐसे में प्रतिरोध की दिशा में यह जानना भी जरूरी बन जाता है कि राजनेता के इस दैहिक आचरण व दैहिक शोषण को स्त्री राजनेता किस रूप में लेती है।

राजनीति में आगे बढ़ने के लिए वास्तविक राजनीति में रमणिका गुप्ता देह को राजनीति में आगे बढ़ने की युक्ति बना लेती है और स्वीकार करती है कि अपनी राजनीतिक जनकल्याणकारी योजनाओं को पूरा करने के लिए कइयों के साथ देह के स्तर पर अपराधबोध रहित समझौता करती है और बलात्कार की जगह उसे 'सुरक्षाकवच' मानती है। वह अपनी आत्मकथा में लिखती हैं — "राजनीति में समझौता या व्याभिचार ज्यादा चलता है और बलात्कार कम।" (गुप्ता 355) आगे लिखती हैं — "अब मैं कहूं कि यह मेरा शोषण था, तो शायद यह गलतबयानी होगी, क्योंकि राजनैतिक सीढ़ियों पर चढ़ने वाले प्राय: हर व्यक्ति को, औरत हो या मर्द सुरक्षा-कवच जरूरी होता हैं। मुझे मुख्यमंत्री का सुरक्षा कवच मिल रहा था।"(गुप्ता 380) और इस सुरक्षाकवच के साये में वह अपने जनकल्याणकारी कार्यों को अंजाम देती है। उपन्यास 'ये आम रास्ता नहीं' में 80 वर्षीय राजनेता रत्ना भी मृदु को बताती हैं कि कैसे वूमेन सेंटर खोलने के लिए उसे भी समझौता करना पड़ता है —

> "जैसा कि मैंने तुम्हें बताया कि खुद मुख्यमंत्री की मुझ पर विशेष मेहरबानी थी, सो उसने हमें वह सरकारी जमीन मुहैया कराई जिसपर हमने वूमेन ट्रेनिंग सेंटर खोला था। हमें एक बार नहीं, बल्कि कई बार इसकी कीमत चुकानी पड़ती है। तब हमारे पास दो ही विकल्प थे — या तो इसे पूरी तरह छोड़ कर घर लौट जाऊं या फिर यहां के भेड़ियों से निपटने के लिए कुछेक के साथ कॉम्प्रोमाइज करूं। अपने क्षेत्र के विकास की खातिर मैंने दूसरा रास्ता चुना।" (गुप्त 28)

अपने जनकल्याणकारी कार्यों को पूरा करने के लिए रत्ना समझौता करती है और इस समझौते को गलत नहीं मानती, बल्कि राजनीति में नई आई मृदु से साफ कहती है, ऐसे समझौते को करते समय अपराध बोध नहीं पालना चाहिए — "एक बात की गांठ बांध लो – पहली तो यह कि यदि किसी बड़े मकसद को हासिल करना है और तुम्हारी आंखों में दिन-रात तुम्हारा लक्ष्य चकरघिन्नी की तरह घूम रहा है, तो यह येन-क्रेन-प्रकारेण अपने टार्गेट को हासिल करने में कोई बुराई नहीं, बशर्ते कि ऐसा करते हुए तुम्हारे भीतर कोई अपराधबोध न रहा हो।"(गुप्त 27) अत: स्त्री अपनी देह का उपयोग अपनी राजनीति को साधने के लिए अपराधबोध रहित करती है। उपन्यास 'ये आम रास्ता नहीं' में वरिष्ठ राजनेता रत्ना भी राजनीति साधने के लिए राजनीतिक सुरक्षा कवच की बात मृदु से करती है। कैसे एक बड़े नेता के करीब होकर, उसकी होकर, अन्य छूटभैया नेता से बचा जा सकता है और सेक्सुअली एक्सप्लायटेशन से बचकर आसानी से अपनी राजनीतिक महत्वाकांक्षा को पूरा किया जा सकता है। रत्ना कहती है — "वैसे एक का साथ पकड़े रहने से इतना इत्मीनान तो रहता है कि फिर आपको सुरक्षाकवच तो मिल जाता है यानी आप सेक्सुअली एक्सप्लायटेशन से बचे रहते है।...जैसे ख्याति

केलकर को ही लो — चेयरपर्सन मंत्री जी का हाथ थामा तो चौतरफा गिद्धों से बची रही वे।"(गुप्त 29) अपने देह का उपयोग अपनी राजनीतिक महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए करती है। भूमिका द्विवेदी की कहानी 'दांव' में पूनम यादव सत्ता पर काबिज होने के लिए अपनी देह का उपयोग विपक्ष के नेता के साथ करती है। जब पहले दिन सर्वेंट क्वार्टर से निकलकर वह अपने मंत्रालय जाती है, तो नेताजी के लिए गुलाब तोड़ कर ले जाती है, जो उसकी मानसिकता को दर्शाता है। लेखिका लिखती हैं — "पूनम ने बढ़कर एक सुर्ख गुलाब बदरीप्रसाद तिवारी के लिए तोड़ लिया। इस लम्हे, पूनम के चेहरे पर एक शातिराना मुस्कान उभर आई थी।" (द्विवेदी 140) शातिराना मुस्कान स्वयं में प्रतिरोध है। यहाँ प्रतिरोध का स्वर हिंसक न होकर इच्छा और महत्वाकांक्षा में परस्पर द्वन्द्व को दिखाता है। पुरुष नेता की दैहिक इच्छा और नई-नई स्त्री नेता की राजनीतिक महत्वाकांक्षा के बीच स्त्री नेता के अनुकूलित आचरण भले ही मौन है, लेकिन मुस्कान का शातिराना होना कहीं न कहीं योजनाबद्ध राजनीतिक व्याकरण है। जिसके जरिए लक्ष्य को साधना आसान होता है। कथा-साहित्य में रचनाकारों ने देह शोषण को युक्ति बना स्त्री द्वारा अपनी राजनीति साधने के कुटिल पक्ष का उद्घाटन कर स्त्री-राजनीति के इस कुटिल पक्ष का प्रतिरोध किया है।

4.6. चुनाव प्रचार, सत्ता व व्यवस्था : पुरुष राजनीति बनाम महिला राजनीति —

संवैधानिक प्रक्रिया के तहत सत्ता पर काबिज होने के लिए चुनाव एक जरूरी प्रक्रिया है। सत्ता, जनता द्वारा प्रदत शक्ति है, जो लोकतांत्रिक व्यवस्था में व्यक्ति को सर्वशक्तिमान बनाती है और इस शक्ति को प्राप्त कर शक्तिमान बनने की लालसा स्त्री हो या पुरुष राजनेता दोनों के द्वारा पाला जाता है, क्योंकि जिसके पास सत्ता है, वही लोकतांत्रिक व्यवस्था की आड़ में इसका मनमर्जी तरीके से इस्तेमाल कर सकता है। राजनीति के ऐसे परिदृश्य में स्त्री हो या पुरुष, दोनों ही सत्ता में आकर जनहितकारी व्यवस्था की जगह सत्ता में आने व बने रहने की चिंता में अधिक मग्न बने रहते हैं। ऐसे में स्त्री-राजनीति कदम-कदम पर पुरुष राजनीति व उनके राजनीतिक पैतरो का ना केवल अनुसरण करती हैं, बल्कि साम-दाम-दंड-भेद की नीति अपनाकर सत्ता पर काबिज होने को ही अपना लक्ष्य भी बना लेती हैं। स्त्री-राजनीति के इस विद्रुप रूप को कथा साहित्य में उभारकर इस विद्रूपत्ता का प्रतिरोध 21वीं सदी में लेखन के स्तर पर हुआ है।

हिंदी कथा साहित्य में सत्ता में व्यवस्थित होने के लिए स्त्री की राजनीति, चुनाव प्रचार से लेकर पूरी रणनीति के तहत पुरुष राजनीति से लेश मात्र भी फर्क लिए नहीं नजर आती, बल्कि स्त्री होने के अपने फायदे के साथ विभत्स ही नजर आती हैं। किरण सिंह की कहानी 'यीशू की कीलें' की दीदी जी, मैत्रेयी पुष्पा का 'त्रिया हठ' की मीरा की मामी, ऋषिकेश सुलभ का 'अग्निलीक' की रेवती, 'ये आम रास्ता नहीं' की वीणा यादव, चुनाव प्रचार के लिए झूठे वादे, वोट खरीदने, भोज खिलाने यहाँ तक की हत्या-आत्महत्या की साजिश करने से भी पीछे नहीं हटती। राजनीतिक रणनीति से शून्य सत्ता में आने व बने रहने के लिए हर हथकंडे अपनाने को

तैयार रहती है। किरण सिंह की कहानी 'यीशू की कीलें' में दीदी जी चुनाव प्रचार के लिए जाती हैं, पर कोई राजनीतिक एजेंडा नहीं है उनके पास। औरतों की सुंदरता का बखान करती है और पति ने मंगलसूत्र खरीदा या नहीं, ऐसे बेतुके मुद्दे को रखती है — "जीजा जी आपसे कभी बताए हैं कि नहीं, आप बहुत सुंदर हैं।.... आपकी उंगलियां बहुत सुंदर हैं। सिर्फ पहिया पर बटन दबाने लायक है।"(सिंह 118) चुनाव प्रचार के लिए दीदी जी द्वारा अपनाया गया तरीका यह स्पष्ट करता है कि स्त्री-राजनीति, पुरुष राजनीति से किसी भी स्तर पर भिन्न तो नहीं है। हां, स्त्री होने के कारण कुछ विशेष फायदे से जरूर जुड़ी हुई है, क्योंकि वह जिस तरह भीतर तक घुस कर सुंदरता का बयान करती हैं आम पुरुष राजनेता द्वारा संभव नहीं। मैत्रयी पुष्पा का उपन्यास 'त्रिया हठ' में चुनाव प्रचार के लिए मामी अपने सारे रिश्तेदारों को बुलवा लेती हैं। गांव भर में भोज करवाती है, मुर्गी कटवाती है। मीरा से कहती है — "चुनाव की मारामारी ऐसे ही नहीं मची।....पइसा इसी आस में लगाया है कि बाजी जीती तो अच्छा धन कमाएंगे।"(पुष्पा 27) चुनाव प्रचार के लिए आई लड़कियां चुनाव प्रचार में योजना की जगह, ब्यूटीशियन व सौंदर्य को तवज्जो दे रही है। मैत्रेयी पुष्पा लिखती हैं —

> "आज चुनाव के लिए वोट मांगने की खातिर आई रिश्तेदारों की लड़कियों की पहली फरमाइश रहेगी ब्यूटीशियन बुलाई जाए। मेकअप के बाद लोगों के बीच बाहर निकलना फबेगा। बसंती तो अपने सौंदर्यज्ञान में सुषमा स्वराज और राबड़ी देवी तक को शामिल किए हैं कि वे दोनों डिजाइनर साड़ियां पहनती है। गिरिजा व्यास तक के अपने ब्यूटीशियन हैं। मामी जीत गई, तो प्रधान की वेशभूषा के लिए चिरगांव या झांसी के सौंदर्य विशेषज्ञ से राय ली जाएगी।" (पुष्पा 25)

उपन्यास 'ये आम रास्ता नहीं' में बीना यादव झूठे जुमले का सहारा लेती है —

> "जनहित की समस्याओं पर फोकस करूँगी मैं। गरीबों, असहायों और बेरोजगारो की मदद के वास्ते वहाँ अपने पद का मिलने वाला भत्ता खर्च करूँगी। गाँव की प्राथमिक शिक्षा को मजबूत कर सार्वजनिक वितरण प्रणाली को सुव्यवस्थित करने की कोशिश करूँगी। बेहतर स्वास्थ्य सुविधाएँ मुहैया कराऊँगी। बदहाल जर्जर पड़ी सड़कों, नाली और खंडजा को दुरुस्त करना मेरी पहली प्राथमिकता होगी। फिर लड़कियों को उच्च स्तर की शिक्षा दिलाना हमारा ध्येय होगा। गरीबों, असहायों और शोषित औरत को वाजिब हक दिलाने के वास्ते जो भी बन पड़ेगा, जरूर करूँगी।" (गुप्त 120)

जबकि चुनाव जीतने के बाद जरूरत पड़ने पर मृदु द्वारा गरीब बच्चों के लिए मदद मांगने पर मदद करने की जगह साफ कह देती है — "अरे! आप तो ऐसे सवाल पूछ रही है जैसे कोई कलेक्टरनी हो।" (गुप्त 121) मृदुला गर्ग ने लिखा है — "स्त्री ज्यादा सहिष्णु है और यह की वो अगर सत्ता में आई तो वह ज्यादा सकारात्मक रहेगी...यह हमारी मान्यता है...प्रश्न करने की जरूरत है जो कुछ होता है...तो क्या हमारी (स्त्रियों की) प्रतिक्रिया

फर्क होती है पुरुष से? दोनों में क्या अंतर होता है? लेकिन हम देख रहे हैं कि जब भी कोई स्त्री सत्ता में आती है, वैसा ही व्यवहार करती है जैसा पुरुष करता है। सत्ता का अपना समीकरण है और वह वही होता है।" (गर्ग 52) कथा साहित्य में ऐसी ही स्थिति नजर आ रही है। इतना ही नहीं सत्ता पर काबिज होने एवं सेंटर में बने रहने के लिए स्त्रियाँ भी गलत करने से पीछे नहीं हटती। भूमिका द्विवेदी की कहानी 'दांव' की पूनम यादव राज्यपाल की हत्या करती है। 'यीशू की कीलें' की दीदी जी एक पुरुष नेता की तरह झूठे वायदे, षड्यंत्र यहाँ तक कि अपने पति की हत्या करवा देती है। अपने भाई पर इसका इल्जाम लगा देती है और जिस भारती का सहारा लेकर यह सब करती है उसे भूला, सहानुभूति की राजनीति कर सत्ता पर काबिज होती है। वह स्वयं कहती है – "मैंने तुमसे कहा था ना कि मुझे मालूम है कि सौ प्रतिशत जीत कैसे सुनिश्चित होती है...अपोजीशन पार्टी, पति की हत्या करवा दें और उसी सीट से मृतक की पत्नी खड़ी हो, तो सिर्फ उसके जीतने का रिकॉर्ड है।"(सिंह 130) पति की हत्या द्वारा भारतीय भावुक लोकमानस से अपनी पक्की जीत को लेकर पूरी तरह आश्वस्त हो जाती है, लेकिन जीतने के बाद भारती को भूल पूरे समाज को हताश करती हैं। डॉo एम एन सिंह लिखते हैं –

> "महिलाओं की प्रगति की गति केंचुए से भी धीमी हैं। नेता पति या नेता पिता की मृत्यु के बाद उनकी पत्नी या पुत्री को उनके क्षेत्र से चुनाव के लिए खड़ा कर दिया जाता है। टिकट देने वाले दल का उद्देश्य किसी महिला को प्रतिनिधित्व का मौका देना नहीं, अपितु नेता की मृत्यु के बाद जनमी सहानुभूति की लहर का दलगत लाभ उठाना मात्र होता है। जो सहानुभूति की सीढ़ी पर चढ़कर नहीं पहुंचती है, वे परिवार की प्रतिष्ठा और वैभव के बल पर पहुंच जाती है।"(सिंह 51)

ऐसे में सहज ही 'हसीनाबाद' की गोलमी का अपने दमखम पर सत्ता में आने का संकल्प दीदी जी का सहानुभूति की सीढ़ी पर चढ़कर आने की योजना से राजनीतिक सरोकार की पूर्ति की दिशा में ज्यादा जरूरी प्रतीत होता है। दमखम पर आना स्वयं में एक प्रतिरोध है।

4.7. दलगत अनुशासन व स्त्री-राजनीति —

राजनीति का एक पक्ष दलीय अनुशासन व दलीय प्रतिबद्धता से जुड़ा हुआ है। स्त्री हो या पुरुष राजनेता उसके लिए यह जरूरी है कि उसकी प्रतिबद्धता जनता व समाज के पक्ष में हो, लेकिन राजनीति में बने रहने के लिए इन सबसे ऊपर जो दिखाई देता है, वह है दलीय प्रतिबद्धता और दलीय अनुशासन। सत्ता में बने रहने, दल में बने रहने के लिए व राजनीति में टिके रहने के लिए जरूरी है कि जिस दल के साथ जुड़े हुए हैं, उस दल के प्रति अंधभक्ति और श्रद्धा बनाए रखा जाए और अगर कुछ गलत भी हो, तो दलीय प्रतिबद्धता के नाम पर उस पर पर्दा डाला जाए और पार्टी के सपोर्ट में खड़ा रहा जाए। स्त्री-राजनीति भी इस दलीय प्रतिबद्धता से पूरी तरह प्रभावित है। कथा साहित्य में ऐसी दलीय प्रतिबद्धता और इससे दूषित होती राजनीति का प्रतिरोध किया गया है।

वास्तविक राजनीति में बड़ी से बड़ी घटना हो, बलात्कार तक के मुद्दे हो, अगर संबंधित व्यक्ति का अपने दल से कोई भी संबंध निकल जाए या निकलने की संभावना हो, तो स्त्री राजनेता उस पर एक शब्द बोलती नजर नहीं आती, भले ही मामला कितना ही संवेदनशील क्यों ना हो, वहीं मामला अगर प्रतिपक्ष से जुड़ा हुआ हो, तभी आवाज उठाती है। अत: दल के अनुशासन के नाम पर उन्हें चुप रहना पड़ता है। मनोरमा सिंह 'महिला विरोधी बयान और मर्दवादी राजनीति' शीर्षक लेख में दलीय प्रतिबद्धता का उल्लेख करते हुए लिखती हैं —

> "हाल ही में मी टू प्रसंग याद होगा आपको, जब कई महिला पत्रकारों ने एम0 जे0 अकबर पर यौन उत्पीड़न का आरोप लगाया था, लेकिन उनकी पार्टी की किसी महिला नेता ने एक शब्द विरोध में नहीं कहा, सुषमा स्वराज आजम खां के विरोध में ट्विटर पर सक्रिय हुई, लेकिन एम जे अकबर पर चुप रहीं। स्मृति ईरानी, निर्मला सीतारमण, मेनका गांधी, हेमा मालिनी अपनी पार्टी की किसी भी महिला विरोधी बयान पर कोई प्रतिक्रिया नहीं देती है। महिला पत्रकार गौरी लंकेश की हत्या के बाद "कुत्तिया" कहा गया, एक धर्म विशेष की महिला को "कब्र से निकालकर बलात्कार" करने की बात कही गई, सोनिया गांधी को "बार डांसर" कहा गया, इंदिरा गांधी को "रखैल" बोला गया, मायावती को "वेश्या" कहा गया, फिर भी महिलाओं द्वारा ही कोई रेखा नहीं खींची गई।"(सिंह)

अत: दलीय प्रतिबद्धता के नाम पर स्त्री राजनेता भी चुप्पी साधे रहती है। आत्मकथा 'आपहुदरी' में रमणिका गुप्ता ने भी लिखा है कि जब वह अपने प्रति अश्लील आचरण का प्रतिरोध करती हैं और इसकी शिकायत श्रीमती बनर्जी से करती हैं, तो वह इसे मामूली घटना बता दलीय प्रतिबद्धता के नाम पर चुप रहने को महत्व देती हैं। हिंदी कथा साहित्य में भी स्त्री-राजनीति का यह पक्ष उभरकर सामने आया है। रजनी गुप्त का उपन्यास 'ये आम रास्ता नहीं' में मृदु राजनीति में महसूस करती है कि कैसे पार्टी अनुशासन के नाम पर उसे लोकतांत्रिक जन कल्याणकारी कार्यों को करने से पीछे हटना पड़ता है। कैबिनेट मिनिस्टर मीरा सिंह के बारे में सोचती है कि कैसे विधायक बनकर दल में पार्टी अनुशासन के नाम पर गलत कार्यों का विरोध नहीं कर पा रही है — "मगर जनतंत्र का यह कैसा मजाक है? विधायक होने के बावजूद उन्हें अपनी सीमा में बंधे रहना पड़ता है? ए क्यों नहीं बे गलत बातों का विरोध कर पाते हैं? अजीब पार्टी अनुशासन है यह तो!"(गुप्त 49) यह केवल मीरा सिंह की ही स्थिति नहीं है, बल्कि पार्टी में और सत्ता में काबिज रहने की इच्छा रखने वाले हर किसी का सच है। स्वयं मृदु को भी इस परिस्थिति का सामना करना पड़ता है और कहीं ना कहीं यह भी एक कारण रहा कि वह पार्टी छोड़कर समाज सुधार संस्था से जुड़कर समाज हित के कार्यों को अंजाम देती है। वह सोचती है – – "सच तो यह था कि पार्टी अनुशासन के नाम पर अक्सर गलत-गलत बातों के लिए पार्टी की नीतियों के मुताबिक साथ देते विधायकों की हालत देखकर वह सोच में पड़ जाती यह कैसा जनतंत्र है।" (गुप्त 48) इस प्रकार पार्टी अनुशासन के नाम पर राजनीति में स्त्री हो या पुरुष, पार्टी रक्षक बन कर रह जाते हैं और उनकी जन-

कल्याणकारी योजना धरी की धरी रह जाती है। स्त्री हो या पुरुष दोनों दल के एक प्यादे बनकर रह जाते हैं और उनकी अपनी राजनीति प्रभावित होती है, उसे साहित्य में व्यक्त कर दलीय अनुशासन के नाम पर घटी राजनीति के विरोधी चरित्र का प्रतिरोध यहाँ दर्ज किया गया है।

4.8. वोटरों की स्त्री-राजनीति से अपेक्षा —

स्त्री के राजनीतिक प्रतिरोध को संपूर्णता में समझने के लिए सत्ता पक्ष के साथ मतदाता पक्ष का विशेषकर स्त्री मतदाता का, स्त्री-राजनीति के प्रति दृष्टिकोण का मूल्यांकन जरूरी बन जाता है। किरण सिंह लिखती हैं —

> "पिछले चुनावों में एक महिला उम्मीदवार (अपनी समझ से योग्य उम्मीदवार) के पक्ष में घर-घर वोट माँगने के दौरान आमतौर पर यह बात सुनने को मिली — ''ये (पति) जहाँ कहते हैं, हम वहीं वोट दे देते हैं।" स्त्रियों में राजीतिक चेतना का अभाव दिखाई दे रहा है।...यह एक मुख्य वजह है कि हम समाज में निर्णायक भूमिका में नहीं उतर पा रही हैं। 'बहन जी' हों या 'दीदी जी' ये भी जब सत्ता में आती हैं, तो हमें भूल जाती हैं क्योंकि आधी आबादी 'चुनाव जिताऊ फैक्टर' नहीं है।" (सिंह)

भारतीय राजनीति का एक पक्ष यह है कि आज भी अधिकांश में महिलाएँ अपना वोट अपनी राजनीतिक सूझबूझ से नहीं, बल्कि परिवार के पुरुष सदस्य पिता और पति की इच्छा से देती है। घर के पुरुष सदस्य जिसे कहते है, उसे उनका वोट जाता है। कथा साहित्य में भी इस स्थिति को कहानी 'यीशू की कीलें' में विषय बनाया गया है। जहाँ चुनाव प्रचार के दौरान शिवेंद्र, भइया जी से महिला वोटर को काबू करने की बात कहता है, तब वह कहते हैं — "अबे मूरख! ये वही करेगी जो इनका आदमी कहेगा।"(सिंह 119) यही कारण है कि किरण सिंह के शब्दों में महिलाएं चुनाव जिताने का फैक्टर नहीं बन पाती। इसके वाबजूद जब एक महिला राजनीति में उतरती है, तो आम जनता के अंदर एक बदलाव की उमंग नजर आती है और महिला वोटरों के अंदर यह विश्वास पनपने लगता है कि अब जब उनका वर्ग प्रतिनिधित्व कर रहा है, तो निश्चित तौर पर उनकी स्थिति में सुधार आएगा। परंपरा में मैत्रेयी पुष्पा की कहानी 'फैसला' में वसुमति जब पंचायत का चुनाव जीतती है, तो महिला समाज के अंदर आत्मविश्वास नजर आता है। महिलाएं कहती हैं – "ए, सब जने सुनो, सुन लो कान खोलके। बारोबरी का जमाना आ गया। अब ठठरी बांधे मरद माराकूटी करें, गाली-गलौज दें, मायके न भेजें, तो बैन सुधी चली जाना वसुमति के ढिंग। लिखवा देना कागद। करवा देना नठुओ को जेहल।...रनवीर की तरह अन्याय तो नहीं करेगी। कागद दब तो नहीं लेगी...रनवीर एक दिन चाखी पीसेगा, रोटी थोपेगा और हमारी वसुमति कागद लिखेगी, हुकुम चलाएगी, राज करेगी।"(पुष्पा 13) अत: यह उम्मीद बन जाती है कि स्त्री सत्ता में आई है, तो स्त्री समाज को अब न्याय मिलेगा। ठीक यही उम्मीद 21वीं सदी में नजर आ रहा है। 'ये आम

रास्ता नहीं' में मृदु जब राजनीति में औरतों से जुड़ती हैं, औरतों के अंदर यह विश्वास जगता है कि मृदु उसकी तकलीफों को दूर करेगी —

> "वह सबसे पहले महिलाओं से ही मिलती। उनके बच्चों की खातिर दर्जनों बिस्किट के पैकेट ले जाती, फिर उनके स्वास्थ्य से जुड़ी समस्याओं पर उनके बीच बैठकर चर्चा करती। उनके घर जाकर उनकी चारपाई पर बैठकर चाय पीते हुए बतियाती। उनका नियम था कि वह देखते ही उन्हें गले जरूर मिलती।...धीरे-धीरे उन औरतों में यह विश्वास गहराता गया कि मृदु दीदी उनकी अपनी दीदी है। हम सबकी आवाज हैं वो। चलो, हमें दीदी से मिलना चाहिए। बड़ी अच्छी है वो, हमारा भला चाहती है।" (गुप्त 69)

ऋषिकेश सुलभ का उपन्यास 'अग्निलीक' में भी रेवती हो या रेशमा, मुखिया और सरपंच पद की उम्मीदवार बनती है, तो उम्मीद उनसे बढ़ जाती है। ऋषिकेश लिखते हैं — "रेवती और रेशमा की आवाजाही भी टोरहा में लगातार बनी हुई थी। औरतें उन पर मोहित थी।" (सुलभ 25) जिससे महिला नेता से वोटरों, विशेषकर महिला वोटरों की सकारात्मक परिवर्तन की दिशा में उम्मीद साफ झलकी है। लेकिन जैसा कि मृदुला गर्ग ने लिखा है — "स्त्री ज्यादा सहिष्णु है और यह की वो अगर सत्ता में आई तो वह ज्यादा सकारात्मक रहेगी।...यह हमारी मान्यता है...लेकिन हम देख रहे हैं कि जब भी कोई स्त्री सत्ता में आती है वैसा ही व्यवहार करती है जैसा पुरुष करता है। सत्ता का अपना समीकरण है और वह वही होता है।" (गर्ग 52) सत्ता समीकरण के अनुसार स्त्री-राजनीति भी उसी अनुरूप ढल जाती है, और परिवर्तन की जो उम्मीद रहती है, वो माटी में मिल जाती है। इस मोह भंग को भी 21वीं सदी में कथा साहित्य में रचनाकारों ने विषय बनाया है। किरण सिंह ने अपनी कहानी 'यीशू की कीलें' में स्त्री-राजनीति से मोहित महिला वोटरों से मोहभंग तक के सफर को दिखाया है। जहां नेता भारती और दीदीजी चुनाव प्रचार में जाती है, तो राजनीतिक चेतना शून्य केवल सत्ता में आने के समीकरण से युक्त बातें कर-करके और उनके प्रति वोटरों के नजरिए को दिखाती हुई किरण सिंह लिखती हैं — "जैसे 'नेता' कोई थूकवा गाली हो।…हैं तो आप भी नेता ही न!"(सिंह 114) ये अपने आप में व्यंजना कर रहा है कि स्त्री-राजनीति भी पुरुष राजनीति की विसंगतियों से ग्रसित होने चला है। ऐसी विसंगतियों के खिलाफ प्रतिरोधी स्वर को यहाँ मजबूत किया गया है।

4.9. स्त्री-राजनीति का भविष्य समझौता व पलायन —

स्त्री-राजनीति को लेकर वास्तविक राजनीति व कथा-साहित्य की राजनीति विरोधाभासी है। जहाँ एक ओर वास्तविक राजनीति में स्त्रियां राजनीति में आना चाहती है और लाई भी जाती हैं। राजनीति को कैरियर के रूप में अपना रही है, वहीं हिंदी कथा साहित्य में स्त्री-राजनीति को लेकर विरोधाभासी माहौल नजर आता है। तमाम उपन्यास व कहानी बताते हैं कि कैसे राजनीति में राजनेता अपने राजनीतिक हित को साधने के लिए स्त्री

को राजनीति में लाते व उसका उपयोग करते हैं। राजनीति में महत्वाकांक्षा पोषित, आरक्षण के तहत, पॉलीटिकल बैकग्राउंड के जरिए, जनकल्याण के उद्देश्य को लेकर, चाहे किसी भी योजना के तहत स्त्री क्यों ना आए, एक सच यह है कि राजनीति के छूटभैया नेता से लेकर बड़े पद तक हर किसी की नजर में वह देह और उस देह को सर्वसुलभ बनाकर सत्ता सुख तक पहुँचने का माध्यम मात्र बन जाती है। ऐसे में अपने जनउद्देश्यपरक कार्यों को पूरा करने के लिए राजनीतिक धरातल पर दैहिक स्तर पर समझौता करना ही एकमात्र उपाय बन जाता है। वास्तविक राजनीति में रमणिका गुप्ता दैहिक स्तर पर समझौता करती चलती है और अपनी योजनाओं को अंजाम देती हैं। कथा-साहित्य में परंपरा में मृदुला गर्ग की कहानी 'मेरे देश की मिट्टी अहा!' की लल्ली से बनी लैला दैहिक स्तर पर समझौता करती हैं। जिन गर्भनिरोधक गोलियों को वह गांव में बांटती है, नियमित रूप से उसका सेवन करना नहीं भूलती। वहीं दूसरी ओर इस समझौते के साथ गांव में 'हड्डी फैक्ट्री' को भी बंद करवाती है। 21वीं सदी में 'ये आम रास्ता नहीं' की वरिष्ठ राजनेता रत्ना इसी दैहिक समझौते को सुरक्षा कवच बनाकर अपने जनहितकारी कार्यों को अंजाम देती है और नई राजनेता मृदु को सुझाव भी देती है कि ऐसा करने में अपराध बोध नहीं पालना चाहिए। रत्ना कहती है —

> "देखो, मैं अब उम्र के इस मोड़ पर आ चुकी हूं कि तुमसे कुछ भी नहीं छुपाना चाहती।...राजनीति में अगर अपनी जड़ें बहुत गहरी नहीं है, आप शक्तिहीन हैं या आपका व्यक्तित्व निष्प्रभ है, तो फिर राजनीति में सुप्रीम पावर द्वारा आपको सीधे-सीधे बिस्तर पर खींच लिया जाएगा। तब यहाँ इस मोड़ तक आकर आप अपने शरीर का इस्तेमाल करना खुद ब खुद सीख लेते हैं। यानी अपने मकसद तक पहुँचने के लिए आपके सामने दो ही रास्ते हैं, या तो आपके पास खूब सारा पैसा हो या फिर आपको अपनी सुंदरता का इस्तेमाल करना आता हो।"(गुप्त 25)

'ये आम रास्ता नहीं' की रत्ना, 'दांव' कहानी की पूनम यादव दैहिक स्तर पर समझौता करती है, 'हसीनाबाद' की रज्जो पुरुष राजनीति को साधने का मोहरा बनने को तैयार रहती है, तब यह तीनों नायिकाएं राजनीति में दिखती है। यदि स्त्री मोहरा बनने से मना कर दे, यदि बिस्तर पर समझौता करने से इंकार कर दे, तो पलायन ही एकमात्र उपाय बचता है। जैसा की उपन्यास 'ये आम रास्ता नहीं' की मृदु समझौता करने को तैयार नहीं होती, 'यीशू की कीलें' की भारती और 'हसीनाबाद' की गोलमी मोहरा बनने से इंकार कर देती है, तो इन्हें पलायन करना पड़ता है। विजय पुष्पम् का मन्तव्य हैं — "राजनीति में पूर्ण कालिक सक्रिय महिलाएं उंगलियों पर गिनी जा सकती हैं। देश की आधी आबादी के सक्षम होने के बावजूद राजनीति में उनकी भागीदारी दाल में नमक के बराबर ही है। राजनीति में महिलाओं की भागीदारी मात्र कागज़ों और बहसों तक सीमित रह जाती है।" (पुष्पम्) इसके पीछे राजनीति का महिला के प्रति ऐसा विरोधी आचरण ही है। हालांकि 'हसीनाबाद' की गोलमी पलायन के साथ स्त्री-राजनीति के भविष्य की दिशा का पथ भी दिखाती जाती है। जब मुख्यमंत्री उसके

राजनीति छोड़कर जाने पर प्रश्न करते हैं कि आपकी तरह सभी स्त्रियां अगर राजनीति से यूं ही पलायन करती रही तो आरक्षण का क्या फायदा होगा, इससे क्या मैसेज जाएगा। तब वह कहती है — "इससे यह मैसेज जाएगा की राजनीति में बिना तैयारी के नहीं आना चाहिए, खासकर स्त्रियों को, वे अपने दमखम पर आए और किसी पर आँख मूँदकर भरोसा ना करें।"(गीताश्री 226) गोलमी स्त्री को अपने दमखम पर राजनीति में आने की बात करती है। वंदना शर्मा लिखती हैं —

> "ये सोच पाना असम्भव न हो, तो कठिनतर अवश्य हो चला है कि कोई स्त्री नितांत अपने दम पर उठे, टिके और बढ़ती चले और राष्ट्रीय राजनीति में भी ऊँचाइयों तक पहुँचे, बिना किसी बड़ी आर्थिक बैकग्राउंड के, बड़े घरानों या पारिवारिक पृष्ठभूमि के या अन्य प्रकार की बैसाखियों के और तमाम राजनैतिक दुश्चक्रों, कलंक कथाओं, उठापटक, बाधाओं को पार करती हुई अपनी सामर्थ्य, चाह और देश के प्रति अपनी अभिलाषाओं स्वप्नों को साकार कर सके! क्योंकि राजनीति का सबसे बड़ा उद्देश्य देश, समाज की सेवा ही तो है! पर अफ़सोस प्रायः उनके ये उद्देश्य क्षरित होते हैं। प्रधानी से लेकर मंत्री पद तक जाते-जाते उनकी ये यात्रा कठपुतली से सत्ता तक की रह जाती हैं और "सत्ता कभी स्त्रीलिंग नहीं होती।" (शर्मा) अतः सत्ता की प्रवृत्ति स्त्री विरोधी है।

वंदना शर्मा भी स्त्री को अपनी राजनीति करने के लिए अपनी राजनीतिक जमीन तैयार करने की बात करती हैं। 'यीशू की कीलें' की भारती राजनीति छोड़कर जाती है, तो कहती हैं – "बछड़ों को अपना दूध पिलाने जा रही है।"(सिंह 107) अर्थात् भ्रष्ट हो चुकी राजनीतिक व्यवस्था में वह सुधार का कार्य करेगी। मृदु, राजनीति से विदा लेकर सामाजिक संगठन से जुड़कर अपने जनहितकारी कार्यों में जुड़ जाती है। कथा-साहित्य स्त्री-राजनीति के ऐसे सच को सामने रख उसके भविष्य पर एक प्रश्न चिन्ह खड़ा कर रहा है कि क्या स्त्री-राजनीति का भविष्य पुरुष राजनीति को साधने के लिए युक्ति के रूप में बने रहना है या दैहिक स्तर पर सुरक्षा कवच के तहत समझौता कर अपना राजनीतिक भविष्य संभालना है या पलायन कर समाज संगठन से जुड़कर काम करना या जमीन बनाने का निर्णय है। अगर अपनी जमीन 'यीशू की कीलें' की दीदी जी की तरह सेंटर में आने के लिए हत्या, आत्महत्या के षड्यंत्र के तहत है, तो एक बड़ा प्रश्न है कि स्त्री-राजनीति, पुरुष-राजनीति से भिन्न किस स्तर पर है। 'हसीनाबाद' की गोलमी अपने दमखम पर आने की बात करती है, तो गीताश्री ओशो के भाषण के माध्यम से राजनीति की विद्रूपता पर व्यंग्य करते हुए लिखती हैं कि अयोग्यों के लिए राजनीति है — "राजनीति तो उनके लिए हैं, जिनके लिए कुछ और नहीं। जो मूर्ति नहीं बना सकते, जो चित्र नहीं रंग सकते, जो गीत नहीं गा सकते, जो कुछ भी नहीं कर सकते, उन सब अयोग्यों के लिए ही राजनीति है। आखिर अयोग्यो के लिए भी तो कुछ होना चाहिए? जिसमें और कोई योग्यता नहीं है, उसमें राजनीति की योग्यता होती है।" (गीताश्री 220) और अगर इसी सोच के तहत राजनीति से स्त्री का पलायन होता रहा तो, ऐसे में अयोग्य के द्वारा शासित होना

भी एक कटु सत्य बन जाता है, इससे इनकार नहीं किया जा सकता। राजनीति का स्त्री के प्रति प्रतिरोधी रवैया स्त्री-राजनीति के भविष्य को कटघरे में खड़ा कर रहा है। राजनीतिक यथार्थ स्त्री की राजनीतिक भूमिका के प्रतिकूल है। जिसे रातोंरात बदला नहीं जा सकता, इसलिए इसकी यथास्थिति को स्त्री आलोचना का विषय बनाना सहज ही इस विद्रूपत्ता के खिलाफ स्त्री मानस का प्रतिरोध है। प्रतिरोध इसलिए कि इसमें एक संकल्प है, अनदेखे संघर्ष के लिए। अनदेखे संघर्ष के प्रति अपने दमखम पर आगे बढ़ने का संकल्प अदम्य साहस का परिचय देता है। यहाँ अदम्य साहस समाधान दे पाएगा या नहीं, यह भले ही सुनिश्चित नहीं करता हो, लेकिन इसमें राजनीतिक यथार्थ के प्रतिरोध के लिए जरूरी संवेदन संसार को रचा है, इससे इनकार नहीं किया जा सकता। परंपरा में ओमप्रकाश बाल्मीकि की कहानी 'यह अंत नहीं' की बिरमा अपने विरादरी वालों को राजनीतिक धरातल पर जागरूक बनाने के संकल्प के साथ राजनीति के नए अध्याय का आरंभ करती है। जिसे 21वीं सदी में कहीं भारती में, कहीं गोलमी में, तो कहीं अनयंत्र विकसित होते देख पाते है। यहाँ परास्त मानसिकता का नहीं दिखना सदा प्रतिरोध के बने रहने का अनुभव कराता है।

निष्कर्षत: देखते हैं कि स्त्री का राजनीतिक प्रतिरोध तमाम सकारात्मक सोच के साथ उसके स्वयं के और समाज के हित में किया गया एक जरूरी प्रतिरोध रहा, लेकिन उतनी ही विसंगतियों से प्रभावित भी रहा। राजनीति में आई स्त्रियों को लेकर राजनेता से लेकर परिवार, समाज तक का नजरिया विरोधाभाषी होने के कारण स्त्री-राजनीति अपने आप में एक कठिन मामला बन जाती है, तो दूसरी ओर महत्वाकांक्षा प्रेरित, जनकल्याणकारी योजना से शून्य केवल खानापूर्ति के लिए राजनीति में जब स्त्रियाँ आती हैं, तब स्त्री-राजनीति के प्रति जिस सकारात्मक सोच के तहत संवैधानितक प्रक्रिया में आरक्षण दिया गया, वहाँ भी सिर्फ और सिर्फ निराश ही हाथ लगती है और सच में वोटरों के लिए किरण सिंह के शब्दों में 'थूकवा गाली' मात्र बन कर रह जाती है। इसीलिए मृदुला गर्ग ने स्त्री-राजनीति पर विचार करने का विचार रखा। राजनीति में जनकल्याण पीछे छूट जाता है और सत्ता में, सेंटर में बने रहने की इच्छा प्रबल हो उठती है, फिर वह चाहे राजनेता स्त्री हो या पुरुष – कोई फर्क नहीं पड़ता है। कहानी 'यीशू की कीलें' की दीदीजी और 'दांव' की पूनम यादव द्वारा की गई हत्या-आत्महत्या की राजनीति बतलाती है कि पुरुष राजनीति से स्त्री-राजनीति फर्क लिए हुए नहीं है। एक ओर संवैधानिक प्रक्रिया स्त्री के राजनीतिक भागीदारी को प्रोत्साहित करने की दिशा में तमाम तरह के प्रयास कर रही है। वास्तविक जगत में राजनीति में स्त्रियों का आगमन भी हो रहा है, वहीं दूसरी ओर साहित्य में यह नजर आ रहा है कि किस प्रकार राजनीति की जमीन पर कदम रखने वाली नेत्री या तो पुरुष राजनीति का मोहरा बनकर पुरुष द्वारा संचालित राजनीति पर रबड़ स्टैम्प मात्र रह जाती है या दैहिक शोषण का शिकार हो रही है। ऐसे में राजनीति में टिके रहने के लिए उसके पास एक ही उपाय बनता है कि दलीय प्रतिबद्धता के नाम पर इस शोषण को सुरक्षाकावच बना ले और अपनी जनकल्याणकारी योजना को अंजाम दें, जैसा कि 'रमणिका गुप्ता' और

'रत्ना' करती है या फिर पलायन कर जाए और अन्य समाज सुधार संस्थान से जुड़कर अपने जनकल्याणकारी कार्यों को अंजाम दें, जैसा 'मृदु' करती है, लेकिन इन सबसे ऊपर एक सकारात्मक पक्ष 'यीशू की कीलें' की भारती और 'हसीनाबाद' की गोलमी के संकल्प में है, जो इन सारी विद्रूपत्ता को देखते हुए न तो घृणित समझौता करती है और न ही पलायन का रास्ता चुनकर अन्य मार्ग से समाजसेवा में जुड़ती है, बल्कि अपने दमखम पर राजनीति करने की बात करती है। भ्रष्ट हो चुकी राजनीतिक व्यवस्था के प्रतिरोध में राजनीतिक विद्रुपत्ता के संस्कार की सोच 'बछड़ों को दूध पिलाने के संकल्प' में रखती है और इसके लिए प्रयासरत रहती है। राजनीति की विद्रुपत्ता को देख परास्त नहीं होती। हताश, परास्त मानसिकता के विरोध में एक जरूरी प्रतिरोध को दर्ज करती है, जो स्त्री-राजनीति को सकारात्मक, उद्देश्यपरक अर्थ तक पहुँचाने के लिए एक जरूरी प्रतिरोध है। समग्रता में मेरी स्थापना यह है कि स्त्रियों का राजनीतिक परिदृश्य सुखद प्रतीत होता है, पर स्त्री के साथ एवं स्त्री के द्वारा की जाने वाली विसंगतिपूर्ण राजनीति का मुकम्मल प्रतिरोध ही सुखद परिदृश्य को सार्थक बना पाएगा। प्रतिरोध पुरुष सत्तात्मक राजनीति का उतना जरूरी नहीं है, जितना दलगत नैतिकता में खो रही स्त्री-राजनीति को राजनीतिक नैतिकता की दिशा में प्रतिरोधी आयाम देना जरूरी है।

संदर्भ-ग्रंथ

अरोड़ा, सुधा. "राजनीति में महिलाओं की भागीदारी कम क्यों हैं?". फरगुदिया (साहिय और सरोकार का समन्वय) पत्रिका, प्रस्तुति: किरण सिंह शोभा मिश्रा, 9 मार्च 2017, http://fargudiya.blogspot.com/2017/03/blog-post_9.html

कोलाख्यान, प्रफुल्ल. *दलित राजनीति की समस्याएँ*, https://archive.org/details/PrafullaKolkhyanDALITRAJNITIKISAMASYAEN/page/n1/mode/2up पृष्ठ 1-33

गर्ग, मृदुला. "देश से ऊपर है स्त्री की प्रज्ञा", *स्त्री को स्त्री रहने दो, बस!*. सम्पादन उपाध्याय, डॉ दीपिका. भारत पुस्तक भंडार, संस्करण 2014, पृष्ठ 49-58

गीताश्री, *हसीनाबाद*. वाणी प्रकाशन, 2017.

गुप्त, रजनी. *ये आम रास्ता नहीं*. वाणी प्रकाशन, 2013.

गुप्ता, रमणिका. *आपहुदरी*. द्वितीय संस्करण, सामयिक पेपरबैक्स, 2021

चंद्रकांता. "राजनीति में महिलाओं की भागीदारी कम क्यों हैं?". फरगुदिया (साहिय और सरोकार का समन्वय) पत्रिका, प्रस्तुति: किरण सिंह शोभा मिश्रा, 9 मार्च 2017, http://fargudiya.blogspot.com/2017/03/blog-post_9.html

द्विवेदी, भूमिका. "दांव" *खाली तमंचा (कहानी संग्रह)*. हिन्द पॉकेट बुक्स, 2018. पृष्ठ 124-140.

पाठक, मीना. "राजनीति में महिलाओं की भागीदारी कम क्यों हैं?" फरगुदिया (साहिय और सरोकार का समन्वय) पत्रिका, प्रस्तुति: किरण सिंह शोभा मिश्रा, 9 मार्च 2017. http://fargudiya.blogspot.com/2017/03/blog-post_9.html

पुष्पा, मैत्रेयी. *त्रिया हठ*. पेपरबैक संस्करण, किताबघर प्रकाशन, 2020.

पुष्पम्, विजय. "राजनीति में महिलाओं की भागीदारी कम क्यों हैं?" फरगुदिया (साहिय और सरोकार का समन्वय) पत्रिका, प्रस्तुति: किरण सिंह शोभा मिश्रा, 9 मार्च 2017. http://fargudiya.blogspot.com/2017/03/blog-post_9.html

बोधिसत्व, आभा. "राजनीति में महिलाओं की भागीदारी कम क्यों हैं?" फरगुदिया (साहिय और सरोकार का समन्वय) पत्रिका, प्रस्तुति : किरण सिंह शोभा मिश्रा, 9 मार्च 2017, http://fargudiya.blogspot.com/2017/03/blog-post_9.html

माहेश्वरी, सरला. "राजनीति में महिलाओं की भागीदारी कम क्यों हैं?" फरगुदिया (साहित्य और सरोकार का समन्वय) पत्रिका, प्रस्तुति : किरण सिंह शोभा मिश्रा, 9 मार्च 2017. http://fargudiya.blogspot.com/2017/03/blog-post_9.html

विश्वनाथन, टी . के. "संसद भवन के केन्द्रीय कक्ष में 3 अक्टूबर 2012 को महिला संवेदी सांसदों की महिला अध्यक्षों की सातवीं बैठक के उदघाटन समारोह के अवसर पर दिए गए भाषण" संसदीय पत्रिका, खंड-59, अंक 1, मार्च 2013. पृष्ठ 1-9

सिंह, किरण. "यीशू की कीलें" *यीशू की कीलें (कहानी संग्रह)*. द्वितीय संस्करण, आधार प्रकाशन, 2021, पृष्ठ 103-133.

सिंह, डॉ. एम. एन. "भारतीय राजनीति में महिलाओं की भागीदारी" *इक्कीसवीं सदी की ओर*, सम्पादन सुमन कृष्णकांत, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2001. .

सिन्हा, नीलिमा. "तैंतीस परसेंट" आशय पत्रिका, संपादक वी. के. सौनकिया, वर्ष 3, अंक 4 (संयुकतांक), अक्टूबर 2004- जून 2005. पृष्ठ 49-60.

सिंह, मनोरमा. महिला विरोधी बयान और मर्दवादी राजनीति, स्त्रीकाल, 19 अप्रेल 2019, https://streekaal.com/2019/04/male-politicians-hurl-gendered-comments-on-women-counterparts/

सिंह, किरण. "राजनीति में महिलाओं की भागीदारी कम क्यों हैं?" फरगुदिया (साहिय और सरोकार का समन्वय) पत्रिका, प्रस्तुति: किरण सिंह शोभा मिश्रा, 9 मार्च 2017. http://fargudiya.blogspot.com/2017/03/blog-post_9.html

सिन्हा, प्रत्यक्षा. "राजनीति में महिलाओं की भागीदारी कम क्यों हैं?" फरगुदिया (साहिय और सरोकार का समन्वय) पत्रिका, प्रस्तुति : किरण सिंह शोभा मिश्रा, 9 मार्च 2017. http://fargudiya.blogspot.com/2017/03/blog-post_9.html

सुलभ, ऋषिकेश. *अग्निलीक*. प्रथम संस्करण, यश प्रिंटोग्राफिक्स, 2019.

शर्मा, वंदना. "राजनीति में महिलाओं की भागीदारी कम क्यों हैं?" फरगुदिया (साहिय और सरोकार का समन्वय) पत्रिका, प्रस्तुति: किरण सिंह शोभा मिश्रा, 9 मार्च 2017. http://fargudiya.blogspot.com/2017/03/blog-post_9.html

हसन, नाइस, "राजनीति में महिलाओं की भागीदारी कम क्यों हैं?" फरगुदिया (साहिय और सरोकार का समन्वय) पत्रिका, प्रस्तुति : किरण सिंह शोभा मिश्रा, 9 मार्च 2017. http://fargudiya.blogspot.com/2017/03/blog-post_9.html

पाँचवां अध्याय
सभ्यता का संकट और स्त्री-प्रतिरोध

- **भूमिका**

5.1. सभ्यता का संकट : अवधारणा और स्वरूप

5.2. प्रतिरोध का परिदृश्य : परिवार एवं समाज

5.2.1 पारिवारिक संबंध और संकट

5.2.1.1. परिवार में बच्चे

5.2.1.2. परिवार में युवा

5.2.1.3. परिवार में वृद्ध

5.2.1.4. परिवार में स्त्री

5.2.2 प्रतिरोध के परिदृश्य में समाज

5.2.2.1 कामकाजी स्त्री और संकट

5.2.2.2 विकास विस्थापन व अकेलापन

5.2.2.3 शिक्षा व सांस्कृतिक संस्थान

5.2.2.4. धर्म और समाज

5.2.2.5. नैतिकता का निजीकरण और समाज में बदलते स्त्री-पुरुष संबंध

5.2.2.6. तनाव में युवा वर्ग

5.3. प्रतिरोध का बाजारवादी परिदृश्य

5.3.1. बाजार निर्मित समाज

5.3.2. विज्ञापन संस्कृति, प्रिंट मीडिया व जनसंचार माध्यम

5.3.3. सौंदर्य के बदलते प्रतिमान (सौंदर्य का विकृतिकरण)

5.3.4. नशा ,मानव तस्करी व अपराधीकरण की ओर बढ़ता समाज

5.4. हाशिये का संकट और प्रतिरोधी स्वर

5.4.1. आदिवासी समाज और संकट

5.4.2. दलित संकट और संघर्ष

5.4.3. किन्नर संकट और संघर्ष

- **निष्कर्ष**

पाँचवां अध्याय

सभ्यता का संकट और स्त्री-प्रतिरोध

सभ्यता का संबंध मनुष्य के भौतिक संदर्भ अर्थात् रहन-सहन के स्तर से है, जिसमें सुख-सुविधा व जीवन-यापन की बाहरी वस्तुओं का समावेश होता है। कैलाश मीणा सभ्यता और संस्कृति पर मैकाइवर तथा पेज के विचार का उल्लेख करते हैं। मैकाइवर तथा पेज ने 'भौतिक संस्कृति को हमारी सभ्यता' के रूप में उल्लेख किया है। (मीणा) संस्कृति का भौतिक पक्ष सभ्यता के रूप में सामने आता है। सभ्यता की प्रकृति को स्पष्ट करते हुए जिसबर्ट का मन्तव्य है – "सभ्यता बताती है कि "हमारे पास क्या" है और संस्कृति बताती है कि "हम क्या हैं।"(सभ्यता और संस्कृति में अंतर) संस्कृति से एक बोध जुड़ा है हमारे होने का, लेकिन सभ्यता के लिए केवल यह जरूरी हो जाता है कि हमारे पास ऐसा क्या भौतिक संदर्भ उपलब्ध है, जिससे हम अपने जीवन को अधिक सुविधाजनक बना सकें। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के मतानुसार "सभ्यता की दृष्टि वर्तमान की सुविधा-असुविधा पर रहती है, संस्कृति की भविष्य या अतीत के आदर्श पर।" (भारतकोश) सभ्यता के तहत वे संदर्भ हैं, जिनसे अपनी भौतिक जरूरतों को पूरा करते हैं। इस अर्थ में सभ्यता मानव जीवन का एक बाहरी पक्ष है। भौतिक सन्दर्भ समय एवं समाज सापेक्ष होते हैं। समय को देखते हुए सभ्यता में परिवर्तन घटित होता है और जैसे-जैसे हमारी आवश्यकता बढ़ेगी, वैसे-वैसे नए साधनों की खोज होगी, जिससे सभ्यता में नए तत्वों का समावेश होगा। नए तत्वों के समावेश के कारण ही सभ्यता के मूल में संकट हमेशा बना रहता है। सभ्यता के प्रादुर्भाव व प्रसार के पीछे युगीन कोई बड़ी घटना होती है, जिससे पूरा युग संवेदित और संचालित होता है और नई सभ्यता के साथ युग अनुसार नए संकट भी पैदा होते हैं। भूमंडलीकरण के बाद विकास के नाम पर, विकास के भ्रम में, भौतिक समृद्धि से परिपूर्ण और चेतना के स्तर पर शून्य जिस नई सभ्यता का जन्म हुआ है। इससे उत्पन्न संकट से प्रभावित हमारी पारिवारिक, सामाजिक संरचना की विसंगतियों के विरोध में स्त्री-लेखन ने 21वीं सदी में कलम चलाई है और अपने प्रतिरोध को संकुचित 'स्व' से ऊपर वैश्विक परिदृश्य से जोड़ा है। इसे प्रस्तुत अध्याय में स्त्री-प्रतिरोध की दिशा में विषय बनाकर उनके प्रतिरोध को व्यापक सामाजिक सरोकार की दिशा में देखना प्रस्तुत अध्याय का अभीष्ट है।

5.1. सभ्यता का संकट : अवधारणा और स्वरूप

समाधान जब दुर्लभ हो, तब समस्या संकट बन जाती है और जब समाधान ही नई समस्या को जन्म देता है, तब चुनौती जन्म लेती है। सभ्यता के मूल में संकट हमेशा से बना रहा है। सभ्यता के मूल में संकट को रवीन्द्रनाथ टैगोर व गांधी ने औपनिवेशिक काल में महसूस किया। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने अपने समय में सभ्यता पर मंडराते संकट को अंग्रेजी साम्राज्यवादी ताकत से अनुकूलित होते भारतीयों को देख महसूस किया और 'सभ्यता का संकट' शीर्षक से लेख लिखा। साम्राज्यवादी ताकत के विरोध में सभ्यता के संकट को देखते हुए

भारतीय सभ्यता को स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा — "इस देश में हम सभ्यता के जिस रूप से परिचित है, उसे मनु ने सदाचार (यानी सही आचरण) कहा है, ऐसा आचरण जो नस्ल की परंपराओं से तय हो। अपने आप में थोड़े समय द्वारा सम्मानित यह सामाजिक ढांचा एक खास भौगोलिक इलाके, धरती का वह हिस्सा जिसे ब्रह्मावर्त कहा गया।"(टैगोर) रवीन्द्रनाथ टैगोर ने सभ्यता का अर्थ सही आचरण से लिया। ये सही आचरण खास भौगोलिक परिदृश्य में नस्लीय परंपरा द्वारा थोड़े समय के लिए सम्मानित होता है। अंग्रेजी साम्राज्यवाद के प्रभाव से सभ्यता में जो अंधानुकरण की विकृति आई, उस संकट को लेकर लिखते हैं —

> "भाग्य का चक्र किसी दिन अंग्रेजों को अपना भारतीय साम्राज्य छोड़ने पर मजबूर कर देगा, लेकिन वह अपने पीछे कैसा भारत छोड़कर जाएंगे?...आज हम उन संकटों से गुजर रहे हैं, जो शक्तिशाली होने की गुस्ताखी करते प्रतीत हो रहे हैं और एक दिन वह सच सामने आएगा जिसके बारे में ऋषिगण कहते आए हैं, अ-सदाचार से मनुष्य समृद्ध हो सकता है, उसे इच्छित फल की प्राप्ति हो सकती है, दुश्मनों को जीत सकता है, लेकिन समूल नष्ट भी हो सकता है।" (टैगोर)

गांधी ने भी अंग्रेजी साम्राज्यवादी ताकत के विरोध में स्वराज के सपने को देखा। उन्होंने औपनिवेशिक ताकत की जड़ में सभ्यतागत संकट को पहचाना। इसलिए उनके स्वराज का अर्थ अंग्रेजी शासन से मुक्ति ही नहीं, बल्कि सभ्यतागत उपलब्धि रहा। बनवारी 'भारतीय सभ्यता का संघर्ष' शीर्षक में गांधी के स्वराज के बारे में लिखते हैं — "महात्मा गांधी ने बार-बार यह स्पष्ट किया था कि देश को ब्रिटिश शासन से मुक्त कराने के लिए नहीं, यूरोपीय सभ्यता के प्रभाव से मुक्त करने के लिए भी संघर्ष कर रहे हैं। उनका संघर्ष इंडिपेंडेंस के लिए नहीं, स्वराज्य के लिए है। स्वराज्य एक वैदिक शब्द है और उसकी ध्वनि जितनी राजनीतिक है, उतनी ही सभ्यतागत भी।"(बनवारी) आज भूमंडलीकरण, वैश्वीकरण के बाद जो नव-साम्राज्यवाद का उदय हुआ है, उससे उत्पन्न संकट बना हुआ है। हंटिंगटन ने 1993 में अपनी पुस्तक 'The clash of civilization' में नई सभ्यता के संघर्ष का सिद्धांत रखा। उनके विचार का उल्लेख करते हुए रविशंकर लिखते हैं —

> "90 के दशक में हंटिंगटन ने सभ्यताओं के संघर्ष का सिद्धांत दिया था। उनका कहना था कि इन नए यानी शीत युद्ध के पश्चात के विश्व में सर्वाधिक महत्वपूर्ण, व्यापक और खतरनाक संघर्ष सामाजिक वर्गों, अमीरों-गरीबों या अन्य आर्थिक आधार पर विभाजित समूहों के बीच नहीं, बल्कि विभिन्न कल्चरल पहचान के लोगों के बीच होगी।...बाद में हंटिंगटन कल्चर के स्थान पर सिविलाइजेशन यानी सभ्यता शब्द का प्रयोग करते हैं।"(रविशंकर 8)

हंटिंगटन ने सभ्यता के संघर्ष के मूल में 'पश्चिम बनाम शेष सभ्यता' की बात की और रविशंकर ने सभ्यता के इस संघर्ष में भारत की भूमिका का विवेचन करते हुए लिखा है — "सभ्यताओं का उनका यह लगभग डेढ़ हजार वर्ष पुराना संघर्ष अब नए अवतार में हमारे सामने हैं। यह संघर्ष अब हिंसक कम है और बौद्धिक अधिक

है। उन्हें समझ आ गया था कि भारत बौद्धिक विमर्श में विश्वास करता है।...इस बौद्धिक विमर्श में सबसे बड़ी भूमिका भारत की ही है, क्योंकि वही इसका सबसे बड़ा पीड़ित और सक्षम प्रतिभागी भी है।"(रविशंकर 11) हंटिंगटन ने 'पश्चिम बनाम शेष' की बात की और नव-साम्राज्यवाद के बाद पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव एवं अंधानुकरण का जिक्र श्यामाचरण दुबे, आल्विन टॉफलर और दिनकर करते हैं। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने साम्राज्यवाद के परिप्रेक्ष्य में सभ्यता के संकट को देखा, तो आल्विन टॉफलर और श्यामाचरण दुबे ने नव-उपनिवेश के संदर्भ में इस संकट को महसूस किया। दिनकर ने तो अपनी कविता 'लोहे के पेड़ हरे होंगे' में लिखा — "विज्ञान-यान पर चढ़ी हुई, सभ्यता डूबने जाती है।"(दिनकर) इस दिशा में वैज्ञानिक प्रगति और विकास के नाम पर अंधानुकरण हमारी सभ्यता को संकटग्रत करेगी, इसमें दो राय नहीं।

वैश्वीकरण के बाद उभरते सभ्यतागत नए संकट के बारे में श्यामाचरण दुबे लिखते हैं — "पश्चिम की आर्थिक और तकनीकी सहायता अपने साथ वहां की जीवन शैली और मूल्य ला रही है, जिन्हें अपनी जड़ से कटे भारतीय आधुनिकता समझकर बिना तर्क के अपना रहे हैं।"(दुबे 131) स्पष्ट है कि भारतीय बिना सोचे-समझे विदेशी जीवन शैली को अपना आचरण बना रहे हैं। इस दौरान कहीं भी किसी तरह के विचार-विमर्श की उन्हें जरूरत महसूस नहीं हो रही थी। भारतीयों के इस सहज-स्वाभाविक सोच एवं आचरण की प्रकृति और दिशा को लेकर आल्विन टॉफलर ने लिखा है, बिना समझे सिर्फ अपना ही नहीं रहे है, बल्कि उसी अनुसार ट्यून भी कर रहे है। कृष्णदत्त पालीवाल 'उत्तर आधुनिकता और दलित साहित्य' पुस्तक में आलविन टॉफलार के 'न्यू वेब' शीर्षक पुस्तक में लिखित विचार का उल्लेख करते हैं —

> "हमारे जीवन में एक नई सभ्यता का प्रादुर्भाव हो रहा है। अज्ञानी लोग हर जगह इस सभ्यता के आगमन को रोकने के लिए एड़ी-चोटी का जोर लगा रहे हैं। किंतु यह सभ्यता अपने साथ नई परिवार-व्यवस्था, पारिवारिक चिंतन-पद्धतियां, कार्यकलापों का नया ढब, प्रेम-संबंध और जीवन जीने का नया अंदाज, नवीन अर्थव्यवस्था, नया राजनीतिक परिदृश्य और इन सभी से ऊपर एक नवीन परिवर्तनवाद की चेतना ला रही है। आज हजारों लोग भविष्य की इस लय से अपने को "ट्यून" कर रहे हैं।" (पालीवाल 50)

यहाँ यह स्पष्ट है कि अब हम नई सभ्यता के तहत जो पारिवारिक-सामाजिक व्यवस्था आ रही है, उसे अपनाने को विवश रहेंगे। इसकी विवशता को अनिवार्यता के रूप में हमें स्वीकार करना पड़ेगा। इसलिए इसका विरोध कहीं न कहीं व्यावहारिकता के अभाव में मूर्खता का बोध कराएगा। इसकी तमाम विसंगतियाँ नियति के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित हैं। रवीन्द्रनाथ और गांधी सभ्यता के संकट को लेकर चिंतित थे। उसे रोकना चाहते थे, तो वहीं भूमंडलीकरण के बाद पनपती सभ्यता को लेकर टॉफलर कहते हैं कि अज्ञानी लोग इसे रोकने का प्रयास कर रहे हैं। अर्थात् रोक पाना अब संभव ही नहीं, ट्यून होना हमारी नियति बन गई है। इसके बहाव में बहते चले

जाना और अनुकूलित हो जाना ही हमारी नियति है। ये नई सभ्यता उपयोगिता केंद्रित ना होकर उपलब्धता केंद्रित हो जाएगी और उस उपलब्धता के अनुसार हम 'ट्यून' करेंगे। इस बारे में प्रख्यात वैज्ञानिक शिक्षाविद् प्रोफेसर यशपाल के विचार का उल्लेख पुष्पपाल सिंह अपनी पुस्तक 'भूमंडलीकरण और हिन्दी उपन्यास' में करते हैं — "भूमंडलीकरण एक ऐसी स्वेच्छाकारी प्रक्रिया है जिसके नियमों का पालन हमें करना पड़ेगा और हम सब को उसके पीछे चलना पड़ेगा। यह भी तय करेगी कि हमारी स्थितियां कैसी होगी। उन्हें कैसी होनी चाहिए, आपको अनुकूलित किया जाएगा।"(सिंह 16) नई सभ्यता के साथ 'ट्यून' होते चले जाना या न होना हमारे हाथ में नहीं रहेगा, बल्कि 'ट्यून' होने के लिए हम मजबूर होंगे। पुष्पलपाल सिंह का मानना हैं —

> "विचारना (थार्ट, थ्योरी) के रूप में भूमंडलीकरण, उपभोक्तावाद, उन्मुक्त बाजार व्यवस्था या कहें खुला उदार बाजार आदि की चर्चा प्राय: 2530 वर्ष पूर्व प्रारंभ हो गई थी, किंतु इस दिशा में विशेष सक्रियता पिछले 15 वर्षों विशेषत: 1989- 90 से तीव्रतर रूप धारण करती चली गई।...कहना न होगा कि वह दिन दूर नहीं जब हम परिवर्तन की द्रुत गति का आकलन करने की स्थिति में नहीं रहेंगे, केवल उसके बहाव में बहते ही चले जाएंगे।" (सिंह 16-17)

ऐसे में अंधानुकरण से सभ्यता का जो नया संकट पैदा हुआ है, उसे पुष्पपाल सिंह ने एक ओर अप्रतिरोध्य कहा है, तो साथ ही दूसरी ओर साहित्य और कला में उसके प्रतिरोध की भूमि को भी खोजा है — "भूमंडलीकरण का प्रभाव केवल बाजार या व्यापार तक ही सीमित होकर नहीं रह गया, पूरी सभ्यता और संस्कृति को इसने अपने रंग में रंग दिया।…यह बाजारूँ संस्कृति का निर्माण, प्रसार अब रुकने की बात नहीं रह गया है, एक प्रकार से यह अप्रतिरोध्य हो चला है, इसके प्रभाव को केवल साहित्य और कलाओं के चिंतन द्वारा ही कुछ सम पर लाया जा सकता है।"(सिंह 19- 20) अप्रतिरोध्य संकट की नियतिनुमा उपस्थिति के विविध आयामों को 21वीं सदी के स्त्री लेखन में बखूबी विषय बनाया गया है। विशेषकर अलका सारावगी, मधु कांकरिया, महुआ माजी, गीताश्री, सुषमा बेदी, रजनी गुप्त ने। इनकी रचना में सभ्यतागत संकट का प्रतिरोध दर्ज है। पुष्पपाल सिंह का मानना है कि नई सभ्यता से उत्पन्न संकट का प्रतिरोध साहित्य और कला में संभव है और स्त्री लेखन में इस दिशा में प्रतिरोध किस रूप में है, उसे स्त्री-प्रतिरोध के दिशा में देखना प्रस्तुत अध्याय का अभीष्ट है।

नई सभ्यता से उत्पन्न संकट को लेकर टॉफलर ने अपने विचार प्रस्तुत किए है — "यह सभ्यता अपने साथ नई परिवार व्यवस्था, पारिवारिक चिंतन पद्धतियां, कार्यकलापों का नया ढब...जीने का नया अंदाज-नवीन, अर्थ व्यवस्था...नवीन परिवर्तनवाद की चेतना ला रही हैं।" (पालीवाल 50) एक ओर अर्थ केंद्रित परिवार, समाज जीने का नया ढब बन गया है, तो दूसरी ओर अमर्त्य सेन के मन्तव्य का उल्लेख करते हुए रहीम मियाँ अपने लेख 'भूमंडलीकरण के दौर में नए समाज की अवधारणा' में लिखते हैं — "भूमंडलीकरण के आलोचनात्मक मूल्यांकन को इस बात से परहेज नहीं होना चाहिए...यह दुनिया के वंचित लोगों के लिए वरदान

है।" (मियां) अर्थात् हाशियाकृत सामुदायिकता की बात अमर्त्य सेन करते हैं और अगर इन दोनों के मंतव्य को लिया जाए, तो सभ्यता के संकट में प्रतिरोध के परिदृश्य को घर-परिवार, समाज, बाजार व वंचित समुदाय के संदर्भ में देख सकते हैं।

5.2. प्रतिरोध का परिदृश्य – परिवार एवं समाज –

साधारणत: परिवार का आशय पति, पत्नी व बच्चों द्वारा निर्मित व्यक्ति के ऐसे समूह से लिया जाता है, जो रक्त संबंध या भावनात्मक संबंध के कारण आपस में जुड़े होते हैं। अपने मूल रूप में परिवार एक भावनात्मक संस्था रही है। परिवार और समाज के परस्पर संबंध को विश्लेषित करते हुए रमेश उपाध्याय व संज्ञा उपाध्याय ने लिखा हैं — "परिवार के बारे में एक समझ यह है कि यह एक मूलभूत और प्राथमिक संस्था है, जिससे समाज का निर्माण होता है ; जबकि दूसरी समझ यह है कि वह समाज का एक अंग या उसकी इकाई है। एक समझ के अनुसार परिवार समाज का 'कारण' है, तो दूसरी समझ के अनुसार उसका 'परिणाम'।"(उपाध्याय 8) अत: परिवार संबंधों की एक ऐसी प्राथमिक संस्था है, जो समाज से प्रभावित होती है, तो परिवार में आया परिवर्तन भी समाज को प्रभावित करता है। मृणाल पांडे परिवार को 'एक सामाजिक इकाई' के रूप में परिभाषित करती हैं, तो कुमकुम संगारी सामाजिकता का आधार परिवार को मानती हुई लिखती हैं — "मनुष्य को सामाजिक प्राणी बनाने के लिए अथवा उसके सामाजीकरण के लिए परिवार का होना जरूरी है।"(संगारी 27) अत: परिवार एक ऐसी इकाई है, जहां व्यक्ति को उसके विकास का उपयुक्त अवसर मिलता है। प्रेम, अपनत्व व ममत्व मिलता है, उसका चरित्र गठन होता है। व्यक्ति को समाज अनुरूप जीवन शैली में ढालने व सामाजिक बनाने का काम करता है, लेकिन भूमंडलीकरण और नव-साम्राज्यवाद के उदय के बाद जिस नई पारिवारिक संरचना के उदय की बात टॉफलर ने की और 'ट्यून' की उपज इसे बताया, उसका परिणाम यह हुआ कि समाज और परिवार में परस्पर आवाजाही शुरू हो गई। परिणामस्वरूप नया संकट पैदा होने लगा। कृष्णदत्त पालीवाल ने अपनी पुस्तक 'उत्तर आधुनिकतावाद और दलित साहित्य' में इसके परिणाम का उल्लेख किया है —

> "हम एक ऐसे युग में प्रवेश कर रहे हैं जिसने 'शक्ति' के नए मार्गों को खोलकर 'पॉवर' की पुरानी अवधारणा के ढाँचे को तोड़ दिया है। यह नया युग 'पॉवर शिफ्ट' का खेल खेल रहा है। हमारे ऑफिस, बैंक, सुपरमार्केट, एग्जीक्यूटिव सूट्स, हॉस्पिटल, स्कूल, विश्वविद्यालय, घर, धर्म, दर्शन सभी के पुराने 'पैटर्न' पूरी तरह चरमरा गए हैं और हम अजनबी नवीन राहों पर चल पड़े हैं। एक 'ग्लोबल पावर स्ट्रक्चर' हमारी अभ्यस्त जीवन- शैलियों को पूरी तरह बदलने की तैयारी कर उठा है। इसके पास इतनी ताकत आ रहे हैं कि मानव-जीवन के हर क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन के लक्षण प्रकट हो रहे हैं। इस 'मैसिव-रिस्ट्रक्चरिंग' में हम पाते हैं कि मानव इतिहास के पुराने युग का लोप होने को है और 'ए

रिवॉल्यूशन इन दि वेरी नेचर ऑफ पॉवर' की स्थिति आ गई है। 'पॉवर शिफ्ट' केवल 'पॉवर' का रूपांतरण नहीं है, अपितु शक्ति को रूपांतरित करने की नवीन प्रक्रिया है।"(पालीवाल 13)

हमारी पुरानी पारिवारिक व्यवस्था के चरमराने और विकास के नाम पर जो नई आर्थिक सत्ता व्यवस्था के रूप आई है, उसने परिवार की संरचना में परिवर्तन कर दिया और परिवार के भीतर व्यक्ति को 'स्व-केंद्रित' बना दिया। परिवार में त्याग, अपनापन, सामंजस्य की जगह जनतान्त्रिक मूल्य आधारित स्पर्धा जैसे मूल्य पनपने लगी। संयुक्त परिवार का ढांचा टूटा और एकल परिवार की भूमिका बढ़ी। भूमंडलीकरण के दौर में विकास के मॉडल पर परिवार में व्यक्ति-संघर्ष की भूमिका शुरू हुई, जिसका संकेत करते हुए डॉ० सच्चिदानंद सिन्हा लिखते हैं — "इसमें बचपन में वर्जना और प्रताड़ना है, जवानी में स्पर्धा और असुरक्षा का तनाव और बुढ़ापे में अर्थहीनता का अवसाद। इस तरह आधुनिक सभ्यता हासिल करने का अभियान हमें एक ऐसे मुकाम पर ला रहा है, जहां हम संसार को जीत कर जीवन को हार रहे हैं।"(सिन्हा 146) ऐसे में परिवार का ढांचा चरमराने लगा। परिवार में पति-पत्नी का संबंध, बच्चे, बूढ़े, युवा, स्त्री अकेलेपन के संत्रास को झेलने को बाध्य हुए, जिसे साहित्य में विषय बना भूमंडलीकृत परिवेश की इस विद्रूपता का प्रतिरोध लेखिकाओं ने किया है।

5.2.1 पारिवारिक संबंध और संकट – भूमंडलीकरण के बाद विकास के नाम पर जिस नई पारिवारिक संरचना ने जन्म लिया, उसने परिवार में बच्चे, युवा, बुजुर्ग, स्त्री सभी को आत्मकेंद्रित बना दिया। फलस्वरूप पारिवारिक रिश्तों में उष्मता समाप्त होने लगी और अकेलापन, अजनबीयत बढ़ी, जिसे स्त्री-लेखन ने विषय बना विसंगति को उभारकर संवेदनाशून्य होती पारिवारिक संरचना के विरोध में अपना प्रतिरोध दर्ज किया है।

5.2.1.1. परिवार में बच्चे –

नव साम्राज्यवाद के तहत वैश्वीकरण का जो सभ्यतामूलक परिणाम रहा, उसके कारण परिवार और समाज के पारस्परिक संबंध विघटित हुए। पारिवारिक मूल्य से सामाजिक संरचना के प्रभावित होने की अपेक्षा एक सिरे से कपोल कल्पना में बदल गई। सामाजिक मूल्य पारिवारिक संबंधों पर हावी हो गए। इस कारण परिवार सामाजिक संगठन का कारण न रहकर नई सामाजिक संरचना का परिणाम बन गया और इसमें सर्वप्रथम स्त्री लेखन ने बच्चों के प्रति माता-पिता के आचरण को विषय बनाया। परिवार कहा जाता है भावनात्मक परिवेश को, लेकिन परिवार की जो नई संरचना आई है, नया ढब आया है, वहाँ भावनात्मक शून्यता है। पुष्पपाल सिंह भूमंडलीकरण के संदर्भ में भावशून्यता को लेकर लिखते हैं — "आज संबंध, उन संबंधों का प्रेम भाव ऊष्मा जिस रूप में शेष हो रही है, वह जीवन का बहुत ही पीड़ादायक और कारुणिक पक्ष है।" (सिंह 269) परिवार में बच्चे का जो स्थान है, उसे भावना की जगह सूचना ने ले ली है। आज परिवार में बच्चा भावना के स्तर पर स्वयं को रिक्त पा रहा है। मधु कांकरिया का उपन्यास 'पत्ताखोर' में 13वर्षीय बच्चा आदित्य नशे की

गिरफ्त में चला जाता है। डॉक्टर कोठारी उसके पिता हेमंत बाबू के पूछने पर उसकी इस स्थिति के पीछे के कारण को बताते हैं — "देखिए...हर बच्चे के जीवन में परिवार की बहुत अहम भूमिका होती है...मां-बाप का गहरा प्यार अंधेरे से अंधेरे तहखानों में भी उजाला भर देता है।"(कांकरिया 74-75) आज विकास की अंधी दौड़ में बच्चा परिवार में इस तहखाने को भरने वाले प्रेम के अभाव में जी रहा है। परिवार में पति-पत्नी के बीच अपना कैरियर इतना महत्वपूर्ण हो गया है कि बच्चा अकेला पड़ गया है। स्वयं आदित्य के शब्दों में — "मेरे और मां के दरम्यान 'मे आई कम इन मैडम' वाला माहौल था।" (कांकरिया 10) और संकट यह है कि बच्चे की ऐसी मनोदशा को जानने के बावजूद बच्चे के प्रति मां की चिंता नदारद नजर आती हैं। एक ओर परिवार में अकेलेपन के दंश को झेलते हुए 'पत्ताखोर' का आदित्य नशे की मंडी में डूब जाता है, तो दूसरी ओर 'तत्वमसि' उपन्यास में संयुक्त परिवार में रहती मानसी स्कूल से घर नहीं आना चाहती है। इसके पीछे पारिवारिक कलहपूर्ण वातावरण में अकेलेपन का संत्रास है। परिवार के भीतर माता-पिता के आपसी कलह और व्यस्तता के बीच बच्चा किस कदर असुरक्षित और अकेला महसूस कर रहा है, भावनात्मक रूप से कमजोर हो रहा है, इसे मधु काँकरिया की कहानी 'दाखिला', और चित्रा मुद्गल का उपन्यास गिलिगुड से समझा जा सकता है। 'दाखिला' कहानी में मां द्वारा सब्जी काटने के लिए लाए गए चाकू को बच्चा विक्रम बार-बार छिपा कर बाहर फेंक देता है, क्योंकि उसे डर है कि कहीं पिता इससे उसकी मां को आहत ना कर दे। माँ के पूछने पर विक्रम कहता है — "मैने फेंके है ये चाकू यहां, मुझे डर था कहीं पापा गुस्से में यह चाकू ही तुम पर ना फेंक दें,...उस दिन गर्म-गर्म चाय किस प्रकार फेंका था पापा ने।"(कांकरिया 145) माता- पिता के आपसी तनाव के कारण बच्चा असुरक्षित महसूस कर रहा है। दूसरी ओर, 'गिलिगडु ' उपन्यास में चित्रा मुद्गल ने दिखाया है कि किस प्रकार मां-बाप की व्यस्तता के कारण आज बच्चों के सामाजिकीकरण की प्रक्रिया समाप्त हो गई है। माता-पिता अपनी व्यस्तता में बच्चों को एक प्रकार से समाज से काट कर रख रहे हैं। माता-पिता के प्रेम, स्नेह की जगह कंप्युटर गेम ने ले ली है। इसे चित्रा मुद्गल 'गिलिगडु' उपन्यास में मलय और निलय के संदर्भ में दिखाती हैं कि नन्ही पीढ़ी गेम पर इस कदर निर्भर हो गई है कि गली के बच्चों के साथ खेलने में उनकी कोई रुचि नहीं रहती। उनके दादा जसवंत सिंह बच्चों की समस्या को लेकर चिंतित होकर सोचते हैं — "नरेंद्र और बहू विचित्र तब भी लगे जब बच्चों के बिना मांगे ही वह उन्हें विचित्र-विचित्र खेल-खिलौने ला कर दिया करते थे। वे खेल-खिलौने नन्हे मलय-निलय को अपने में उलझाए रहते। उन्हें किसी की जरूरत महसूस नहीं होती। कानपुर आते तो उन्हीं खेलों के साथ आते। गली के बच्चों के साथ खेलने में उनकी कोई दिलचस्पी नहीं होती।"(मुद्गल 34) बच्चे भी भौतिकतावादी सभ्यता की चपेट में भौतिक वस्तु में ही खुशी देखने लगते हैं। पुष्पपाल सिंह लिखते हैं — "भूमंडलीय विकास व्यवस्था में हंसी और खुशी मात्र भौतिक है, आत्मिक नहीं।"(सिंह 268) जो यहाँ नजर आ रहा है। आत्मीय साहचर्य की जगह भौतिक उपलब्धता प्रतिरोध का बेहद जरूरी विषय है।

परिवार के स्वरूप की चर्चा करते हुए उषा तिवारी लिखती हैं — "परिवार एकाधिक व्यक्तियों का वह समूह है जो विवाह या रक्त संबंध के कारण पारस्परिक हित चिंतन करते हुए साहचर्य भाव से एक ही घर में रहकर वैयक्तिक विकास के साथ-साथ परिवार के व्यक्तित्व का भी निर्माण करता है।"(तिवारी, २२) किंतु आज परिवार के भीतर बच्चे का व्यक्तित्व दम-घोट रहा है। माता-पिता की महत्वाकांक्षा व उनके स्टेटस का सिंबल मात्र बनकर बच्चा रह गया है। इसलिए उसके बचपने की तिलांजलि देकर विकास की अंधी रेस में उसे भी झोंक दिया जा रहा है। बच्चों के मामले में माता-पिता का रवैया सामाजिक दबाव में बदल चुका है। बचपना की जगह सूचना प्रधान सभ्यता हावी हो रही है और सूचनाओं को इकट्ठा करने और समाज में अपना सोशल स्टेटस बनाने का नया चलन शुरू हुआ। इसके कारण नन्ही पीढ़ी संकट में है और भूमंडलीकरण के बाद यह सकंट और भी भयावह हो गई है। परिवार में रक्त संबंध के आधार पर जो भावनात्मक परिवेश बनना चाहिए था, माता-पिता की ओर से बच्चों के प्रति वह गैरजरूरी हो चुका है और प्रतिस्पर्धा जन्म लेती है। इस प्रतिस्पर्धामूलक सभ्यता में नन्ही पीढ़ी के सामने जो संकट है, उसका परिणाम यह है कि बच्चा मानसिक तनाव से गुजर रहा है और कभी-कभी आत्महत्या, हत्या तक कर रहा है। उसका प्रतिरोध लेखिकाओं ने भली-भांति 'कोई बात नहीं', 'काला लिबास', 'बड़ा पोस्टर', 'दाखिला' में दर्ज किया है। सूचना प्रधान सभ्यता के प्रतिरोध में मधु कांकरिया ने 'दाखिला' में लिखा हैं —

> "मां-बाप का इतना ध्यान की बचपना ही नुच जाए बच्चों का। हालत यह कि अच्छे भले घरों में सब्जी तो खाई जा रही हैं चटनी की तरह और सारा पैसा बह रहा है बच्चों के दिमाग में जानकारियां ठूंसने में, मास्टरों को मोटी-मोटी फीस चुकाने में। पर्सनैलिटी डिवलपमेंट कोर्स, लीडरशीप कोर्स, कंप्यूटर कोर्स कर-कर ही कोई विद्यासागर या शेक्सपीयर बन जाएगा?...जानकारियाँ इतनी ठूंस दी जाती है कच्चे दिमाग में कि कल्पना और सुंदर विचारों के लिए जगह ही नहीं बन पाती और इसी का परिणाम है कि दिमागी रूप से अपरिपक्व और कमजोर ही बन रही है यह पीढ़ी। जरा-सा धक्का लगा कि ढेर।" (कांकरिया 145)

अत: परिवार में विचारों का संकट पनप रहा है। यह सभ्यता प्रतिस्पर्धा केंद्रित होने के कारण विचारों से शून्य बना रही है। सुषमा बेदी की कहानी 'काला लिबास' और मधु काँकरिया का 'बड़ा पोस्टर' दोनों कहानी में बच्चे विक्षिप्त हो जाते हैं, तो इसके पीछे माता-पिता के अपने स्टेटस को बनाए रखने के लिए विकास की अंधी दौड़ में बच्चे को झकझोरना है। 'काला-लिबास' की अनन्या अपने माता-पिता की तरह डॉक्टर नहीं बनना चाहती, उसकी रुचि हिंदी भाषा में है। वह अपने प्रोफेसर से कहती हैं — "हिंदी की किताबें...तस्वीरें! बस अपना-सा लगता है उसे यहां आकर।"(बेदी) लेकिन परिवार से डॉक्टर बनने के दबाव में अंतत: मानसिक अस्पताल पहुंच जाती हैं। प्रोफेसर के शब्दों में — "वह घर से शायद असंतुष्ट थी। आप शायद उसे डॉक्टरी

पढ़वाना चाहती थी...आप और आपके पति दोनों डॉक्टर हैं न।"(बेदी) 'बड़ा पोस्टर' का दीपू माता-पिता व भाई की उम्मीद पर खड़े होने की अंधी दौड़ में इस तरह मानसिक रूप से टूटता है कि फिर कभी ठीक नहीं हो पाता। विक्षिप्त होकर रह जाता है। दीपू का बड़ा भाई शैलेन अफसोस करते हुए सोचता है — "क्यों तोड़ा उसने उसकी अबोधता, सहजता, स्वाभाविक बेफिक्री से निर्मित जीवन की सर्वोत्तम कल्पना का सुंदर कानून?...बहुत संभव है यदि उसने दीपू के सम्मुख जीवन का इतना भयावह चित्र नहीं खींचा होता, डिग्री और प्रतिशत को इतनी अहमियत ना दी होती, तो वह घटना, इनविजिलेटर द्वारा उसे बहिष्कृत कर दिए जाने की – उसे इतना नहीं तोड़ती।"(कांकरिया 114) अलका सरावगी का उपन्यास 'कोई बात नहीं' में बच्चा शशांक अपनी शारीरिक अक्षमता के साथ परिवार में मां के व्यवहार के कारण दबाव में जीता है। उसका अपना व्यक्तित्व मिट्टी हो जाता है, क्योंकि माँ उसकी समस्या को समझने की जगह उसके पढ़ने को अपनी प्रतिष्ठा का सिंबल मानती हैं, इसलिए उसे पढ़ाने के लिए कभी व्हीलचेयर, तो कभी टाइपराइटर खरीदती है, पर उसकी भावनाओं से नहीं जुड़ती। यहाँ परिवार और समाज का संबंध इस रूप में है कि परिवार के मूल्य समाज में नहीं जा रहे है, बल्कि समाज के मूल्य परिवार में आ रहे है। समाज प्रतिस्पर्धामूलक है, इसलिए संबंध भी प्रतिस्पर्धामूलक हो रहे है। सबसे बड़ा संकट यह है कि ये प्रतिस्पर्धा अब समाज और परिवार के बीच ही नहीं, बल्कि पारिवारिक स्तर पर भी घटित हो रही है। मधु कांकरिया की 'आर आसबो न' कहानी में यह दर्ज है। जहां गोपी अपनी छोटी बहन प्रियंका से तुलना में परिवार द्वारा हर अवसर पर कमतर महसूस करा दिया जाता है और अंतत: परीक्षा में परिवार की उम्मीद पर खड़ा ना उतर पाने के अपराध बोध में आत्महत्या का रास्ता चुनता है। वह परीक्षा से नहीं, बल्कि परिवार से हारता है। वर्तमान में जो सभ्यता जारी है, इसमें बचपन में बचपना की जगह सूचना भावशून्यता ने ले ली है। विचार का अंत प्रारंभ हो गया है। पहले प्रतिस्पर्धा सामाजिक स्तर पर थी और अब पारिवारिक स्तर पर भी है और इस सारे परिदृश्य में माता-पिता सभ्यता के स्तर पर बच्चों का भला चाहते हैं, विकास चाहते हैं, लेकिन अंततः विकास हो नहीं पाता। अलका सारावगी के शब्दों में — "दुनिया के सारे मां-बाप अपने बच्चों का अपनी समझ से सिर्फ भला करना चाहते हैं। पर कई बार गलतियां कर बैठते हैं, क्योंकि उनकी समझ सिर्फ उनके इसी नजरिए से पैदा होती है कि वह बच्चे का भला कर रहे हैं।"(सारावगी 177) इस नाते वर्तमान जो सभ्यता जारी है, उसके तहत परिवार एक सामाजिक इकाई है और आज समाज के हिसाब से पारिवारिक संरचना निर्मित हो रही है। उसका प्रतिरोध बेहतर सभ्यता का प्रस्थान बिंदु है।

5.2.1.2. परिवार में युवा —

भूमंडलीकरण के बाद अगर कोई वर्ग सबसे अधिक तनावग्रस्त है, तो वह है युवा। इसका खत्म होता परिवार बोध नए बोध के रूप में पनप रहा है। वैश्वीकरण के दौर में बच्चा अबोध होने के कारण संकटग्रस्त होता है, तो युवा को बोध तो रहता है, लेकिन परिपक्वता के अभाव में संकटग्रस्त हो जाता है। हन्टिंगटन ने सभ्यता के संघर्ष

का जो सिद्धांत दिया, उसमें सभ्यता से पहले संस्कृति शब्द का प्रयोग किया, जिसे आगे चलकर वो सभ्यता के रूप में परिभाषित करते हैं। संस्कृति एक बोध है, तो सभ्यता आचरण है। जब हम आचरण को ही एक विचार की तरह जीने लग जाते है, तब जाहिर हैं चेतना के लिए उसमें जगह नहीं बचती। जैसा देखते है, वैसा ही हम करने लगते हैं। यह जो आचरण केंद्रित हमारी पारिवारिकता और सामाजिकता है, उसके कारण युवा पीढ़ी अपने ही माता-पिता के द्वारा कैरियरिस्ट हो जाती है। युवा पीढ़ी पैसा कमाने की झोंक में संबंधों से सिर्फ दूर ही नहीं हो जा रहे, बल्कि अपने परिवार-समाज से विरक्त हो जाते हैं और दूर कहीं अपनी संभावनाओं को देखते हुए दूर चले जा रहे है, लेकिन इसके कारण भी कहीं न कहीं वही माता-पिता है, जो सामाजिकता के दवाब में बच्चों को ऐसे संस्कार देते है। यहाँ माता-पिता, माता-पिता नहीं रह जाते, एक आर्थिक अपेक्षा पूर्ति का पुंजीभूत रूप बन जाते है, जिसे पूरा करने के लिए बच्चों को तैयार करते हैं, लेकिन फिर वो संबंध भावनात्मक रूप से शून्य हो जाता है। यह एक संकट है आज के युवा के सामने। आज माता-पिता अपने बच्चों को पूंजी कमाने की मशीन के रूप में तैयार कर रहे हैं। पैसे की संस्कृति सिखा रहे हैं, जिससे युवा भी इसी संस्कृति में अनुकूलित हो रहे हैं। 'लोड शेडिंग' कहानी में पिता बेटे योगेश को कामयाबी का मॉडल बनाना चाहते हैं। योगेश के अनुसार — "आज से करीब पांच वर्ष पूर्व उसके पिता ने एक किताब दी थी उसे, साउथ कोरिया के उद्योगपति किम वी चूंग की जीवनी, जिसने सिर्फ पच्चीस वर्ष की उम्र में बिलियन संपत्ति अर्जित कर ली थी। किताब देते हुए पिता ने कहा था, तुम्हें भी शेयर मार्केट का किम वी चूंग बनना है।"(कांकरिया 58) और ऐसी ही सीख का परिणाम है कि योगेश शेयर मार्केट का किम वी चूंग तो बन जाता है, पर पारिवारिक संवेदना से शून्य। तरक्की और विकास का मॉडल ही उसके अंदर सांस लेता है, पारिवारिक संवेदना नहीं। मधु कांकरिया लिखती हैं –

> "यहां तक की स्टॉक एक्सचेंज का मार्केट बंद हो जाता तो भी उसके भीतर का मार्केट चलता रहता। कौन-कौन शेयर आने वाले दिनों में बढ़ेंगे, किसका फटका किया जाए...किसको उल्टा बेचा जाए, किसको बदले पर लिया जाए...सब कुछ उसके अंदर बहता रहता। कई बार तो खाते-खाते फोन बज जाता। कई बार अधूरा खाना छोड़ उठ जाता। कई बार आधी रात को नींद उचट जाती तो अधजगा-अधलेटा ही बढ़ते मूल्य और मुनाफे का ग्राफ बनाने लगता और ऐसे माहौल में बालकनी में बाट जोहती खड़ी पत्नी की प्रतीक्षातुर बेचैन निगाहे कब पथरा जाती, कब तीज त्यौहार पर किया पत्नी का उबटन भरा श्रृंगार और हाथों की चटक मेहंदी अनदेखी अप्रशंसित रह जाती। कब घंटों की मेहनत और चाव से बनाया पकवान अधखाया और सराहे बिना ही रह जाता, कब संग-संग सिनेमा देखने की पत्नी की मासूम इच्छा दम तोड़ने लगती, कब बेटे की मुस्कान लहराते हाथ अनुत्तरित ही रह जाते, उसे भान तक ना होता।"(कांकरिया 60) पारिवारिक जीवन और उसके आनंद से दूर हो चुका योगेश आर्थिक विकास में ही संभावना को तलाशता युवा है।

सुधीर पचौरी ने अपनी पुस्तक 'नयी साहित्यिक सांस्कृतिक सिद्धांतिकियाँ' में लिखा है — "पश्चिम की आधुनिकता ने जिस परंपरागत परिवार को तोड़कर नए एकल परिवार बनाए और फिर उस एकल परिवार को तोड़कर आदमी के 'सिंगल लिविंग" को आदर्श की तरह स्थापित किया।"(पचौरी 351) आज युवा पीढ़ी उसी सिंगल लिविंग को आदर्श मान कर आगे बढ़ रहा है। कैरियर ओरिएण्टेड युवा का परिवार बोध ढह गया। ममता कालिया का उपन्यास 'दौड़' में पवन अपने माता-पिता के साथ नहीं रहना चाहता और इसके पीछे के कारणों का उल्लेख करते हुए ममता कालिया लिखती हैं — "उसके माता-पिता अवश्य चाहते थे कि वह वहीं उनके पास रहकर नौकरी करे, पर उसने कहा, "यहां मेरे लायक सर्विस कहां? यह तो बेरोजगारों का शहर है, ज्यादा से ज्यादा नूरानी तेल की मार्केटिंग मिल जाएगी।" मां-बाप समझ गए थे कि उनका शिखरचुंबी बेटा कहीं और ही बसेगा।"(कालिया ११) उपभोक्तावादी संस्कृति में गिरते परिवार-बोध के मूल्य को युवा पीढ़ी के अंदर इस तथ्य से समझा जा सकता है कि पारिवारिक संरचना का मूलाधार विवाह और संतान उत्पत्ति को युवा अपने विकास में बाधक मानता है और उसे झंझट का पर्याय समझता है। 'दौड़' उपन्यास में विवाहित अभिषेक अविवाहित पवन से कहता है — "पवन तुम लकी हो, अभी तुम्हारी जान को ना बीवी का झंझट है ना बच्चे का।"(कालिया २7) और उसकी पत्नी राजुल कहती हैं — "आजकल तो डिंग्स का जमाना है। डबल इनकम नो किड्स (दोहरी आमदनी, बच्चे नहीं) मैं सेन्टिमेंट के चक्कर में फंस गई।"(कालिया २8) करियर फोकस युवा के लिए बच्चे केवल प्रतिष्ठा का सूचक है, कोई भावनात्मक लगाव नहीं। पवन कहता है — "एक बच्चा तो हर घर में होना ही चाहिए। एक से कम तो पैदा भी नहीं होता। इसलिए एक तो होगा ही होगा।"(कालिया 28) बोधशून्यता इस कदर हावी है कि बच्चा एक जिम्मेदारी मात्र है, नि:संतान होने के कलंक से मुक्ति का मार्ग मात्र। सभ्यता का संकट है कि अर्थ कमाना तो अपने में जरूरी हो गया है, लेकिन उसे जीने का बोध समाप्त हो गया है।

पुरानी पीढ़ी ने बच्चों को सोशल स्टेटस सिंबल बनाया। वही बच्चा इतना आत्मकेंद्रित हो जाता है कि स्वयं में अपने करियर को लेकर सोशल स्टेटस सिंबल बनना चाहता है। यहां सभ्यता के धरातल पर पीढ़ियों के अंतराल को समझा जा सकता है कि पिछली पीढ़ी के बड़े-बुजुर्ग परिवार में बच्चों के साथ जो अपेक्षा पालते हैं, उसका परिणाम ऐसा होता है कि आगे चलकर यह जो युवा पीढ़ी के रूप में नई पीढ़ी बन रही है अर्थात् कैरियर प्रधान युवा पीढ़ी जो बन रही है, उसका सोशल सिंबल उसका कैरियर मात्र रह जाता है। आलविन टॉफलर ने जिस नई विकृत पारिवारिक संरचना का उल्लेख किया था, उस संरचना का आज विस्तार हो रहा है। यहां जो परिवार बन रहा है, वह परिवार प्रगति व विकास का भयानक भ्रम पाले हुए हैं। मधु कांकरिया की 'लेडी बॉस' में लेडी बॉस कंपनी को ही अपना चाइल्ड बना ले रही है। परिवार व बच्चे की जगह तरक्की और कंपनी को महत्व देती है और कहती है — "माय कंपनी इज माय चाइल्ड।" (कांकरिया 43) मधु कांकरिया लेडी बॉस

की मन: स्थिति पर लिखती हैं — "मां जिस प्रकार अपने बढ़ते बच्चे को देखकर खुश होती है, उसी प्रकार अपनी कंपनी को बढ़ते देखकर मैं...आई फील सो फूल...मैडम चहक रही थी।"(कांकरिया 43) संकट यह है कि विकास के इस मॉडल पर पारिवारिक चेतना शून्य युवा पीढ़ी तरक्की तो बहुत करती है, लेकिन अंततः अकेली रह जाने की नियति को झेलती है। 'एक रुकी हुई स्त्री' में सरबजीत दीपा से कहता है — "वैसे भी स्वयं तुमने देखा होगा कि आज जितनी भी महत्वाकांक्षी युवतियां हैं, वे चाहे मेडिसिन के प्रोफेशन में हो, चाहे वकालत में, वे अपने प्रोफेशन से ही शादी कर लेती हैं क्योंकि जब तक कि अपने कैरियर में स्थापित होती है, शादी की उम्र निकल जाती है उनकी।"(कांकरिया १७३) सरबजीत इस तथ्य को रखता है कि किस प्रकार 'करियर' युवा पीढ़ी के लिए जीवन लक्ष्य बन रहा है, जीवन साथी बन रहा है। लेकिन इसका एक भयानक परिणाम यह है कि अंततः एक भिखारिन को देखकर कोफ्त होता है कि हमने क्या कंज्यूम किया। 'लेडी बॉस' की बॉस अंतत: अकेलेपन के दंश को झेलती है। मधु कांकरिया लिखती हैं —

> "कभी किसी इंसान के प्यार की ख्वाहिश तो कभी किसी बच्चे की मुस्कान की चाह को लेकर कलेजे में एक हूक उठा करती, तो कभी गहरी आत्मीयता एवं अंतरंग बात करने को दिल तड़पता...जिंदगी के पैंतालीसवे वर्ष में सायं-सायं करते अकेलेपन के क्षणों में गुजरते हुए रह-रहकर यह प्रश्न चीर देता कि जीवन का जो अंश-प्रतिअंश स्वाहा किया...क्या रही उसकी कुल उपलब्धि?...किसी भिखारिन को सड़क पर अपनी गृहस्थी के साथ देखती तो ठिठककर वहीं खड़ी हो जाती...मुझसे ज्यादा तो वह सुखी...। आज वक्त को काट नहीं पा रही है मैडम। इस कारण पहाड़-सा फैला सूखा निरर्थक वक्त उनको काट रहा है।(कांकरिया 46)

इस प्रकार 21वीं सदी में लेखिकाओं ने नन्ही पीढ़ी की युवा पीढ़ी में बदलने के बाद जो नई पीढ़ी तैयार हुई है, उसके अंतराल को सभ्यता के स्थल पर प्रतिरोध का विषय बनाया है।

5.2.1.3. परिवार में वृद्ध —

नव साम्राज्यवाद के उदय के बाद परिवार में वृद्ध सबसे अकेले हो गए। परिवार में वृद्ध की हैसियत बेकार की हो गई। 'यूज एंड थ्रो' की नीति के कारण परिवार में वृद्ध को उतनी ही जगह मिली, जितनी उनकी जरूरत बनी रही। इसके उपरांत बोझ बन गए। जिस उम्र में सबसे अधिक प्रेम व अपनेपन की जरूरत होती है, उस उम्र में अकेलेपन का संत्रास व स्वयं को फालतू महसूस करने को वे बाध्य हो गए। पुष्पपाल सिंह लिखते हैं —

"भूमंडलीकरण की आर्थिक स्थितियों ने विभिन्न राष्ट्रों की भौगोलिक सीमा को एक दूसरे के बहुत निकट ला दिया है। पूंजी की हरी चारागाह की तलाश में कम विकसित या विकसित देशों के नागरिक विकसित पूंजीवादी व्यवस्था के देशों में जा बसते हैं।...उच्च शिक्षित पीढ़ी ही नहीं, अल्प शिक्षित डिप्लोमा धारी तथा अप्रशिक्षित

भी अमेरिका, कनाडा जाने की होड़ में लगे हुए हैं। किसान अपनी जमीने बेच-बेचकर, गिरवी रखकर बच्चों को विदेश भेज रहा है।...इधर उनके पीछे छूट गए परिजन, विशेषत: माता-पिता बच्चों के विदेश में जा बसने से अपने ही प्रकार का एकाकीपन और वृद्धावस्था के दंश भोंगते हुए एक अभिशप्त-सा जीवन जीने की नियति भोंगते हैं।"(सिंह ६३)

विकास की अंधी दौड़ में बच्चे जब बड़े हो जाते हैं तो परिवार में बुजुर्ग कैसे अकेले रह जाते हैं, इसे 'दौड़' उपन्यास में ममता कालिया ने चित्रित किया है — "सिन्हा! साहब बताते हैं उनका अमित मुंबई में है, वहीं उसने किस्तों पर फ्लैट खरीद लिया है। सोनी साहब बताते हैं उनका बेटा एच0 सी0 एल0 की ओर से न्यूयार्क चला गया है। मजीठिया का छोटा भाई कैनेडा में हार्डवेयर का कोर्स करने गया था, वहीं बस गया।"(कालिया 47) यानी युवा परिवार से संबंध तोड़ कर अपनी प्रगति में मस्त है और बुजुर्ग अकेलेपन का संत्रास झेलने को अभिशप्त। कृष्णदत्त पालिवार लिखते हैं — "यह मात्र 'विहेवियर' का चेंज नहीं है...'साइकोलॉजिकल' पूरी दिमागी बनावट या मानसिकता का परिवर्तन है। नए ग्लोबल मैन की ग्लोबल सोसाइटी में चीजों के साथ 'रिलेशनशीप' की उम्र भी छोटी हो गई है — 'यूज एंड थ्रो कल्चर' का नया विचार दर्शन आ गया है। सभी मानव संबंध टूट-फूट गए हैं..." (पालिवाल 7) ऐसे में परिवार में बुजुर्ग के प्रति नीति उपयोगितावादी हो गई है। परिवार में बुजुर्ग अगर रह भी रहे हैं, तो पारिवारिक मूल्यों के तहत नहीं, बल्कि हाउसकीपर व नौकर ना रखना पड़े इस सोच के तहत ताकि युवा अपनी नौकरी कायम रह सके। इस उद्देश्य के तहत परिवार में बुजुर्गों को केयर टेकर से अधिक की हैसियत नहीं मिल पा रही। 'बेंच पर बूढ़े' में मृदुला गर्ग नितिन सोलंकी व उनकी पत्नी के संदर्भ में युगीन सच को सामने रखती हैं। उनके सुपुत्र और पुत्रवधू ध्रुव और मान्या अधेड़ दंपति को साथ रखते हैं, तो भले ऊपरी तर्क परिवार में बच्चों का वास्ता देते हैं, पर हकीकत अर्थ-संस्कृति का प्रभाव है। मृदुला गर्ग लिखती हैं – "वे चले गए तो मान्या को नौकरी छोड़नी पड़ेगी या बच्चों की देखभाल के लिए उचित तनख्वाह पर हाउसकीपर रखनी पड़ेगी।"(गर्ग) एक समय अर्थ कमाना जरूरी था, तो उसको जीने का बोध भी था कि कैसे जिएंगे, लेकिन अब अर्थ को सिर्फ कमाना है, बचाना है, जीना नहीं है। इस नई सभ्यता में अर्थ कमाने और बचाने का आचरण हम पर कायम हो गया। कमाने के लिए विदेश जाएंगे और बचाने के लिए माँ-बाप को केयर टेकर बना देंगे। बच्चा पालना हो तो माँ-बाप को अपने यहाँ बुला लेंगे।

नासिरा शर्मा का उपन्यास 'कुइयाँजान' में डॉक्टर कमाल अपने क्लीनिक में आए एक बुजुर्ग को जब हल्का और ताजा खाना खाने कहते हैं, तो वह कहता है — "जब तक कमावत रहे, कभी अपने बेटबन को बासी-तिबासी नहीं खिलाया, मगर बहु का राज है, बचा खुचा दे देत हैं, भगवान का शुक्र अदा कर खाए लेत है।"(शर्मा 168) परिवार से दूर रहकर ही नहीं परिवार के बीच रहकर भी बुजुर्ग अकेलेपन को झेलने को बाध्य हैं। नई पीढ़ी को अपने से जोड़ने या उनसे जुड़ने में असमर्थ है। चित्रा मुद्गल ने 'गिलिगडु' उपन्यास में इस तथ्य

को रखा है। जहां दादा जसवंत सिंह अपने पोते की बर्थडे पार्टी में जुड़ना चाहते हैं, ताकि भावनात्मक रूप से पोते से जुड़ सके, लेकिन पोता मलय जवाब देता है — "उसका यह कार्यक्रम उसके दोस्तों के साथ हैं। घरवाले इसमें शामिल नहीं होंगे। मम्मी को वैसे भी जन्मदिन मनाने में झंझट होता है...न, न दादू। अपने साथ हम किसी भी बड़े को नहीं ले जाएंगे, पार्टी बोरिंग हो जाएगी।"(मुद्गल 33) इतना ही नहीं उसके लिए अच्छा-सा उपहार साथ जाकर खरीदकर लाना चाहते हैं, तब मलय बता तो देता है कि उसे अदनान सामी की सीडी चाहिए, लेकिन उनके साथ बाजार जा कर इसे लेकर आने से साफ इंकार कर देता है — "नहीं, पढ़ना होता है ना..." (मुद्गल 34)

इस प्रकार भूमंडलीकरण के बाद परिवार में वृद्ध परिवार के बीच हो या परिवार से दूर अकेलेपन की त्रासदी को झेलने को बाध्य है। परिवार की मूलभूत अवधारणा भावनात्मक रक्षण था, परंतु आज इसमें भावनाओं का क्षरण हो रहा है। संबंध भावनात्मक की जगह उपयोगितामूलक हो गए है और इसमें दोषी न तो अर्थ केंद्रित शिक्षा देने वाले माँ-बाप है और न ही ऐसी शिक्षा के माहौल में पला-बढ़ा युवा, बल्कि नए ढब में बाध्य होती पूरी सभ्यता है।

5.2.1.4. परिवार में स्त्री —

भूमंडलीकरण के बाद नया परिवार बोध जन्म लेने लगा। उससे परिवार में बच्चे, युवा और वृद्ध को तो प्रभावित किया ही, नई चेतना से परिपूर्ण स्त्री वर्ग भी इससे अप्रभावित नहीं रह पाई। पारिवारिक स्तर पर स्त्री के प्रति परंपरागत सोच में भले बदलाव की नई लहर देखने को मिली, लेकिन नई सभ्यता के साथ नया संकट भी उन्हें घेरे खड़ा रहा। मृणाल पांडे ने 'देह की राजनीति से देश की राजनीति तक' पुस्तक में लिखा है —

> "पुरुष-स्त्री तथा बच्चों को आसरा देने वाली परिवार संस्था, मानवीय सभ्यता की एक ऐसी बुनियादी इकाई है, जिसका कोई विकल्प नहीं। पर इस इकाई के भीतर शक्ति समीकरण, जो अंततः पूरे राष्ट्र का आर्थिक-सामाजिक परिदृश्य तैयार करते हैं, अपने यहां तमाम बदलावों के बावजूद सदियों से वे ही रहे आए हैं। इससे अहित औरतों का भी हुआ और पुरुषों के लिए कामयाबी का मॉडल रहा, ताकत के चरम पुंजीभूत प्रतीक "मर्द" का, जबकि स्त्रियों के लिए निष्क्रिय सहचरी का स्वरूप उत्तम माना गया। (पांडे 91)

बदलाव के वाबजूद परिवार में स्त्री का स्थान निष्क्रिय सहचरी तक सीमित रहा। एक समय विवाह द्वारा जीवन भर साथ देने वाले जीवन साथी की तलाश की जाती थी, वहीं अब वैवाहिक मूल्य में परिवर्तन इस रूप में हुआ की पत्नी गृहलक्ष्मी की जगह ग्लैमर व स्टेटस मेंटेन के अन्य सामान की तरह एक सामान नजर आने लगी। जयश्री राय की कहानी 'वर्जित सुख' में पत्नी पति के लिए जीवन संगिनी नहीं, बल्कि नुमाइश व शान बढ़ाने वाली चीज के समान निष्क्रिय सहचरी के रूप में ही देखता है। पत्नी स्वयं सोचती है — "अपने आलीशान

कोठी में दूसरे महंगे सामानों के साथ नुमाइश में सजाकर वह उसे भूल गया था।...वह सुंदर है और उसके व्यक्तित्व के साथ जँचती है, उसके आलीशान घर और पार्टियों की शोभा बढ़ाती है इसलिए उसकी आवश्यकता है, यही उसके जीवन में उसकी उपयोगिता है।"(राय 92-93)

सभ्यता का संकट है कि स्त्री की यौनिक उपयोगिता परिवार के आर्थिक विकास के नाम पर काम में लाई जा रही है। परिवार में स्त्री की हैसियत यह है कि उसे अपने करियर बनाने के लिए सीढ़ी की तरह इस्तेमाल किया जाता है। गीताश्री की कहानी 'इंद्रधनुष के पार' की आशा, 'कस्बाई सिमोन' की कीर्ति, 'ये आम रास्ता नहीं' की मृदु के साथ इस स्थिति को लेखिकाओं ने विषय बनाया है। 'ये आम रास्ता नहीं' में मृदु का पति पुंज अपनी पदोन्नति के लिए पत्नी का उपयोग करना चाहता है और कहता है — "मृदु, तुझे कुछ नहीं होगा। बस, प्लेन से दिल्ली चली जा। गाड़ी आएगी तुझे लेने एयरपोर्ट पर, कोई नेता है। देख, यदि उन्हें खुश कर पाए तो मुझे कितनी अच्छी पोस्टिंग मिलेगी, जिसका असली फायदा तो तुम्हीं लोग उठाओगे, नही? ए प्लीज, गलत मत समझना मुझे। यह सारा पैसा तुम्हीं लोगों की बेहतरी के लिए, फिर हम तुरंत इंडिका खरीद लेंगे।"(गुप्त 46)

डॉ संजय चौहान उत्तर-आधुनिकता में सांस्थानिक मूल्यों के अतिक्रमण की बात करते हुए 'रक्त-संबंधियों में मानसिक और शारीरिक यौनाचार को पारिवारिक मूल्य का अतिक्रमण' के रूप में देखते है। (चौहान 106-107) आज सभ्यता का संकट है कि एक ओर हम विकास की सीढ़ी चढ़ रहे हैं, तो दूसरी ओर पारिवारिक स्तर पर स्त्रियों के साथ यौन शोषण जैसे अपराध भी प्रतिदिन बढ़ते जा रहे हैं। परिवार में असुरक्षा को ज्योति सिंह की कहानी 'अनझिप आंखें' व्यक्त कर रही है। जहां पति और जेठानी के अनैतिक संबंध को देख कथानायिका मायके लौट आती है। पहले तो परिवारजन ससुराल भेजने और एडजस्ट करने की सीख देते हैं। साम, दाम, दंड, भेद का प्रयोग करते हैं और फिर अपने मामा के द्वारा अशोभनीय प्रस्ताव को सामने रखा जाता है —

> "मामा जी का हाथ पीठ पर रखते हुए आगे की तरफ आता जा रहा था।..." और मना करने पर कहते हैं – "अब तुम्हारी हर जरूरत पूरी करने की जिम्मेदारी मेरी...सिर्फ तेरी तड़प ही नहीं मिटाऊंगा, रुपए पैसे से लेकर साज-शृंगार, जेवर-गहना, खाना-पीना, घूमना-फिरना, जो चाहो...रानी बनकर राज करना...हर चौथे दिन पहुंच जाऊंगा तुम्हारे ससुराल...और देखो, किसी को शक तक नहीं होगा हम दोनों पर...आखिर तेरा मामा हूं...।"(कुमारी)

सभ्यता का संकट है कि जागरूक होने के कारण भले ही आज स्त्रियों को पढ़ाया-लिखाया जा रहा है, नौकरी के लिए भी अवसर भी उपलब्ध हो रहे हैं, लेकिन विवाह अनिवार्य बना हुआ है, चाहे व्यवस्था कैसी भी हो। जयश्री राय ने कहानी 'काली कलूटी' में दिखाया है कि किस प्रकार नौकरीपेशा लावण्या विवाह न हो

पाने के कारण परिवार में दंश झेलती है और अंततः विक्षिप्त हो जाती है। समाज ने स्त्री की सुंदरता की जो छवि गढ़ी, उससे पारिवारिक संरचना में स्त्री संकटग्रस्त है।

इस प्रकार देखते हैं कि नई सभ्यता के साथ जो नया परिवार बन रहा है, उसके सदस्य चारदीवारी की कल्पना से बाहर है। परिवार की अवधारणा विघटित एवं प्रतिस्पर्धामूलक हो गई है। आज परिवार में भावनात्मक संरक्षण की जगह भावनात्मक क्षरण हो रहा है। भावनात्मक सुरक्षा की जगह आर्थिक सुरक्षा ने ले ली। संबंध उपयोगितामूलक हो गए हैं और अंतत: यह सामाजिकता का परिणाम है। समाज के मूल्य परिवार के मूल्यों पर हावी हो गए है और समाज अनुरूप जो नई पारिवारिक संरचना बन रही है, उसे जीने को बच्चे, युवा, वृद्ध सभी अभ्यस्त होने को बाध्य हैं, अनुकूलित होने की नियति को झेल रहे हैं। इस नियति को 21वीं सदी में लेखिकाओं ने अपने लेखन में विषय बना समय की विसंगति के प्रति सचेत किया है, ताकि इस विसंगति के विरुद्ध आत्मबोध विकसित हो सके। भौतिक समृद्धि को जीने का आत्मबोध ही सभ्यता से संकटग्रस्त समाज को उचित दिशाबोध दे सकता है और ऐसे आत्मकेंद्रित सभ्यता के विरोध में आत्मबोध से परिपूर्ण परिवारबोध को जन्म दे सकता है, जो सभ्यता के संकट के प्रतिरोध का अनिवार्य चरण है।

5.2.2 प्रतिरोध के परिदृश्य में समाज —

समाज व्यक्ति के समूह का सूचक है, जिसमें व्यक्ति रक्त संबंध से इतर कार्यकलाप के माध्यम से जुड़ते हैं। विकीपीडिया के अनुसार — "समाज एक से अधिक लोगों के समुदायों से मिलकर बने एक वृहद समूह को कहते हैं, जिसमें सभी व्यक्ति मानवीय क्रियाकलाप करते हैं।"(समाज) परिवार रक्त संबंध व भावनात्मक संबंध द्वारा प्राकृतिक रूप से निर्मित है, तो मानवीय क्रियाकलाप के लिए जिस समूह का निर्माण किया जाता है, वह समाज है। अत: व्यक्ति के समूह द्वारा स्वनिर्मित। समाज के संबंध में प्रोफ़ेसर मैकाइवर के विचार का उल्लेख विकिपीडिया में किया गया है — "समाज का अर्थ मानव द्वारा स्थापित ऐसे संबंधों से है, जिसे स्थापित करने के लिए उन्हें विवश होना पड़ता है।"(समाज) ऐसे में सामाज एक अनिवार्य आवश्यकता है। समाज के अपने नियम, रीति-नीति होते हैं जिसके अनुसार वह सुचारू रूप से चलता है। विकिपीडिया में उल्लेखित एडम स्मिथ के विचारानुसार – "मनुष्य ने पारस्परिक लाभ के निमित्त जो कृत्रिम उपाय किया है, वह समाज है।"(समाज) मैकाइवर ने समाज को मानवीय कृति कहा, उसे ही एडम स्मिथ ने पारस्परिकता के निमित्त मात्र कहा अर्थात् व्यक्ति एक-दूसरे को लाभ पहुंचाते हुए ही समुदाय में जीवन यापन करते हैं, तब समाज बनता है। भूमंडलीकरण के बाद भारतीय समाज व्यवस्था पश्चिम के मूल्यों को बिना विचारे अपनाने लगा। श्यामाचरण दुबे लिखते हैं – –

> "समकालीन भारतीय समाज तीव्र संक्रमण के दौर से गुजर रहा है। परिवर्तन की आँधियाँ कई दिशाओं से आ रही हैं – एक और आधुनिकीकरण की अनिवार्यता है। दूसरी ओर परंपरा के आग्रह है। पश्चिम

> की आर्थिक और तकनीकी सहायता अपने साथ वहां की जीवन शैली और मूल्य ला रही है, जिन्हें अपनी जड़ से कटे भारतीय आधुनिकता समझकर बिना तड़के अपना रहे हैं। इस अंधानुक्रमण ने एक नई चिंता को जन्म दिया है, अपनी अस्मिता और पहचान खो कर एक आकृति विहीन भीड़ की गुमनामी में खो जाने की। हमारी संस्कृति अनुकरण की भोगवादी और लिप्सावादी संस्कृति बन गई है। आर्थिक उदारता, खुलापन और वैश्वीकरण संसार भर में एक अप-संस्कृति फैला रहे हैं, हम इस प्रवृत्ति के असहाय दर्शक मात्र बनकर रह गए हैं।" (दुबे 131-134)

भारतीय सामाजिक व्यवस्था और उसके मूल्य में संक्रमण घटित होने लगा और यही भारतीय मूल्य पर पश्चिमी मूल्य के अंधानुकरण की होड़ मची और इस संक्रमण से सामाजिक व्यवस्था पारस्परिकता की जगह भीड़ में तब्दील हो गई। भीड़ की पहचान है कि हर कोई इसमे केवल अपना हित चाहता है। उसका हित पारस्परिकता में नहीं, वैयक्तिकता में बदलकर रह जाता है। मैकाइवर और एडम स्मिथ ने जिस पारस्परिकता में समाज को बताया, वहीं श्यामाचारण दुबे ने दिखाया है कि कैसे भूमंडलीकरण के बाद ये पारस्परिकता बाधित हो रही है। परस्पर लाभ के निमित्त मानव समुदाय कैसे आत्मकेंद्रित भीड़ में बदल रही है, जहाँ परस्परिकता को महत्व न देकर व्यक्ति केवल अपने बारे में सोच रहा है, आत्मकेंद्रित भावबोध से भर रहा है और इसी कारण एक तो परिवार टूट रहा है, दूसरा समाज भी भीड़ में बदलकर रह जा रहा है, जहाँ व्यक्ति को तात्क्षणिक लाभ तो दिखता है, अपनी अपेक्षाओं के अनुकूल स्थितयां दिखती हैं, तो खुश तो होता है, लेकिन अंतत: सुखी नहीं हो पाता है। भीड़ में बदलकर अजनबीयत, अकेलापन महसूस कर रहा है। समाज व उसकी प्रत्येक इकाई कार्यक्षेत्र, धर्म व संस्कृति, शिक्षा और सांकृतिक संस्थान, सामाजिक संबंध आज प्रभावित हो रहे है। समाजबोध विहीन होकर झुंड संस्कृति की जो नई सभ्यता आई है, भूमंडलीकरण के बाद इस व्यवस्था को अपनाने को हम अभिशप्त हो उठे है, जिसका प्रतिरोध लेखिकाओं ने अपने लेखन के माध्यम से दर्ज किया है।

5.2.2.1 कामकाजी स्त्री और संकट —

किसी भी समाज की सभ्यतामूलक विकास की पहचान का एक आधार उस समाज की स्त्रियों के जीवन का दिशाबोध है। स्त्रियों के हित में कितने अवसर उपलब्ध है, इससे उस समाज की मूलभूत संरचना का पता चलता है। वैश्वीकरण के दौरान बहुराष्ट्रीय कंपनियों के प्रवेश के बाद रोजगार के व्यापक अवसर बने, जिसमें स्त्रियों ने भी बढ़-चढ़कर अपनी भूमिका तय की। घर के घेरे से बाहर आर्थिक आत्मनिर्भरता की दिशा में स्त्रियों के कामकाजी व्यक्तित्व को भरपूर अवसर मिला। इस नाते कामकाजी स्त्रियों के प्रति बदलते समाज का नजरियाँ और बदलते समाज में कामकाजी स्त्रियों की भूमिका सहज ही सभ्यता के विकास में अनिवार्य चरण है, लेकिन उसके प्रति समाज का नजरिया कैसे प्रभावित है, इससे समाज की दिशा कैसे विकसित होती है, इसका प्रतिरोध

लेखिकाओं ने किया है। हिंदी कथा साहित्य में 'गोरिल्ला प्यार', 'इंद्रधनुष के पार','लेडी बॉस','दो पन्ने की औरत' में लेखिकाओं ने कामकाजी महिला और उनके साथ कर्मक्षेत्र में उत्पन्न संकट को विषय बनाया है।

विकास के बावजूद कामकाजी औरत के संदर्भ में पहला संकट यही है कि एक स्त्री चाहे बॉस ही क्यों ना हो, उसकी योग्यता को कम आंका जाता है। उसके काम के आड़े में उसका औरत होना मुख्य हो जाता है। इस कारण असुरक्षा के घेरे में रहने को वह विवश हो जाती हैं। मधु कांकरिया की कहानी 'लेडी बॉस' में मैडम सॉफ्टवेयर कंपनी की मालकिन है, कंप्यूटर विज्ञान में एमटेक और अमेरिका से मास्टर डिग्री धारक है। अपने काम के प्रति पूरी तरह समर्पित है, लेकिन योग्यता के अनुसार सफलता का श्रेय प्राप्त नहीं कर पाती है। उनके ऑफिस के कर्मचारी के कथन अनुसार — "जींस पहनकर जब औरत के जिन्स ही तेजी से बदलने लगे, तब यही होता है...अंदर की बत्ती गुल और प्रतिभा, इच्छाशक्ति सब शून्य।"(कांकरिया 37) औरत के प्रति पूर्वाग्रह को यह कथन दर्शा रहा है।

महादेवी वर्मा ने स्त्री की आर्थिक परवशता को ही उसकी मुक्ति का बाधक माना है, किन्तु स्त्री की 'देह से परे' का विमर्शकारी सरोकार व्यर्थ हो जाता है, जब कामकाजी महिलाओं को उसकी प्रतिभा को नजरअंदाज करते हुए उसकी प्रगति को देह तक सीमित कर दिया जाता है। आज जब स्त्रियाँ कर्मक्षेत्र में आगे बढ़ रही है। कमाऊ हो रही हैं, तो वहां कामुक नजरिये का सामना करना पड़ रहा है। गीताश्री की कहानी 'गोरिल्ला प्यार' में अर्पिता वर्किंग वूमेन है, योग्य है, लेकिन ऑफिस में बॉस का उसके प्रति गलत आचरण है। इसका विरोध करने के कारण वह अपने कर्मक्षेत्र में हमेशा के लिए एक स्थायी ताकतवर दुश्मन पाल लेती है। स्वयं उसके शब्द में — "बॉस के प्रेम प्रस्ताव को खारिज करके हमेशा के लिए दफ्तर में अपने लिए एक शक्तिशाली दुश्मन पैदा कर लिया।"(गीताश्री 58) 'दो पन्ने की औरत' में सशक्त पत्रकार असावरी जो 'पावर गेम' पत्रिका के लिए लिखती है, लेकिन ऑफिस में बॉस का उसके प्रति आचरण कामुक है। गीताश्री लिखती हैं — "बॉस ने अपनी हथेली उसकी जांघों पर फेरी, "एक ऑफिशियल टूर बन रहा है हैदराबाद का, तुम को भेजना चाह रहा हूं। जाओगी?" (गीताश्री 79) और इंकार करने पर उसका काम भी प्रभावित होता है। वह सोचती है — "इस इंकार के बाद वह कई दिनों तक ऑफिस में बॉस की उपेक्षा झेलती रही। मगर वह खुश थी कि उसकी जाँघें सही सलामत थी।"(गीताश्री 79) सभ्य समाज में स्त्री के प्रति ऐसा नजरिया बीमार समाज का ही बोध कराता है। ऐसी रुग्ण सभ्यता का प्रतिरोध कथा साहित्य में दर्ज है।

कथा साहित्य में समग्रता में कामकाजी महिला के समाज को विषय बनाया गया है। एक ओर समाज का कामकाजी महिलाओं के प्रति रुग्ण नजरिए का परिचय मिलता है, तो दूसरी ओर उसी रुग्ण नजरिए को मजबूत बनाता स्त्री का आत्मकेंद्रित आचरण भी दिखता है। 21वीं सदी में कामकाजी महिला का एक वर्ग ऐसा भी पनपा, जिन्होंने अपने सौंदर्य का उपयोग आगे बढ़ने के लिए बेहिचक करना शुरू किया। 'दो पन्ने की औरत'

की रंजना के माध्यम से इस अप-संस्कृति को गीताश्री ने सामने रखा है, जो आगे बढ़ने के लिए अपने सौंदर्य का उपयोग करती है, बॉस के साथ नाजायज संबंध रखती है। शॉर्टकट अपनाती है। गीताश्री लिखती हैं — "असावरी जो खेल श्रम और प्रतिभा से जितना चाहती थी, रंजना ने उसके लिए जीत का शॉर्टकट तलाश लिया था। रंजना जीत रही थी लगातार, असावरी हार रही थी लगातार।" (गीताश्री 76) इसका परिणाम है कि असावरी जैसी मेहनती स्त्रियों का मनोबल टूटता है, इन शॉर्टकट के प्रति आकर्षित होती है और ऐसे शॉर्टकट को अपनाकर अपने करियर पर चार चांद लगाना चाहती हैं। वह फिल्म समीक्षक पुनीत वर्मा से कहती है – "बहुत हो गया मुझे भी कोई उपाय बताइए...आप मर्द है। कैसे पटाते हैं। मैं ऐसा क्या करूं कि बॉस मुझे फेवर करने लगे? (गीताश्री 79) अत: आगे बढ़ने के लिए ऐसा करने में उसे एतराज नहीं है। आज शिक्षा प्राप्त करके स्त्रियाँ शिक्षित हो रही हैं, लेकिन शिक्षित होते ही रंजना और असावरी की तरह संस्कारविहीन होते जाना सभ्यता का संकट है। इस दिशा में स्त्री का शिक्षित होकर किया गया प्रतिरोध अपनी बुनियाद में ही एक तरह का संकट है, क्योंकि यहाँ शिक्षा का उद्देश्य दिग्भ्रमित है। दयानंद सरस्वती और सावित्रीबाई फुले ने स्त्री शिक्षा का उद्देश्य आत्मबोध को विकसित करने की दिशा में बताया था और आज कामकाजी स्त्री का एक वर्ग इस बोध से लुप्त हो रहा है। सभ्यता के स्तर पर कामकाजी महिला के प्रति सोच के संकट और इस सोच के अनुरूप अनुकूलित होती कामकाजी महिला का चित्रण रुग्ण होती सभ्यता का रचनाकार की ओर से प्रतिरोध है, ताकि भावी पीढ़ी इस संकटग्रस्त अनुकूलन से बचे और आत्मबोध विकसित कर सके।

5.2.2.2 विकास, विस्थापन व अकेलापन —

नई सभ्यता के प्रादुर्भाव के बाद विकास का मतलब सांस्कृतिक मूल्यों से समृद्ध होने से नहीं लिया गया, बल्कि भौतिक परिप्रेक्ष्य में संसाधनों से जीवन की समृद्धि से लिया गया और इसके लिए सहज सुलभ रास्ता बना गांव से कस्बा, कस्बा से महानगर की ओर प्रस्थान करना। कारण विकास का केंद्र समृद्ध शहर बन गए। विकास के लिए आगे बढ़ना ही सबसे ज्यादा जरूरी हो गया। पुष्पपाल सिंह लिखते हैं —

> "भूमंडलीकरण की आर्थिक स्थितियों ने विभिन्न राष्ट्रों की भौगोलिक सीमाओं को एक-दूसरे के बहुत निकट ला दिया है। पूंजी के हरी चारागाह की तलाश में कम विकसित या विकासशील देशों के नागरिक विकसित पूंजीवादी व्यवस्था के देशों में जा बसे हैं।...आज तो 'स्टेट्स' में बसना भारतीय समाज में अपने प्रकार का प्रतिष्ठा प्रति (स्टेटस सिंबल) ही बन गया है। देश की बड़ी संख्या के इस प्रकार विदेश में जा बसने से सांस्कृतिक विस्थापन (डयासपोरा) की विकट समस्या भारतीय समाज में उठ खड़ी हुई है।" (सिंह 63)

भूमंडलीकरण के बाद विकास का जो नया मॉडल आया, उसने यह समझा दिया की उन्नति व विकास के लिए आगे बढ़ना ही सबसे ज्यादा जरूरी है। आगे बढ़ना अमेरिकी हो जाना है। पुष्पपाल सिंह रामशरण जोशी के

विचार का उल्लेख करते हुए लिखते हैं — "उपभोक्ता भारतीय समाज की युवा पीढ़ी के 'सभी स्वर्ग' अमेरिका से शुरू होकर उसी में समा जाते हैं। इस समाज की पीढ़ी को 'अमेरिका-जाई' कहना अधिक उपयुक्त होगा। " (सिंह 63) अपने शहर में, देश में संभावनाओं की कमी को देखते हुए विस्थापन शुरू हुआ और विस्थापन ने पूंजी तो बहुत उपलब्ध कराया, लेकिन सामाजिक, पारिवारिक स्तर पर संवेदना के स्तर पर लोगों को भावशून्य बना दिया। ममता कालिया का 'दौड़', मधु कांकरिया का 'लोड शेडिंग, 'जैसा था वैसा ही है मेरे आस-पास', 'रहना नहीं देश विराना' रचनाएँ 21वीं सदी में आई, जिसने विस्थापन की पीड़ा, व अकेलेपन से जूझता व सामाजिकता से कटे नव-औपनिवेश के बाद नए उभरते वर्ग को विषय बनाया गया है। इस विस्थापन के पीछे कभी उन्नति और तरक्की का सपना रहा, कभी मूलभूत जरूरतों की पूर्ति के लिए, तो कभी मोहभंग एक कारण बना।

आज माता पिता अपने बच्चों को अच्छी महँगी शिक्षा दिलाते हैं, तो इसका उद्देश्य अपने समाज को वह इस शिक्षा का कुछ फायदा दे सकें या सामाजिक बन जाए इसलिए नहीं, बल्कि अच्छी नौकरी, अच्छा पैसा के साथ सेटल हो सके और इसी अच्छी भौतिक जीवन शैली को जी पाने के लिए युवा वर्ग विस्थापन की समस्या को झेल रहा है। ममता कालिया का उपन्यास 'दौड़' में भौतिकतावादी संस्कृति की ओर आकृष्ट युवा वर्ग को दिखाया है। जब पवन से उसके पिता अपने घर के आस-पास या इतनी दूरी पर नौकरी ज्वाइन करने कहते हैं, ताकि महीने में एक बार कम से कम घर लौट सकें। तब कहता है —

> "पापा मेरे लिए शहर महत्वपूर्ण नहीं है, कैरियर है। आप कलकत्ते को ही लीजिए। कहने को महानगर है, पर मार्केटिंग की दृष्टि से एकदम लद्दर। कलकत्ते में प्रोड्यूसर का मार्केट है, कंज्यूमर का नहीं। मैं ऐसे शहर में रहना चाहता हूं, जहां कल्चर हो ना हो, कंज्यूमर कल्चर जरूर हो। मुझे संस्कृति नहीं, उपभोक्ता संस्कृति चाहिए, तभी मैं कामयाब रहूंगा।" (कालिया 40-41) कामयाबी के मॉडल पर परिवार पीछे छूट रहा है।

पुष्पपाल सिंह लिखते हैं — "भूमंडलीय विकास व्यवस्था में हँसी और खुशी मात्र भौतिक है, आत्मिक नहीं।" (268) ट्यून करने की दिशा में विस्थापन यदि एक जरिया है, तो संकट भी। जो समाधान है, वही संकट में बदल जाता है, यही विडंबना है नई सभ्यता की। जब हम भौतिकता केंद्रित हो जाते हैं, तब जड़ विहीन महसूस करते है और जड़विहीन महसूस करना ही प्रतिरोध है। यहाँ सर्जनात्मक सरोकार के तहत प्रतिरोध दर्ज हुआ है।

विस्थापन के पीछे का प्रमुख कारण केवल भौतिकतावादी संस्कृति को जीना नहीं है, बल्कि बेरोजगारी, भ्रष्टाचार, युवाओं का मोह भंग आदि भी है। मधु कांकरिया की कहानी 'लोड शेडिंग' में बिहार के रांची शहर में पला बढ़ा शुभाशीष अपना शहर बिहार छोड़कर नौकरी की जरूरत के लिए कोलकाता में आ बसता है, तो परिवार की मूलभूत जरूरत की पूर्ति के लिए। स्वयं लेखिका के शब्दों में — "साल भर पूर्व ही

शादी हुई थी उसकी। पत्नी रांची में उसके पिता के यहां। बढ़ती महंगाई और घटती आमदनी ने मजबूर कर दिया था। पत्नी एक छोड़ पर और वह दूसरी छोड़ पर। कलपता...कसकता।"(कांकरिया 61) 'रहना ना देश विराना' में युवा दीपज्योति अपनी अकेली मां को देश में छोड़ विदेश नौकरी के लिए जा रहा है, तो इसके पीछे अपने देश में संभावनाओं की कमी को देखता है। वह कहता है — "जानती हैं दीदी, औरों की नहीं जानता जिन्हें विदेश की भूख के आगे यहां का अच्छा कुछ दिखता ही नहीं...पर मुझे तो हर पल यही लगता है कि खुद को देश निकाला दे रहा हूं। (कांकरिया 55)

विस्थापन का सुखद परिणाम यह है कि व्यक्ति आर्थिक उन्नति कर रहा है। विभिन्न समाज के लोग विस्थापित हो एक-दूसरे से मिल रहे हैं, तो दुखद परिणाम यह है कि एक साथ, एक जगह पर विस्थापित हो बसने के बावजूद सामाजीकरण की प्रक्रिया से दूर है। पुष्पपाल सिंह लिखते हैं —

> "भूमंडलीकरण ने जिस रूप में हमारे सांस्कृतिक परिदृश्य को बदला है, उससे हमारे जीवन-मूल्यों में भारी बदलाव आया है। जिन बहुत-से जीवन-मूल्यों को हम सदियों से उदात्त और श्रेष्ठ की कोटि में रखते चले आ रहे थे, पिछले 15 वर्षों में वैश्वीकरण की आंधी में समय-बाह्य (आउट-डेटित) हो चलें। नई पीढ़ी पुरातन को नकार कर अपनी एक नई लीक स्थापित करती हुई वैश्विक संदर्भों में अपने को गौरवान्वित अनुभव करती है। नव उदारवाद और आर्थिक विकास की नई समृद्धियों, ऐश्वर्यों ने नई पीढ़ी के आदर्श और सुख के केंद्र परिवर्तित कर दिए हैं। भौतिक समृद्धि ने उन्हें आलीशान कार, कोठी और कोठी के अंदर के अनगणित, अमित संसार प्रदान कर उन्हें भव्य 'भवन' (मकान) तो दे दिए, पर 'घर' की संकल्पना और सुख-स्वप्न इस भौतिक समृद्धि के बीच कहीं बिला गए। मनुष्य मानवीयता, संबंधों की ऊष्मा और शुचिता खोकर निरंतर छीजता चला जा रहा है।"(सिंह 265)

हम व्यक्ति केंद्रित होने को मजबूर हो गए हैं। सामाजीकरण की प्रक्रिया रुक गई है। इस कारण अकेलेपन के दंश को झेल रहे हैं। 'जैसा था वैसा ही है मेरे आस-पास' में कथानायक कहता है — "मेरे मकान के सामने चार्टर्ड एकाउंटेंट है, उन्होंने अपने इकलौते बेटे को चांदी बटोरने के लिए कैलिफोर्निया भेज दिया। बेटे को दिन में भले ही डॉलर दिखे, पर हर रात वह स्वप्न में अपने मोहल्ले का नीम का पेड़, घर के सामने बहती गंगा और मां के हाथों की बनी आलू की सब्जी देखता है।"(कांकरिया 153) 'रहना ना देश विराना' में युवा इस विस्थापन को स्वयं के लिए देश निकाला मानता है। विस्थापित होने वाला वर्ग ही नहीं, बल्कि पूरे समाज पर इसका प्रभाव पड़ रहा है। इसे व्यक्त करते हुए अपने उपन्यास 'दौड़' में ममता कालिया ने लिखा है कि कैसे बच्चे उन्नति के लिए अपना शहर, अपना देश छोड़कर जा रहे हैं, परिणामस्वरूप पूरी कॉलोनी ही वृद्ध कॉलोनी में बदल गई है — "वैसे भी यह सीनियर सिटिजन कॉलोनी बनती जा रही है। सबके बच्चे पढ़-लिख कर बाहर चले जा रहे हैं। हर घर में, समझो एक बूढ़ा, एक बूढ़ी, एक कुत्ता, एक कार बस यह रह गया है।"(कालिया 40) आज के समाज

में माता-पिता, माता-पिता नहीं बूढ़ा-बूढ़ी रह गए हैं। आज ऐसे परिवारों का समाज हमें देखने को मिल रहा है, इसलिए एक देश से दूसरे देश में विकास के लिए विस्थापन अंतत: सामाजीकरण के बोध का अभाव हमें महसूस कराता है, इस अभाव का प्रतिरोध कथा साहित्य का विषय है।

5.2.2.3 शिक्षा व सांस्कृतिक संस्थान —

आज़ शिक्षा व्यवस्था व्यवसाय प्रेरित सभ्यता में तब्दील हो गई है। सभ्यता भौतिक विकास है, इसलिए इस विकास की आंधी में शिक्षा भी चेतनाविहीन हो गई है और मूल्यपरक होने की जगह भौतिकता केंद्रित शिक्षा व्यवस्था कथा जगत का विषय बनी है। कृष्णदत्त पालिवार फ्रांसीसी दार्शनिक ल्योत्तर के विचार का उल्लेख करते हुए लिखते हैं — "फ्रांसीसी दार्शनिक ल्योतार ने कहा था कि ज्ञान के भंडारण, ज्ञान के इजारे का जमाना लद गया है। ज्ञान अब पण्य है …उसके लिए खुला बाजारबाद है।" (पालीवाल 73) शिक्षा व सांस्कृतिक संस्थान मूल्य निर्माण के महत्वपूर्ण आयाम है और मूल्य स्वस्थ समाज के विकास के लिए महत्वपूर्ण मार्ग। किंतु वर्तमान में शिक्षण संस्थान व साहित्यिक संस्थान पूंजी कमाने का साधन बन गया है। शिक्षा पैसे का गुलाम है। मेरिट से ज्यादा महत्व अर्थ की ताकत की हो गई है। मैत्रेयी पुष्पा का उपन्यास 'विजन', मधु कांकरिया की कहानी 'दाखिला' पूंजी आधारित शिक्षा तंत्र की पोल खोल रहा है। मधु कांकरिया लिखती हैं — "बिना चढ़ावा दिए इस आजाद मुल्क में न कोई पैदा हो सकता है, न पढ़ सकता है।" (कांकरिया 143) आज अच्छी शिक्षा का अधिकार अच्छे डोनेशन वाले के पास है। 'दाखिला' की सुकीर्ति अपने बच्चे का एडमिशन प्राइमरी में कराना चाहती है, तो मनीषा की ओर से परामर्श मिलता है — "पूरे पंचास हजार का डोनेशन और एक सीट।"(कांकरिया 142) शिक्षा धन शोषण का साधन है, जिसे व्यक्त करते हुए मधु कांकरिया की कहानी में मनीषा कहती है — "बाप रे, एक चौथाई कमाई और आधा समय तो बच्चों को पढ़ाने में ही निकल जाता है। इसी के चलते तो दूसरे का चांस ही नहीं लिया।" (कांकरिया 143) पैसे देकर उच्च शिक्षण संस्थान में डिग्री खरीदने की स्थिति का जिक्र मैत्रयी पुष्पा के उपन्यास 'विजन' में है। 'विजन' में प्रसिद्ध नेत्र चिकित्सक डॉक्टर आर0 पी0 शरण के बेटे अजय शरण के डॉक्टर बनने के रहस्य का उद्घाटन करते हुए नेहा की सहेली आभा दी उससे कहती है — "बड़े बाप का बेटा, बड़ी रकम की थैली लेकर डॉक्टर बनने गया, क्योंकि बाप के आई सेंटर का वारिस जो बनना है। नेहा, वारिस और सर्जन में बहुत फर्क होता है। डॉक्टर की डिग्री चिपका लेना ही काफी नहीं होता।"(पुष्पा 74) अर्थात् आज शिक्षा पैसे के अधीन है।

वर्तमान शिक्षा व्यवस्था बच्चों पर कैसे दबाव का माहौल बना रहा है, इसे भी लेखिकाओं ने विषय बनाया है। मधु कांकरिया की कहानी 'दाखिला' की पात्र मनीषा कहती है — "पढ़ाई नहीं, रगड़ाई कहो – घिसाई कहो...कुछ भी कह लो। कक्षा वन में ढुकानें के लिए भी बच्चों को पढ़ाना नहीं, मजदूर के जैसे खटाना पड़ता है। दिन भर में नौ दस घंटे तक पढ़ना। नाड़ा बांधना चाहे ना आए, लेकिन पाँच-साढ़े पाँच साल के बच्चे

को 'फ्रस्ट्रेशन' की स्पेलिंग अवश्य ही आनी चाहिए।"(कांकरिया 142) सीखने की जगह रटने की प्रवृति बच्चों की मानसिकता को विकसित करने की जगह मनोरोगी बनाने में योगदान दे रही है। 'दाखिला' कहानी में तेरह-चौदह वर्षीय किशोर डॉक्टर के पास इलाज के लिए जाता है, क्योंकि काम करते-करते उसका दिमाग बीच-बीच में एकदम ब्लैंक हो जाता है और जब डॉक्टर से पूछते हैं कि दिन में कितने घंटे खेलते हो, तो जवाब मिलता है — "खेलने का समय ही कहाँ मिलता है? स्कूल से सीधा कोचिंग, कोचिंग से घर....लौटते लौटते शाम… फिर टी वी, फिर होमवर्क करते करते बेड टाइम....।"(कांकरिया 146) 'नई पीढ़ी के साथ' कहानी शैक्षणिक और प्रतिस्पर्धात्मक माहौल के कारण आत्महत्या जैसे विकृति का जिक्र करती हैं। शिक्षा चेतना लाती है, लेकिन नए ढब के साथ आई नई सभ्यता में चेतनाविहीन शिक्षा प्रणाली और शिक्षा जगत कैसे हम पर हावी है, इसका प्रतिरोध भी स्त्री लेखन में हुआ है। शिक्षा वही अच्छी है, जहां तामझाम हो। विक्रम के स्कूल को लेकर मनीषा आंटी का कथन इस सभ्यतामूलक संकट पर प्रकाश डालता है। अपने विद्यालय को लेकर विक्रम कहता है — "ममा, मनीषा आंटी कहती है मेरी स्कूल बस सो-सो है...कोई खास नहीं, खास स्कूल कैसी होती है ममा"(कांकरियाँ 147)

शिक्षण संस्थान के साथ सांस्कृतिक संस्थान जिसका उद्देश्य साहित्य व कला का प्रसार करना होता है, वह भी कैसे पूंजी केंद्रित हो गए है। अर्थ, पद, प्रतिष्ठा बनाने का मार्ग, साहित्य, संस्कृति व कला जैसे सरोकार से दूर ; इसे ममता कालिया ने 'कल्चर-वल्चर' में व्यक्त किया हैं — "साहित्य, संस्कृति भवन से दिन पर दिन साहित्य और संस्कृति दोनों गायब होती जा रही है। बस भवन बचा था।"(कालिया 7) जो गोष्ठियाँ होती है, उसका उद्देश्य साहित्य कला का प्रचार-प्रसार नहीं, बल्कि साहित्यकारों की शोक सभा, अड्डा जैसी जगह बन गई है। ऐसे संस्थानों का उद्देश्य हॉल भरना और नाम कमाना मात्र रह गया। साहित्य संस्थान के लोगों की धारणा है — "ऐसी मीटिंग किया करो आप जिससे हॉल भरें। लेक्चरबाजी सुनने कौन आता है।" (कालिया 17) और ऐसे संस्थानों पर पैसे लगाने वाले के चरित्र व उद्देश्य पर प्रकाश डालती हुई ममता कालिया लिखती हैं —

> "साहित्य संस्कृति भवन का न्यास काफी शक्तिशाली था। नगर के प्रसिद्ध उद्योगपति, पूंजीपति और भूपति इसके न्यासमंडल और कार्यकारिणी के सदस्य थे। नगर का यह वाणिक वर्ग पूंजी के साथ प्रतिष्ठा अर्जित करने का भी अभिलाषी था। मंत्री के बुलावे पर जब ये बैठक में आते, उन्हें अपने पर सच अभिमान होता कि देश का न केवल पटसन, लोहा, सूत, रेशम और कार्बन बल्कि साहित्य, संस्कृति और कला भी उनकी मुट्ठी में है। उनकी राय के बिना यहां ना कोई पुरस्कृत होता है, ना सम्मानित।" (कालिया 12) शिक्षा और सांस्कृतिक संस्थान की विसंगतियों का यहाँ प्रतिरोध है।

5.2.2.4. धर्म और समाज —

भौतिकता केंद्रित सामुदायिक अस्तित्व जब सभ्यता का रूप ग्रहण कर ले, तब धर्म और आस्था भी आडंबरी सभ्यता का हिस्सा बन जाती है एवं कानूनी प्रक्रिया न्याय से दूर एक फैसला मात्र बनकर घटित होती है। भूमंडलीकरण के बाद विकसित इस आडंबरी सभ्यता का प्रचार-प्रसार जोरों से हुआ। धर्म और आस्था को लेकर भारतीय जनमानस की स्थिति का उल्लेख करते हुए हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने निबंध 'क्या निराश हुआ जाए' में लिखा है — "भारतवर्ष सदा कानून को धर्म के रूप में देखता रहा है। धर्म को धोखा नहीं दिया जा सकता, कानून को दिया जा सकता है।"(द्विवेदी 38) स्पष्ट है भारतीय धर्मभीरु है। धर्म के नाम पर आहत भी जल्दी हो जाते हैं। भूमंडलीकरण के बाद धार्मिक आस्था में कमी जरूर आई, पर बनी रही और धर्म के नाम पर ऐसे अनेक पोंगे पंडितों व संस्थानों का भी उदय हुआ, जिसे आज मीडिया भी कवरेज दे रही है और इस आधार पर वे अपने व्यापार चला रहे हैं। धर्म के नाम पर मठाधीशों द्वारा किए जाने वाले शोषण को परंपरा में रेणु ने 'मैला आंचल' में दिखाया था, 21वीं सदी में मधु कांकरिया ने अपने उपन्यास 'सेज पर संस्कृति' में इसकी अग्रगति को रखा है। 'सेज पर संस्कृति' की संघमित्रा कहती है — "मेरी जान, इस देश में ढोल मवेशियों तक के लिए कानून है, पर धर्म और दीक्षा के विरोध में ऐसा कोई भी कानून नहीं है क्योंकि मामला धर्म से जुड़ा है और धर्म से टकराने में इस देश की हाड़ कांप जाती है।" (कांकरिया 78) पुष्पपाल सिंह लिखते हैं — "राजनीति के अपराधीकरण का एक बहुत बड़ा अपराध राजनीतिज्ञों द्वारा प्रेरित और पोषित सांप्रदायिकता है।"(सिंह 250) और आज धर्म को आधार बनाकर सांप्रदायिकता वर्तमान की बड़ी समस्या है जिसे महिला लेखन ने विषय बनाया गया है। महुआ माजी का उपन्यास 'मैं बोरिशाइल्ला' में धर्म के नाम पर सत्ता हासिल करने के लिए पूर्वी व पश्चिम पाकिस्तान की लड़ाई होती है। उसमें क्रूरता होती है, जिसमें इंसानियत जलती है उसे व्यक्त करते हुए लेखिका लिखती हैं — "धर्म उतना महत्वपूर्ण नहीं है, जितना जतलाया जाता है। महत्वपूर्ण होते हैं दूसरे कारक। धर्म तो सिर्फ एक मुखौटा है, जिसे पहनकर कुछ स्वार्थी तत्व अपना स्वार्थ साधते हैं।" (माजी 399)

धर्म का नाम लेकर सांप्रदायिकता को हवा दी जाती है जिससे इंसानियत जलती है। उपन्यास में स्वाधीनता के बाद भी बांग्लादेश में शांति स्थापित नहीं होती, तब वहां के लोग इस पर विचार करते हैं — "जिस शांति के लिए हमने इतनी कष्टप्रद लड़ाइयां लड़ी, अपाहिज हुए, परिवार खोया...करागारों में अमानुषिक यातनाएं झेली। तीस लाख बंगालियों की जाने गई, सात लांख औरतों का जीवन बर्बाद हुआ, उस शांति को हम नहीं ही हासिल कर पाए।...सत्ता लोभ, प्रतिस्पर्धा, आपसी दुश्मनी ने हमारे सारे त्याग, सारी तपस्या को मिट्टी में मिला दिया।" (माझी 397)

धर्म को आधार बना स्त्री शोषण का अपना इतिहास रहा है, जो आज भी जारी हैं। यह केवल हिंदू समाज की ही नहीं, हर समाज की सच्चाई है। ऐसे में भी प्रगति के बावजूद धर्म को लेकर पूरे समाज में स्त्रियों

की सोच रूढ़िवादी हैं, जिसे 21वीं सदी की लेखिकाओ ने अपने लेखन ने विषय बनाया है और उस सोच का प्रतिरोध किया है। जयश्री राय ने 'दर्दजा' उपन्यास में मुस्लिम समुदाय में महिला सुन्ना और खतना की प्रथा को दिखाया है, जिसमें महिला जननांग में 'किल्टोरिया' का हिस्सा काट दिया जाता है, ताकि उसकी यौनिकता को नियंत्रित किया जा सके। इस प्रथा का दुष्परिणाम यह है कि स्वास्थ्य संबंधी जानकारी का अभाव, सेवा के अभाव में तरह-तरह की बीमारियों के साथ जीवन, यहां तक की मृत्यु तक की स्थिति बनती है। ऐसी कुरीति को बढ़ाने का काम औरतें ही बढ़-चढ़कर करती है। 'दर्दजा' उपन्यास की नायिका माहरा की माँ कहती हैं — "औरतों के जिस्म को नहीं समझती! अरे! गुप्तांग के जो बाहरी हिस्से हैं, वे मर्दाना हिस्से हैं जो अंदरूनी कोमल हिस्सा है वही जनाना हिस्सा है। वही ऊपर वाले ने औरतों को मां बनने के लिए दिया है। हमें हमारे जिस्म का इस्तेमाल सिर्फ मां बनने के लिए करना चाहिए, ना कि यौन का विकृत आनंद उठाने के लिए।" (राय 20) और जब लड़कियां ऐसी सोच के विरोध में आती है तब साबिला की दादी जैसी औरतें धर्म का डर दिखाती हुई कहती हैं — "औरत होकर इतना मुँह चलाना अच्छा नहीं लड़कियों! अपनी औकात में रहना सीखो वरना बहुत दुख उठाने पड़ेंगे।" (राय 77-78) अत: धर्म और मजहब के नाम पर समाज का सभ्यतामूलक पतन व स्त्री शोषण का जो इतिहास बना हुआ है, उसका प्रतिरोध लेखिकाओं ने इन रचनाओं के माध्यम से किया है।

5.2.2.5. नैतिकता का निजीकरण और समाज में बदलते स्त्री पुरुष संबंध —

भूमंडलीकरण का एक प्रभाव यह भी पड़ा कि नई नैतिकता के नाम पर नैतिकता का निजीकरण प्रारंभ हो गया। नई सभ्यता के अनुसार ट्यूनिंग का परिणाम है कि मूल्य केंद्रित नैतिकता जो समाज सापेक्ष होती है, झुंड सापेक्ष बन रही है और यहीं नैतिकता का निजीकरण घटित हो रहा है। मास कल्चरल स्थापित हो रहा है, जिसका प्रतिरोध लेखिकाओं ने किया है। पुष्पपाल सिंह लिखते हैं — "आज शील-अश्लील के बीच की दीवारें भरभराकर गिर चुकी है।" (सिंह 52) निजीकृत नैतिकता मूल्य विहीन होती है, जिससे समाज नहीं बन सकता। सामाजिक धरातल पर नैतिकता का निजीकरण अपने आप में सभ्यता के स्तर पर संकट पैदा करता है। सामाजिक धरातल पर स्त्री-पुरुष के संबंध में विकृतियों ने घर कर लिया। नएपन को जीने की लालसा ने भोगवाद को जन्म दिया और मुक्ति के नाम पर पश्चिमी सभ्यता के अंधानुकरण को आधुनिकता की चादर ओढ़ा समाज में स्त्री-पुरुष संबंध में अनैतिकता पनपने लगी। "वाइफ स्वैपिंग" ऐसा ही विकृत कल्चर है। अलका सिन्हा अपने उपन्यास 'जीमेल एक्सप्रेस' में बदलते समाज की इस गति को पकड़ते हुए धमेजा से कहलवाती है — "वाइफ स्वैपिंग का कांसेप्ट तो आजकल काफी लोकप्रिय हो रहा है। जिसमें पति-पत्नी दोनों ही, दूसरे जोड़ों से एक्सचेंज करने में बराबर की हिस्सेदार होते हैं। इससे पत्नियों की भी एकरसता टूटती हैं और उन्हें भी नयेपन का सुख हासिल होता है। पूरी रात किसी नए साथी के संसर्ग में रहना, दोनों के जीवन में उत्तेजना पैदा करता है और वह जिंदगी का भरपूर मजा ले पाते हैं।"(सिन्हा 138) परंपरा में चित्रा मुद्गल की कहानी 'वाइफ स्वैपी' में इसने

कल्चर का जिक्र है। मेजर आहलूवालिया व मिसेज आहलूवालिया इस कल्चर को नई नैतिकता व आधुनिकता के तर्ज पर जीते हैं। मेजर आहलूवालिया कहते हैं —

> "हां, तो मैं "वाइफ स्वैपी" के बारे में बता रहा था। होता यह है कि महीने के आखिरी शनिवार की शाम हमारे क्लब की प्रतीक्षित ड्रिंक, डांस, डिनर पार्टी आयोजित होती है। देर रात तक जश्न ए हंगामा चलता है।...फिर हममें से कोई एक सदस्य छड़ी के सहारे बीयर जग में पड़ी चाभियों को उलट-पलट कर मिक्स करता है। फिर बारी आती है चाभी उठाने की।...जिस भी गाड़ी की चाभी हमारे हाथ लगेगी उस गाड़ी के मालिक की पत्नी यानी उनकी मल्लिका-ए-आलम हमारी उस खुशनुमा रात की लॉटरी होगी..." (मुद्गल)

जब हिमानी पूछती है पत्नियों को इसमें आपत्ति नहीं होती, तो मेजर कहता है — "नॉट एटोल...दे एंज्वाय इक्वली!" (मुद्गल) गीताश्री का उपन्यास 'बाहों के दरमियां' में कस्बाई रवि शहर में आकर शराब पीने, सिगरेट पीने, छोटे कपड़े पहनने और वाइफ स्वैपिंग को आधुनिकता का प्रतीक मानता है और इसलिए अपनी पत्नी से भी यह सब करने की आस रखता है और अंततः उसे भी इस नई सभ्यता में ढाल लेता है। गीताश्री लिखती हैं — "इस वैश्वीकरण के युग में लड़कियों ने अपने शरीर के साथ कुछ ना कुछ समझौता कर लिया था। वे बेचती थी अपनी अदाओं को, अपने हुस्न को और रवि जैसे घाघ उन्हें खरीदते थे। जो लड़कियां कुछ समझौता नहीं कर पाती थी, वे वहीं की वहीं ठिठकी रह जाती थी।" (गीताश्री) पुष्पपाल सिंह लिखते हैं —

> "विज्ञापन और टीवी संस्कृति समाज में अश्लीलता की नई अवधारणाएं और एक नई नैतिकता विकसित कर रही है।...टीवी और सिनेमा जिस रूप में नंगई के लिए भारतीय मानस को अनुकूलित कर चुके हैं और भी आगे करते जा रहे हैं उसपर सब कुपित-दुखित तो है, किंतु नित्य उसी में डूबते जा रहे हैं या डूबने को विवश हैं। टीवी और सिनेमा ने हमें इन वर्षों में इस प्रकार अनुकूलित कर लिया कि अब हमें नंगई में कुछ भी बुरा नहीं लगता, हम उसके अभ्यस्त होते चले गए।" (सिंह 51)

दूसरी और 'इंद्रधनुष के पार' कहानी की आंचल और आशा न्यूड पार्टी को मस्ती व आजादी का पर्याय मानती है। आशा के ऐसी पार्टी के निमंत्रण पर आंचल सोचती है — "कहीं रेव पार्टी, गे पार्टी, कैरेबियन पार्टी या वाइफ स्वैपिंग पार्टी या मेल स्ट्रीपर्स वाली पार्टी की बात तो नहीं कर रही है आशा।...वह इन सब में जा सकती है।" (गीताश्री) न्यूड पार्टी को लेकर आशा कहती हैं — "डियर, ये न्यूड पार्टी है...न्यूड पार्टी न्यू कॉन्सेप्ट है। यहां सब नंगे होते हैं। जहां सब नंगे हो, वहां क्या समस्या।" (गीताश्री) अलका सिन्हा अपने उपन्यास 'जीमेल एक्सप्रेस' में समाज की इस दिशा में बढ़ते कदम की ओर संकेत करती हैं — "पूल पार्टी और स्विमिंग सेक्स जैसी पार्टियों की मांग आजकल बड़ी तेजी से बढ़ रही है।...वह दिन दूर नहीं जब ऐसी पार्टियों में जाना स्टेटस सिंबल की तरह लिया जाने लगेगा और जिस तरह हम योजनाबद्ध तरीके से छुट्टियों में घूमने का प्रोग्राम बनाते

हैं, वैसे ही इस तरह की 'रिफ्रेसिंग' पार्टियों की भी खुलेआम योजना बना पाएंगे।" (सिन्हा १३८) हमारी सभ्यता ऐसी बनती जा रही है, जिसमें जी लेना, भोग लेना ही प्रमुख होते जा रहा है, लेखिकाओं ने इस विकृत होती सभ्यता की ओर संकेत अपनी रचनाओं के माध्यम से किया है। समस्या का आधा समाधान समस्या की सही पहचान है। ऐसे में विकृति की ओर बढ़ती समाज की दिशा की पहचान कर ऐसी विकृति के विरुद्ध आत्मबोध को विकसित करने का प्रयास हुआ है और आत्मबोध ही नैतिकता के निजीकरण के विरुद्ध प्रतिरोध के सृजन की जननी है।

5.2.2.6. तनाव में युवा वर्ग —

सभ्यता के विकास में युवा की केंद्रीय भूमिका होती है। युवा का दिशा बोध विकृत होते ही सभ्यता का संकट गहरा जाता है। पुष्पपाल सिंह लिखते हैं — "देश की आर्थिक विकास में जो भौतिक समृद्धि मध्यवर्ग को दे दी है, उसमें सब कुछ भी होते हुए भी सुख चैन, शांति उनसे कोसों दूर है।" (सिंह २६७) भूमंडलीकरण के बाद जो प्रतिस्पर्धी समाज का निर्माण हुआ, उसमें युवा वर्ग सबसे ज्यादा तनावग्रस्त रहने लगा। प्रतिस्पर्धा के माहौल में सब कुछ पाने की होड़ ने उसे तोड़ कर रख दिया और ऐसे में कई बार वह गलत राह की ओर भी चल पड़ा। मधु कांकरिया 'देख कबीरा रोया' में नई सभ्यता से हमारी नई पीढ़ी पर मंडराते खतरे को रेखांकित करते हुए लिखती हैं —

> "हमारी मासूम पीढ़ी को उम्र के पहले ही आंखों में उंगली डालकर सयाना बना रही है और उसे मंत्र दे रही है कि कामयाबी और खुशहाल जिंदगी का मतलब ही है चकाचौंध, ग्लैमर, सेक्स, हिंसा, मूल्यहीनता, मनुष्य विरोधी। मूल्य विरोधी और भ्रष्टाचार की हवा में सांस लेती यह पीढ़ी अगर दिशाहीन हो बैठे तो उसमें आश्चर्य क्या? युवा पीढ़ी आज आस्थाहीन हो चुकी है, उसे ना अपने श्रम पर भरोसा रह गया है, ना अपनी पढ़ाई पर। यदि भरोसा है तो शेयर मार्केट पर या फिर कौन बनेगा करोड़पति जैसे शॉर्टकट पर।" (कांकरिया 74)

कारपोरेट जगत किस प्रकार लालच दिखाकर अपनी तरफ इस पीढ़ी को खींच रहा है और फिर जोंक की तरह उसका खून चूस रहा है, इसे रजनी गुप्त का उपन्यास 'एक न एक दिन', अलका सरावगी का उपन्यास 'एक ब्रेक के बाद में' विषय बनाया किया है। आज ऊंची डिग्री प्राप्त नवयुवक को अच्छे पैकेज का लालच दिखा ये कंपनियां अपने अधीन ले रही हैं। रजनी गुप्त 'एक ना एक दिन' में लिखती हैं, कैंपस में बड़ी कंपनियां आती हैं और लालच देकर युवा को अपनी ओर खींचती है — "...शनिवार को आई बी० एम० एच० पी०, माइक्रोसॉफ्ट, विप्रो, आईवीबी, टीसीएस, जॉनसन एंड जॉनसन, नेस्ले, कैडबरी, डाबर आदित्य बिरला ग्रुप तथा आईटी क्षेत्र में कॉग्नाइजेंट जैसी नामी कंपनियां पहुंच रही है।...सबसे अधिक वेतन पैकेज की पेशकश करने वाली कंपनियों में होड़ लग जाती है।"(329) और फिर किस प्रकार शोषण कर रही हैं 'एक ना एक दिन' की कथा नायिका इसे

बयां करती है — "ए नीति कितना बड़ा छलावा साबित होते हैं यह लाखों के पैकेज? घरवाले उसी हिसाब से हर महीने पैसे जोड़ने लगते हैं, मगर अंदर की हकीकत हम उन्हें ठीक से समझा भी नहीं पाते। हाथ में आएंगे वही 40-50 हजार।" (गुप्त 320) पैसे कमाने की होड़ में युवा पीढ़ी मशीन बनती जा रही है, तनाव में जीवन जी रही है। इसका वर्णन रजनी गुप्त ने किया है — "कोई नहीं समझना चाहता हमारे तनाव को? ओफ! कितनी भगदड़ मची रहती है हमारे अंदर-बाहर? कभी-कभी लगता मशीन में और हममें क्या फर्क रह गया हैं।" (गुप्त 320) मशीनी सभ्यता का प्रतिरोध यहाँ दर्ज हुआ है।

इस प्रकार हमारी सामाजिक संरचना में युवा वर्ग, कामकाजी स्त्री, शिक्षा और सांस्कृतिक संस्थान, धर्म और समाज विकास के नाम पर नैतिकता के निजीकरण से दूषित हो रहे है। इस प्रदूषित सभ्यता के प्रतिरोध में स्त्री लेखन आज सक्रिय है।

5.3. प्रतिरोध का बाजारवादी परिदृश्य —

नई सभ्यता का सबसे बड़ा संकट बाजार संचालित समाज व्यवस्था है। आज व्यक्ति की जरूरत के अनुसार बाजार का निर्माण नहीं हो रहा है, बल्कि बाजार की उपलब्धता के आधार पर जरूरत का निर्माण हो रहा है। ऐसे में बाजार पोषित समाज के प्रतिरोध में साहित्य खड़ा हुआ है। पुष्पपाल सिंह लिखते हैं —

> "भूमंडलीकरण की उन्मुक्त बाजार की खुली व्यवस्था ने पूरे विश्व में बाजारवाद और उपभोक्तावाद का जो माया जगत रचा उसकी गिरफ्त में विकासशील देशों का सामान्य जन, विशेषत: मध्यवर्ग इतनी बुरी तरह आता चला गया कि विवेकशील लोगों के लिए यह चिंता का विषय बना हुआ है। हिंदी उपन्यासकारों ने...इस समस्या का बहुविध चित्रण अपनी कृतियों में बार-बार किया है। इस प्रकार से यह बाजारवाद और उपभोक्तावाद का प्रतिरोधी स्वर है।" (सिंह 159)

भारत एक विकासशील देश है, इसलिए भारतीय मध्यवर्ग बाजार की गिरफ्त में है। बाजार से दिखावटी संस्कृति, सौंदर्य के बदलते प्रतिमान, विज्ञापन संस्कृति, कला बाजार, जनसंचार का बदलता स्वरूप, नशा व ड्रग्स की संस्कृति आदि का प्रचार हुआ, जिसका प्रतिरोध लेखिकाओं ने किया है।

5.3.1. बाजार निर्मित समाज —

भूमंडलीकरण के बाद जिस समाज का निर्माण हुआ वह बाजार केंद्रित रहा। बाजार किस प्रकार व्यक्ति को संचालित कर रहा है। हमारी उपयोगिता का निर्धारण कर रहा है, उसका वर्णन लेखिकाओं ने किया है और बाजारवादी व्यवस्था से निर्मित सभ्यता का प्रतिरोध किया किया है। पुष्पपाल सिंह लिखते हैं — "बाजार की यह व्यवस्था, बाजार का मनुष्य को कीलने का यह माया-प्रपंच भूमंडलीय अर्थ-व्यवस्था का मुख्य आधार है।"(सिंह 42) बाजार आदर्श प्रस्तुत कर रहा है, हमारे जीवन को बहुराष्ट्रीय कंपनियां संचालित कर रही है।

इसका वर्णन करती हुई अलका सरावगी 'एक ब्रेक के बाद' में लिखती हैं — "इंडिया के बीस करोड़ घरों में से करीब साढ़े सोलह करोड़ घरों के अंदर हिंदुस्तान लीवर कुछ ना कुछ छोटा-मोटा सामान जैसे कि तेल या साबुन लेकर घुसा हुआ है। चोरड़िया का प्रेशर कुकर एक दिन इन करोड़ों घरों में आलू-दाल-चावल उबाल रहा होगा। अभी तो इंडिया में संयुक्त परिवार टूटकर ना जाने कितने और करोड़ चौके चूल्हे बन जाएंगे।" (सरावगी 14) बाजार संचार माध्यम का उपयोग कर लोगों के घरों में ही नहीं, बल्कि दिलों-दिमाग में बस कर सपने दिखा रहा है। लेखिका आगे लिखती हैं "जमाना 'ये दिल मांगे मोर' का है। बस्तर के गांव में अपनी झोंपड़ी में बैठकर आदिवासी टीवी पर वाशिंग मशीन में कपड़े धूलते देख रहा है और डबल डोर फ्रिज में जाने कब से ताजी लौकी और टमाटर की गाथा सुन रहा है। इस देश की एक अरब जनता अब एक साथ सपने देख रही हैं। फर्क यही है – कि किसी के सपने छोटे, तो किसी के ज्यादा बड़े सपने।"(सरावगी 11) उन सपनों को पूरा करने की होड़ में व्यक्ति का मशीनीकरण हो रहा है। बाजार द्वारा दिखाई गई लेटेस्ट सुविधाओं को प्राप्त करने की होड़ मची है और ना प्राप्त करने की स्थिति में व्यक्ति हीन भावना से ग्रस्त हो रहा है। अलका सरावगी का उपन्यास 'शेष कादंबरी' उपन्यास में रूबी दी की स्थिति के माध्यम से इसे देखा जा सकता है। अपने आसपास जब नई चमचमाती गाड़ियों को देखती है, तो अपनी पुरानी एम्बेसडर कार को खटारा समझती है। स्वयं को पिछड़ा हुआ महसूस करती हैं। अफसोस करती है — "वह पहले अपने को जमाने के साथ पाती थीं, पर अब नई तरह-तरह की चमचमाती गाड़ियों के बीच अपने को बहुत अकेला और पिछड़ा हुआ पाती है।...हर तरफ गाड़ियां हैं, एक से एक चमचमाती।" (सरावगी 25) बाजार ने केवल सपने ही नहीं दिए, बल्कि इन सपनों को पूरा करने के लिए रास्ता भी दिखाया। कर्ज जैसे शब्द की जगह 'फाइनेंस' जैसे नए टर्म से परिचय कराया और एक बार इस चक्कर में फस कर हमेशा के लिए व्यक्ति को उसका गुलाम बनाना शुरू किया। शेष कादंबरी में लेखिका लिखती हैं – – "इस तरह की भीड़ जो बैंक फाइनेंस पर रोज नई-नई खरीदकर बढ़ाई जा रही है..." (सरावगी 142) आज के युवा के जीवन का आदर्श अब उपभोग ही रह गया है, इस उपभोग के लिए फाइनेंस के नाम पर कर्जदार बनना और स्टेटस का मतलब बाजारी वस्तुओं की उपलब्धता रह गई है। रजनी गुप्त अपना उपन्यास 'एक न एक दिन' में आज के युवा के जीवन जीने के अंदाज का उल्लेख करती है — "अपना सपना मनी-मनी। आज जीने का एक ही फार्मूला है — "इनवेस्ट, फंड एंड फन। "हमारे लगभग सभी कॉलीग्स के जीने का यही फलसफा है।" (गुप्त 311)

इस बाजार संचालित समाज में हमारे घरेलू व्यापार बंद होने के कगार में है, सामाजिकीकरण की प्रक्रिया रुक गई है। मास कल्चरस स्थापित हो रहा है। हमारे घरेलू व्यापारी भूखे मर रहे हैं, इस संकट को भी अलका सरावगी व्यक्त कर रही हैं —

"अभी तक भारत छोटे-छोटे करोड़ों 'दुकानदारों' का देश था। प्राय: इन दुकानों को बाप-दादों के जमाने से चले आए पुश्तैनी व्यापार के तौर पर बेटे-पोते चला रहे थे। किंतु अब वह समय आ गया है कि दुनिया के सबसे बड़े रिटेल या खुदरा मार्केट को संगठित कर उसका रस खींचने के लिए टाटा, आईटीसी और रिलायंस ही नहीं अमेरिका की वॉल-माट जैसी कंपनियां तक कूद पड़ी है। कहते हैं दस साल के अंदर-अंदर भारत का यह रिटेल सेक्टर 650 करोड रुपए का हो जाएगा। खुद के0 वी0 की पत्नी अब आलू-गोभी तक एयरकंडीशंड सुपर मार्केट से मंगवा रही है और वह भी मोहल्ले की सब्जी वाली से सस्ती और ताजा। अभी यदि कोई इंडस्ट्री में उफान है तो वह रिटेल इंडस्ट्री है।" (72-73) बाजार केंद्रित हमारी सभ्यता के पतन का चेहरा है।

5.3.2. विज्ञापन संस्कृति, प्रिंट मीडिया व जनसंचार माध्यम —

भूमंडलीकरण के दौर में संचार क्रांति ने पूरे विश्व को एक करने की परिकल्पना को संभव बनाया और जनसंचार माध्यम ने विज्ञापन संस्कृति का प्रचार-प्रसार किया। आज हर वह चीज "जो दिखेगा, वही बिकेगा" के सिद्धांत पर आधारित है। आज आवश्यकता आविष्कार की जननी ना होकर, आविष्कार ने आवश्यकता को बढ़ावा दिया है। बाजार का प्रभुत्व कायम हुआ है, तो इसमें सबसे बड़ी भूमिका विज्ञापन संस्कृति की है। पुष्पपाल सिंह लिखते हैं —

"विज्ञापन का मायावी जगत जिस प्रकार बाजारवाद और उपभोक्तावादी संस्कृति को बढ़ावा देता हुआ विज्ञापित वस्तु की मांग को बढ़ा रहा है, देखकर विस्मय होता है। विज्ञापन किसी न किसी रूप में विश्व के सभी देशों में विद्यमान रहा है किंतु आज उसका स्वरूप बिल्कुल बदला हुआ है। आज इसका उद्देश्य हो गया है आवश्यकता ना होने पर वस्तु के तीव्र ललक और प्राप्ति की दूरध्वनी या कामना जगा देना। वह वस्तु की गुणवत्ता को रेखांकित नहीं करते, अपितु उसके तीव्र आवश्यकता का अनुभव करा देने के विश्वासी हैं।" (सिंह 49)

टी0 वी0 ने विज्ञापन को घर-घर तक पहुंचाया, तो प्रत्येक घर ने अतिथि देवो भव: के सिद्धांत के तहत न केवल उसे अपनाया, बल्कि अपने घर में ही बसा लिया। जनसंचार माध्यम ने विज्ञापन को इतनी ताकत प्रदान की कि आप कुछ भी बेच सकते हैं। विज्ञापन की अप-संस्कृति कैसे हमारे जीवन को प्रभावित कर रही है, इसका जिक्र करते हुए अलका सरावगी उपन्यास 'शेष कादंबरी' में लिखती हैं —

"सारे विज्ञापनों में खाली सफाई का भूत है — चाहे कपड़ों की धुलाई के लिए "सर्फ" की खरीदारी में ही समझदारी है, या 'फेना ही लेना' या निरमा, रिन, एरियल वगैरह और साथ में कपड़े धोने की मशीने, चाहे शरीर और चेहरे की सफेदी सुंदरता का राज बताते साबुन और क्रीमें; चाहे बालों की सफाई और

मजबूती और रूसी की सफाई करते शैंपू, चाहे दांतो की सफाई के लिए तरह-तरह के मंजन-ब्रश, चाहे बर्तनों की सफाई या फर्श या पखाने की कीटाणु रहित सफाई करते तरह-तरह के बोतलों में बंद द्रव्य।।" (सरावगी, 117)

यानी हमारी हर छोटी-बड़ी जरूरत को पूरा करने के लिए हमें क्या लेना है, कैसे जीना है विज्ञापन ने दिखा दिया है, जिससे सर्वसाधारण हैरान परेशान है। 'एक ब्रेक के बाद' उपन्यास में अलका सरावगी ने दिखाया है कि किस प्रकार मार्केटिंग का नया अफीम विज्ञापन है। उपन्यास में मद्रास का 'एंबल डिपार्टमेंटल स्टोर' एक दिन में करोड़ों के सामान बेच डालता है, तो इसके पीछे उसके विज्ञापन की नीति है। जिसके तहत मनोरंजन जगत के प्रसिद्ध अभिनेता रविकांत के जन्मदिन पर विज्ञापन आता है कि उस दिन वह उस स्टोर में मास्क लगाकर वही शानदार सूट पहनकर रहेंगे। फलत: उनसे मिलने की लालसा में हजारों की संख्या में लोग उस स्टोर में इकट्ठा हो जाते हैं। उपन्यासकार लिखती हैं — "स्टोर में मास्क लगाएं वही शानदार सूट पहने मौजूद रहेगा, जिसका विज्ञापन पूरे शहर भर में लगा हुआ था और हर अखबार में पूरे पृष्ठ पर फैला हुआ था।...यह बात रविकांत हर टीवी चैनल और रेडियो से बोल रहा था।" (सरावगी 121)

जनसंचार माध्यम और विज्ञापन ने हमें केवल पूंजी का गुलामी नहीं बनाया है, बल्कि बेचने को धर्म बना हमें संवेदनहीन भी बना दिया है। पुष्पपाल सिंह लिखते हैं — "पश्चिमीकरण अमेरिकीकरण का यह सबसे सशक्त माध्यम जिस रूप में मनोरंजन परोस कर हमारी जीवन पद्धति की दिशाएं निर्धारित कर रहा है, वह सभी के लिए चिंता का विषय है।" (सिंह 47) सनसनीखेज बनाकर किस प्रकार चैनल में घटना का विज्ञापन दिखाया जाता है, ताकि वो लाभ कमा सके, इसे भी लेखिकाओं ने विषय बनाया है — "जयपुर में कोई बच्चा कहीं गड्ढे में गिर गया है, तो चौबीसो घंटे तक (टी0 वी0 पत्रकार) टीवी में चिल्लाकर बता रही है कि वह अभी तक जिंदा है और उसे निकालने के लिए क्या-क्या किया जा रहा है। निमोनिया होकर अस्पताल में भर्ती अपनी मां अभी तक जिंदा है या नहीं, यह जानने की उसे फुरसत नहीं।" (सरावगी 163)

जनसंचार माध्यम से प्रभावित होते हमारे मूल्य व विकृत होती सभ्यता पर भी चिंता व्यक्त की गई है। 'शेष कादंबरी' में अलका सरावगी रूबी दी के माध्यम से इस चिंता को व्यक्त करती हुई लिखती हैं — "टीवी सीरियलों में जो बात रूबी दी को सबसे अधिक बिकाऊ लगी, वह थी शादीशुदा मर्दों-औरतों के गैर औरतों-मर्दों से संबंध या प्रेम का वही पुराना त्रिकोण। दो लड़कियां-एक लड़का या एक लड़की-दो लड़के। बाप रे, रूबी दी ने सोचा, इन्हें देखने वाले बच्चे तो यही समझ कर बड़े होंगे कि जीवन में कोई तीसरा हुए बिना जीवन में ना कोई सनसनी है ना मजा और ऐसा होना आम बात है।" (सरावगी 197) विज्ञापन से फैल रही अपसंस्कृति का यहां प्रतिरोध है।

5.3.3. सौंदर्य के बदलते प्रतिमान (सौंदर्य का विकृतिकरण) —

भूमंडलीकरण ने जो बाजार खड़ा किया उसने देह केंद्रित सौंदर्य की संस्कृति को बढ़ावा दिया। सौंदर्य प्रतियोगिता, गली-मोहल्ले के मोड़ पर खुलते पार्लर, स्पा, फैशन शोज, सौंदर्य प्रसाधन का धड़ल्ले से निर्माण बढ़ा। बाजार का उद्देश्य देह केंद्रित सौंदर्य को बढ़ावा देना है और इस सौंदर्य का उपयोग कर एक बड़ा बाजार बन रहा है। जयश्री राय अपनी कहानी 'काली कलूटी' सौन्दर्य की अप-संस्कृति के बारे में लिखती हैं —

> "जिंदगी अब बाजार में पड़ी हुई एक वस्तुमात्र हैं,… इंसान को कैसा होना चाहिए, यह यही बाजार तय करता है...अच्छी प्रसाधन कंपनियां बताती हैं आज की औरतों को गोरी, खूबसूरत, जीरो फिगर की होना चाहिए, जिसके बाल रेशमी, मुलायम और रंगीन हो, पलके मसकरा लगाए घनी-लंबी हो, होंठ इस रंग के हो और गाल उस रंग के हो। वह डिजाइनर अंतर्वस्त्र पहने...तभी उसकी शादी होगी, तभी उसे कारपोरेट कंपनियों में ग्लैमरस नौकरी मिलेगी।" (राय)

बाजारवादी सभ्यता में दिनचर्या का यही नया ढब हावी है कि हमारी सफलता-विफलता का पाठ रच रहा है बाजार। सौंदर्य का जो नया बाजार निर्मित हुआ है, उसने सौंदर्य की परिभाषा को बदल दिया और इससे सबसे ज्यादा विकृति आई है स्त्री के जीवन में। गोरापन सौंदर्य का प्रतिमान बन गया है। ऐसे में जो लड़की सांवली होती है, वह जिस दंश को झेलती है, उसका वर्णन जयश्री राय ने अपनी कहानी 'काली-कलूटी' में किया है। जहां नौकरी पेशा लावण्या को अपने रंग के कारण बार-बार अपमानित होना पड़ता है और अंततः वह विक्षिप्त हो जाती है। कथानायिका लावण्या की भाभी लड़केवालों का उसको देखने आने के अवसर पर उसे हिदायत देती हैं — "खूब रगड़कर नहाना लाडो, फिर देखना, तुम भी फिल्म तारिकाओं की तरह फेयर एंड लवली हो जाओगी।" (राय)

अनामिका ने भी अपने उपन्यास 'तिनका तिनके पास' में ब्यूटी पार्लर को प्रतिरोधी स्थल के रूप में पेश किया है। सौन्दर्य के रूढ़ मानक बाजारवादी सभ्यता में नई चुनौतियों के सामने खड़े है। सुंदर होना अब जरूरी नहीं है, बल्कि सुंदर दिखना जरूरी है। कैसे ब्यूटी पार्लर आज नारी जीवन का एक अभिन्न अंग बन गया है —

> "ब्यूटी पार्लर आधुनिक जीवन का एक ऐसा स्पेस है मेरे मालिक, कि उसके विवरण लोग तो फेमिनिज्म के और कट्टर सिपाही बन जाओगे...पीट-पीटकर घर से निकाली हुई और दूसरे ढंग से परितृप्त औरतों के पास जाने की और कोई जगह नहीं होती, तो ब्यूटीपार्लर ही आ जाती हैं। यह एक ऐसी इंसुलेटेड-सी जगह है, जहां कोई फालतू सवाल पूछे बगैर स्नेह सिक्त हाथों से एक सखी मालिश कर देगी, जहां-जहां चोट लगी है, वहां रख देगी बर्फ की पट्टियाँ। अगर कभी पर्स में पैसे नहीं हैं, तो कभी धक्के मार कर निकलेगी नहीं, हो लेने देगी प्रकृतस्थ इधर-उधर के किस्से कहानियां-रेडियो-वीडियो, एफ. एम

वगैरा सुनाकर मन बदल देगी...खग जाने खग ही की भाषा।" (अनामिका 32) ब्यूटी पार्लर भी प्रतिरोध का औजार है।

सौन्दर्य के विकृतिकरण का परिणाम है कि आज मातृत्व संकट में है। स्त्रीत्व बनाम मातृत्व की स्थिति बनी है। स्त्रीत्व के मानक, सौन्दर्य के गुणात्मक परिणाम में है और सभ्यता के स्तर पर स्त्रीत्व की यह नई परिभाषा मातृत्व के लिए संकट है। सौंदर्य का ऐसा जाल फैला है कि जिसने सभ्यता के भयानक संकट को खड़ा किया है। आज सुंदरता को बनाए रखने के लिए मातृत्व जैसे सुख से भी स्त्रियां वंचित रहना चाहती हैं। निर्मला भुराड़िया ने अपने उपन्यास 'गुलाम मंडी' में कल्याणी के माध्यम से ऐसी उभरती स्त्री वर्ग को सामने रखा है। लेखिका लिखती हैं —

"गौतम बच्चा चाहता था।...मगर कल्याणी को डर था कि इससे उसके पेट पर सिलवटे आ जाएगी।... वह गौतम को अपनी दादी का उदाहरण देना चाहती थी कि उस जमाने में भी जब कल्याणी के पिता, ताऊ जब शिशु थे, तब उनकी और शिशु अवस्था में काल कवलित हुए बुआ, चाचा जब बीमार होते थे, तब भी दादी ने किसी को दूध नहीं पिलाया। दूध पिलाने के लिए धाय की नियुक्ति की जाती थी, ताकि दादी का शरीर ना बिगड़े।" (भुराड़िया 78) सुंदरता कायम रहे, मातृत्व भले पीछे छूट जाए।

5.3.4. नशा, मानव तस्करी व अपराधीकरण की ओर बढ़ता समाज —

पैसा और स्टेटस आधारित समाज में पैसे कमाने के लिए कई तरह के अपराधीकरण की प्रवृत्ति भी सांस लेने लगी है और तनावग्रस्त युवा नशे की चपेट में भी आने लगे हैं। आज का युवा नशे की गिरफ्त में अपने वर्तमान व भविष्य की तिलांजलि दे रहा है। पुष्पपाल सिंह ने लिखा है — "ड्रग्स-नशा-सेवन भी ऐसा ही नवाचार हैं, जो नई पीढ़ी में निरंतर बढ़ता जा रहा है। वस्तुत: यह बीमारी भी भूमंडलीकरण की देन है, अंतरराष्ट्रीय स्तर पर ड्रग्स का कारोबार किस रूप में फैल रहा है, इसे किस प्रकार अंजाम दिया जा रहा है,…भारतीय नवयुवक किस प्रकार हेरोइन, ब्राउन शुगर और चरस के लती हो चुके हैं।" (सिंह 201) आज के युवा न केवल नशे के लती हो रहे हैं, बल्कि इसकी पूर्ति के लिए अपराध के रास्ते पर भी कदम रख रहे हैं। मधु कांकरिया 'अपनी धरती अपने लोग', उपन्यास 'पत्ताखोर' में नशे की गिरफ्त में आ चुके युवा समाज की स्थिति का चित्रण कर रही हैं, तो अल्पना मिश्र का उपन्यास 'अस्थि फूल', निर्मला भुराड़िया का उपन्यास 'गुलाम मंडी' मानव-तस्करी जैसे जघन्य अपराध की बढ़ती गति की ओर संकेत कर रहा है। काशीनाथ सिंह ने अपने उपन्यास 'काशी के अस्सी' में इस अपसंस्कृति पर लिखा है, जब वह देखते हैं विदेशियों के आने के साथ नशे की संस्कृति काशी में घर कर रही है — "...यह भारतीय संस्कृति पर हमला है। गांजा भांग की संस्कृति पर! जब से अस्सी पर अंगरेज-अंगरेजिन आने शुरू हुए हैं, तभी से मोहल्ले के लौंडे हेरोइन और ब्राउन शुगर, चरस के लती हो रहे

हैं।" (सिंह 81) 'पत्ताखोर' उपन्यास में किशोर आदित्य नशे की चपेट में है और हेरोइन, गांजा, ताड़ी सब कुछ का सेवन कर रहा है। सिर्फ आदित्य ही नहीं उसकी उम्र के अन्य किशोर भी इस दलदल में डूबे हुए हैं। एक बार नशे की गह्वर में डूबने के बाद लाख कोशिश के बावजूद वह उसमें धँसता ही चला जाता है और इसके लिए आपराधिक गतिविधि तक करता है। 'अपनी धरती अपने लोग' में नशे में डूबे नवयुवक से जब लेखिका पूछती हैं कि वह नशा क्यों करते हैं? छोड़ क्यों नहीं देते, तब जवाब मिलता है — "नशा मुझसे अधिक शक्तिशाली है मैडम, मैं इसे परास्त नहीं कर सकता।" (कांकरिया 71) इसी प्रकार गुलाम मंडी में भी देह व्यापार और नशे की दलदल में फँसे युवा की समस्या का चित्रण है।

नशे के साथ अपराधीकरण तो जुड़ा ही हुआ है, साथ ही मानव तस्करी जैसी समस्या ने भी जन्म लिया है। 'कंज़्यूम कल्चर' कितना विकृत हो सकता है। इससे कितनी घिनौनी सभ्यता विकसित हो सकती है, मानव देह की खरीद बिक्री इसका जीवंत प्रमाण है। 'अस्थि फूल' उपन्यास में अल्पना मिश्र मानव तस्करी की स्थिति के बारे में लिखती हैं —

> "यूनाइटेड नेशन' की रिपोर्ट है कि भारत मानव तस्करी का बड़ा बाजार बन चुका है। वर्ष 2009 से 2011 में 177660 लापता बच्चों की दर्ज गुमशुदगी, जिसमें चौंसठ फ़ीसदी नाबालिक लड़कियां हैं। इसी समय लगभग एक लाख साठ हजार औरतें लापता हैं, जो फाइलों में दर्ज हैं, छप्पन हजार का अब तक कोई पता नहीं। और ये देखो, हमारी महिला एवं बाल विकास मंत्रालय की रिपोर्ट — 2016 में बीस हजार औरतें और बच्चे तस्करी का शिकार...हर साल झारखंड में तैंतीस हजार नाबालिग लड़कियों और बच्चों की तस्करी...बाकी हजारों, लाखों केस, जो दर्ज नहीं है।(मिश्र २१५)

लेखिका निर्मला भुराड़िया ने अपने उपन्यास 'गुलाम मंडी' के माध्यम से देश-विदेश में मकड़जाल फैला चुकी मानव तस्करी की अंतरराष्ट्रीय समस्या को सामने रखा है कि किस प्रकार काम के लालच में मजबूरी व विवशता का लाभ उठा — चुराकर, गरीब परिवार की लड़कियों को देश-विदेश के विभिन्न कोनों में भेज दिया जाता है। उनकी तस्करी कर मनमाना पैसा कमाया जाता है और उनकी कमाई का हिस्सा तक न तो उन्हें मिलता है, न ही उनके परिजनों को भेजा जाता है। उनके साथ जानवर जैसा व्यवहार किया जाता है —

> "दरअसल छोटे–छोटे बने इन स्टेजों में से लगभग हर एक पर एक अलग ही नस्ल की युवती नाच रही थी। कोई अफ्रीकन-अमेरिकन है, कोई मैक्सिकन है, कोई एशियन, तो कोई गोरी भी! नस्ल कोई भी हो, यहां बैठे लार-टपकाते पुरुषों के लिए तो वे सब मांस की लुगदी ही है। उन्हीं को रिझाने के लिए वे नग्न नाच रही है। नाच क्या रही हैं संगीत की धुन पर अश्लील, संभोग मुद्राएं कर रही है।...मगर करीब जाकर इन युवतियों को छूने के भी डॉलर लगते हैं। अत: कोई स्वान की तरह किसी युवती के पीछे से जाकर उसे छूता है, सूंघता है और बदले में युवती की कमर में बंधी डोरी में डॉलर टाँग देता है।...यहाँ

> हर हरकत पर पुरुषों को डॉलर टांगना होता है। उसके चलते नाचती युवतियों की कमर पर डॉलर की झालर सी बन गई है, मगर यह झालर खुद इन्हें नहीं मिलने वाली। दलाल और यहां लाने वाले माफियाओं को मिलने वाली है।" (भुराड़िया 16)

उनके साथ कैसा यातनापूर्ण व्यवहार किया जाता है, उसका वर्णन करते हुए उपन्यासकार लिखती हैं — "और लड़कियों की ही तरह जेन ने भी करीब चार-पांच इंच की ग्लास हील्स की सैंडल पहनी थी, जिन्हें पहनकर लगातार नाचना काफी यंत्रणादायक काम था, मगर मना नहीं किया जा सकता था। मैक्सिको की अडेला को तो दो दिन से तेज बुखार भी था। उसने पॉइंटेड हील पहनने से इंकार भी किया था, मगर मैक ने अपने उसके मना करने पर इतनी जोर से उसका हाथ मरोड़ा कि अडेला दर्द से बिलबिला उठी।" (भुराड़िया 16)

मानव तस्करी व देह व्यापार की समस्या केवल लड़कियों के साथ ही नहीं, बल्कि लड़के के साथ भी यह सामान्य है। उपन्यास में छोटे बच्चे मुत्थू के माध्यम से इस समस्या को लेखिका ने रखा है। यह राष्ट्रीय नहीं, बल्कि वैश्विक समस्या है। बावजूद इसके सभी देश की सरकार मिलकर भी ठोस कदम नहीं उठा पा रही है। इसे भी लेखिका विषय बनाती हैं। लेखिका इस ऑर्गेनाइज्ड क्राईम की पोल खोलती हैं कि कैसे कानूनी प्रावधान के वाबजूद इस तरह के कारोबार सरकार की नाक के नीचे से हो रहा है — "यह औरतों को उठाने का, उन्हें बेचने का धंधा करने का ऑर्गेनाइज्ड क्राईम है। अमेरिका, यूरोप, एशिया, भारत, नेपाल, रसिया, रूमानिया, हरजेगोविया या लैटिन अमेरिका। हर मैक और हर लारा के तार जुड़े हैं। तभी तो ये सरकारों की नाक के नीचे बैठकर मानव मांस बेच लेते हैं, पूरे कागजात के बगैर, एक से दूसरे देश में आवाजाही करके अंतरराष्ट्रीय प्रशासन को गच्चा दे लेते हैं।" (भुराड़िया 26) जो संस्थाएं ऐसे व्यापार से मुक्त कराने का काम करती हैं वहां भी इन स्त्रियों का जबरदस्त शोषण होता है अल्पना मिश्र ने अपने उपन्यास 'अस्थि फूल' में इस त्रासदी को भी विषय बनाया है और इस स्थिति का प्रतिरोध किया है।

नई सभ्यता से संकटग्रस्त होने की शुरुआत भूमंडलीकरण के प्रारंभ से है। जिसके अंतर्विरोधी प्रभाव को 21वीं सदी में महिला लेखन ने विषय बनाया है। भूमंडलीकृत बाजार व्यवस्था ने नागरिक को उपभोक्ता में बदल दिया है। भौतिक सुख-संसाधन, रिश्ते-नाते सबकुछ उपभोग के विषय बन गए है। सभ्य कहलाने के लिए इसे जीने की मजबूरी बनी और जैसे ही मजबूरी के साथ जीने लगे, वैसे ही संवेदना से शून्य हो गए। भौतिक समृद्ध संपदा का चेतना शून्य होते जाना सभ्यता का संकट है। ऐसे संकट का लेखिकाओं द्वारा सृजनात्मक अभिव्यक्ति अंतत: सभ्यता के संकट के प्रति जागरूक करना और ऐसे संकट से अनुकूलित होने से खुद को बचाने का जरूरी प्रतिरोध है।

5.4. हाशिये का संकट और प्रतिरोधी स्वर —

समाज की मुख्यधारा से कटा वर्ग हाशियाकृत कहलाया। भूमंडलीकरण के बाद विकास की जो आंधी आई, उसमें हर किसी को उसके विकास का अवसर उपलब्ध कराया। इसके साथ ही वे सभी विमर्श भी मुख्यधारा में आ गए जो अब तक उपेक्षित रहे। रहीम मियाँ अमर्त्य सेन के विचार का उल्लेख करते हुए अपने लेख 'भूमंडलीकरण के दौर में नए समाज की अवधारणा' में लिखते हैं — "भूमंडलीकरण की आलोचनात्मक मूल्यांकन को इस बात से परहेज नहीं होना चाहिए कि इतने आलोचक केवल हठकरिता या अपनी विरोधी प्रवृत्ति के वजह से ही इसकी आलोचना नहीं करते। इस बात पर विचार करना आवश्यक है कि क्यों उन्हें इस बात को मानने में कठिनाई होती है कि यह दुनिया के वंचित लोगों के लिए वरदान है।" (मियाँ) इस कारण विचारणीय रहा कि भूमंडलीकरण का सकारात्मक पक्ष वंचित समुदाय आदिवासी, दलित, किन्नर का संघर्ष मुख्यधारा में शामिल हो। विमर्श की आंधी आ गई। वंचितों को आवाज मिली, लेकिन विकास के साथ नई समस्या भी पैदा हो गई, जिसे लेखिकाओं ने अपनी रचना में स्थान देकर उत्पन्न संकट के खिलाफ प्रतिरोध का स्वर मजबूत किया है।

5.4.1. आदिवासी समाज और संकट —

भूमंडलीकरण के साथ विकास के नाम पर जो आर्थिक नीति आई, उसने आदिवासी समाज और उसके जंगल, जमीन को सर्वाधिक प्रभावित किया। आदिवासी समाज प्रकृति पर निर्भर समुदाय रहा और इनके जंगल में खनिज का अपार भंडार। फलत: विकास के नाम पर इन्हें अपनी ही जमीन से विस्थापित किया जाने लगा और कानून इसमें सबसे बड़ा सहायक बना। भारत में आदिवासियों के हित में कानून के तहत यह अधिकार रहा कि आदिवासी जमीन को कोई गैर आदिवासी नहीं खरीद सकता। चूंकि आदिवासी क्षेत्र खनिज का भंडार रहा, इसलिए भूमंडलीकरण के बाद विकास के नाम पर इनकी जमीन पर इनके हक के लिए, इनके हित में बने कानून का संशोधन इनके ही विकास का हवाला देकर किया गया और इनकी जमीन की लगाम राष्ट्रीय, अंतरराष्ट्रीय कंपनी के हाथों में दे दी गई। डॉ० वीर भारत तलवार लिखते हैं —

> "19वीं सदी में अपने महान विद्रोह के बल पर आदिवासियों ने जिन महत्वपूर्ण अधिकारों को हासिल किया था, जैसे संथाल परगना टिनैंसी एक्ट और छोटा नागपुर टिनैंसी एक्ट जो आदिवासियों की जमीन को गैर आदिवासियों के हाथ जाने से रोकने का कानूनी प्रावधान करते हैं, उन्हीं को आज संशोधित करने और खत्म करने का षड्यंत्र चल रहा है ताकि आदिवासियों की जमीन को बड़े पैमाने पर राष्ट्रीय-बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हवाले किया जा सके।" (तलवार 9)

और कई राज्यों में इस उद्देश्य के तहत कानून में संशोधन भी किया गया। परिणाम यह हुआ कि खनिज संपन्न इलाके में विकास के नाम पर कल-कारखाने स्थापित होने लगे, प्रकृति का दोहन होने लगा, प्रदूषण बढ़ने लगा, गैर आदिवासी बसने लगे और आदिवासी अपनी ही जमीन पर अपना हक खोकर विस्थापित होने पर मजबूर हो गए। इसे 'मरंग गौड़ा नीलकंठ हुआ','अस्थि फूल' जैसे उपन्यास में स्त्री लेखन ने विषय बनाया है। 'अस्थि-फूल' में विकास के नाम पर आदिवासी की विस्थापन की पीड़ा को स्वर देती हुई लेखिका अल्पना मिश्र आदिवासी समाज की मनोदशा पर लिखती हैं — "दिकू हमारे दुश्मन हैं...विस्थापन हमारा दुश्मन है...महाजन हमारे दुश्मन है...लोग बाहर से आकर हमें, हमारे जंगलों से दूर कर रहे हैं...हमें, हमारे जंगल, जमीनों को छोड़कर, पेट भरने के वास्ते बाहर जाना पड़ रहा है...और वे...वे हमारी धरती लूट कर मालामाल हो रहे हैं।" (मिश्र २३) 'मरंग गौड़ा नीलकंठ हुआ' उपन्यास में महुआ माजी ने दिखाया है कि किस प्रकार लोहे और तांबे के खनन के लिए झारखंड के आदिवासी इलाके को कानून बनाकर वहां के जंगल को सरकारी संपत्ति घोषित कर दिया जाता है। फलत: मजबूर होकर आदिवासी मजदूर बनने व विस्थापित होने को मजबूर हो जाते हैं। यूरेनियम के खनन में बिना सुरक्षा के काम करने व खनन से जो विकिरण निकलता है, उस कचरे को निक्षेपित करने के लिए सरकारी कोई नियोजित व्यवस्था ना होने के कारण आदिवासी समाज विकिरण के खतरे से जूझ रहा है। लेखिका खनन के पहले और बाद की स्थिति का वर्णन करती हुई लिखती हैं — "यह उन दिनों की बात है जब मरंग गोदा में सभी के हाथ-पांव बिल्कुल सही सलामत थे। किसी का सिर असामान्य रूप से बड़ा नहीं दिखता था। किसी की देह घिनौने घाव से बजबजाती नहीं थी। गाय बकरियों के जबड़े, दांत या मसूड़े सड़कर गिरते नहीं थे।" (माजी 9) किंतु विकास के नाम पर जो खनन हुआ, प्रकृति प्रदूषित हुई, उसका परिणाम यह निकला कि उस इलाके की औरतें बांझ होने लगीं। बच्चे विकलांग पैदा होने लगे, जवानी में लोग टीवी व कैंसर से मरने लगे। लोगों की औसत आयु कम होने लगी और विकास के नाम पर इन सारी समस्याओं से सरकार ने भी मुंह मोड़ लिया। सगेन, मरंग गौड़ा को बचाने के लिए आंदोलन शुरु करता है, तो प्रश्न खड़ा करता है — "किसका विकास? कैसा विकास? हमारी यह धरती सोना उगलती है फिर भी हमारे लोग इतने गरीब? प्रदूषण की वजह से इन इलाकों के लोगों की औसत आयु कितनी कम हो गयी है। उनका खामियाजा कौन देगा हमें? हमारी इस धरती से लोहा तो निकलकर चला जाता है, देश-विदेश के कल-कारखानों में, दूसरे को समृद्ध करने। हमारे लोगों को क्या मिलता है? (माजी 212) सभ्यता तो विकसित हो रही है बहुराष्ट्रीय कंपनियां, सरकार मुनाफा भी कमा रही है, लेकिन आदिवासी सदियों की तरह खाली हाथ और पीड़ित हैं। 'अस्थि-फूल' उपन्यास में भी लेखिका ने दिखाया है कि विकास के नाम पर आदिवासियों की जमीन को सरकार हड़प रही है और उनके अधिकार खत्म कर रही है। इनारा के पिता उससे कहते हैं — "सरकार ने जंगल से लकड़ी काटने और बेचने पर रोक लगा दी है।"(मिश्र 121) और जब आदिवासी सरकार की इस मनमानी का विरोध करते हैं,

तब उन्हें देशद्रोही, नक्सली घोषित कर दिया जाता है। आदिवासियों की स्थिति का जिक्र करते हुए महुआ माजी के उपन्यास में आदित्य श्री, प्रज्ञा से कहता है —

> "लोग चाहे इसे किसी भी रूप में लें, पर सच्चाई तो यह है कि सन 1951 से 1990 के बीच इस देश में विकास के नाम पर करीब 85 लाख आदिवासियों को उजाड़ दिया गया। इसमें से तीन चौथाई का भी पुनर्वास नहीं हुआ, रोजगार तो दूर, राज्य द्वारा उन्हें जीवन यापन की न्यूनतम सुविधाएं भी नहीं दी गई। यही असंतोष नक्सली घटनाओं में वृद्धि का कारण बनी। कीमती खनिजों के खनन के लिए उनकी जमीन छीनी गई, जिससे दुर्गम पहाड़ी इलाकों में बसे होने के कारण गरीबी का दंश अब और झेल नहीं सकने की वजह से हथियार उठा लिए। यदि विकास का लाभ उन्हें समय रहते मिलता होता, तो मुझे नहीं लगता कि स्थिति इतनी विकट होती।" (माजी 249)

ऐसे में नई विकसित सभ्यता ने आदिवासियों के जीवन को सुलभ बनाने की जगह बड़ा दुर्लभ बना दिया। एक ओर गरीबी और भुखमरी को आदिवासी समाज झेलता है, दूसरी ओर नक्सली अभियान के तहत पुलिस-प्रशासन इन पर तरह-तरह के अत्याचार करते हैं। इनकी बहू-बेटियों के साथ हिंसा, बलात्कार करते हैं। नक्सली बता हत्या तक कर डालते हैं।

आदिवासी स्त्रियों के साथ उत्पन्न संकट को भी लेखिकाओं ने विषय बनाया है और उनकी खरीद-फरोख्त तथा इससे उत्पन्न अन्य संकट का भी रचना के स्तर पर प्रतिरोध किया है। 'अस्थि-फूल' उपन्यास में अल्पना मिश्र ने दिखाया है कि कैसे हरियाणा और आसपास के इलाके में जहां लड़कियों की कमी है, झारखंड और आसपास के इलाके से आदिवासी लड़कियों को खरीदकर 'मोल की दुल्हन' बनाया जाता है और फिर वहां परिवार के सभी सदस्यों द्वारा उसका दैहिक और श्रम दोनों प्रकार का शोषण होता है। चूंकि खनिज संपन्न इलाका होने के बावजूद आदिवासियों को इसका कोई लाभ नहीं मिलता, उलटे इनकी जमीन भी हथिया ली गई है और मजदूरी भी इतनी कम मिलती है कि भूखे मरने को बाध्य होते हैं। फलत: अपनी भूख को मिटाने के लिए अपनी लड़कियों को नर्क में धकेलने को बाध्य हो जाते हैं। उपन्यास में इनारा मोल की दुल्हन बनने की जगह नौकरी का निर्णय लेती है, तब मोल की दुल्हन बनाने के लिए समझाते हुए काका कहते हैं — "जितना पैसा तुम मजूरी करके सारी उमिर कमओगी, उससे ज्यादा वे लोग एक बार में तुम्हारे बाप के कदमों में रख जाएंगे। बाप की मदद भी हो जाएगी, तुम्हारा जीवन भी संवर जाएगा।" (मिश्र 128) और ब्याह करके जहां ले जाया जाता है। वहां परिवार के सभी पुरुष सदस्य द्वारा शारीरिक, मानसिक हर तरह की प्रताड़ना की ये औरते शिकार होती हैं।

मोलकी के नाम पर ही नहीं, बल्कि नौकरी के नाम पर भी आदिवासी लड़कियों को शहर ले जाया जाता है और वहां उन्हें बेच दिया जाता है। आदिवासी लड़कियां ट्रैफिकिंग की शिकार होती हैं। पलाश बताती

है — "जिन-जिन क्षेत्रों में भूख थी, वहां-वहां से आई थी ये लड़कियां। उड़ीसा, नेपाल, छत्तीसगढ़, बांग्लादेश... झारखंड की लड़कियां ज्यादा थीं।" (मिश्र 203) इन लड़कियों को भागने से रोकने के लिए ट्रैफिकिंग वाले इनसे जबरदस्ती बच्चा पैदा करा उनके बच्चे को कैद में रख लेते हैं, ताकि बच्चे के मोह में ये लड़कियां वहाँ से भागे ना। सरकार द्वारा ट्रैफिकिंग की शिकार लड़कियों का जब रेस्क्यू किया जाता है और उन्हें 'नारी निकेतन' जैसी संस्था में रखा जाता है, तो वहां भी उन लड़कियों की महा दुर्गति होती है। पीड़ा इतनी की स्त्रियां नकली मां-बाप बने दलाल के साथ जाने तक को तैयार हो जाती है, क्योंकि कागजात और प्रक्रिया के अभाव में असली मां-बाप तक पहुंचना उनके लिए कभी भी संभव नहीं हो पाता। अल्पना मिश्र आदिवासी लड़की पलाश के माध्यम से आदिवासी स्त्री की ऐसी स्थिति को दिखाती हैं। जहां पलाश बताती है — "यहां तो रोटी के लाले हैं, कपड़े नहीं मिलते...मासिक धर्म के लिए मिला एक कपड़ा धो-धोकर इस्तेमाल करते-करते घाव हो जाता है...छाले पड़ जाते हैं, तमाम बीमारियां हो जाती हैं, लेकिन दूसरा नहीं मिलता...कोई आ जाता, तो मैं चली जाती।" (मिश्र 235) ऐसे निकेतन में जो ट्रैफिकिंग की शिकार स्त्रियों का रेस्क्यू कर उनकी सुरक्षा के लिए बनाए गए है, वहां भी स्त्रियों का दैहिक शोषण होता है। इसका जिक्र करते हुए लेखिका लिखती हैं — "...नारी निकेतन में तो कभी यहां संजीवनी गृह में...मगर सब जगह भीतर ही भीतर गोरख धंधा है...कहीं भी शिफ्ट कर दो हमें...देह पीछा नहीं छोड़ती।"(मिश्र 235) सबसे बड़ी विडंबना यह है कि कभी भूले-बिसरे इनके परिजन इन्हें वापस लेने भी आ जाते हैं तो पैसे, कागजात और सोर्स के अभाव में उन्हें मुक्त नहीं करा पाते। कानून की जटिल प्रक्रिया में उलझकर रह जाते हैं।

5.4.2. दलित संकट और संघर्ष —

भूमंडलीकरण के कारण एक ओर पूरा विश्व ग्लोबल गांव में बदल रहा है, वहीं दूसरी ओर वर्ण, जाति के विरोध में चर्चा भी जोर-शोर से होने लगी है। फलत: उपेक्षित हाशियाकृत दलित वर्ग भी केंद्र में आ गया। दलितों के हित में कानून है। शिक्षा और रोजगार के क्षेत्र में आरक्षण है और आज दलित उच्च पदस्थ भी हो रहे हैं, लेकिन विकास के बावजूद उनके प्रति सामाजिक सोच में परिवर्तन उस स्तर पर नहीं हुआ है, जिस स्तर पर होना चाहिए। दूसरी ओर, अपनी जातिगत विद्वेषता, सवर्ण मानसिकता से ग्रस्त भी है। तीसरा पक्ष यह भी नजर आ रहा है कि अपनी सामाजिक व राजनीतिक छवि बनाने के लिए सवर्ण समाज में दलित हित की चर्चा केंद्र में आ रही है, किंतु इन सबके मूल में दलित हित कहाँ तक हो पा रहा है, उसके लिए भूमंडलीकरण वरदान कहां तक से साबित हो पा रहा है, इसे हिंदी कथा साहित्य में महिला लेखन ने विषय बना विसंगतियों के खिलाफ प्रतिरोध को स्वर दिया है।

दलित समाज की सबसे बड़ी समस्या जाति दंश की रही है। समय बदल रहा है। समाज में परिवर्तन नजर आ रहा है। कानून में जातिगत भेदभाव को अपराध घोषित किया गया है, लेकिन आज भी दलित मौका

मिलते ही शिक्षण संस्थान हो, समाज हो, हर जगह जाति दंश को झेलने को बाध्य हैं। सुशीला टाकभौरे ने उपन्यास 'नीला आकाश', 'तुम्हे बदलना ही होगा' में दलितों के जाति दंश को रखा गया है। 'नीला आकाश' का दलित पात्र भीकूजी कहते हैं — "कितनी भी कलाकारी हो, कितनी भी प्रगति करो, आखिर जात तो वही रहती है। ये जातपात भेदभाव की बात लोग भूलते क्यों नहीं।" (टाकभौरे 22) 'तुम्हें बदलना ही होगा' उपन्यास में दलित पात्र धीरज कुमार जो कॉलेज में प्राध्यापक हैं, लेकिन कॉलेज में हर रोज उसकी जाति उगलवाने के लिए तरह-तरह के प्रयास किए जाते हैं। धीरज कुमार सोचते हैं — "लोग जाति का पता लगाने के लिए इतने परेशान क्यों रहते हैं?" (टाकभौरे 63) आज दलितों के अंदर चेतना है, वह अपने बच्चे को शिक्षित करना चाह रहे हैं, ताकि अपनी स्थिति में सुधार कर इस जाति दंश से निकल सके। भीकूजी कहते हैं — "यदि हम अपने बच्चों को स्कूल पढ़ने नहीं भेजते हैं, तो यह अपराध है...पढ़-लिखकर हम भी सम्मान की, ऊंचे पद की नौकरी पा सकते हैं।" (टाकभौरे 22) शिक्षा प्राप्ति के लिए शिक्षण संस्थान जो सीखने की पहली सीढ़ी है, आज भले ही कानून के डर से दलित छात्रों को शिक्षा के अधिकार से वंचित नहीं किया जा रहा और ना ही पहले जैसी यातना ही दी जा सकती है, पर सवर्ण मानसिकता में पूरी तरह बदलाव नहीं आया है। आज दलितों को विद्यालय आने से नहीं रोका जा सकता, लेकिन अपने बच्चों को उनके बच्चों से मिलने से सवर्ण समाज रोक रहा है। 'नीला आकाश' में प्रसंग है, जहां माएँ अपने बच्चों का संस्कार कर रही हैं कि स्कूल में दलितों से अलग रहना — "मांग अछूत जाति के बच्चों के पास नहीं बैठना। उनके हाथ का कुछ खाना नहीं, पीना नहीं।" (टाकभौरे 24)

आज नौकरी में दलित आरक्षण है। तमाम व्यवस्था है, तो एक स्थिति यह भी देखने को आ रही है कि आरक्षण के बावजूद कोटे की सीट पर धांधली भी हो रही है और आरक्षित वर्ग को इसका लाभ नहीं मिल पा रहा। सीट भले कोटे की हो, पर नौकरी अपनी जाति वाले को मिल रही है। इसे भी लेखिकाओं ने विषय बनाया है। सुशीला टाकभौरे अपने उपन्यास 'तुम्हें बदलना ही होगा' में इस षड्यन्त्र का उल्लेख करती हैं — "उनका (ब्राह्मणवादी) यथाशक्ति प्रयत्न यही रहता हैं कि संस्था में टीचिंग और नॉनटीचिंग सभी लोग ब्राह्मण ही हों, मगर सरकारी कानून के रहते वे ऐसा नहीं कर सकते। किसी तरह छोटी-बड़ी चालाकी के साथ वे अपना प्रयोजन सिद्ध करते रहते हैं...हर वर्ष यह बहाना दिखा दिया जाता है कि उचित कैंडीडेड नहीं मिला ।" (टाकभौरे 28) ओबीसी के पद कुछ समय तक खाली रहने पर उसे सामान्य में तब्दील कर दिया जाता है। उपन्यास में महिमा कॉलेज की नौकरी का विज्ञापन देखकर फॉर्म भरती है और कोटे की सीट पर सवर्ण जाति के लोगों को नौकरी दे दी जाती है और इसका विरोध करने पर मैनेजमेंट द्वारा संतोषजनक उत्तर नहीं मिलता है। महिमा विरोध में कहती है — "यह स्थिति बनी है डॉक्टर अंबेडकर द्वारा दिए आरक्षण की ताकत से।" (टाकभौरे 28)

सवर्ण समाज के बीच दलितों को लेकर मतभेद ही नहीं, बल्कि स्वयं दलित समाज में मतभेद को भी विषय बनाया है। स्त्री लेखन में इन मतभेदो के विरोध में दलित समुदाय को एक करने का प्रयास भी किया है। सुशीला टाकभौरे अपना उपन्यास 'नीला आकाश' में दिखाती हैं कि किस प्रकार रोजगार को लेकर इस वर्ग में आपसी मतभेद पनप रहे हैं। जहां एक दलित वर्ग गरीबी में दूसरे दलित वर्ग के रोजगार को अपनाता है, जिस कारण इनका आपस में ही मतभेद बढ़ रहा है — "तुम लोगों ने हमारा पुश्तैनी धंधे हमसे छीन लिया है। हमारे बाल बच्चे क्या करेंगे? कैसे अपना पेट भरेंगे? यह काम सिर्फ हमारी जाति का काम है।" (टाकभौरे 75)

अपनी राजनीतिक व सामाजिक छवि में सुधार के लिए तथाकथित सवर्ण समाज द्वारा दलित हित की बातें रखने का चलन भी बढ़ा है। शिवमूर्ति ने 'बनाना रिपब्लिक' में दिखाया कि किस प्रकार ठाकुर और बाभन अपनी राजनीति साधने के लिए कोटे की सीट पर जग्गू को खड़ा करते हैं और कहते हैं समय की मजबूरी है, राजनीति साधने का यही उपाय है। वहीं सुशीला टाकभौरे ने अपने उपन्यास 'तुम्हे बदलना ही होगा' में दिखाया है कि व्यापारी चमनलाल दलित महिमा से विवाह करता है, तो इसके पीछे वर्ण व्यवस्था को तोड़ने की उसकी नीति नहीं रहती, बल्कि अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा को बढ़ाने का दिखावा है, ताकि अपनी छवि बना सकें। महिला हित की फर्जी बातें करता है। उसकी योजना है — "शोषित वंचितों के बढ़ते आंदोलन को शांतिपूर्ण ढंग से रोकने के लिए हम स्वयं उनके आंदोलन का नेतृत्व करें, उन्हें अपने ढंग से समझाने-बहलाने के लिए उनके हित संबंधी कार्यों को अपने हाथों सम्पन्न करें। इससे समाज की पुरानी व्यवस्था भी बनी रहेगी और हमारी समाज सेवा से हमारा सम्मान भी बढ़ेगा।" (टाकभौरे 97) इस प्रकार दलितों का जो संघर्ष रहा है, उसे सामने रख उनके हित में प्रतिरोध का स्वर 21वीं सदी में महिला लेखन में मजबूत हुआ है।

5.4.3. किन्नर संकट और संघर्ष —

आदिवासी और दलित के बाद तीसरा समुदाय जो हाशिये पर है वह किन्नर। आदिवासी और दलित अपनी गरीबी, अपनी जाति को लेकर दंश झेलते हैं, तो किन्नर अपने जन्म और शारीरिक बनावट को लेकर। किन्नर का संघर्ष स्वयं को मनुष्य कहलाने का संघर्ष है। चित्रा मुद्गल किन्नर विनोद उर्फ बिन्नी के माध्यम से कहलवाती हैं — "सामान्य मनुष्य के बीच सामान्य मनुष्य के रूप में ही पहचाने जाने की ख्वाहिश रखता हूं।" (मुद्गल 113) आज कानून में किन्नर के लिए अधिकार हैं। भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने ट्रांसजेंडर को सामाजिक व आर्थिक रूप से पिछड़ा वर्ग माना है और शिक्षा, रोजगार, व्यापार में उन्हें सामानाधिकार उसी प्रकार प्रदान किया है, जैसा भारतीय संविधान के अनुसार किसी भी आम नागरिक स्त्री या पुरुष को मिलता है। बावजूद इसके तृतीय लिंग के प्रति समाज की धारणा प्रगतिमूलक ना होकर बहुत ही प्रतिकूल है।

किन्नर कुछ शारीरिक असमानता के साथ इंसान ही हैं, लेकिन किन्नर को सामान्य मनुष्य के रूप में हमारा समाज नहीं देख रहा है और तमाम तरह के सुधारात्मक प्रयास कानूनी स्तर पर होने के बावजूद पूरी तरह कानूनी बल भी नहीं मिल पा रहा है। चित्रा मुद्गल अपने उपन्यास 'पोस्ट बॉक्स नंबर 203 नालासोपारा' में किन्नर बिन्नी के माध्यम से किन्नर की पीड़ा को दिखाती हैं। जहां वह अपनी मां को पत्र लिखते हुए पूरे समाज का प्रतिनिधित्व करता बड़ा ही वाजीब प्रश्न करता है — "जननांग विकलांगता बहुत बड़ा दोष है, लेकिन इतना बड़ा भी नहीं कि तुम मान लो कि तुम धड़ का मात्र वही निचला हिस्सा भर हो। मस्तिष्क नहीं हो, दिल नहीं हो, धड़कन नहीं हो, आंख नहीं हो। तुम्हारे हाथ-पैर नहीं है। हैं, हैं, हैं सब वैसा ही है, जैसे औरों के हैं। यौन सुख लेने-देने से वंचित हो तुम, वात्सल्य सुख से नहीं।"(मुद्गल 50) किरण सिंह की कहानी 'सांझा' में भी किन्नर के दर्द का बयान लेखिका करती हैं। जब 'सांझा' अपने पिता के कहने पर कि वह जरूरी अंग के अभाव में पैदा हुई है, तब वह प्रश्न करती है — "जीवन के लिए सबसे जरूरी तो आंख है। जोगी चाचा अंधे पैदा हुए। जरूरी तो हाथ है। बिंदा बुआ का दाहिना हाथ कोहनी से कटा है। रामाधा भैया तो शुरु से खटिया पर पड़े हैं, रीड की हड्डी बेकार है। विशंभर तो पागल है, जन्म से बिना दिमाग का। क्या...वो...वो आंख, कान, हाथ, पांव, दिमाग से भी बढ़कर होता है। "(सिंह 178) अतः सारी संवेदनाओं से युक्त होने, सारी क्षमता से परिपूर्ण होने पर भी किन्नरों को सामान्य मनुष्य के रूप में स्वीकार नहीं किया जाता।

तृतीय लिंग के प्रति परिवार व समाज का नजरिया प्रतिरोधी है। परिवार में किन्नर बच्चा पैदा होने पर मां-बाप के लिए वह खुशी का सबब नहीं, बल्कि कलंक बन जाता है। ऐसे में अपनी इज्जत बचाने के लिए ऐसे बच्चों को कूड़े के ढेर में या किन्नर समाज को सौंप देने का पुराना चलन रहा है और संकट यह है कि भले ही किन्नर के हित में आज कानून बन रहे हैं, लेकिन किन्नर बच्चे के प्रति परिवार के इस रवैए के प्रति कानून भी उदासीन है। चित्रा मुद्गल का उपन्यास 'पोस्ट बॉक्स नंबर 203 नाला सोपरा' में विनोद उर्फ बिन्नी को अगर उसके पिता चाहते, तो किन्नरों का उसे उठा कर ले जाने जैसी दुर्घटना को अपनी पहचान का प्रयोग कर रोक सकते थे, लेकिन नहीं करते कि अगर बाहर बात खुली तो उनकी इज्जत, प्रतिष्ठा माटी में मिल जाएगी। इसीलिए अपने बच्चे के प्रति असंवेदनशील हो उसे किन्नर समाज को सौंप देते हैं। कॉलोनी बदल लेते हैं। बच्चे को मरा घोषित करवा देते हैं। बिन्नी कहता है — "जरूरत है सोच बदलने की। संवेदनशील बनने की। सोच बदलेगी, तभी जब अभिभावक अपने लिंग दोषी बच्चों को कलंक मान किन्नरों के हवाले नहीं करेंगे। उन्हें घूरे में नहीं फेकेंगे।" (मुद्गल 112) किन्नर के प्रति परिवार ही नहीं सभ्य समाज की सोच 'गुलाम मंडी' में हमीदा के प्रसंग से स्पष्ट है, जहां उसकी सच्चाई का पता चलते ही विद्यालय से निकाल दिया जाता है। सभ्य समाज में जब किन्नर पढ़-लिखकर कुछ बनना चाहता है, तो समाज आचरण कैसा रहता है, इसके बारे में बताते हुए हमीदा रानी से कहती है — "तुझे तो इस बात पर खुश होना चाहिए कि तुझे वृंदा गुरु की शरण मिल गई। बड़े मजे से

कह रही है स्कूल जाने की उम्र हो गई थी। कोई भर्ती करता क्या पाठशाला में? पहले पूछते मेल कि फिमेल। अपनी वह शर्मिला है ना, छोरा बनके भर्ती हुई थी, तो बहन जी ने एक दिन चड्डी उतरवा ली थी उसकी और जूते मार के स्कूल से निकलवा दिया था उसको।" (भुराड़िया 69)

एक सामाजिक सोच यह भी है कि समाज से कटा असहाय वर्ग किन्नर चूंकि स्त्री-पुरुष नहीं है, तो अपराधी जरूर है। निर्मला भुराड़िया 'गुलाम मंडी' में इस सोच का पर्दाफाश तब करती है, जब कल्याणी अंगूरी के साथ उसके इलाके किन्नर इलाके में अपने सामाजिक कार्य को अंजाम देने जाती है, पर उसके मन में किन्नरों को लेकर डर बसा हुआ है और इसके पीछे का कारण है बचपन में सुनी हुई कहानियां — "हिजड़े उठाकर ले जाएंगे, झोली में भरके।" "छोड़ो का तो वह अंग भंग करके अपने दल में मिला लेंगे।" (भुराड़िया १२)

सभ्य समाज में किन्नरों का इतना ही स्थान है कि जन्म, विवाह आदि अवसरों पर आकर आशीर्वाद देते हैं और उनका आशीर्वाद फलता है। स्वार्थी समाज में इनकी इतनी ही जगह है, जितनी श्राद्ध के दिनों में कौवे की। 'गुलाम मंडी' की हमीदा के शब्दों में — "श्राद्ध के दिनों में ही न। स्वारथ रहता है न तुम्हारा। आड़े दिनों में जो कहीं कव्वा अगर बैठ जाए ना तुम पर तो नहाओगी – धोओगी, अपशगुन मनाओगी। जैसे हम ना तुम्हारे जो शादी-ब्याह हो, तो नाचेंगी-गाएंगी, शगुन पाएंगी, मगर यूं जो रास्ते में आ पड़ी ना हम, तो हिजड़ा कह कर धिक्कारोगी।" (भुराड़िया 12)

किन्नरों के साथ एक बड़ी समस्या यह है कि तथाकथित सभ्य समाज सामान्य मनुष्य के रूप में जीने के अधिकार से इन्हें वंचित करता है, तो दूसरी ओर किन्नर समाज इन्हें ताली पीटने पर मजबूर अर्थात् जबरदस्ती करके सम्मान कमाने के अवसर से वंचित करता है। इसे 'गुलाम मंडी' में रानी और 'पोस्ट बॉक्स नंबर 203 नालासोपारा' में विनोद के संदर्भ में लेखिकाओं ने रखा है। विनोद अपने किन्नर समाज में अपने दर्द को व्यक्त करता है कि कैसे किन्नर समाज में बच्चे की सारी संभावनाओं को छिन समाज के अन्य किन्नरों की तरह ताली पीटने पर बाध्य किया जाता है और इंकार करने पर अत्याचार। वह अपनी मां को पत्र लिखता है — "बात-बात पर ताली पीटना मेरी स्वभाविक प्रकृति नहीं है। स्त्रैण लक्षण मुझमें कभी नहीं रहें। अब भी नहीं है और जो लक्षण मुझमें नहीं है, उन्हें सिर्फ इसलिए स्वीकारू की मेरी बिरादरी के शेष सभी, उस हाव-भाव को अपना चुके हैं?" (भुराड़िया 9-10)

किन्नर समाज की त्रासदी है कि जीते जी तो इस समाज को सम्मान नहीं मिलता, मरने पर भी इनके अपने समाज में दफनाने से पहले इनके शव को मारा-पीटा जाता है, ताकि फिर से इस योनि में जन्म ना मिले। निर्मला भुराड़िया लिखती हैं — "कफन को गड्ढे में रखने के बाद उन्होंने लाश को कफन में उतारा मगर सीधे नहीं लेटाया, बल्कि लेटाया पेट के बल। लाश को उल्टा रखकर उन सभी ने अपनी-अपनी कमर में बंधे जूते-

चप्पल निकाल लिए और लाश को पीटना शुरू किया। इस कथन के साथ कि अगले जन्म में हिजड़ा ना बनना।" (भुराड़िया 66)

आज किन्नर के हित में कानून बने हैं। 'द राइट्स ऑफ ट्रांसजेंडर पर्सन्स बिल 2014' ट्रांसजेंडर पर्सन्स (प्रोटेक्शन ऑफ़ राइट) 2016 में बना है। राज्यसभा में बिल को 20 जुलाई 2016 को मंजूरी मिली है। इसके पूर्व 15 अप्रैल 2015 को उच्चतम न्यायालय ने तृतीय लिंग के लिए सभी आवेदन-पत्र में "अन्य" का उल्लेख अनिवार्य किया है। बच्चा गोद लेने का अधिकार तक दिया है, इसके बावजूद किन्नर की स्थिति में सुधार कम ही हुई है, तो इसके पीछे कानून की त्रुटियां भी है। कानून में तृतीय लिंग को कुछ अधिकार तो जरूर मिले, लेकिन जिस तरह से यह अधिकार मिले उससे समाज का हिस्सा नहीं, बल्कि समाज से पृथक होने का दंश ही है। चित्रा मुद्गल के उपन्यास में विनोद इस स्थिति पर प्रकाश डालता है —

> "जहां सरकार ने अनुसूचित जनजाति को रखा है। पिछड़ा वर्ग को रखा है। विकलांग को रखा है। ये सब समाज के घोर वंचित वर्ग है। लिंग दोषी नहीं है। बाकायदा स्त्री-पुरुष है।" "लिंग दोषी सभी लिंग से स्त्री-पुरुष नहीं है, तो क्या मनुष्य नहीं है?" किन्नर बिरादरी का संघर्ष उन्हें मनुष्य माने जाने का संघर्ष है। फिर "O" अदर्स में उन्हें क्यों ढकेला जा रहा है। "O" अदर्स को खत्म कर देना चाहिए सरकार को। देखिए, मेरा मानना यह है, अपना लिंग उन्हें चुनने की स्वतंत्रता दीजिए।...उन्हें अलग से इस रूप में चिन्हित करना घोर अमानवीय कृत्य है। किन्नर चाहे जिस भी वर्ग की संतान हो, चाहे जिस जाति-बिरादरी समुदाय से संबंधित हो, उसी जाति-वर्ग के अनुसार उन्हें अपना सामान्य जीवन जीने की सुविधा मिलनी चाहिए। अगर वे आरक्षित श्रेणी के माता-पिता की संतान हैं, तो वे उस आरक्षित श्रेणी को प्राप्त होने वाली सुविधाओं की हकदार है। समर्थ माता-पिता के समक्ष उन्हें समुचित भरण-पोषण की दिक्कत है ही नहीं। उन्हें जरूरत है, तो जागरूकता की।" (मुद्गल 195-196)

तृतीय लिंग को अदर्स बता पूरे समाज से भी उसे 'अदर्स' कर दिया जाता है। कानून की इस खामी की ओर ध्यान ले जाते हुए विनोद कहता है कि कैसे अन्य पिछड़े वर्ग की तरह इस वर्ग को पिछड़ा नहीं माना जाता, समाज से अदर्स घोषित कर मां-बाप को यह अधिकार दे दिया जाता है कि ऐसे बच्चों को ट्रांसजेंडर जमात के हवाले कर दें। कन्या भ्रूण हत्या अपराध है, अदर्स को त्यागना अपराध नहीं है — "सरकार अभिभावकों को अपराध मुक्त कर खुली छूट दे रही है। पैदा होते ही वह लिंग दोषी बच्चों को ट्रांसजेंडर जमात के हवाले कर दे। छुट्टी पा लें अपनी जिम्मेदारी से।" (मुद्गल ११२) ऐसे में जरूरी है कि किन्नर समाज एक हो और अपने हक के लिए आगे आए। अकर्मण्यता से बाहर निकले, आपसी मतभेद से बाहर निकले। विनोद जब अपने समुदाय की समस्या को लेकर विधायक के पास जाता है, तब विधायक कहते हैं — "साथ देंगे किन्नर हमारा तो हम उनके आरक्षण की मुहिम चलाएंगे। जोड़ेंगे उन्हें विकास के समान अवसरों से। शिक्षा, रोजगार, संपत्ति, ऋण, बूढ़ों की

पेंशन, बेरोजगार युवाओं का भत्ता, लेकिन ताली एक हाथ से नहीं बजती। संगठित होना पड़ेगा। आवाज उठानी पड़ेगी। देशव्यापी आंदोलन छेड़ना होगा। जेले भरनी पड़ेगी, धरने देने होंगे।" (मुद्गल १५३) अर्थात् राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में संगठित होकर ही किन्नर अपने अधिकार को प्राप्त कर सकता है या प्रतिरोध रच सकता है, लेकिन इससे भी जरूरी है इनके प्रति प्रचलित सोच को सर्वप्रथम संवेदना से आपूरित करना। विमर्श जो खंडों या टुकड़ों में विभाजित है कहीं स्त्री के नाम पर, कहीं दलित के नाम पर, कहीं आदिवासी के नाम पर, कहीं किन्नर के नाम पर, भले ही इनकी संख्या बढ़ रही है, लेकिन जब तक इन हाशियाकृत समुदाय के प्रति वैश्विक परिप्रेक्ष्य में संवेदना नहीं जगेगी, तब तक इनकी स्थिति में सुधार के लिए अपेक्षित माहौल नहीं बन पाएगा और माहौल इनके प्रति प्रतिरोधी बना रहेगा।

निष्कर्षत: यह स्थापित है कि 21वीं सदी का स्त्री कथा लेखन अर्थ-संस्कृति की चेतना से पोषित समाज का प्रतिरोध रचता है। बाजारबादी अर्थ-संस्कृति से प्रदूषित सभ्यता ने परिवार, समाज एवं राष्ट्र के प्रति भौतिक विकासमूलक संस्कार को महत्व दिया। परिणामत: तमाम समृद्धि के बीच चेतना शून्य परिवेश निर्मित हुआ, जिसका सार्थक प्रतिरोध 21वीं सदी के स्त्री कथा लेखन में दर्ज है। इस नई सभ्यता में अर्थ का मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य नहीं है, बल्कि अर्थ का बाजारवादी परिप्रेक्ष्य हम पर कायम है, जिसमें लाभ कमाना ही प्रमुख है, भले ही इसके लिए मानव मांस बेचना पड़े। अर्थ केंद्रित बाजारवादी सभ्यता का परिणाम है कि आज परिवार, सामाजिक इकाई ना होकर सामाजिक परिणाम है। परिवार के मूल्य समाज में जाने की जगह, समाज के जो बाजार केंद्रित मूल्य है, वे परिवार में आकर सघन रूप ले रहे हैं। इस कारण पारिवारिकता विघटित सामाजिकता के दबाव में दब गई है। आज बाजारवादी परिप्रेक्ष्य में आर्थिक पक्ष इतना मजबूत है कि पैसा कमाना, बड़ा घर लेना प्रमुख हो गया है। इस कारण युवा में सांस्कृतिक एवं भौतिक दोनों विस्थापन घटित हो रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि इस सभ्यता की पहली शर्त संवेदना से शून्य हो जाना है। यही कारण है कि परिवार में बच्चे हों, युवा हों, नई पीढ़ी हों या वृद्ध या फिर समाज में युवा, स्त्री और हाशिये का समाज ही क्यों ना हो, इन सबके प्रति अधिकांश में सिर्फ और सिर्फ भौतिक स्तर पर तमाम औपचारिकताएं निभाई जाती हैं, लेकिन इन सारे परिप्रेक्ष्य में चेतनाशून्य आचरण दिखने में तो हमारे विकास का सूचक लगता है, मगर हकीकत में ऐसा नहीं है। संवेदना के विकासमूलक आख्यान में परिवार, समाज और वंचित समुदाय सच्चे अर्थ में विकास के नाम पर या तो विनाश की ओर बढ़ रहे हैं या विकास के आलंबन का विषय ही बने हुए हैं। इन संदर्भों को 21वीं सदी में विमर्श के केंद्र में लाने की पहल मूलत: और अंतत: सभ्यता के इस नए प्रारूप के विरुद्ध रचनात्मक प्रतिरोध ही है। वर्तमान सभ्यता में नीचे से ऊपर ऊर्ध्वगामी होना संभव नहीं हो पा रहा है, क्योंकि आज जो विसंगतियां हैं, वे जमीन से उठी हुई नहीं हैं, बल्कि सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य को लेकर ऊपर से हमारे ऊपर गिरी हुई है। यह केवल स्त्री, बच्चे, बुजुर्ग, दलित, आदिवासी की समस्या नहीं, पूरे समय की समस्या है। पूरे समय का

सच है। यह समस्या वैश्विक है। अगर संकट वैश्विक है, तो समाधान भी वैश्विक धरातल पर तलाशने की जरूरत है, इसीलिए मृदुला गर्ग ने कहा कि आज स्त्री विमर्श की जगह, परिवार विमर्श की जरूरत है, तो प्रोo शंभुनाथ ने विमर्श को जोड़ने की बात की है। आज भौतिक संस्कृति हमें ट्यून करने में लगी हुई है और हम ट्यून हो रहे हैं, अपने आप को अनुकूलित कर रहे हैं। अनुकूलन के प्रतिरोध में 21वीं सदी का महिला लेखन यहां खड़ा है, जो सार्थक प्रतिरोध का विषय बना है। समस्या का सही बोध अपने आप में समस्या का आधा समाधान है। संकटग्रस्त होती हमारी नई सभ्यता से जो समस्या जन्म ले रही है, उस समस्या की पहचान 21वीं सदी में लेखिकाओं ने की है। साहित्य का उद्देश्य केवल दशा दिखाना नहीं, बल्कि दिशा का भी संस्कार है। ऐसे में भौतिक सभ्यता को जीने के वर्तमान दिशाबोध के प्रतिरोध में तमाम कानूनी प्रावधानों के साथ आत्मबोध को जगाकर सभ्यता के संकट से बचाव का उपाय निकाला जा सकता है, जिसे मैंने इस अध्याय में रचनाओं के परिप्रेक्ष्य में स्थापित किया है।

संदर्भ-ग्रंथ

अनामिका, *तिनका तिनके पास*, वाणी प्रकाशन, 2008.

उपाध्याय, रमेश और संज्ञा. उपाध्याय, *परिवार में जनतंत्र*, प्रस्तावना, शब्दसंधान प्रकाशन, 2004.

कांकरिया, मधु. "एक रुकी हुई स्त्री" *बीतते हुए कहानी संग्रह*, दूसरा संस्करण, राजकमल प्रकाशन, 2017. पृष्ठ 164-176.

---, "दाखिला" *बीतते हुए* कहानी संग्रह, दूसरा संस्करण, राजकमल प्रकाशन, 2017. पृष्ठ 141-147.

---, "देख कबीरा रोया" *अपनी धरती, अपने लोग,* दूसरा संस्करण, सामयिक प्रकाशन 2014, पृष्ठ –

---, *पत्ता खोर* . पहला संस्करण, राजकमल प्रकाशन, 2005

---, "बड़ा पोस्टर" *बीतते हुए* कहानी संग्रह, दूसरा संस्करण, राजकमल प्रकाशन,2017.पृष्ठ 100-117.

---, "लेडी बॉस" *बीतते हुए कहानी संग्रह*, दूसरा संस्करण, राजकमल प्रकाशन, 2017. पृष्ठ 37-47.

---,"लोड शेडिंग" *बीतते हुए* कहानी संग्रह, दूसरा संस्करण, राजकमल प्रकाशन,2017. पृष्ठ 57-66.

---, *सेज पर संस्कृति*, तीसरा संस्करण,राजकमल प्रकाशन,2017.

कालिया, ममता. *दौड़*, छब्बीसवाँ संस्करण, वाणी प्रकाशन, 2022.

---, कल्चर-वल्चर. किताबघर प्रकाशन,2017.

कुमारी, ज्योति. अनझिप आँखें, दस्तक, 9 अक्टूबर 2012 http://dastakkhat.blogspot.com/2012/10/blog-post.html

गर्ग, मृदुला. बेंच पर बूढ़े, https://www.hindisamay.com/

गीताश्री, इंद्रधनुष के पार, http://gadyakosh.org

---, गोरिल्ला प्यार, *स्वप्न में वसंत (स्त्री यौनिकता की कहानियाँ*),संपादन बिहारी, राकेश. शिल्पायन प्रकाशन, 2014. पृष्ठ 57-65.

---, "दो पन्ने वाली औरत", *प्रार्थना के बाहर और अन्य कहानियाँ*, वाणी प्रकाशन, 2013. पृष्ठ 75-82.

---, *बाहों के दरमियाँ (ई-बुक)* जगरनॉट बुक, 2020.

गुप्त, रजनी. *एक न एक दिन*, किताबघर प्रकाशन, 2008.

---, रजनी. *ये आम रास्ता नहीं*. वाणी प्रकाशन, 2007.

चौहान, डॉ संजय. *उत्तर आधुनिकता और हिन्दी उपन्यास*, आशा बुक्स, 2011.

टाकभौरे, सुशीला. *तुम्हें बदलना ही होगा*, सामयिक प्रकाशन, 2015.

---, सुशीला. *नीला आकाश*, विश्व भारती प्रकाशन नागपुर, 2013

तलवार, वीर भारत. "सभी सत्ताधारी आदिवासियों के आदिवासीपन से डरते हैं," *आदिवासी समाज और साहित्य*. कथाक्रम, अक्टूबर-दिसंबर 2011

तिवारी, उषा. *साठोत्तरी काव्य में पारिवारिक जीवन*, पंजाब बुक्स, 2008

दिनकर. लोहे के पेड़ हरे होंगे, kavitakosh.org

द्विवेदी, हजारी प्रसाद. "क्या निराश हुआ जाए", *वसंत-भाग-3*,एनसीईआरटी.पृष्ठ 38.

दुबे, श्यामाचारण. *समय और संस्कृति*. तीसरा संस्करण, वाणी प्रकाशन, 2018

पालिवाल, कृष्णदत्त. *उत्तर आधुनिकता की ओर*. आर्य प्रकाशन मण्डल, 2007.

---, *उत्तर आधुनिकतावाद और दलित साहित्य*, वाणी प्रकाशन, 2008.

पचौरी, सुधीर. *नयी साहित्यिक सांस्कृतिक सिद्धांतिकियाँ'*, वाणी प्रकाशन, 2022

पांडे, मृणाल. स्त्री देह की राजनीति से देश की राजनीति तक, तीसरा संस्करण, राधाकृष्ण पब्लिकेशन, 2011.

पुष्पा, मैत्रयी. विजन, चौथा संस्करण, वाणी प्रकाशन, 2020.

बनवारी. "भारतीय सभ्यता का संघर्ष", यथावत पत्रिका, 3 सितंबर 2020 https://yathavat.com

बेदी, सुषमा. *काला लिबास*, अभिव्यक्ति, 1 दिसंबर 2006 https://www.abhivyakti-hindi.org/

भारतकोश, "सभ्यता और संस्कृति में अंतर" https://bharatdiscovery.org/india/

भुराड़िया, निर्मला. *गुलाम मंडी*, पहला संस्करण, सामयिक प्रकाशन,2014.

माजी, महुआ. *मरंग गोंडा नीलकंठ हुआ*, राजकमल प्रकाशन, 2012.

---, महुआ. *मै बोरिशाइल्ला*, पहला संस्करण, राजकमल प्रकाशन,2006.

मियां, रहीम. "भूमंडलीकरण के दौर में नए समाज की अवधारणा" अपनी माटी, वर्ष-2 अंक-22 (संयुकतांक), अगस्त 2016. https://www.apnimaati.com/2016/08/blog-post_54.html

मीणा, कैलाश. "सभ्यता का अर्थ, परिभाषा, विशेषताएं/लक्षण" 26/3/2022. https://www.kailasheducation.com/2022/03/sabhyata-arth-paribhasha-visheshta.html

मिश्र, अल्पना, *अस्थि फूल*, पहला संस्करण, राजकमल प्रकाशन, 2019.

मुद्गल, चित्रा. गिलिगडु, पाँचवा संस्करण, सामयिक प्रकाशन,2010.

---, "वाइफ स्वैपी", https://www.rachanakar.org/2005/08/blog-post_27.html

---, *पोस्ट बॉक्स नंबर 203 नाला सोपारा*, छठा संस्करण, सामयिक प्रकाशन, 2020.

राय, जयश्री, *काली कलूटी*, हिन्दी समय डॉट कॉम

---, *दर्दजा (हव्वा की बेटियों की दास्तान)*, वाणी प्रकाशन, 2016. आवृति 2018.

---, "वर्जित सुख*"...तुम्हें छू लूँ जरा (कहानी संग्रह)*, सामयिक प्रकाशन, 2017. पृष्ठ 90-102.

विकिपीडिया "समाज" https://bharatdiscovery.org\

शंकर, रवि. "सभ्यतागत संघर्ष और संचार माध्यम", सभ्यता संवाद पत्रिका, वर्ष 2, अंक 2, अप्रैल-मई-जून 2020, पृष्ठ 8-16

शर्मा, नासिरा. *कुइयांजान*, सामयिक प्रकाशन, 2009.

"सभ्यता एवं संस्कृति में अंतर", भारतकोश, ज्ञान का हिन्द महासागर, https://bharatdiscovery.org/

संगारी, कुमकुम. "परिवार में जनतंत्र यानी सारी दुनिया में जनतंत्र", संपादक – उपाध्याय, रमेश और संज्ञा उपाध्याय, *परिवार में जनतंत्र*, शब्दसंधान प्रकाशन, 2004, पृष्ठ 9-20.

सरावगी, अलका. *एक ब्रेक के बाद*, राजकमल प्रकाशन,2008.

---, *कोई बात नहीं*. राजकमल प्रकाशन, 2004.

---, *शेष कादंबरी*. राजकमल प्रकाशन, 2008.

सिंह, काशीनाथ. *काशी का अस्सी*. राजकमल प्रकाशन, 2016.

सिंह, किरण. "सांझा", *यीशू की कीलें (कहानी संग्रह)*. द्वितीय संस्करण, आधार प्रकाशन, 2021. पृष्ठ 171-194.

सिंह, पुष्पपाल. *भूमंडलीकरण और हिन्दी उपन्यास*, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2012.

सिन्हा, अलका. *जी मेल एक्सप्रेस*, किताबघर प्रकाशन, 2018.

सिन्हा, प्रो0 सच्चिदानंद. *भूमंडलीकरण की चुनौतियाँ*, वाणी प्रकाशन, 2009.

छठा अध्याय
स्त्री-भाषा में प्रतिरोध : विविध आयाम

- **भूमिका**

6.1. भाषा का अर्थ

6.2. स्त्री-भाषा की अवधारणा

6.3. भाषाई प्रतिरोध के संदर्भगत आयाम

6.3.1. भाषाई प्रतिरोध का दैहिक संदर्भ

6.3.2. राजनीतिक संदर्भ में प्रतिरोध की भाषा

6.3.3. भाषा का घरेलू महिला कामगार संदर्भ

6.3.4. प्रतिरोध की भाषा में सभ्यता का संकट

6. 4. भाषाई प्रतिरोध के संरचनागत आयाम

6.4.1. डॉट्स की भाषा

6.4.2. भाषा में प्रतीक, बिंब व मिथक

6.4.2.1. प्रतीक

6.4.2.2. बिम्ब

6.4.2.3. मिथक

6. 5. मुहावरे और लोकोक्तियाँ

- **निष्कर्ष**

छठा अध्याय

स्त्री-भाषा में प्रतिरोध : विविध आयाम

बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में स्त्री लेखन ने एक विशेष पहचान बनाई है। मुख्यधारा और हाशिये से केंद्र में आने को संघर्ष करती स्त्री अलग-अलग रही। वहीं, 21वीं सदी की स्त्री अपनी स्थापित अस्मिता के साथ पुरुष के समानांतर तमाम संवैधानिक एवं सामाजिक अनुकूल परिवेश में कर्ता की भूमिका में आ गई है। हाशिये से सत्ता में आई स्त्री की भाषा का इतिहास स्वयं में प्रतिरोध के व्यापक सरोकार से समृद्ध है। अनामिका लिखती हैं – "सत्ता जिसके भी हाथ में होती है, जाहिर सी बात है कि सब्जेक्ट पोजीशन पर वही होगा, कर्ता वही होगा ; वक्ता वही होगा ; बाकि श्रोता होंगे और मूक दृष्टा।"(अनामिका 89-90) ऐसे में 21वीं सदी में महज 'पात्र' की भूमिका से 'कर्ता' की भूमिका में आई स्त्री, सत्ता की भाषा बोलने लग जाए तो इसमें आश्चर्य नहीं। इसमें क्रिया के अनुपात में प्रतिक्रिया एक जरूरी क्रिया का प्रस्थान बन जाती है। इस प्रस्थान से गंतव्य की यात्रा हर हाल में संघर्ष एवं प्रतिरोध ही रचती है। अनामिका का मंतव्य है – "यह बात अपनी जगह दुरुस्त है कि भाषा एक लीलाभूमि है, तो एक युद्धभूमि भी। अस्मिता की लड़ाई हो या अन्य मनोसामाजिक संघर्ष उसकी सबसे महीन और सार्थक अनुगूंजे भाषा में ही दर्ज होती है।" (अनामिका 23) भाषा चमत्कार पैदा करती है, तो प्रतिरोध का माध्यम भी है। संघर्ष को बारीकी से भाषा में ही दर्ज किया जाता है। ऐसे में भाषा अपने आप में प्रतिरोध को व्यक्त करने का माध्यम बन जाती है। स्त्री-प्रतिरोध की बात करें, तो स्त्री का संघर्ष व उसकी भाषा परस्पर संबंधित है। जगदीश्वर चतुर्वेदी लिखते हैं – "स्त्री के हितों की लड़ाई का स्त्री-भाषा के निर्माण की प्रक्रिया से गहरा संबंध है। स्त्री हितों की रक्षा एवं विस्तार की कोशिश जितनी तेज होगी, स्त्री-भाषा के निर्माण की संभावनाएं उतनी ही प्रबल होगी। स्त्री संघर्ष के बगैर स्त्री-भाषा संभव नहीं है। उसी तरह स्त्री की भाषा के बगैर स्त्री के संघर्ष को सही दिशा देना भी संभव नहीं है।" (चतुर्वेदी 278) 'पात्र' से 'सत्ता' में आई अ स्त्री की भाषा उनके संघर्ष के विविध संदर्भों में प्रतिरोध को मुकम्मल स्वरूप प्रदान करती है। साथ ही भाषा के विविध तत्त्वों प्रतीक, बिम्ब व मिथक आदि के साथ प्रतिरोध की गति को समृद्ध बनाती है। अत: प्रतिरोध की दिशा में स्त्री-भाषा का अध्ययन एक अनिवार्य चरण बन जाता है और इसी पृष्ठभूमि में स्त्री-भाषा में निहित प्रतिरोध के दो आयाम निर्धारित किए जा सकते हैं। भाषा के वैशिष्ट्य को स्वभावगत एवं संरचनागत दो संदर्भों में देखा जा सकता है। स्वभावगत वैशिष्ट्य संदर्भ सापेक्ष है, तो वहीं संरचनागत वैशिष्ट्य भाषा के विविध अवयवों से समृद्ध है। इन दोनों संदर्भों में 21वीं सदी में स्त्री-प्रतिरोध की भाषा का मूल्यांकन इस अध्याय का अभीष्ट है।

6.1. भाषा का अर्थ –

भाषा को परिभाषित करते हुए कामता प्रसाद गुरु लिखते हैं — "भाषा वह साधन है, जिसके द्वारा मनुष्य अपने विचारों को दूसरे पर भली-भांति प्रकट कर सकता है और दूसरों के विचार स्पष्टता को ग्रहण करने

में सक्षम हो सकता है।"(गुरू 19) कामता प्रसाद गुरु की परिभाषा से स्पष्ट है कि विचारों के स्पष्टीकरण के लिए भाषा की जरूरत आन पड़ी। भाषा दो रूपों में हमारे सामने आई — मौखिक और लिखित। विकीपीडिया के अनुसार — "भाषा मुख से उच्चारित होने वाले शब्द और वाक्यों आदि का वह समूह है, जिसके द्वारा मन की बात बताई जाती है।"(भाषा) भाषा मन की बातों के स्पष्टीकरण का माध्यम मात्र नहीं है, बल्कि इसे और अधिक स्पष्ट करते हुए डॉo भोलानाथ तिवारी लिखते हैं — "भाषा,उच्चारण-अवयवों से उच्चरित,यादृच्छिक (arbitrary) ध्वनि-प्रतीकों की वह व्यवस्था है जिसके द्वरा समाज-विशेष के लोग आपस मे विचारों का आदान-प्रदान करते हैं।"(तिवारी,04) अत: भाषा में अभिव्यक्ति के साथ अस्मिता का मामला भी जुड़ा हुआ है। मैनेजर पांडेय लिखते हैं — "कथा कहने की कला का, कथा कहने वाले या कथा कहने वाली की चेतना से गहरा संबंध होता है। कथा कहने की ढंग में सोचने का ढंग भी निहित होता है।"(पांडेय 250) यानी भाषा में हमारी अस्मिता झलकती है। जब स्त्री-भाषा की बात आती है, तो स्त्री-भाषा भी स्त्री-अस्मिता को अभिव्यक्त करता है। डॉo सुनील कुमार यादव व सूरज कुमार लिखते हैं — "जब स्त्री कुछ कहती है, तो वह अपनी पहचान निर्मित करती है और जब लिखती है, तो अपनी अस्मिता का पुनर्निर्माण करती है। जब स्त्री की अनुभूति स्त्री-भाषा में संप्रेषित होगी, तो इससे स्त्री-अस्मिता का निर्माण होगा।"(यादव और कुमार 252) अस्मिता, प्रतिरोध की दिशा में पहला चरण है, इसलिए भाषा में प्रतिरोध की पड़ताल अनिवार्य हो जाती है।

6.2. स्त्री-भाषा की अवधारणा —

स्त्री-भाषा में प्रतिरोध की पड़ताल के पहले यह समझना जरूरी है कि स्त्री-भाषा किसे कहेंगे। सुधा सिंह स्त्री-साहित्य को स्पष्ट करते हुए लिखती हैं — "स्त्री साहित्य से तात्पर्य है स्त्रियों का लिखा साहित्य। स्त्री साहित्य का मूलाधार है स्त्री की अनुभूति। इसके अलावा एक कोटि स्त्रीवादी साहित्य की भी प्रचलन में है। इसमें वह साहित्य शामिल किया जा सकता है, जो स्त्री के सवालों पर लिखा गया हो अथवा अन्य किसी भी विषय पर स्त्री दृष्टिकोण से लिखा गया हो। इसमें स्त्री और पुरुष दोनों का लिखा साहित्य शामिल है।" (सिंह 93) अत: लेखिकाओं द्वारा अपने या अन्य किसी भी मुद्दे पर लिखा गया साहित्य स्त्री साहित्य है, साथ ही पुरुषों द्वारा स्त्री मुद्दे पर जो साहित्य लिखा गया है, वह स्त्रीवादी साहित्य है। स्त्रीवादी साहित्यालोचना को स्पष्ट करते हुए वह आगे लिखती हैं – "स्त्रीवादी साहित्यालोचना का अर्थ है, स्त्री के साहित्य और स्त्री पर लिखे गए पुरुष के स्त्री विषयक केंद्रीय साहित्य के मूल्यांकन का नजरियाँ।"(सिंह 94) ऐसे में स्त्री-प्रतिरोध के तीन हैं — १. स्त्री द्वारा अपने मुद्दे को लेकर किया गया प्रतिरोध। २. स्त्री द्वारा अपने मुद्दे से इतर अन्य मुद्दे पर किया प्रतिरोध। ३. पुरुष द्वारा स्त्री संबंधी मुद्दों पर किया गया प्रतिरोध। इन आयामों में भाषाई संदर्भ के समग्र मूल्यांकन की दृष्टि से स्त्री-भाषा भी अपने सीमित संदर्भ से आगे तीन आयामों में प्रस्तुत होती है। स्त्री-भाषा का तात्पर्य स्त्री द्वारा अपने या अन्य किसी भी मुद्दे पर लिखा गया उनके लेखन की भाषा तथा लेखकों द्वारा उनकी रचना में स्त्री पात्र द्वारा

प्रयुक्त भाषा है। सुजाता ने अपनी पुस्तक 'आलोचना का स्त्री पक्ष' में फ्रांसीसी स्त्रीवाद का उल्लेख करते हुए लिखा हैं — "फ्रांसीसी स्त्रीवाद मानता है कि स्त्री की तरह भी लिखा जा सकता है और पुरुष की तरह भी। स्त्रैण लेखन के लिए स्त्री होना जरूरी नहीं है।" (सुजाता 74) अतः स्त्री संदर्भ को व्यक्त करती भाषा फिर चाहे वह लेखिकाओं द्वारा हो या लेखकों द्वारा, स्त्री-भाषा है।

स्त्री-भाषा के संबंध में विभिन्न विचार व्यक्त किए गए हैं —

स्त्री-भाषा के संदर्भ में सुनील कुमार यादव और सूरज कुमार अनामिका के विचार का उल्लेख करते हैं — "भाषा स्त्री का एकमात्र घर होता है, सर के ऊपर की एकमात्र छत। जहां से धक्के मारकर निकालना किसी की भी खातिर संभव नहीं।" (कुमार 252) स्पष्ट है कि भाषा रचती हुई स्त्री स्वयं को रच रही होती है। लेखन का सारा दारोमदार भाषा से जुड़ा हुआ है और जिस तरह की भाषा स्त्री संदर्भ में आकार ले रही है, वो स्त्री की मौलिक उपलब्धि के समान है। इस उपलब्धि का दिशा बोध प्रभा खेतान के मन्तव्य में अवलोकनीय है — "अतीत में स्त्री ने विरोध की भाषा नहीं सीखी थी। पर आज की स्त्री सही प्रतिरोध की भाषा समझती है।"(खेतान 111) आज स्त्री की भाषा में हिचकिचाहट नहीं है, अपनी बात को साफ, स्पष्ट कहने का सामर्थ्य है, जिस कारण उसका प्रतिरोध भी आज व्यापक रूप में नजर आ रहा है।

6.3. भाषाई प्रतिरोध के संदर्भगत आयाम — स्त्री-प्रतिरोध के जो विविध संदर्भ रहे, यौनिक मामला हो, राजनीतिक संदर्भ हो, घरेलू महिला कामगार व सभ्यता संघर्ष का संदर्भ, इन संदर्भों में जब एक स्त्री सत्ता में आ रही है, तो उसकी भाषा विविध संदर्भ में प्रतिरोध को कैसे दर्ज कर रही है? स्त्री-भाषा, पात्रानुकूल, प्रसंगानुकूल, प्रतीक व मिथकीय संदर्भ से परिपूर्ण प्रतिरोध को दर्ज करने में किस प्रकार समर्थ हो रही है? यह विचारणीय है। इसे प्रतिरोध के संदर्भगत आयाम के अंतर्गत देख सकते हैं।

6.3.1. भाषाई प्रतिरोध का दैहिक संदर्भ —

भाषा का प्रमुख काम संप्रेषित करना है। 21वीं सदी के कथा साहित्य की भाषा की बात करें, तो यौनिक अभिव्यक्ति व विकृति दोनों ही स्त्री-भाषा के द्वारा पात्रानुकूल, प्रसंगानुकूल स्त्री-प्रतिरोध का विषय बनी है। भाषा द्वारा प्रतिरोध का जो पहला प्रसंग यौनिक संदर्भ में बन पड़ता है, वह प्रेमरहित पुरुषों के कामाचरण का प्रतीकात्मक भाषा द्वारा प्रतिरोध है। वैवाहिक जीवन में सदियों से स्त्रियाँ चुप्पी के साथ इस स्थिति को सहती आई हैं, लेकिन 21वीं सदी में कथा में अभिव्यक्त होती उनकी भाषा सदियों की पीड़ा और उसमें निहित प्रतिरोध को तीव्र बना रही है। यादवेंद्र शर्मा 'चंद्र' की कहानी 'पिछला दरवाजा' में कथानायिका द्वारा पति के यौनाचार के विरुद्ध इस्तेमाल की गई भाषा में भाषा के 'संदर्भगत प्रतिरोध' को देखा जा सकता है। जहां पत्नी, पति के प्रेमरहित दैहिक आचरण के प्रतिरोध को दर्ज करने के लिए 'कच्चे मांस को नोचने वाला गिद्ध', 'मरी हुई मछली

का ग्राहक', 'वूमेन ईटर', 'भूखे कुत्ते', 'कीचड़ में सना कुत्ता', 'जानवर' जैसे आक्रामक संबोधन करती है और यह भाषा अपने आप में प्रतिरोध की तीव्रता को जता दे रही है — "यह आदमी मेरा पति नहीं, एक गिद्ध है, कच्चे मांस को नोचने वाला गिद्ध।...वह पति नहीं, एक मरी हुई मछली का ग्राहक है। वूमेन ईटर है।" (चंद्र 122-123) इसी प्रकार अनामिका का उपन्यास 'तिनका-तिनके पास' में अवंतिका का पति के लिए प्रयोग किया गया सम्बोधन पूरे पुरुष वर्ग के कामाचरण के प्रति प्रतिरोधात्मक नजर आता है। अवंतिका कहती है — "दस भेड़िए के साथ रहने से अच्छा है एक के साथ रहा जाए।"(अनामिका 59) यह 'भेड़िया' शब्द अपने आप में भाषा के माध्यम से पूरे पुरुष वर्ग के कामाचरण की पोल खोल रहा है। 'गिद्ध' का आचरण कच्चा मांस खाने वाला होता है, 'भेड़िए' का आचरण नोच-खचोट वाला होता है, इसी रूप में पुरुष समाज को इन्हीं यौनिक हिंसा के आचरण से विकृत पाया गया है और इस आचरण का प्रतिरोध भाषा के माध्यम से दर्ज हुआ है। जयश्री राय की कहानी 'एक रात' में पति की जगह 'जानवर' शब्द का प्रयोग, 'ताप' कहानी में शालू का अपने पिता का अपनी पत्नी के प्रति कामुक आचरण को देखते हुए 'भेड़िया' कहना, "भाग जाइए यहां से, भेड़िए — जा चला जा बाजार में।" (गीताश्री 89) जैसे वाक्य स्त्री के प्रति पुरुष के कामुक आचरण के प्रति वितृष्णा और प्रतिरोध को मजबूती के साथ दर्ज करती है।

प्रेम-काम के मामले में स्त्री का कर्ता रूप प्रतिक्रियावादी है, फलतः भाषा भी प्रतिक्रिया स्वरूप कहीं-कहीं प्रतिकार तक ही सीमित नजर आ रही है। जयश्री राय का उपन्यास 'औरत जो नदी है' में दामिनी, अशेष से कहती हैं — "अगर तुम जैसे मर्द घाघरा पलटन बना सकते हैं, तो हम औरतें पतलून पलटन क्यों नहीं।"(राय 125) 'घाघरा पलटन' की प्रतिक्रिया में 'पतलून पलटन' प्रतिक्रियावादी भाषा व उसकी अर्थवहन की क्षमता का सीधा-सीधा प्रमाण है। जयश्री राय 'पतलून पलटन' जैसे नए मुहावरे रच रही हैं, जो भले प्रतिक्रियावादी है, पर प्रतिरोध की दिशा में संदर्भानुसार भावों को अभिव्यक्ति करने की क्षमता से परिपूर्ण है।

21वीं सदी में पुरुष के विरोध में पुरुष जैसी भाषा का प्रयोग स्त्रियाँ भी बेहिचक करने लगी हैं। इसके पीछे के मनोवैज्ञानिक कारण की पड़ताल करते हुए सुजाता लिखती हैं — "यह एकदम संभव है कि लंबी दासता से एक उत्पीड़ित अस्मिता के पास भी वही भाषा आ जाए जो उत्पीड़क की भाषा है, या उसे लगे कि उसी भाषा में बात करने से उसे सुना जाएगा ; यहीं स्त्रीवाद या कोई भी विचारधारा मदद करती है, ताकि स्थापित अर्थों को चुनौती दी जा सके, उनमें बदलाव किया जा सके, संशोधन किया जा सके, उन्हें धो-पोंछकर, धूप में सुखाकर, रंग-रोगन करके, फिर से सजाकर अपने इस्तेमाल के लायक बनाया जा सके।" (सुजाता 82) पुरुष भाषा द्वारा स्त्री जीवन में जिस तरह के अवरोध की सृष्टि की गई, उसी भाषा को प्रतिरोध का आधार बना लेना एक सहज स्वाभाविक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया रही या यूँ कहे कि शोषण के हथियार को ही प्रतिरोध का हथियार बना लिया गया है। 21वीं सदी के साहित्य में स्त्री द्वारा पुरुष भाषा का प्रयोग साफ परिलक्षित है, लेकिन इसका

दुष्परिणाम यह है कि ऐसे में प्रतिरोध, प्रतिशोध तक सीमित रह जाता है। विभा रानी की कहानी 'महुआ मदन रस टपके रे' में महुआ की जिस भाषा को विभा रानी ने रखा हैं, पुरुषों की भाषा का अनुकरण है। महुआ कहती है — "ही इज ए रास्कल। यस, यस। आई नीड वन…एनीवन!...आइ नीड ए टाइट फकिंग...! आई वांट टू बी फक्ड! नो आई वांट टू फक! वांट टू फक हिम!" (रानी 181) 'रास्कल','फकिंग','फक्ड','फक', मर्दवादी सोच के तहत शब्द है। जैविक संरचना के पार प्रतिक्रियास्वरूप मर्दवादी भाषा में मर्दाना आचरण का दावा ठोकना भी स्त्री-भाषा के बरक्स मर्दवादी भाषा को ही खाद-पानी दे रहा है।

अपनी भाषा को हथियार की तरह प्रयोग कर मर्द स्त्रियों की अस्मिता को तार-तार करते रहे हैं और वैसी ही भाषा को 21वीं सदी में स्त्री ने पलटवार का माध्यम बना लिया। रूपा सिंह की कहानी 'आई विल कॉल यू!' में राधिका मीनाक्षी से विवाह के संदर्भ में जीवनसाथी को लेकर कहती हैं — "सुन, पहले से ही देख ले, चख ले। जो संतुष्ट नहीं कर पाया, तो फिर तू कुछ नहीं कर सकती।"(सिंह 242) 'चख लेना' स्त्री के संदर्भ में प्रयोग होते आया 'मर्दवादी' शब्द है, जिसका प्रयोग अब स्त्री अपने प्रतिरोध को दर्ज करते हुए कर रही हैं। गीताश्री अपनी कहानी 'गोरिल्ला प्यार' में नायिका अर्पिता के मुख से कहलवाती है — "सालो, फट गई क्या? तुम औरतों को ढूंढो...जाल फेंको तो ठीक और अगर कोई औरत वही करे, तो जोक लगता है। मछली की तरह फंसने वाली औरतें चाहिए, शेरदिल औरत नहीं।" (गीतश्री 63) 'फट गई क्या', 'जाल फेंको', 'मछली की तरह फंसने वाली औरत' पुरुष की भाषा है। अत: इनसे वही मर्दवादी सोच झलकती है, जिसका प्रयोग पुरुष सदियों से कर रहे हैं, अब उनका प्रयोग स्त्रियों के लिए भी आम हो गया है।

स्त्री के प्रति पुरुष का कामुक नजरिया हर युग का सत्य रहा है। ऐसे कामुक नजरिए का प्रतिरोध स्त्रियाँ प्रत्यक्षत: न करके कहानी के पात्रों के संवाद-संकेत के माध्यम से व्यक्त करती आ रही है। गीताश्री अपनी कहानी 'दो पन्ने की औरत' में असावारी के संदर्भ में उसके बॉस के कथन का उल्लेख करती हैं — "बॉस ने अपनी हथेली उसकी जांघों पर फेरी "एक ऑफिशियल टूर बन रहा है हैदराबाद का, तुमको भेजना चाह रहा हूं जाओगी?" (गीताश्री 79) यह वाक्य अपने आप में कार्यक्षेत्र में स्त्री के प्रति दैहिक नजरिए को अभिव्यक्त करने में समर्थ है। असावारी के संदर्भ में गीताश्री का लिखना — "इस इनकार के बाद वह कई दिनों तक ऑफिस में बॉस की उपेक्षा झेलती रही। मगर वह खुश थी कि उसकी जांघे सही सलामत थी।"(गीताश्री 79) 'जांघे सही सलामत थी' भाषा उसकी अपनी इज्जत के बचे रहने का प्रतीक है।

बीसवीं सदी में यौनिक अभिव्यक्ति को लेकर स्त्री की जो भाषा रची गई, वह पर्दे में, प्रतीकात्मक रूप में थी। कृष्णा सोबती के उपन्यास 'मित्रो मरजानी' में मित्रो अपनी यौनिक इच्छा को व्यक्त करने के लिए मछली के प्रतीक का प्रयोग करती हैं। मित्रो कहती है — "देवर तुम्हारा मेरा रोग नहीं पहचानता।...और मेरी इस देह में इतनी प्यास कि मछली-सी-तड़पती हूँ।" (सोबती 30) वहीं, 21वीं सदी में संदर्भ अनुसार सहज, स्वाभाविक

अभिव्यक्ति पात्रों के माध्यम से मिल रही है। विभा रानी की कहानी 'महुआ मदन रस टपके रे' में पात्र महुआ कहती हैं — "यस। आई लाइक पोर्न!... जब मैं मार्क्स, धूमिल, गोरख पांडे, राजेंद्र यादव, देवदत्त पटनायक को पढ़ती हूं,…चक दे इंडिया, थ्री ईडियट्स देखती हूं, एट द सेम टाइम मेरी इच्छा होती है पोर्न पढ़ने की, ब्लू फिल्म देखने की। गलत क्या है इसमें? बोलो?"(रानी 176) व्यंजना और लक्षणा से सीधे-सीधे स्त्री-भाषा अविधा में आ गई है। यौनिक संदर्भ में पुरुष के आक्रामक रवैये की प्रतिक्रिया में स्त्री भी आक्रमक होती है, तब पलटवार के दौरान पुरुष भाषा के चालू रूप का प्रयोग धरल्ले से करती है। अस्मिता और सत्ता को प्राप्त स्त्रियों की भाषाई प्रतिक्रिया तत्क्षण प्रतिरोध का परिवेश रच रही है, जो स्त्री लेखन के लिए सुखद अनुभव का विषय है।

स्त्रियों के उपेक्षित रहने की बात से सभी परिचित हैं, लेकिन उसकी भाषा के पैमाने को भी हमेशा हाशिये पर रखा गया। अनामिका लिखती हैं — "हाशिये पर रहने वालों की भाषा हमेशा जीवंत, रंग-रंगीली और ठस्सेदार होती है। पता नहीं किन स्रोतों से, क्षतिपूर्ति के सिद्धांत के अनुकूल उनकी भाषा में एक अलग तरह की रवानी, तेजस्विता और अनुगूंज खचाखच समा जाती हैं। इसका सबसे स्पष्ट प्रमाण स्त्रियों की भाषा है।" (अनामिका 36) 'कुच्ची का कानून' में हाशिये की स्त्री कुच्ची की भाषा अपनी कोख और बच्चे के तर्क को लेकर जिस रूप में सामने आती है, ठस्सेदार भाषा का प्रमाण है। पंचायत के बार-बार दवाब डालने पर कि वो बच्चे के पिता का नाम बता दे, कुच्ची खेत और बीज का उदाहरण देते रहती है और अनंत: यही कहती है कि उसने गुप्तदान लिया है — "फसल पर पहला हक किसका है? खेत का कि बीज का?" (शिवमूर्ति) यहाँ खेत से फसल का नाता, फसल की खेत से बनने वाली पहचान को सुनिश्चित करता है। स्त्री गर्भ के प्रति पितृसत्तात्मक सोच को लेकर युक्तिसंगत प्रतिरोध को प्रतीकों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। इसका प्रतिकार्थ यह है कि यदि स्त्री के गर्भ में संतान है, तो वह स्त्री की है। किसी पुरुष के साये में उसकी पहचान को तलाशना उचित नहीं है। इस दिशा में 'खेत' और 'फसल' के प्रतीक सार्थक बनने के साथ-साथ प्रतिरोध को तीव्र बना रहे हैं।

6.3.2. राजनीतिक संदर्भ में प्रतिरोध की भाषा –

स्त्री-राजनीति के परिप्रेक्ष्य में प्रयुक्त भाषा स्त्री-राजनीति की यथास्थिति पर प्रकाश डालती हैं। 21वीं सदी के हिंदी कथा साहित्य की भाषा बतलाती है कि स्त्री की राजनीतिक उपयोगिता उसकी अस्मिता के विरुद्ध है। भाषा के माध्यम से स्त्री के प्रति राजनीति में पुरुष राजनेता के लोलूप आचरण का प्रतिरोध लेखिकाओं ने दर्ज किया है। रजनी गुप्त का उपन्यास 'ये आम रास्ता नहीं' में प्रदेश अध्यक्ष 'मृदु' से राजनीति में स्त्री की स्थिति को लेकर कहते हैं — "… जंगली घासफूस के बीच खिले गूलर के फूल की तरह खिलती है राजनीति में आई औरतें, जिसे हर कोई लपककर अपने मुंह में गपक लेना चाहता है।" (गुप्त 11) राजनीति की तरफ कदम बढ़ाने वाली औरतों को किस कदर नींबू की तरह निचोड़ कर परे फेंक दिया जाता है, इसका उल्लेख करते हुए वो आगे लिखती हैं — " ये औकात है राजनीति की तरफ कदम बढ़ाने वाली औरतों की। किस कदर उन्हें नीबू

की तरह निचोड़कर परे फेंक दिया जाता है...कितनी बेरहमी से इस्तेमाल करते हैं ये नेता लोग उसका। "(गुप्त 11) 'जंगली घासफूस के बीच गूलर के फूल की तरह खिलना', 'नींबू की तरह निचोड़े जाना ', 'लपक कर गपक लेना' भाषा पुरुष राजनेता का स्त्री के प्रति देह लोलुप नजरिए का मुकम्मल प्रतिरोध है। कथा साहित्य में मुखर होकर स्त्री, पुरुष राजनेता के दैहिक आचरण के विरोध में न तो खड़ी हो रही है, न ही आंदोलन चला रही है और न कानूनी प्रक्रिया में जा रही है, लेकिन 'गूलर का फूल', 'नींबू की तरह निचोड़ना' प्रतीकात्मक भाषा अपने आप राजनेता के दैहिक कामुक आचरण का प्रतिरोध कर रहा है।

प्रतीक ही नहीं राजनीतिक विद्रूपता को व्यक्त करने के लिए मिथकीय संदर्भों का भी प्रयोग किया गया है। किरण सिंह अपनी कहानी 'यीशू की कीलें' में भारती का राजनीति में हुए देह-शोषण को यीशू के शरीर पर ठोकी गई कील से तुलना कर, मिथकीय संदर्भ द्वारा देह-शोषण की निर्ममता को उभारती हैं। भारती कहती है – – "मेरे लिए आदमी का मरदा अंग, यीशू के बदन पर ठोकी गई कीलों की तरह प्राणहतक थी।"(सिंह 132) निर्ममता के चरम को दिखाने के लिए किरण सिंह ने जिस भाषा का प्रयोग किया है, वह अपने आप में स्त्री के प्रति राजनीतिक विद्रूपता की पोल खोलने में समर्थ है — "बाइस साल की उम्र तक मुझे शरीर के हर छेद से इतना सफेद पानी पिलाया गया कि मेरा खून सफेद हो गया।" (सिंह १३२) स्त्री देह के संदर्भ में, लेखिका द्वारा अपनी पात्र से 'मर्दा अंग' को 'यीशू की कीलें' कहलाना सिर्फ कष्ट का ही सूचक नहीं है, बल्कि पुरुष के यौनाचार के निर्ममता का भी सूचक है। दूसरी ओर, 'सफेद पानी' महज यौनाचार के दौरान पुरुषों की यौन तृप्ति का ही अर्थ संवहन नहीं करता, बल्कि 'हर छेद' के संदर्भ में स्त्री के प्रति वस्तुकरण और इस वस्तुकरण की प्रक्रिया में पुरुष के अमानवीय आचरण को ही अभिव्यक्ति मिली है। यह सब कुछ जितना सृजनात्मक है, उतना ही सार्थक भी। यहाँ प्रयुक्त शब्द गहरी अर्थ व्यंजना के कारण स्त्री-भाषा में प्रतिरोध को गहरा और व्यापक बनाते है।

भाषा पात्र और उसके व्यक्तित्व की अर्थवत्ता की पहचान कराती हैं। पात्र के अनुसार अगर भाषा न गढ़ी जाए, तो प्रतिरोध विश्वसनीय नहीं हो पाता है। 21वीं सदी में राजनीति में प्रयुक्त भाषा प्रतिरोध की दिशा में पात्रानुसार है और उससे राजनीति की विसंगतियों का पता चलता है। नीलिमा सिन्हा की कहानी 'तैंतीस परसेंट' में भगवानो देवी कहती है — "अब जब से जिलाधेअच्छ हुए ई मीटिंग सेटिंग के फेर में एक दिन के मजूरी तेलहंडा में चल गया…हम तो लाख मना किए रहे कि हमको इ सब में मति डालो, बाकिर महेन्दर बाबू सुनीस नहीं। कहीस कि महिला आरच्छन का कोटा है दलित के नाम पर चुनाव हो जाएगा। हमरा बेटवो कहिस कि माय रे! हां कई दे! बड़ पद है, महेन्दर बाबू के किरिपा से मिल जाएगा… पईसा-रोपेया इहां किसको ना सोहाता है... से ही उ कहिस कि माय रे, ओइसने कर जाइसन महेन्दर बाबू कहता है अब हमहू का करते। बाल-बच्चा के खातिर तो दुनिया मरता है। सोचे कि चल भाई…" (सिन्हा 52) भगवानो देवी की इस भाषा मात्र से पता

चलता है कि महिला आरक्षण की क्या दुर्गति हो रही है, जो काबिल नहीं है, उन्हें भी लाया जा रहा है और दूसरी बात अस्मिता का स्त्री संदर्भ कैसे मखौल का विषय बन जाता है, इसके लिए नीलिमा सिन्हा ने सार्थक भाषा गढ़ी है।

प्रतिरोध की भाषा भी चरित्र के अनुसार उभर रही है। किरण सिंह की कहानी 'यीशू की कीलें' में भारती भी कहती है — "हम तो लंठ औरत है दुबे जी! टोटल! औरतन के मुंह से पानी की नाइं गाली निकले तो लोग मुंह बा के सुनते हैं। हां, तो विरोधी पार्टी की एम० सी०...बी० सी० करनी हो, आप के नेता के जन्मदिन पर, लग जाए तोहे उमर हमारी हो राज्जा अबकी पहिया की बारी, टाइप के गाने पर नाभि में नथनी पहन के आइटम डांस देना हो या कि अस्पताल में किसी कार्यकर्ता के बाप की टट्टी पेशाब धोनी हो...चाहे किसी के लिए अपना एकाध बोतल खून चढ़वाना हो… सौ काम को एक नाम…भारती कलारिन।" (सिंह १-२) 'एम-सी', 'बी-सी' जैसी गालियां, मर्दवादी भाषा को स्त्री-चरित्र द्वारा कहलाकर, मर्दवादी भाषा का इस्तेमाल स्त्री द्वारा राजनीति में पुरुषई आचरण को धारण करने की फैशनपरस्त मानसिकता का अर्थपूर्ण प्रतिरोध रचा गया है। सुनील कुमार यादव और सूरज कुमार लिखते हैं — "एक की स्त्री कुछ कहती है, तो वह अपनी पहचान निर्मित करती है और जब लिखती है तो अपनी अस्मिता का पुनर्निर्माण करती है। यहाँ यह देखना भी आवश्यक है कि कहते लिखते समय स्त्री किस भाषा को अपना माध्यम बनाती है, पुरुष-भाषा को या अपनी स्त्री-भाषा को?" (कुमार 252)

स्त्री नेता हो या पुरुष उसके आचरण में कहीं अंतर नजर नहीं आता है। स्त्री का सत्ता में आते ही उसके व्यक्तित्व के त्याग, समर्पण, करुणा जैसे स्त्री सुलभ गुण से व्यवस्था में परिवर्तन की उम्मीद रहती हैं, उसकी जगह हताशा, निराशा ही मिलती है। ऐसी मन: स्थिति को सूचित करने के लिए किरण सिंह सूक्ति वाक्य लिखती हैं। जहां वोटर, वोट मांगने आई महिला नेता को देखकर कहता है — "हैं, तो आप लोग भी नेता ही ना।"(सिंह 11) यह एक वाक्य अपने आप में स्त्री राजनीति, पुरुष राजनीति से किसी भी स्तर पर भिन्न नहीं है, इसे अभिव्यक्त करने की मारक क्षमता रखता है। किरण सिंह नेता को देखकर वोटरों की उनकी मानसिकता पर लिखती हैं — "नेता कोई थुकहा गाली हो, वह बोला"(सिंह 114) 'थुकवा गाली' शब्द का प्रयोग नेता के लिए चाहे वो स्त्री हो या पुरुष। राजनेता के प्रति वोटर की मानसिकता को उजागर करती है और राजनेता के भ्रष्ट आचरण का प्रतिरोध रचती भाषा है।

6.3.3. भाषा का घरेलू महिला कामगार संदर्भ –

घरेलू महिला कामगार के संदर्भ में उनके प्रतिरोध को दर्ज करने के लिए प्रतिरोध की भाषा कहीं मौन है, तो कहीं मुखर। कामवाली शानो की मां का शानो को हिदायत देना — "मालक लोग बहुत कमीने होते हैं, उनका कोई भरोसा नहीं।" (वैद 9) जैसे वाक्य अपने आप में मालिक सदस्य के दैहिक आचरण का प्रत्यक्ष

विरोध नहीं है, परंतु 'कमीने' जैसे शब्द अपने निहितार्थ में कामवालियों के प्रति पूरे मालिक वर्ग के दैहिक आचरण का प्रतिरोध दर्ज करता है। कामगार के प्रति संवेदना को जगाने और मालिक वर्ग के दैहिक आचरण के प्रति यह शब्द प्रतिरोध को दर्ज करने में सामर्थ्यवान है।

कोई भी स्त्री स्वयं को घूरा जाना या टटोला जाना पसंद नहीं करती है, चाहे वो घरेलू महिला कामगार ही क्यों न हो। कामवाली के प्रति परिवार के पुरुष सदस्य के दैहिक आचरण का प्रतिरोध 21वीं सदी के साहित्य की भाषा में इतना मुखर है, जो सोचने पर बाध्य करती हैं। 'एक नौकरानी की डायरी' में सिंक पर बर्तन धोते समय मालिक सदस्य द्वारा शानो से सटकर दैहिक सुख लेने पर वो कहती है — "मैंने भी सोचा कि साब को अगर इससे सुख मिलता है तो मेरा क्या जाता है? मैं चुपचाप बर्तन मलती रही।" (वैद १४) यहाँ भाषा में प्रत्यक्ष विरोध नहीं होकर भी सामने वाले की पोल पट्टी पूरी तरह खुल रही है।

भाषा द्वारा संबोधन और संबोधन के माध्यम से भी कामवाली अपना प्रतिरोध दर्ज कर रही है। मालकिन सदस्यों के आचरण के प्रति खिन्नता को संबोधन के द्वारा दर्ज करते हुए शानो कहती है — "किसी को मोटी, किसी को बंगालीन, किसी को डॉक्टरनी, किसी को अखबार वाला साब। बिल्लू की दादी को मिसेज वर्मा क्यों कहती हूं, उसे भी चाहूं, तो कोई और नाम दे सकती हूं। जैसे गोरी या सफाई पसंद।" (वैद २८) आचरण के अनुसार नाम देना, भाषिक दृष्टि में अपना रूप ग्रहण कर अपना प्रतिरोध दर्ज करना है। प्रतिरोध के लिए अस्मिता एक अनिवार्य चरण है। 21वीं सदी में कामगारों की अस्मिता को दर्ज करती भाषा भी नजर आ रही है। 'रोशनी के अच्छे दिन' में कामवाली रोशनी कहती हैं — "मैं तो एक अक्षर नहीं पढ़ी, फिर भी अपने पांव पर खड़ी हूं। कहती हुई दरवाजा खोलकर बाहर निकल गई।" (शर्मा 129)

कामगारों के सपने कैसे उनके दिमाग में तुरन्त डाउनलोड होते जाते हैं, पर उन सपनों को साकार करते-करते पूरी जिंदगी बीत जाती है। इसे भाषा में प्रतीकात्मक रूप से गीताश्री ने अपनी कहानी 'डाउनलोड होते हैं सपने' में व्यक्त किया। कामवाली सुमित्रा कहती हैं — "खोड़ा कॉलोनी में पैदा ना होकर हाईवे के पार जो फ्लैट्स की आलीशान दुनिया है, वहां पैदा हुई होती तो आज वह भी 'कुछ कुछ होता है' वाली अंजली जैसी होती!" (गीताश्री 1) 'कुछ कुछ होता है' की 'अंजली जैसे' होने की भाषा का प्रयोग अपने आप में कामवालियों का अपनी स्थिति से ऊपर उठकर अमीर बनने की चाहत को दर्शा रही है, अपनी स्थिति के प्रति प्रतिरोध को दर्ज कर रहा है। 'डाउनलोड' शब्द मशीनी युग की देन है। किसी के जीवन को अपना जीवन लक्ष्य बनाने को दर्शा रहा है। एक तरह से अन्य की जीवन शैली को तमाम समृद्धि के साथ अपना लक्ष्य बना लेना सच्चे अर्थ में 'डाउनलोड' ही है, लेकिन यही 'डाउनलोड' जीवनशैली घरेलू महिला कामगारों के तमाम संघर्षों के विरुद्ध जरूरी प्रतिरोध का प्रस्थान है। डॉ० अजय कुमार साव अपनी पुस्तक 'प्रतिरोध के प्रतिमान : घरेलू महिला कामगार' में लिखते हैं — "प्रतिरोध वर्चस्व एवं उत्पीड़न के विरुद्ध आक्रामक आचरण ही नहीं, इससे कहीं

अधिक अपनी असहमति, मौन-मूक आचरण, निजी 'संघर्ष-स्वप्न-संकल्प' में बिना किसी शोर के अत्यंत ही सार्थक संसार लिए हुए है।" (साव 5) यहाँ घरेलू महिला कामगार का आचरण भी मौन मूक होते हुए प्रतिरोधी हो उठाया है। इनका संघर्ष अपनी स्थिति में सुधार के लिए घरों में कामवाली का काम पकड़ने से शुरू होता है। जिन घरों में वो काम करती है, उन घरों की समृद्धि देख वैसे जीवन को जी पाने का स्वप्न और उस तरह के जीवन को प्राप्त न कर पाने की स्थिति में संघर्ष गहराता रहता है।

6.3.4. प्रतिरोध की भाषा में सभ्यता का संकट —

आज सभ्यता के स्थल पर हम संकट से गुजर रहे हैं। उसे अभिव्यक्त करने के लिए स्त्रियों ने भी भाषाई प्रयोग किया है। बिगड़ते संबंधों के विरोध में आज रचनाकार खड़ी है, तो उसका आधार भी संबंधों के लिए प्रयुक्त भाषा ही है। मां-बाप और बच्चों के बीच खत्म होती ऊष्मा को दर्शाने के लिए मधु कांकरिया अपना उपन्यास 'पत्ताखोर' में ऐसी सूक्ति वाक्य लिखती है, जो अपने आप में संबंध की उष्माहीनता को दर्शाता है। 'पत्ताखोर' का आदित्य सोचता है — "मेरे और माँ के दरम्यान भी 'मे आई कम इन मैडम' वाला माहौल था।" (कांकरिया 10) अंग्रेजी के 'मे आई कम इन मैडम' पदबंध का प्रयोग संबंध में औपचारिकता को दर्शा रहा है। ये एक पदबंध अपने आप में माँ और बच्चे के बीच में पनप रही रिश्ते की औपचारिकता को अभिव्यक्त कर रहा है।

प्रतिस्पर्धा केंद्रित समाज में अकेलेपन के दंश को दर्शाने के लिए भाषा में प्रतीक का बड़ा ही सुंदर प्रयोग हुआ है। 'दौड़' उपन्यास में ममता कालिया लिखती हैं — "वैसे भी यह सीनियर सिटीजन कॉलोनी बनती जा रही है। सबके बच्चे पढ़-लिख कर बाहर चले जा रहे हैं। हर घर में समझो एक बूढ़ा, एक बूढ़ी, एक कुत्ता, एक कार बस यह रह गया है।" (कालिया 40) 'कुत्ता', 'कार', 'बूढ़ा', 'बूढ़ी' जैसे शब्द अकेलेपन के चरम को दर्शा रहे हैं। 'सीनियर सिटीजन कॉलोनी' न केवल अंग्रेजी पदबंध है, बल्कि स्वयं के विकास के नाम पर संबंधों के विनाश के विरुद्ध प्रतिरोधी आयाम को भी लिए हुए है।

कहानी 'लेडी बॉस' में कैरियरिस्ट नायिका जो कैरियर के लिए परिवार छोड़ती है, अंतत: उसी परिवार के लिए तड़पकर रह जाती है, उसके दंश को दिखाती हुई मधु कांकरिया लिखती हैं — "आज वक्त को काट नहीं पा रही है मैडम। इस कारण पहाड़ से फैला सूखा निरर्थक वक्त उनको काट रहा है।"(कांकरिया 46) सभ्यता के विकास का परिणाम है कि अकेलेपन के दंश में निरर्थक जीवन को व्यक्त करने के लिए यहाँ 'वक्त का उनको काटना' जैसे पदबंध वर्णित है।

सभ्यता के धरातल पर हम अर्थ-संस्कृति के गुलाम बन रहे हैं, भावशून्य हो रहे हैं, इसे स्त्री लेखन में भाषा के माध्यम से प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त किया गया है। 'दौड़' में पवन के मुंह से ममता कालिया कहलवाती हैं — "पापा मेरे लिए शहर महत्त्वपूर्ण नहीं है, कैरियर है। आप कलकत्ते को ही लीजिए। कहने को

महानगर है पर मार्केटिंग की दृष्टि से एकदम लद्दर।…मैं ऐसे शहर में रहना चाहता हूं जहां कल्चर हो ना हो, कंजूमर कल्चर जरूर हो। मुझे संस्कृति नहीं, उपभोक्ता संस्कृति चाहिए, तभी मैं कामयाब रहूंगा।"(कालिया 40) 'लद्दर' शब्द द्वारा कैरियरिस्ट युवा का अपने जन्मस्थान ही नहीं, निकटतम महानगर को भी अपर्याप्त समझना झलकता है और वह जिस 'कंजूमर कल्चर' को समर्थन देता है, स्वयं को उसका एक अनिवार्य हिस्सा बना लेता है। इसका प्रतिरोध ऐसे पदबंध की व्यंजना में स्वत: दर्ज हो जाता है। ऐसे शब्द का प्रयोग कर लेखिका पश्चिमी सभ्यता के कारण संकटग्रस्त भारतीय सभ्यता के चिंतनीय परिणाम को दिखा रही है।

सभ्यता का घिनौना पक्ष मानव की खरीद-बिक्री है। इसे दिखाने के लिए मारक भाषा का प्रयोग 21वीं सदी में लेखिकाओं ने किया है। 'गुलाम मंडी' में मानव तस्करी के संदर्भ में लेखिका निर्मला भुड़ारिया लिखती हैं — "यह औरत को उठाने का उन्हें बेचने का धंधा करने का ऑर्गेनाइज्ड क्राईम है…यह सरकारों की नाक के नीचे बैठकर मानव मांस बेच लेते हैं।" (भुडारिया 26) यहाँ मानव देह की जगह 'मानव मांस' जैसी भाषा का प्रयोग सभ्यता के व्यावसायिक विकास की नृशंसता का परिणाम है। जब कभी दैहिक शोषण की बात की जाती है, तो इसे मानवता के धरातल पर अनपेक्षित करार दिया जाता है, लेकिन जब 'मानव मांस' जैसे पदबंध का इस्तेमाल कर भाषा में प्रतिरोध खड़ा किया जाता है, तब संवेदनशून्य सभ्यता का ही परिचय नहीं मिलता, बल्कि हिंसक प्रवृत्ति से आगे बढ़ गई एक ऐसी सभ्यता से हमारा परिचय होता है, जिसे हिंसक कहना भी कम प्रतीत होता है।

सभ्यता के धरातल पर हम विज्ञापन संस्कृति के गुलाम हुए जा रहे हैं। इस विज्ञापन संस्कृति की गुलामी को दिखाने के लिए जयश्री राय अपनी कहानी 'काली-कलूटी' में भाषा के स्तर पर प्रयोग कर विरोध दर्ज करती हैं। स्त्री पात्र सुंदरता के प्रतिमान के रूप में बाजार की भाषा 'फेयर एण्ड लवली' का प्रयोग करती है — "खूब रगड़कर नहाना लाडो, फिर देखना, तुम भी फिल्मी तारिकाओं की तरह फेयर एण्ड लवली हो जाओगी।" (राय) 'फेयर एण्ड लवली' एक ब्रांड नहीं, बल्कि यहाँ गोरेपन को सुंदरता का प्रतिमान मानने की जो परंपरा रही है, उसका ही आधुनिक वर्जन है। विज्ञापन की भाषा द्वारा यहाँ सुंदरता के पुराने मापदंड को प्रस्तुत करने के साथ उसका प्रतिरोध भी दर्ज हुआ है।

संदर्भगत आयाम में 21वीं सदी में स्त्री-भाषा प्रतिरोध को न केवल दर्ज कर रही है, बल्कि बिना किसी लाग लपेट के विभिन्न संदर्भ में समाज की असहजता पर सीधे प्रहार भी कर रही है।

6.4. भाषाई प्रतिरोध के संरचनागत आयाम —

भाषाई प्रतिरोध के संरचनागत आयाम के अंतर्गत भाषा में प्रयुक्त प्रतीक, बिम्ब, मिथक, मुहावरे और लोकोक्तियों के साथ डॉट्स द्वारा कैसे प्रतिरोध की सशक्त अभिव्यक्ति हो रही है, इसे देखा जा सकता है।

6.4.1. डॉट्स की भाषा —

डॉट्स स्वयं में एक प्रसंग सापेक्ष अक्षर होते हैं। जिसके जरिए अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के नाम पर नई नैतिकता को सार्थक ढंग से प्रतिरोधी आयाम प्रदान किया जा सकता है। कहा जाना जरूरी हो और हूबहू कह देना समय सापेक्ष पृष्ठभूमि में गैरजरूरी प्रतीत हो, तब भाषा का मौन-मूक रूप 'डॉट, डॉट, डॉट' एक जरूरी हथियार के रूप में उपयोगी हो उठती है। जिसके जरिए बहुत कुछ कह जाने की संभावना छिपी रहती है, जो न कहकर भी सामने वाले के मन मस्तिष्क पर बहुत गहरा प्रभाव डालता है और सोचने को बाध्य करता है। तीन डॉट्स अक्षर से भी असरदार अक्षर है। तीन डॉट्स में अतीत, वर्तमान व भविष्य की यात्रा संभव है। ऐसे में स्त्री-प्रतिरोध को व्यक्त करने के लिए 21वीं सदी में डॉट्स की भाषा हथियार बनकर रचना में आई है।

अल्पना मिश्र ने अपनी कहानी 'कथा के गैरजरूरी प्रदेश' में कथानायिका अरुंधति की आत्मरति के प्रसंग को 'डॉट्स' की भाषा द्वारा प्रतिरोध का विषय बनाया है — "जाने कब उन्होंने अपना ब्लाउज उतारा, जाने कब अपने को प्यार करते अपने में डूब गई...गला, कंधा, पेट, जांघे…जाने किस आवेग में अपने हाथों अपने को जोर से भींच लिया..."(मिश्र ३९) यहाँ डॉट्स अरुंधति के आत्मरति की पूरी क्रिया को मात्र स्पष्ट ही नहीं कर रही, बल्कि पति जगत द्वारा दैहिक संसर्ग के दौरान जो अतृप्ति बनी रही, उस अतृप्ति को स्वयं द्वारा पूर्ति में जिस तृप्ति की अनुभूति वह कर रही है, उसे भी अभिव्यक्ति कर रही हैं। दैहिक संबंध के दौरान पति के अनिच्छापूर्ण आचरण को ढोते समय पत्नी को एक वितृष्णा का अनुभव होता है, इस वितृष्णा के साथ यौन तुष्टि (ऑर्गैज़म) संभव नहीं है। ऐसे में स्त्री की निजी दैहिक जरूरत की पूर्ति के लिए आत्मरति एकमात्र सुरक्षित जरिया बनता है, क्योंकि इसमें न तो दाम्पत्येतर का खतरा रहता है, ना किसी नैतिकता की दुहाई की जरूरत। नैसर्गिक जरूरत की जब प्राकृतिक पूर्ति नहीं होती, तब कृत्रिमता का सहारा लिया जाता है और इस कृत्रिमता की अभिव्यक्ति 'डॉट,डॉट,डॉट' से यहाँ मिल रही है।

आज जब ऑर्गेज्म की चर्चा जोरों पर हो रही है, ऐसे में वैवाहिक जीवन में अनिच्छा से बनाए गए संबंध या कह लिया जाए 'वैवाहिक बलात्कार' (मैरिटल रेप) की स्थिति का प्रतिरोध भी डॉट्स की भाषा के द्वारा कथा नायिकाओं ने किया है। गीताश्री की कहानी 'ताप' में शालू की साठ वर्षीय माँ, पति द्वारा जीवन पर्यंत मन की उपेक्षा कर दैहिक निकटता के कारण जिस दंश से गुजरती है, उस दंश में अपनी पीड़ा और अपने प्रतिरोध को सम्मिश्रित रूप में अपनी बेटी के सामने डॉट्स की भाषा द्वारा अभिव्यक्त करती है। माँ अपनी पुत्री शालू से कहती है – "मैं तुम्हारे पापा को शारीरिक सुख नहीं दे सकती। मेरी देह में न तो आग बची है न मन में वह चाह…तुम्हारे पापा को आग चाहिए। चाह हो न हो… चाह हो, तो अति उत्तम…। मैं साठ की होने जा रही हूं…पापा 65 के... उन्हें अब भी शरीर की आग जलाती हैं... मैं कुछ नहीं कर सकती... वह मुझसे जबरदस्ती

करना चाहते हैं। मैं थक चुकी हूं। सालों से एक ही काम ड्यूटी की तरह करते-करते... चाहे मन हो या ना हो... उनकी मर्जी चलती रही।... मैं अब खुद को नुचवा नहीं सकती…खाल ही बची है।" (गीतश्री 89) वाक्य में प्रयुक्त प्रत्येक डॉट्स यहाँ केवल डॉट्स न रहकर माँ के इतने वर्षों तक संचित आक्रोश को पूरा-पूरा अभिव्यक्त कर रहे है और साथ ही पति के देह लोलुप नजरिए के प्रति वितृष्णा और प्रतिरोध को शब्द से ज्यादा असरदार बना रहे है। वैवाहिक जीवन में देह की चाह में स्त्री मन को पुरुष पीछे छोड़ देता है। मां द्वारा अभिव्यक्त यह कथन वर्षों की उनकी पीड़ा को जितनी संवेदना के साथ उभार रहा है, उससे भी ज्यादा जो शब्द में नहीं अभिव्यक्त किया गया, 'डॉट्स' के माध्यम से उस पीड़ा के तह-दर-तह कितनी पीड़ा छिपी होगी, उसे मूर्त कर रहा है।

स्थापित परंपरा व नैतिकता के विरोध में जो नई नैतिकता आ रही है स्त्री जीवन में, उसे भी डॉट्स की भाषा बड़ी गहराई से स्पष्ट कर रही है। 'गोरिल्ला प्यार' में गीताश्री अर्पिता के विवाह न करने के फैसले के पीछे के पूरे पारिवारिक व सामाजिक इतिहास को डॉट्स की भाषा में अभिव्यक्त करती है। अर्पिता कहती हैं — "उसकी सबसे प्यारी सहेली मीनाक्षी इस बारे में पूछती तो अर्पिता कहती —"...समथिंग थ्रिलिंग"…!" (गीताश्री 54) समथिंग थ्रिलिंग के साथ ये तीन डॉट्स इस थ्रिलिंग में सब कुछ समा जाने की शक्ति को दिखा रहे हैं। यहाँ परंपरागत सामाजिक ढांचे की रूढ़ जीवन पद्धति का प्रतिरोध है। जब हम एक ऐसे समाज में रह रहे हैं, जहां सच बोलते ही हम अनैतिक घोषित करार दे दिए जाएंगे और अगर नहीं कहेंगे, तो कुंठा में जीने को मजबूर होंगे। वहां इनसे बचने के लिए यह डॉट्स की भाषा अपने में बचाओं सहित अभिव्यक्ति का उत्तम माध्यम है। जिसका प्रयोग लेखिका ने यहां परंपरागत मूल्यों के प्रति प्रतिरोध को दर्ज करने के लिए किया है।

डॉट्स की भाषा सिर्फ भविष्य की दिशा की ओर संकेत ही नहीं करती, बल्कि अतीत, वर्तमान और भविष्य की यात्रा को संभव बनाती हैं। लिव-इन पार्टनर इंद्र, अर्पिता का बॉस के साथ क्लब जाने पर उससे साथ जैसा व्यवहार करता है, उसकी प्रतिक्रिया में गीताश्री अर्पिता से मन ही मन कहलाती हैं — "अर्पिता के मन में आया कि कह दे मैं तुम्हारे पांव की जूती नहीं हूं…पति की तरह सामंत मत बनो…" (गीताश्री ५2) पति के साथ सामंती प्रवृत्ति जुड़ी हुई है, तो इस सामंती प्रवृत्ति के साथ और क्या-क्या जुड़ा हुआ है, जिसमें स्त्री-शोषण का पूरा इतिहास है, उसे डॉट्स संकेतित कर रहा हैं।

आज दैहिक मामले में स्त्री की अपेक्षा क्या है, उसे भी डॉट्स की भाषा व्यक्त कर रही है —

"मर्द ढूंढ रही हूं…मिलेगा क्या?
नो...आय'म सीरियस…
क्यों… व्याई…बिकॉज आय'म ए गर्ल, इसलिए आपको जोक लग रहा है।
नीड ए मैन फॉर टुनाइट... फ्री ऑफ कॉस्ट... ओके..." (गीताश्री 57)

यहाँ हर डॉट्स अर्पिता के द्वारा फोन पर हुए संवाद को संपूर्णता प्रदान कर रहा है। प्रतिपक्ष के प्रश्न को भी और उसके जवाब को भी।

स्त्री के प्रतिशोध को भी डॉट्स द्वारा अभिव्यक्ति मिली हैं। मधु कांकरिया की कहानी 'चूहे को चूहा रहने दो' की कथानायिका गंगटोक जाकर अनजान व्यक्ति से शारीरिक संबंध केवल इसलिए बनाती है, क्योंकि उसका पति हर दम उस पर शक करता है और शक के कारण यातना देता है। जब बिना कुछ किए उसे अत्याचार सहना पड़ता रहा है, तब वो सचमुच संबंध बना पति से प्रतिशोध को मुक्कमल बताती है। जिससे वह संबंध बनाती है, उसके पूछने पर कि पति को इस रात और राज के बारे में बताएगी या नहीं, डॉट्स की भाषा द्वारा अपनी कुटिलता को अभिव्यक्ति देती है — "शायद हां, शायद नहीं… पर यदि नहीं भी बताया तो क्या हर्ज… लेट माउस बी ए माउस (चूहे को चूहा रहने दो)।" (कांकरिया 192) ये डॉट्स कथानायिका के असमंजस्य की मानसिकता को भी उजागर कर रहा है।

महानगरीय जीवनशैली में व्यक्ति आर्थिक उन्नति के तो वृक्ष पर चढ़ता है, पर अंतत: अकेला रह जाता है। ऐसी जीवनशैली के विरोध को भी लेखिकाओं ने डॉट्स की भाषा द्वारा व्यक्त किया है। 'लेडी बॉस' कहानी में मधु कांकरियाँ लेडी बॉस की मन:स्थिति पर लिखती हैं — "जिंदगी के पैतालीसवें वर्ष में सायं-सायं करते अकेलेपन के क्षणों से गुजरते हुए रह-रहकर यह प्रश्न चीर देता कि जीवन का जो अंश-प्रतिअंश स्वाहा किया… क्या रही उसकी कुल उपलब्धि?... किसी भिखारिन को सड़क पर अपनी गृहस्थी के साथ देखती तो ठीककर वहीं खड़ी हो जाती… मुझसे ज्यादा तो यह सुखी…।" (कांकरिया ४६) जीवन में आर्थिक उन्नति के शिखर पर पहुँचने के बावजूद परिवार के अभाव में जीवन की रिक्तता को ये डॉट्स पूरी तरह शब्दबद्ध कर रहे है।

राजनीति में देह के कारण स्त्री को निजी फायदे मिलते है, इसे रजनी गुप्त डॉट्स की भाषा में अपने उपन्यास 'ये आम रास्ता नहीं' में व्यक्त करती है। उनके उपन्यास का पात्र कहता है — "महिला होने के अपने फायदे हैं…फिर पूछ दबाकर खिसक गया।"(गुप्त 70) यहाँ 'अपने फायदे हैं' के बाद शब्दों में कुछ भी अभिव्यक्त नहीं किया गया है, लेकिन डॉट्स के द्वारा उसके पीछे की पूरी राजनीतिक मानसिकता को उजागर करती है। राजनीति में देह का उपयोग कर सफलता का गणित बनाया जा सकता है, इसे डॉट्स दिखा रहे है।

विकास के वाबजूद यह एक सच है कि आज भी वंचित वर्ग की स्थिति में कुछ खास सुधार नहीं हुआ है। हशिये का वर्ग तमाम प्रयास के बावजूद अपनी स्थिति को लेकर मुखर हो, अपना प्रतिरोध दर्ज कर पाने में कुछ असमर्थ-सा है, लेकिन पाठकों के समक्ष 'डॉट, डॉट, डॉट' की शैली में कुछ ना कहकर भी सब बोल कर अपने प्रतिरोध को मुखर किया है, 21वीं सदी की लेखिकाओं ने। अल्पना मिश्र अपने उपन्यास 'अस्थिफूल' में वंचित आदिवासी समूह के मुँह से कहलवाती हैं — "सबके अपने मतलब है, हमारा मतलब किसी के लिए नहीं। सबको सत्ता चाहिए, पॉवर चाहिए… हम कभी इधर दौराएं जाते हैं, कभी उधर… कभी इधर की बात पर

भरोसा करते हैं...कभी उधर की बात पर…सबका हित सध जाता है और हमारा?...हमारा घर बिक जाता है…भाई-बहन बिक जाते हैं…हमारा देश बिक जाता है…हम ठगे जाते हैं, सब तरफ से... हम ठगनगरी के बाशिंदे हैं... ठगों से घिरे… ठग,ठग,ठग…इधर भी,उधर भी...झंडे लहराते ठग…झंडे ही झंडे…हम झंडे से घिर गए हैं… झंडा-झंडा…मंदा-मंदा… वह कभी हंसता, कभी रोता, कभी चिल्लाता...।"(मिश्र १७२) आदिवासी समूह के संकट को उनके ही शब्दों में अभिव्यक्त करती डॉट्स की शैली प्रतिरोध को मौन रखकर भी मुखर कर दिया है। इस प्रकार प्रतिरोध व्यक्त करने का प्रभावशाली माध्यम 'डॉट्स' बन जाते है।

6.4.2. भाषा में प्रतीक, बिंब व मिथक —

भाषा यदि अभिव्यक्ति का माध्यम है, तो प्रतीक, बिंब एवं मिथक अभिव्यक्ति को प्रभावशाली बनाने का जरिया बनते हैं। डॉ०प्रवीण कुमार लिखते हैं — "भाषा शब्दों, मिथक, प्रतीकों और बिंबों के बीच सतत प्रवाहमान रहती है। यह शब्द, मिथक, प्रतीक और बिम्ब आदि जनमानस में स्मृति के तौर पर विद्यमान है।"(कुमार 193) अनुभूति को उसकी सृजन प्रक्रिया के अनुसार रचनात्मक भूमि प्रदान करने के लिए कहीं प्रतीकों का इस्तेमाल किया जाता है, तो जटिल से जटिल अनुभूति को बोधगम्य बनाने के लिए बिम्ब एवं मिथक का प्रयोग किया जाता है। जब स्त्रियों की बात आती है, तो सामाजिक रूढ़ दायरे उसके लिए तय होने के कारण अपने प्रतिरोध को व्यक्त करने के लिए प्रतीक, बिंब व मिथक का सहारा लेना उसके लिए जितना जरूरी बन जाता है। यह प्रतीक, बिंब और मिथक उसके प्रतिरोध की तीव्रता को जग-जाहिर करने का माध्यम भी बन जाते है। ऐसे में स्त्री-प्रतिरोध को मुकम्मल रूप में समझने के लिए स्त्री-स्वर में प्रयुक्त प्रतीक, बिम्ब व मिथक का संदर्भानुसार तीक्ष्ण प्रयोग देखना जरूरी जान पड़ता है।

6.4.2.1. प्रतीक —

प्रतीक को स्पष्ट करते हुए डॉ० नगेंद्र लिखते हैं — "प्रतीक एक प्रकार के रूढ़ उपमान का ही दूसरा नाम है। जब उपमान स्वतंत्र न रहकर पदार्थ के लिए रूढ़ हो जाता है, तो वह प्रतीक बन जाता है।"(नरेंद्र 7) अर्थात् वस्तु व विषय को स्पष्ट करने के लिए परंपरागत रूप से जिस अन्य वस्तु का उपयोग हम करते आए हैं और लगातार प्रयोग में रहने के कारण उस वस्तु या विषय की स्पष्टता का वह अन्य वस्तु उपमान बन जाता है, वो ही प्रतीक है। प्रतीक पर ई-केसिरेर के विचार का उल्लेख करते हुए रोल्फ मैनही अपनी अनुवादित पुस्तक 'इ केसिरेर द फिलासाफी ऑफ सिमबालिक फार्मज' में लिखते हैं कि वे भाषा की विशेषता के रूप में प्रतीक को नहीं मानते थे, बल्कि उनके अनुसार 'भाषा ही प्रतीकात्मक होती है।' (केसिरेर, अनुवाद मैनही 69) प्रतीक रूढ़ हो चुके शब्द संरचना जरूर हैं, लेकिन जैसे-जैसे समय व परिस्थिति बदलती है, परिस्थिति के अनुसार नए प्रतीक भी गढ़े जाते हैं। डॉ० कुमार विमल के शब्दों में — "प्रतीकों का प्रयोग मानव स्वभाव का एक विशिष्ट

अंग है। इसलिए काव्य एवं काव्येतर कला जगत में नये-नये से संचालित नवीन प्रतीकों की उद्भावनाएं होती रहती हैं और पुराने प्रतीक भी संदर्भ भेद से अर्थ बदल-बदल कर अपना कायाकल्प करते रहते हैं।" (विमल 210) पुराने प्रतीक का नए संदर्भ-अनुसार प्रयोग एवं नए प्रतीक को समय अनुसार गढ़ना बतलाता है कि भाषा की तरह प्रतीक भी गतिमान है। डॉ० प्रवीण कुमार लिखते है — "विभिन्न समाजों में प्रतीक में प्रतिरोध एवं प्रतीक से प्रतिरोध की प्रवृति दिखाई पड़ती है। भारतीय समाज में भी प्रतीक में और प्रतीक से प्रतिरोध की परंपरा अत्यंत प्राचीन रही है।"(कुमार 197) स्त्री-प्रतिरोध को दर्ज करने के लिए भी नए व पुराने प्रतीक संदर्भ अनुसार गढ़े जा रहे हैं और 21वीं सदी में स्त्री संदर्भ में प्रतीक संरचना उसके प्रतिरोध को और अधिक मुखर कर रही है।

परिवेशगत अस्मिता से आहत अस्मिता का प्रतिरोध प्रतीकात्मक रूप से 'पिछला दरवाजा' में कथानायिका करती है — "मुझे लगता है कि मैं कई हिंसक जानवरों से घिर गई हूं।... संस्कार, समाज, परिवार, संतान, परिजनों के। यह सब मुझ पर रस्सियां फेंक-फेंक कर बंदिनी बना रहे हैं।" (चंद्र 127) रूढ़िग्रस्त समाज, परिवार हिंसक जानवर का प्रतीक है। हिंसक जानवर की मूल प्रवृति ही हिंसा वाली होती है और भारतीय संदर्भ में, तो पूरी की पूरी पारिवारिक और सामाजिक संरचना अपने मूल में स्त्रियों के लिए हिंसक ही रही है, जिसके अंदर स्त्री की अस्मिता संस्कारों के नाम पर कुचलती रहती है। ऐसे परिवेशगत विसंगति के लिए कथानायिक ने 'हिंसक जानवर' के प्रतीक का प्रयोग कर प्रतिरोध दर्ज किया है ।

इसी प्रकार अल्पना मिश्र की कहानी है 'ए अहिल्या' में मिसेज दासानी का परंपरा पोषित परिवार व्यवस्था, जो पत्नी को सुरक्षा व प्रेम के नाम पर घर की निरीह वस्तु मात्र बना डालता है, जो सांस भी परिवारवालों की इच्छा से लेती है। उसके प्रतिरोध में मिसेज दासानी को दिखाने के लिए 'डॉल' के प्रतीक का प्रयोग करती है। मिसेज दासानी महसूस करती है कि परिवार में उसकी हैसियत केवल दूसरों की इच्छा पर चलने वाली 'बार्बी डॉल' जैसी है। अपने प्रतिरोध को अपनी बेटी के माध्यम से व्यक्त करते हुए कहती है — "मेरी प्यारी बच्ची मैं तुझे डॉल नहीं बनने दूंगी। तुझे जिंदा कर दूंगी, डॉक्टर बनाऊंगी, आर्टिस्ट बनाऊंगी जो तू बनना चाहेगी।" (मिश्र 114) 'डॉल' के रूप में स्त्री के वस्तुकरण का प्रतिरोध है। डॉल बनने का प्रतिरोध वस्तुकरण के विरुद्ध किया गया स्त्री का जरूरी प्रतिरोध है।

विभा रानी की कहानी 'महुआ मदन रस टपके रे' में स्वतंत्र इच्छा के साथ जीने की दिशा में परंपरा पोषित नैतिकता के विरोध में कथानायिका के विरोध को प्रतीकात्मक रूप में सामने लाया गया है — "मदन उसे अपने में समेट लेता है। महुआ के बदन का रेशा रेशा सेमर की रुई बनकर हवा में उड़ने लगता है। मन का सेमर ऊपर उड़ता है ऊपर… और ऊपर...। मन ऊपर उड़ कर बादलों में मिल जाता है। महुआ नहीं पहचान पाती कि यह मन का सेमर है या बादल। ठीक वैसे ही कि यह मदन की संगत है या पोर्न फिल्म या किताब का असर।"

(रानी 176) 'सेमर के फूल' के रूप प्रतीकात्मक रूप से जो अभिव्यक्ति हुई है, उसमें परंपरागत नैतिकता का विरोध है।

भाषा को प्रतीकों के माध्यम से विशिष्ट ऊर्जा मिलती है इसे हम बद्री नारायण के शब्दों में कह सकते हैं — "प्रतीकों के माध्यम से प्रतिरोध की प्रक्रिया द्विरूपी होती है। एक ओर वह शक्ति तंत्र जो शासित करता है, प्रतिरोधी मन क्रूरतम रूप में उसका प्रतीक गढ़ता है, दूसरी ओर वह जिस पक्ष में खड़ा होता है उसे गौरवान्वित करते हुए, उसके प्रति सहानुभूति रचते हुए उसे विजयी रूप में उपस्थित करता है। प्रतिरोधी मन जिसका प्रतिरोध करता है, उसका पक्ष या तो गौण कर देता है या उसे विभत्सतम रूप में दिखाता है, कई बार तो वह उसे मजाक का विषय भी बना देता है।" (नारायण 86) 21वीं सदी में पति की देह लोलुप प्रवृत्ति को उजागर करने के लिए 'मगरमच्छ', 'भेड़िया', 'कुत्ता', 'सूअर' जैसे प्रतीकों का प्रयोग बहुतायत हुआ है। पति की सामंती प्रवृत्ति के प्रतिरोध में 'पिछला दरवाजा' में प्रतीकात्मक रूप से कथानायिका कहती हैं —"... कसाई कुछ हड्डियां और मांस के सड़े टुकड़े बाहर फेंकता है। कुत्ते उन पर टूट पड़ते हैं।...तय करती हूं कि अब उस रद्दी पति को देह का एक टुकड़ा भी नहीं तोड़कर फेंकूँगी।" (चंद्र 128) यहाँ पति के यौनाचार में हिंसक आचरण के प्रति ऋणात्मक दृष्टिकोण है। जिस प्रकार कुत्ते मांस के टुकड़े पर टूट पड़ते है, वैसे ही पति को 'मांस के टुकड़ों पर टूट पड़ने वाला कुत्ता कह कर दैहिक संसर्ग में पशु-प्रवृति को प्रतीकात्मक रूप से स्पष्ट किया है और यह तय करना की अब 'देह का एक टुकड़ा भी नहीं फेंकेगी' मतलब अब उसके दैहिक अत्याचार को नहीं सहेगी। यहाँ अत्याचार न सहने का निश्चय कथानायिका के प्रतिरोधी तेवर को व्यक्त कर रहा है।

एक ओर पति की सामंती प्रवृति है, तो दूसरी ओर प्रेमी भी सामंती मूल्यों से पृथक नहीं होता। गीताश्री ने अपनी कहानी 'गोरिल्ला प्यार' में प्रेमी के सामंती प्रवृत्ति का प्रतीकात्मक भाषा द्वारा प्रतिरोध अभिव्यक्त किया है। अर्पिता के अपने बॉस के साथ क्लब में जाने की बात पर नाराज होकर उसका प्रेमी इन्द्र उससे सामंती पति की तरह प्रश्न तलब करता है, तब अर्पिता कहती है — "वह कोई और है किसी और वन से भाग आया गोरिल्ला है... मेरे उपवन का आदम नहीं है ये...प्रेम पूर्ण होने की जगह वह कैसा उदंड हो रहा है।"(गीताश्री 57) 'गोरिल्ला' प्रतीक है यहाँ उदंडता का, अपनी मर्जी से तबाही मचाने वाले पशु का। अर्पिता इन्द्र की तुलना गोरिल्ला से करती है, क्योंकि वह भी उसी की तरह आचरण करता है।

स्त्री द्वारा यौन अतृप्ति को लेकर जीने की जगह उस अतृप्ति के प्रतिरोध को प्रतीकात्मक भाषा में विभा रानी ने अपनी कहानी 'महुआ मदन रस टपके रे' में व्यक्त किया है और कहानी की संवेदना को उभारा है — "महुआ खुश है, पर तृप्त नहीं। सारे समय बड़-बड़ करती महुआ इस मोड़ पर अचानक चुप हो जाती हैं। पूरे बदन में कांटे उगने लगते हैं। उसका मन करता है, इन कांटों को अपने बदन से निकालकर मदन की देह में रोंप दें, ताकि ये काटे मदन को नोच-नोंचकर खा जाए। उसे लहूलुहान कर दें। इतना कि उसका वीर्य भी लहू बनकर

बहने लगे।"(रानी १७८) मुहावरे का प्रयोग करते हुए 'कांटे उगना', 'कांटे रोंप देना' से जिस प्रकार प्रतीक को लेखिका ने यहाँ रखा है, वह केवल महुआ की अतृप्ति को ही शब्द नहीं दे रहे, मदन की उपेक्षा व उसके प्रति उसके प्रतिक्रियात्मक विरोध को भी शब्द दे रहे है।

पति-पत्नी व प्रेमी-प्रेमिका ही नहीं, मां और बच्चे के बीच की उष्माहीनता को व्यक्त करने के लिए मधु कांकरिया ने सुंदर प्रतीक संरचना की है उपन्यास 'पत्ताखोर' में। संवेदना शून्य संबंधों के संदर्भ में मधु कांकरिया ने इस उपन्यास में प्रतीक योजना की है। हेमंत बाबू अपनी पत्नी वनश्री का बेटे आदित्य के प्रति उपेक्षा को प्रतीकात्मक रूप से शब्दबद्ध करते हुए कहते हैं — "मेरी मां और तुम में यही अंतर है, उन्होंने घड़े को पूरी तरह पकाकर संसार समुद्र में छोड़ा — तुमने कच्चेपन में ही उसे छोड़ दिया।"(कांकरिया 19) पारिवारिक परिवेश में रचा गया प्रतिरोधमूलक प्रतीक है। यहाँ घड़ा बच्चे का प्रतीक है, जिस प्रकार कच्चा घड़ा टिक नहीं पाता, वैसे ही माता-पिता के प्यार से वंचित बच्चा भी भटकाव का शिकार हो जाता है। यहाँ प्रतीको के माध्यम से संबंधों में खत्म होती उष्माहीनता का प्रतिरोध है।

विधवा स्त्री के जीवन की पीड़ा को व्यक्त करने के लिए प्रियंका ओम 'विष्णु ही शिव है' में प्रतीक संरचना करते हुए बंजर भूमि से इसकी तुलना करती है — "घर के पिछवाड़े आधा पौना कट्ठा भर जमीन का टुकड़ा यूं ही बंजर पड़ा था। उसकी तरह अकारथ।" (ओम 188) कथानायिका का स्वयं को बंजर भूमि समझना विधवा जीवन का प्रतिरोध है। विधवा के प्रति पारिवारिक-सामाजिक नजरिया व उनकी उपयोगहीनता को 'बंजर भूमि' का प्रतीक दर्शा रहा है। शिक्षा व्यवस्था में शिक्षा के नाम पर अंग्रेजी माध्यम, कन्वेंट स्कूलों की खून चूसने वाली प्रवृत्ति और उपलब्धि के नाम पर शून्य का प्रतिरोध अल्पना मिश्र 'कुकुरमुत्ते' के प्रतीक से अभिव्यक्त करते हुए लिखती हैं — "कभी-कभी गुस्से में होते और सोचते थे कि सरकार क्यों नहीं इन कुकुरमुत्ते जैसे स्कूलों पर बैन लगा देती हैं।" (मिश्र 29) निजी स्वार्थ के लिए जिस तरह से शिक्षण संस्थान व्यवसाय में लगे हुए है, उसके प्रति आक्रोशित रचनाकार का मन इन्हें कुकुरमुत्ता कह कर संबोधित कर रहा है।

जयश्री राय अपनी कहानी 'एक रात' में औरत के शरीर के लिए जंगल, पिंजरा, राजप्रसाद जैसे परंपरागत प्रतीक का संयोजन करते हुए जिस्म तक सीमित रिश्ते का प्रतिरोध करती हैं। देह संबंधी नजरिए का प्रतिरोध दर्ज करती हैं। मंदिरा, प्रणय से कहती है — "आज तुमसे बहुत कुछ पाया है प्रणय! आगे की यात्रा के लिए सहेजकर रखना चाहती हूं, जिस्म की जंगल में खोना नहीं। तुम नहीं समझोगे, हम औरतों के लिए यह जिस्म अधिकतर पिंजरा बन जाता है, चाहती हूं इस देह से आगे भी कोई आए। वहां, जहां पर सुधा की सीमा समाप्त करके इंसान, इंसान बनता है।… अपनी रूहों के बीच से यह तन की माटी हटाना चाहती हूं, यह हमें दूसरे तक पहुंचने नहीं देती, अकेलापन है इस हार मांस के राजप्रसाद में।" (राय, 62) स्त्री-देह का राजप्रसाद के प्रतिकार्थ द्वारा प्रतिरोध दर्ज किया गया है। राजप्रसाद तमाम भौतिक सुखों का स्वयं में एक प्रतिमान है। स्त्री-देह

से पुरुष द्वारा राजप्रसाद जैसा सुख पाने की अनंत लालसा, स्त्री की अस्मिता को आहत करती है। आहत अस्मिता के दौरान इस देह से मुक्ति का गंतव्य रूह को बनाना, पुरुष आचरण के संदर्भ में सहज ही एक प्रतिरोध बनता है। पुरुष आचरण और उसके प्रति स्त्री-दृष्टि परस्पर विरोधी है। इसी विरोध में अस्मितामूलक प्रतिरोध का आख्यान 21वीं सदी में रचा गया है।

सुनील कुमार यादव और सूरज कुमार अपने लेख 'स्त्री एवं स्त्रीवादी साहित्य की भाषा' लेख में भाषा पर नामवर सिंह के विचारों को उद्धृत किया है — "भाषा नियामक है और सृजनशीलता के लिए सबसे बड़ी चुनौती है – भाषा का निर्माण और नियामक करने की क्षमता। इसीलिए जब आप कोई क्रांतिकारी बात कहना चाहेंगे तो उसने बाधा देने वाली राजसत्ता और सामाजिक व्यवस्था तो बाद में आएंगी। सबसे पहले तो भाषा आएगी जो आप की बनाई हुई नहीं है। इसलिए सृजनशील रचनाकार अपने लिए नई भाषा बनाता है।" (उपाध्याय 57) 21वीं सदी में स्त्रियों ने नए प्रतीक योजना के साथ नई भाषा गढ़ी है। परंपरागत प्रतीकों के साथ में नए प्रतीक भी रचे गए हैं। मधु कांकरिया अपना उपन्यास 'पत्ताखोर' परंपरागत प्रतीक के साथ नए प्रतीक को भी रखा है। उपन्यास में बैंक कर्मी द्वारा पति के लिए 'फिक्स डिपाजिट' और प्रेमी के लिए 'करंट अकाउंट' के प्रतीक का प्रयोग करती हैं — "… नहीं इसमें बुराई कुछ भी नहीं है, अरे फिक्स्ड डिपॉजिट तो एक है ही, क्यों ना कई करंट अकाउंट खोल लिए जाए, छोटे-छोटे कई करंट अकाउंट, जब तक दिल करे अकाउंट खुला रहे… दिल भरा की अकाउंट बंद। गृहस्थी भी संभले रहे…मियां से भी खिचिर-खिचिर खत्म और अपनी जिंदगी भी खुशहाल।"(कांकरिया 22) जीवन के उबाऊपन, पति के सामंती प्रवृत्ति के प्रतिरोध में आधुनिक सभ्यता को यह प्रतीक दर्शाता है। इसी तरह के आधुनिक जीवन शैली से नए प्रतीक को गीताश्री ने अपनी कहानी 'एक रात जिंदगी' में लिया है। गीताश्री लिखती हैं — "कभी-कभी हमारी आंखें, जिंदगी का इनबॉक्स बन जाती है, जिसमें से कई-कई ईमेल झांकते रहते हैं जो अनरीड, अनपढ़े रहते हैं। जिन्हें पढ़ने का कई बार टाइम नहीं मिलता हमें।" (गीताश्री ६५) जिंदगी को इनबॉक्स बताना, हमारी स्मृतियों को ईमेल बताना और अनुभूति की किसी के भी सामने अभिव्यक्ति की असमर्थता को अनरीड जैसे नए प्रतीक के माध्यम से व्यक्त किया है।

6.4.2.2. बिंब —

बिंब प्रतिरोध को सचित्र कर आंखों के सामने प्रस्तुत कर देने का सबसे सशक्त माध्यम है। स्त्री द्वारा अपने प्रतिरोध को व्यक्त करने के लिए इसका प्रयोग होते आया है। 60-70 के दशक में मृदुला गर्ग ने 'चित्तकोबरा' में 'मनु' व 'महेश' के संदर्भ में प्रेम-रहित पति के दैहिक आचरण का प्रतिरोध रचने के लिए 'उरोज' के लिए 'ग्लोब' का बिंब रचा। मनु महेश के आचरण को लेकर महेश के मन में बने बिम्ब को लेकर सोचती हैं – "…अगर मेरा शरीर एक उरोज होता…एक दीर्घकाय, विशाल, गुदगुदा उरोज। ग्लोब की तरह गोल। महेश उस पर परस जाता। उसके हाथ-पाँव और ओंठ एकसाथ उससे खेलते, उसे मसलते, उसे चूमते।

…आकार के साथ उसकी उत्तेजक शक्ति भी बढ़ जाती न? महेश के हाथों की अंगुलियों के नीचे वह प्यानो की तरह बज उठता। उन्मत्त-विक्षिप्त संगीत से कमरा भर जाता…मैं बस एक विशाल उरोज होती…"(गर्ग 99) वहीं, आज 21वीं सदी में जयश्री राय ने अपना उपन्यास 'औरत जो नदी हैं' में कामातुर पुरुष के लिए 'लिंग' के बिंब को रचा है। उपन्यास की नायिका दामिनी अशेष से कहती है – "औरत महज योनि नहीं होती, परंतु मर्द शायद आपाद मस्तक लिंग होता है। तभी तो बेचारा योनि से आगे नहीं बढ़ पाता, रस के संधान में रसातल में पड़ा रहता है…।" (राय 105) मृदुला गर्ग ने पुरुष की कामेच्छा और कामाचार के अनुसार स्त्री-देह में उरोज के लिए एक बिंब रचा 'ग्लोब' का, तो जयश्री राय ने पुरुष के कामाचार के संदर्भ में पुरुष के अंग-प्रत्यंग को 'लिंग' बनाकर एक बिंब रचा। स्त्री-देह के प्रति पुरुष की इंद्रियां किस कदर लोलुपता का शिकार है, इसके लिए पुरुष को आपाद मस्तक लिंग बताकर पुरुष के अस्तित्व को घृणित मामला बनाकर रख दिया। दाम्पत्य और दांपत्येतर के अलावा कार्यस्थल का प्रसंग हो या मानव तस्करी का, कहीं भी पुरुष स्त्री देह के मामले में लैंगिक सुख की कामना से परे नहीं रह पाता, इस अमानवीय हिंसक आचरण का प्रतिरोध इन बिंबो के माध्यम से बखूबी किया गया है।

घर-परिवार की सामंती परिवेश स्त्री-जीवन को किस प्रकार बांध कर रख देता है, इसके लिए मकड़ी के जाले का बिम्ब कहानी 'सखी-सहेली' में है। शीला, तोषी से कहती है — "अब तो सारा समय घर-घर और काम-काम ना करा कर। मकड़ी का जाला होता है घर। उल्टी लटकी रहती है मकड़ी उसमें। बुनती भी वही है और फर्ट मरती भी वही है समझी।" (किशोर १२०) स्त्री संदर्भ में, उसके जीवन में, घर उस मकड़ी के जाले के समान हो जाता है, जिसमें उसका पूरा जीवन उलझ कर रह जाता है और अंततः उसी में दम तोड़ देता है। घर-परिवार की सामंती प्रवृत्ति का प्रतिरोध बिंब के द्वारा हुआ है।

6.4.2.3.मिथक —

किसी भी जटिल अनुभव को सहज ही बोधगम्य बनाने के लिए प्रतीक का इस्तेमाल किया जाता है, लेकिन मिथक आम जनमानस के मन-मस्तिष्क में पहले से बसा हुआ होता है, इसलिए जटिल अनुभवों को एक संदर्भ के द्वारा सहज ही पूरे प्रसंग को संप्रेषणीय बनाने के लिए मिथक का प्रयोग किया जाता है। मिथक आम लोगों के दिलों-दिमाग में कथा-मान्यता के आधार पर बिना किसी तर्क के सच के समान बसी हुई होती हैं, इसलिए रचनाकार मिथकीय संदर्भों को अपने कथा के प्रसंग को सहज ही संप्रेषणीय में बनाने के लिए लेता है। 21वीं सदी में अपने प्रतिरोध को व्यक्त करने के लिए स्त्री संदर्भ में मिथकीय प्रसंग का प्रयोग किया गया है। डॉ० प्रवीण कुमार के अनुसार — "मिथक में स्मृति न सिर्फ संरक्षित रहती है, उसके माध्यम से वह जागती भी है। मिथक सभ्यता के विकास के दस्तावेज है।" (कुमार 196)

कविता की कहानी 'तुमने खजुराहो की मूर्तियां देखी है' की अदिता के जीवन की घड़ी, अपने छोड़ चुके प्रेमी आकाश के लिए ही पिछले दस वर्षों से रुकी रहती है और जब आकाश के साथ कुछ समय जीकर जीवन की घड़ी को आगे बढ़ाना चाहती है, तो मिथकीय संदर्भ द्वारा समाज व परंपरा स्थापित नैतिकता के विरुद्ध किए गए कृत्य को, प्रतिरोध में व्यक्त करती हैं। मिथकीय कथा है कि खजुराहो के राजा चंदेल वंश का उदय बनारस के राजपुरोहित की विधवा बेटी हेमवती व उसकी सुंदरता पर मोहित चंद्रदेव के चांदनी रात में झील किनारे मिलन से हुआ। अदिला का आकाश के साथ मिलन को हेमवती और चंद्रदेव के मिलन प्रसंग द्वारा मिथकीय रूप में लेखिका सामने रखती है — "...क्षण भर को यह जाने क्यों लगा वह हेमवती है, बनारस की उसी ब्राह्मण पुजारी की पुत्री। चाँदनी रात में खुली खिड़कियां होटल के कमरे को सरोवर में तब्दील किए जा रही थी और आकाश चंद्रमा की किरणों में नहा रही थी डूबी हुई।" (कविता ५२) यहाँ समाज निर्धारित नैतिकता का प्रतिरोध मिथकीय कथा द्वारा किया गया है।

मिथक स्मृतियों के आधार पर बनी प्रक्रियाँ है। बद्री नारायण लिखते हैं — "स्मृति एक निर्दोष प्रक्रियाँ नहीं है। वह एक सचेष्ट चयनपरक, बल्कि राजनीतिक प्रक्रिया है, बल्कि स्वयं स्मृति की एक राजनीति है। स्मृति जागरण इस अर्थ में अनायास नहीं होता। स्मृति जगायी जाती है, संदर्भ एवं परिप्रेक्ष्य प्रदत्त नहीं होते, वे निर्मित किए जाते हैं और उनकी निश्चय ही अपनी एक निश्चित राजनीति होती है।" (नारायण 75) मिथकीय संदर्भ को सामने रख स्त्री-शोषण का अपना एक इतिहास रहा है और आज भी उन मिथकीय संदर्भ को सामने रख स्त्रियों का शोषण करने का पुरुष साम्राज्य कायम है। आज उसके पलटवार में मिथकीय संदर्भ लेकर स्त्रियाँ भी खड़ी हैं। अल्पना मिश्र की कहानी 'ए अहिल्या' में मिस्टर दासानी वैवाहिक जीवन मिसेज़ दासानी के मन के करीब पहुंचे बिना हर बार उससे संबंध बनाते है और मिसेज़ दासानी के सामने रानी बहुला की कहानी रखकर अपने आप को सही साबित करना चाहते है। वर्चस्व का खेल खेलना चाहते हैं। वह कहते है — "राजा जितना ही उस पर मोहित होकर उसके पास जाने की कोशिश करता, रानी बहुला उतनी ही दूर होती जाती है। अंत में क्रोधित होकर राजा ने उसे जंगल में छुड़वा दिया।"(मिश्र ११६) तब मिसेज दासानी कहती है — "राजा को बिना मन के करीब पहुंचे, तन-मन दोनों चाहिए था,है न!" (मिश्र ११६) यहाँ मिसेज दासानी द्वारा मिथकीय प्रसंग द्वारा ही अपनी मन: स्थति को व्यक्त कर देना, उनके प्रतिरोध को दिखा रहा है।

विवाह के नाम पर बलात्कार जैसी पाशविक प्रवृत्ति के विरुद्ध प्रतिरोध जयश्री राय ने मिथकीय संदर्भ से एक ओर 'एक रात' कहानी में मंदिरा के माध्यम से दर्ज किया है। जहां मंदिरा पति के बलात्कारी प्रवृत्ति के प्रतिरोध में उसे सजा देती है और मिथकीय चरित्र कृष्ण और द्रौपदी द्वारा अपने इस कृत्य को सही बतलाती है – "अब क्या है कि पांचाली के सखा तो एक ही थे, मगर पांचाली तो एक नहीं, सो इन मॉडर्न द्रोपदियों को अपनी लज्जा की सुरक्षा खुद ही करनी पड़ती है और उसका एक तरीका मुझे यह भी लगा था।" (राय 74)

आज भी दुशासन की तरह स्त्री-अस्मिता को आहत करने वाले पुरुष है और स्त्रियाँ द्रौपदी की तरह चीर हरण की शिकार है, पर अब उसकी रक्षा के लिए कृष्ण भी उन्हें ही बनना पड़ेगा। जैसे कृष्ण ने द्रौपदी की लज्जा द्वापर युग में बचाई थी, वैसे ही अब स्त्रियों को अपनी अस्मिता बचाने आगे आना होगा।

वहीं, दूसरी ओर प्रेम में प्रेमी द्वारा छली गई स्त्री के प्रतिरोध को मिथकीय संदर्भ द्वारा 'औरत जो नदी है' में उभारा है। जहां मनु, इड़ा, श्रद्धा के मिथक का प्रयोग कर दामिनी, अशेष के छल के प्रतिरोध में अपना निर्णय सुनाती है — "क्यों मनु, कितनी बार श्रद्धा तुम्हारे हाथों छली जाएगी? तुम्हारी फितरत तो बदलने से रही। दैहिक भूख के वशीभूत हो पशु के स्तर पर जीते चले जाना तो तुम्हारी नियति है ही, मगर श्रद्धा में अब इड़ा का भी समावेश हो गया, वह अब हृदय भी है और बुद्धि भी।…अपराजेय हो गई है! तुम्हारे छल-प्रपंच की पहुंच से बहुत दूर…।" (राय 134) अब की नारी भावुक श्रद्धा मात्र नहीं रह गई है, बल्कि इड़ा जैसी कुशाग्र बुद्धि भी धारण कर चुकी है। स्त्री व्यक्तित्व में आए इस बदलाव को अपराजेय स्त्री के रूप में स्थापित करना सहज ही प्रतिरोध की जमीन तैयार करता है।

मिथकीय संदर्भ द्वारा अपनी दैहिक अतृप्ति व पुरुष के अतृप्त छोड़कर चले जाने की स्थिति का प्रतिरोध गीताश्री ने 'गोरिल्ला प्यार' में अर्पिता व इंद्र के प्रसंग में रखा है। जब इन्द्र अर्पिता को बिस्तर पर छोड़ कर चला जाता है, तब अपनी प्रतिरोधी मन:स्थिति को व्यक्त करने के लिए अर्पिता सोचती है — "वह त्रेता युग की मृगणी नहीं थी कि देह को ऐसी पीड़ा देने वाले पांडू को शापित कर पाती।" (गीताश्री 53) यहां अर्पिता की सोच द्वारा अमूर्त रूप में प्रतिरोध घटित हो रहा है। प्रतिरोध की इच्छा का मन में आने का ही मतलब है कि प्रतिरोध घटित हो रहा है, भले ही वह प्रतिरोध अमूर्त रूप से घटित हो मन में, पर घटित हो रहा है। यहाँ प्रतिरोध की संभावनाओं को जिंदा रखने का प्रयास है।

'कुच्ची के कानून' में भी कुच्ची मिथकीय संदर्भ द्वारा अपने गर्भ के बच्चे को जन्म देने के लिए पूरे समाज के विरुद्ध खड़ी हो कहती है — "कुंती माई डर गयी, अंजना माई डर गयी, सीता माई डर गयी, लेकिन बालकिशन की माई डरने वाली नहीं है। मेरा बालकिशन पैदा होकर रहेगा।" (शिवमूर्ति) स्त्री गर्भ में पल रहे बच्चे को पुरुष संदर्भ में जोड़कर देखने की रूढ़ नैतिकता का मिथकीय संदर्भ द्वारा प्रतिरोध है।

6.5. मुहावरे और लोकोक्तियाँ —

मुहावरे और लोकोक्तियां का प्रयोग अपनी कही गई बात को और भी अधिक प्रभावशाली ढंग से भाषा के माध्यम से प्रस्तुत करने के लिए किया जाता है। 21वीं सदी के कथा-साहित्य में मुहावरे और लोकोक्तियों का प्रयोग स्त्री-प्रतिरोध को दर्ज करने के लिए किया गया है।

यौनिक मामले में भावनारहित दैहिक आचरण के प्रतिरोध में 'शेर की तरह दहाड़ना', 'भूखे कुत्ते की तरह दुम हिलाना', 'बदन में कांटे उगना', 'दबड़े की मुर्गी बिन मरे छटपटाए', 'गई भैंस पानी में' जैसे मुहावरे और लोकोक्तियों का प्रयोग हुआ है।

'पिछला दरवाजा' में पति के काम आचरण के मामले को पशु-प्रवृत्ति के प्रतिरोध में कथानायिका मुहावरेदार भाषा का प्रयोग करते हुए प्रतिरोध को और व्यापक बनाते हुए कहती है — "...फिर भूखे कुत्ते की तरह दुम हिलाता हुआ आ जाता है। मैं अपने देह का एक टुकड़ा काटकर उसके आगे फेंक देती हूं।" (चंद्र १२३) 'भूखे कुत्ते की तरह दुम हिलाता' जैसा मुहावरा काम मामले में पुरुष की पाशविक प्रवृति को दर्शाता है।

राजनीति में स्त्री के साथ होने वाली विसंगति को प्रभावशाली बनाने के लिए मुहावरे का प्रयोग करते हुए किरण सिंह, भारती के शब्दों में लिखती है — "बाइस साल की उम्र तक मुझे शरीर के हर छेद से इतना पानी पिलाया गया कि मेरा खून सफेद हो गया।" (सिंह 132) 'खून सफेद' हो जाना मुहावरा राजनीति में दैहिक शोषण की निर्ममता को शब्दबद्ध कर रहा है।

प्रतिरोध की दिशा में अस्मिता मुख्य चरण है। घरेलू महिला कामगार की अस्मिता को दर्शाने के लिए 'अपने पैरों पर खड़े होना' जैसे मुहावरे का प्रयोग किया है। रोशनी के अच्छे दिन में रोशनी कहती है — "मैं तो एक अक्षर नहीं पढ़ी फिर भी अपने पांवों पर खड़ी हूं।...खूब कमाती हूं और अब तो खूब उड़ाती हूं। किसी का डर नहीं।" (शर्मा 129)

पुरुष की अतृप्ति को भी मुहावरे की भाषा का प्रयोग कर अभिव्यक्त किया गया है। गीताश्री की कहानी 'ताप' में कॉलगर्ल मुंह से बुजुर्गों में बनी रहने वाली अतृप्ति की स्थिति को व्यक्त करने के लिए गीताश्री लिखती हैं — "दी डिजायर इज स्ट्रॉन्ग, बट दी फ्लेश इज वीक...।" (गीताश्री ९५)

सभ्यता के धरातल पर शिक्षा व सांस्कृतिक संस्था में किस प्रकार अर्थ संस्कृति के गुलाम हो गए हैं। लोकोक्ति द्वारा उसकी मारक अभिव्यक्ति की गई है। अल्पना मिश्र अपनी कहानी 'कथा के गैरजरूरी प्रदेश' में शिक्षा के व्यवसायीकरण प्रकाश डालते हुए लिखती हैं — "शिक्षा से बड़ा व्यवसाय भला कौन-सा है, आम के आम गुठलियों के दाम।" (मिश्र 28) इसके अतिरिक्त 'कथा के गैरजरूरी प्रदेश में','काटो तो खून नहीं', 'सोन मछली' में 'गंगा ने अपना पाट बदल लिया','रोशनी के अच्छे दिन में','पांव पर खड़ी होना','खूब उड़ाना','मन में उथल-पुथल मचना','मुंह अंधेरे','चन्द्रबिन्दु' में 'डिकोड होना', 'फ्रीज कर लेना','ए अहिल्या' में 'गई तेरी भैस पानी में','आए विल कॉल यू!' में 'दबड़े की मुर्गी बिन मरे छटपटाए' जैसे मुहावरे और लोकोक्तियां का प्रयोग 21वीं सदी के कथा साहित्य में हुआ है।

निष्कर्षत: 21वीं सदी का लेखन स्त्री-प्रतिरोध के स्वर को यदि मजबूत कर पाया है, तो इसमें उसकी भाषा का बहुत बड़ा योगदान है। संदर्भ चाहे जो भी हो, उसके अनुकूल भाषा को गढ़ना सृजन के लिए चुनौती

है, तो विमर्श को गंतव्य तक पहुंचाने के लिए जरूरी भी है। इस दिशा में यहाँ चयनित रचनाओं में दोनों धरातलों पर संदर्भगत और संरचनागत प्रतिरोध समृद्ध होते दिखाई पड़ते हैं। भाषा की स्वाभाविक प्रवृत्ति को उसके संदर्भों में देखा जाता है, इस नाते यहां परिवार-समाज का मामला हो या कार्यस्थल एवं बाजार का या स्त्री देह के व्यापार का या मानव तस्करी का, किसी भी सूरत में पुरुष के आचरण को स्त्री-देह के प्रति जिस कदर लालायित पाया गया, उसके अनुसार सटीक संदर्भ एवं प्रतीक, बिंब व मिथक गढ़े गए हैं। कहीं-कहीं प्रतिरोध के लिए अपनाए गए प्रतीक पितृसत्तात्मक छाप लिए हुए हैं, ऐसी स्थिति में इसे मर्दवादी भाषा कह देने की भी गुंजाइश बनी रहती है। अंतत: इसे वर्षों से चले आ रहे पुरुष आचरण के विरुद्ध स्वाभाविक प्रतिक्रिया के रूप में उद्घाटित करना मेरा मंतव्य है। साथ ही अपने प्रतिरोध के लिए स्त्रियाँ अपनी भाषा गढ़े, न की उधार की पुरुष भाषा का प्रयोग कर प्रतिरोध के स्वर को दूषित करें, इससे बचना जरूरी है। इसी दिशा में सार्थक बिंब, लोकोक्ति एवं मुहावरे, डॉट्स द्वारा प्रतिरोध की धार को तेज करने का प्रयास किया गया है। अन्तत: यह स्वीकार्य है कि स्त्री लेखन ने प्रतिरोध के जिन आयामों को विषय बनाया है, उन आयामों को हम समस्या के साथ-साथ भाषा के स्तर पर भी तमाम संभावनाओं के साथ अग्रसर पाते है।

संदर्भ-ग्रंथ

अनामिका, *कविता में औरत*. वाणी प्रकाशन, 2019.

---, *तिनका तिनके पास*, वाणी प्रकाशन, 2008.

---, *मौसम बदलने की आहट*. सामयिक प्रकाशन, 2012.

ओम, प्रियंका, "विष्णु ही शिव है", *कामुकता का उत्सव : प्रणय, वासना और आनंद की कहानी*. संपादक रंगनाथन, जयंती, प्रथमवाणी प्रकाशन,2020. पृष्ठ 188-201.

कविता. "तुमने खजूराहों की मूर्तियाँ देखी हैं", *स्वप्न में वसंत : स्त्री यौनिकता की कहानी*, संपादक बिहारी, राकेश, शिल्पायन प्रकाशन, 2014. पृष्ठ 41-56.

कांकरिया, मधु. "चूहे को चूहा रहने दो", *बीतते हुए*, दूसरा संस्करण, राजकमल प्रकाशन, 2017. पृष्ठ 177-192.

---, *पत्ता खोर*. राजकमल प्रकाशन,2005.

---, "लेडी बॉस". *बीतते हुए*, दूसरा संस्करण, राजकमल प्रकाशन, 2017.

कालिया, ममता. *दौड़*, छब्बीसवाँ संस्करण, वाणी प्रकाशन, 2022.

कुमार, कमल. "सखी सहेली", *कामुकता का उत्सव : प्रणय,वासना और आनंद की कहानी*. संपादक रंगनाथन,जयंती, वाणी प्रकाशन,2020. पृष्ठ- 106-123.

कुमार, डॉ प्रवीण. प्रतिरोध की संस्कृति की भाषिक बनावट, creative Space: International Journal. Vol 03, Issue 06, Nov- Dec 2015, पृष्ठ 191-200

कुमार, विमल. *छायावाद का सौंदर्यशास्त्रीय अध्यन्न*, राजकमल प्रकाशन, 1970 https://archive.org/details/in.ernet.dli.2015.480034/page/n1/mode/1up?view=theater

खेतान, प्रभा. *उपनिवेश में स्त्री*. राजकमल प्रकाशन, संस्करण 2022.

गर्ग, मृदुला. सांतवा संस्करण, *चित्तकोबर*, सातवां संस्करण, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, वर्ष 2004

गीताश्री, "एक रात जिंदगी", *प्रार्थना के बाहर और अन्य कहानियाँ*. वाणी प्रकाशन, 2013.पृष्ठ 60-69.

---, "गोरिल्ला प्यार". *प्रार्थना के बाहर और अन्य कहानियाँ*. वाणी प्रकाशन, 2013.पृष्ठ 51-59.

---, "डाउनलोड होते हैं सपने", हंस पत्रिका, वर्ष-30, अंक-8, वर्ष-मार्च 2016.पेज 54-60

---, "ताप", *प्रार्थना के बाहर और अन्य कहानियाँ*. वाणी प्रकाशन, 2013.पृष्ठ 83-95.

---, "दो पन्ने वाली औरत". *प्रार्थना के बाहर और अन्य कहानियाँ*. वाणी प्रकाशन, 2013.पृष्ठ 75-82.

गुप्त, रजनी. *ये आम रास्ता नहीं*. वाणी प्रकाशन, 2013

गुरु, पं० कामताप्रसाद. हिन्दी व्याकरण. प्रकाशन संस्थान, 2009.

चतुर्वेदी, जगदीश्वर. *स्त्रीवादी साहित्य विमर्श*. मेधा पब्लिशिंग हाउस, ,2018.

चंद्र, यादवेन्द्र शर्मा. "पिछला दरवाजा". *वाह! किन्नी, वाह*. वाणी प्रकाशन, 2009. पृष्ठ 122-128.

नगेन्द्र. *काव्य बिम्ब*, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1990.

नारायण, बद्री. *प्रतिरोध की संस्कृति*, वाणी प्रकाशन, 2012.

तिवारी, डॉ० भोलानाथ. *भाषाविज्ञान*, किताबमहल प्रकाशन, संस्करण 2017.

पाण्डेय, मैनेजर. *साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका*. हरियाणा ग्रंथ अकादमी पंचकुला,

भुड़ारिया, निर्मला. *गुलाम मंडी*, सामयिक पेपरबैक्स,2021.

मिश्र, अल्पना. *अस्थि फूल*, राजकमल प्रकाशन,2019.

---, "ए अहिल्या", *कब्र भी कैद औ' जंजीरें भी*, राजकमल प्रकाशन, 2012, पृष्ठ 110-120

---, "कथा के गैरजरूरी प्रदेश में" *स्वप्न में वसंत:स्त्री यौनिकता की कहानी*, संपादक बिहारी, राकेश, शिल्पायन प्रकाशन, 2014. पेज 27-40.

यादव, सुनील कुमार और सूरज कुमार. "स्त्री एवं स्त्रीवादी साहित्य की भाषा" international journal of innovative knowledge concepts.vol-6, issue-5, May-2018. पृष्ठ-250-255.

राय, जयश्री, "एक रात", *कामुकता का उत्सव : प्रणय,वासना और आनंद की कहानी*. संपादक रंगनाथन, जयंती, वाणी प्रकाशन, 2020. पृष्ठ 49-63.

राय, जयश्री. *औरत जो नदी है*. वाणी प्रकाशन, 2019.

विभा, रानी. "महुआ मदन रस टपके रे". *स्वप्न में वसंत (स्त्री यौनिकता की कहानियाँ*), संपादन बिहारी, राकेश, प्रथम संस्करण ,शिल्पायन प्रकाशन, 2014. पृष्ठ 175-182.

वैद, कृष्ण बलदेव. *एक नौकरानी की डायरी*, राजपाल एंड सन्ज.2009.

शर्मा, देवेंद्रनाथ, दीप्ति, शर्मा. *भाषा विज्ञान की भूमिका*. छठा संस्करण, राजकमल प्रकाशन,2015.

शर्मा. क्षमा, "रोशनी के अच्छे दिन" *पराँठा ब्रेकअप और अन्य कहानियाँ*. वाणी प्रकाशन, 2022. पृष्ठ 122-130.

शिवमूर्ति. *कुच्ची का कानून*. *gadhyakosh.com*

साव, डॉ० अजय कुमार. *प्रतिरोध के प्रतिमान घरेलू महिला कामगार (विमर्श का अछूता अध्याय)*. शब्द डॉट इन, 2023.

सिंह, किरण. "यीशू की कीलें", यीशू की कीलें (कहानी संग्रह), द्वितीय संस्करण, आधार प्रकाशन, 2021 पृष्ठ 103-133.

सिंह, रूपा. *"आय विल कॉल यूं!", कामुकता का उत्सव : प्रणय,वासना और आनंद की कहानी*. संपादक रंगनाथन, जयंती, वाणी प्रकाशन,2020. पृष्ठ-237-254.

सिंह, सुधा. *ज्ञान का स्त्रीवादी पाठ*. ग्रंथ शिल्पी प्रकाशन, 2008.

सिन्हा, नीलिमा *"तैंतीस परसेंट"*, आशय पत्रिका, आशय पत्रिका, संपादक कुमार. आशुतोष, वर्ष-3, अंक-4(संयुक्तांक), अक्टूबर 2004 – जून 2005. पेज 49-60

सुजाता. "स्त्री-भाषा और स्त्री पाठ : एक पहचान".*आलोचना का स्त्री पक्ष (पद्धति, परंपरा और पाठ)*. राजकमल प्रकाशन, 2021, पृष्ठ 72-85.

सोबती, कृष्णा. *मित्रो मरजानी*. नवां संस्करण, राजकमल प्रकाशन,2018

उपसंहार

प्रतिरोध अपेक्षित के मार्ग में उत्पन्न अवरोध के विरुद्ध खड़ा होने की वैचारिक परिघटना है। यह सहज-स्वाभाविक प्रतिक्रिया का बोध कराता है, लेकिन प्रतिकार एवं प्रतिशोध का संस्कारमूलक प्रस्थान है। इसमें सत्ता, प्रतिसत्ता की जगह जरूरी प्रतिशक्ति की अनिवार्यता बनी रहती है। अपनी प्रकृति में यह हिंसक एवं संगठित अभिव्यक्ति माना जाता रहा है, लेकिन यह समग्रता में उतना ही अहिंसक भी है। मुखर होकर विरोध में खड़ा होना यदि प्रतिरोध है, तो मौन में भी इसकी सार्थक अभिव्यक्ति संभव हो जाती है। साहित्य में प्रतिरोध शब्द का पहला प्रयोग फिलिस्तानी लेखक गासान कानाफानी के शोध शीर्षक 'अधिकृत फिलिस्तीन में प्रतिरोध का साहित्य : 1948-1966' से हुआ, लेकिन प्रतिरोध कोई नई अवधारणा ना होकर मानव के विकास की पूरी प्रक्रिया में निहित है। इसी कारण मैनेजर पांडेय प्रतिरोध को 'संस्कृति का अंग' मानते हैं, तो डॉ० प्रवीण कुमार 'प्रतिरोध की भी अपनी एक संस्कृति' की बात करते हैं।

प्रतिरोध की वैचारिकी के निर्माण के तहत मैंने पाया कि प्रतिरोध के दौरान नैतिकता, मूल्य, परंपरा, सत्ता, प्रतिसत्ता, अस्मिता और अस्तित्व के संबंध परस्पर द्वन्द्वमूलक हैं और इसी द्वन्द्व में इसका अनिवार्य विकास भी संभव है। इसमें विभिन्न विचारधाराओं का समय-समय पर योग रहा है। इसी क्रम में स्त्री-प्रतिरोध की जो अवधारणा रही, वह प्रतिरोध के विभिन्न तत्वों एवं विचारधाराओं के अनुरूप समय-संदर्भ के अनुसार बदलती रही है। स्त्री-प्रतिरोध को साधारणत: स्त्री का 'स्व' के लिए किए गए प्रतिरोध तक सीमित मान लिया जाता है, लेकिन इस शोध में मैंने चयनित रचनाओं के परिप्रेक्ष्य में स्त्री-प्रतिरोध की अवधारणा को इससे कहीं अधिक व्यापक और बहुआयामी रूप में देखा है। प्रस्तुत शोध में स्त्री संबंधित मुद्दों के साथ स्त्री से इतर अन्य राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय मुद्दों पर स्त्री अनुभव से किए गए प्रतिरोध को भी विषय बनाया गया है। साथ ही पुरुष रचनाकारों के द्वारा स्त्री नजरिए से किया गया प्रतिरोध भी स्त्री-प्रतिरोध की अवधारणा को समृद्ध करता है।

स्त्री-प्रतिरोध का स्वरूप परिवर्तनशील रहा है। इस परिवर्तन के पीछे भारतीय एवं पाश्चात्य चिंतकों एवं मार्क्सवादी, समाजवादी, व्यक्तिवादी, अस्तित्ववादी, मनोविश्लेषणवादी, आधुनिकतावाद और उत्तर-आधुनिकतावादी विचारधाराओं की विशेष भूमिका रही है। इसे कथा साहित्य में विषय बनाया गया है। वैदिक काल में धर्मशास्त्र की आचार संहिता में 'मनुस्मृति' को स्त्री जीवन का एकमात्र आधार बनाकर उसका शोषण प्रारंभ हुआ। इस संदर्भ में 'लोपामुद्रा', 'मैत्रेयी', 'गार्गी' जैसी स्त्रियों द्वारा प्रतिरोध दर्ज किया गया। आदिकाल में सिद्धों की प्रेमरहित दैहिक निकटता के नाम पर स्त्री-शोषण का जो चक्र शुरू हुआ, उसका प्रतिरोध नाथों में गोरखनाथ की वाणी से शुरू हुआ। मध्यकाल में स्त्री-प्रतिरोध का स्वरूप परिवर्तित होकर मीरा के यहां सामंती व्यवस्था और भौतिकतावाद के विरोध में देखा गया, वहीं कबीर और तुलसी से लेकर बिहारी के यहां भी स्त्री

संबंधित रूढ़ छवि का विरोध रहा। नवजागरण काल और समाज सुधारकों के प्रयास से स्त्री प्रश्न सामाजिक और कानूनी प्रश्न बने एवं स्त्री जीवन की विसंगतियों को दूर करने के लिए सती-प्रथा, बहुविवाह पर रोक लगाया गया एवं विधवा पुनर्विवाह, स्त्री शिक्षा जैसी चिंता केंद्र में आने लगी। राजा राममोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, दयानंद सरस्वती, श्रीमती एनी बेसेंट, सावित्रीबाई फुले, सरोजिनी नायडू जैसे नारीवादी चिंतकों ने स्त्री-प्रतिरोध को समय-संवेदना के संदर्भ में संस्कारित करने का प्रयास किया। राजनीति में भी स्त्री की सक्रिय भागीदारी पर विचार किया जाने लगा। 60-70 के दशक तक आते-आते नैतिकता को 'रूढ़ नैतिकता' बताकर नई नैतिकता के नाम पर 'नैतिकता के निजीकरण' के कारण स्त्रीवादी प्रतिरोध उग्र होने के साथ-साथ एकपक्षीय हो गया। 21वीं सदी में प्रतिरोध के इस दिशा-बोध की पहचान स्त्रीवादियों द्वारा की गई, जिसके तहत प्रतिरोध की दिशा में 'प्रतिरोध के भ्रम' के विरुद्ध कथा सृजन एक उपलब्धि रहा।

स्त्री-पुरुष संदर्भ में समानता एवं बराबरी के नशे में पुरुष समाज को एक सिरे से दोषी करार देने का चलन स्त्री-प्रतिरोध का एक अनिवार्य पड़ाव रहा है। वहीं 21वीं सदी के भारतीय परिप्रेक्ष्य में महादेवी के संस्कारमूलक दृष्टिकोण को आधार बनाकर प्रतिरोध को प्रतिशोध के दायरे से बाहर निर्मित किया गया है, जिसकी मैंने इस शोध में पहचान की है। स्त्री की नजर में सदियों से शोषक, अहंकारी, विकृत पुरुष मन के पीछे संस्कार रूप में सक्रिय फैन्टेसी को विषय बनाया गया है। साथ ही फैन्टेसी से पोषित पल्लवित रूढ़ स्त्री मन की भी पहचान यहाँ की गई है। इस दिशा में अनामिका का 'तिनका-तिनके पास', सुश्री शरद सिंह का 'कस्बाई सिमोन, जयश्री राय की 'औरत जो नदी है', मधु कांकरिया की 'बीतते हुए', अशफाक अहमद का 'जूनियर जिगोलों' का विशेष योगदान है। इनसे आगे जयश्री राय की 'एक रात' सूरज प्रकाश की 'लहरों की बाँसुरी' कहानियों ने पुरुष संस्कार का काम किया है।

प्रेम-काम का मामला स्त्री-पुरुष के बीच घोषित तौर पर जितना जरूरी है, उतना ही विवादास्पद भी रहा है। स्त्री विमर्श की शुरुआत 'मेरी देह, मेरी मर्जी' के नारे के साथ होती है और पुरुष के प्रतिरोध में खड़े होने का पहला मामला भी देह के संदर्भ से ही जुड़ता है। प्रेम-काम संदर्भ के द्वन्द्वमूलक होने के पीछे सबसे बड़ा कारण प्रेम-काम संबंधी फैन्टेसी और उससे निर्मित रूढ़ मन है, जिसकी पहचान इस शोध में की गई है और इसका ही परिणाम है कि एक स्त्री 'परिचित तरीके' से प्रेम में काम की आपूर्ति खोजती है, तो पुरुष 'जिज्ञासु तरीके' से काम में प्रेम की तलाश करता है। यहीं दोनों के 'लक्ष्य-उपलक्ष्य' में टकराव उत्पन्न होता है और प्रतिरोध जन्म लेता है। अनामिका, सुश्री शरद सिंह, जयश्री राय, मधु कांकरिया, अशफाक अहमद ने इस दिशा में प्रतिरोध को मुकम्मल स्वरूप प्रदान किया है।

प्रेम-काम मामले में स्त्री-प्रतिरोध की जो परंपरा विमर्श के अंतर्गत दिखाई पड़ती है, वह 'नई नैतिकता' के नाम पर 'नैतिकता के निजीकरण' से प्रदूषित होकर मनमर्जीपन के कारण पुरुष जैसे आचरण तक सीमित रह गई। मृदुला गर्ग के 'चित्तकोबरा' की 'मनु' तन और मन में विभाजित होने के वाबजूद दाम्पत्य में अंग-संग का यथार्थ रचती है, लेकिन मन्नू भण्डारी की कहानी 'ऊंचाई' में नायिका नई नैतिकता के तहत कहीं न कहीं भावनात्मक मनमर्जी को ही रच पा रही है। समानता इतनी है कि यहाँ दोनों नायिकाएं दाम्पत्य से इतर संबंधों में अपराधबोध नहीं पालती हैं। यही अपराधबोध से मुक्त सोच एवं आचरण 21वीं सदी में मनमर्जीपन की अति के रूप में 'इन्द्रधनुष के पार', 'औरत जो नदी है', 'वर्जित सुख', 'कस्बाई सिमोन', 'देह के पार', 'सखी-सहेली', 'एडोनिस के रक्त और लिलि के फूल', 'पत्ताखोर' में घटित हो गई है। पुरुष को 'आपाद मस्तक लिंग' घोषित करना या पति को 'फिक्स्ट डिपॉजिट' और प्रेमी को 'करंट अकाउंट' के रूप में जीना जैसे मनमर्जीपन की अति को लेकर 21 वीं सदी की लेखिकाओं ने विषय बना स्त्री प्रतिरोध के नाम पर मनमर्जीपन से घटित स्त्री के दूषित आचरण पर भी अपनी आपत्ति रचनात्मक स्तर पर दर्ज की है। इस अति को लेकर की गई आपत्ति प्रतिरोध का बुनियादी तत्व है।

प्रेम-काम में वैवाहिक, विवाहेतर या लिव-इन का मामला हो, यह पारंपरिक अवधारणा रही कि केवल स्त्री ही प्रेम की आकांक्षा पालती है, लेकिन अब जब उसकी भी प्रेम की आकांक्षा बाधित होती है, तब वह भी काम की ओर बढ़ती है और बिना प्रेम के काम को सोलो-सेक्स और जिगोल के माध्यम से जीना चाहती है। महुआ माजी की 'छाया युद्ध', अल्पना मिश्र की 'कथा के गैरजरूरी प्रदेश में', अलका सिन्हा का 'जी-मेल एक्सप्रेस', अशफाक अहमद का 'जूनियर जिगोलो' इस दिशा में विवेचनीय रचनाएं हैं। जरूरत है उनकी काम चेतना को मानवीय धरातल प्रदान करते हुए उनके प्रेम-काम संबंधी प्रतिरोध को समग्रता में लेने की। विचारणीय है कि स्त्री की काम-दृष्टि पुरुष की काम चेतना के प्रति कैसे उदार बन पाएगी। इस उदारता को 'ताप','स्टोरी - स्टोरी नाइट्स' कहानियों में विषय बनाया गया है, जिसे आधार बना प्रेम-काम के मामले में द्वन्द्वग्रस्त प्रतिरोध की शोधमूलक परख मैंने इस शोध में की है।

पुरुष को उसकी प्रेम रहित काम-चेतना के कारण सदा निकृष्ट बताया जाता है। चूंकि स्त्री की काम भावना पुरुष के द्वारा ही प्राकृतिक रूप में तृप्त हो सकती है, इसलिए यह शत्रुता प्रतिरोध को प्रतिशोध तक ही सीमित कर रखी है। स्त्री-प्रतिरोध की दिशा में अपने काम संबंधित आचरण के कारण पुरुष को शत्रु बनाकर ही देखा जाता रहा है, जबकि सच तो यह है कि बुरे को बुरा कहकर अच्छा बनाना संभव नहीं है। मृदुला गर्ग ने 'देसी फेमिनिस्ट' शीर्षक से विचार किया है कि फेमिनिस्ट होना घर के कचरे को बाहर फेंकना नहीं, बल्कि बाहर के कचरे को भी साफ करना है अर्थात् पुरुष बुरा है, तो उसे बुरा कहकर मुक्त हो जाने में नहीं, बल्कि संस्कार करने में ही स्त्रीवाद की सार्थकता है। अनामिका के भी यही विचार रहे और संस्कार की दिशा में 21वीं

सदी में जयश्री राय की 'एक रात', सूरज प्रकाश की 'लहरों की बाँसुरी' रचनाएँ उल्लेखनीय हैं। चूंकि प्रेम-काम का मामला एक-दूसरे के साथ जीने में है, ऐसे में एक-दूसरे को उनके स्वाभाविक विकास की दिशा में समझकर ही ऐसे संबंध को स्वस्थ दिशा दी जा सकती है और प्रतिरोध को प्रतिशोध या प्रतिकार से आगे मुकम्मल दिशा प्रदान की जा सकती है। इस शोध में प्रतिरोध का मुकम्मल स्वरूप स्थापित कर स्त्री-प्रतिरोध के प्रेम-काम के मामले को शत्रुता से आगे देखने की समावेशी दृष्टि विकसित की गई है, ताकि स्त्री-प्रतिरोध के नाम पर पितृसत्ता की जगह पुरुष विरोध और उन्हें शत्रु के रूप में देखने की जो प्रवृत्ति प्रचलन में है, उसके खिलाफ मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित हो सके।

21वीं सदी का मध्यवर्गीय परिवार घरेलू कामगारों के बिना चल नहीं सकता। इन कामगारों में महिला कामगारों को 21वीं सदी में यदि प्रतिरोधी तेवर में दिखाया गया है, तो इसके प्रतिरोध के अंतर्विरोध को भी विषय बनाया गया है। भूमंडलीकरण के बाद विकास के नाम पर शहर की ओर विस्थापन की जो प्रक्रिया घटित हुई, उसने संयुक्त परिवार को तोड़ा । ऐसे में कामकाजी महिलाओं के परिवार में घरेलू कामगार की अनिवार्यता बढ़ी। काम के सिलसिले में शहर की तरफ विस्थापित निम्न वर्ग की महिलाएं मध्यवर्गीय कामकाजी परिवार में काम की तलाश में घरेलू कामगार के रूप में नियुक्त की गईं। घर में महिला कामगार के होने पर मध्यवर्गीय परिवार की सामाजिक प्रतिष्ठा बढ़ती है, तो साथ ही उस परिवार में जो महिला सदस्य है, स्वयं मे गर्वित रहती हैं। भीष्म साहनी की कहानी 'राधा- अनुराधा' हो या अर्चना वर्मा की कहानी 'राजपाट', ये कहानियाँ घरेलू महिला कामगार के प्रति संवेदना को ही विषय बनाती हैं, जबकि 21वीं सदी में इनके प्रति संवेदना के साथ-साथ प्रतिरोध की वैचारिक भूमि तैयार की गई है। घरेलू महिला कामगारों के साथ पारिश्रमिक एवं यौनिक शोषण को विषय बनाते हुए मध्यवर्गीय परिवार के साथ इनके अनपेक्षित आचरण को भी पूरी तटस्थता के साथ विषय बनाया गया है। इनकी यथास्थिति यदि चिंता का विषय है, तो यथास्थिति से उबरने के इनके प्रयास वर्तमान समय की चुनौती भी है, जिसके आधार पर 'डाउनलोड होते हैं सपने', 'मोह, माया, मंडी', ''लौट आओ तुम !', 'बराबरी का खेल', 'एक नौकरानी की डायरी' में प्रतिरोध की वैचारिक धरातल निर्मित की गई है। घरेलू महिला कामगारों के साथ विडम्बना यह है कि जिस घरेलू काम को परिवार के सदस्य हीन दृष्टि से लेते हैं, उसी तरह घरेलू महिला कामगार भी घरेलू काम को हीन दृष्टि से ही देखती हैं। इसका प्रमाण यह है कि कोई भी महिला कामगार इस काम में अपनी संतान को लाना नहीं चाहती, जो इनके प्रतिरोध की मूल जमीन तैयार कर रहा है। 'उमा-महेश' की उमा 'फिर मिलना कारी' की कारी या 'नाम में बहुत कुछ रखा है' की रानी उर्फ मेहरुनिस्सा के संदर्भ में इसे विश्लेषित किया गया है। घरेलू काम के प्रति ऐसे नजरिए का परिणाम है कि घरेलू कामगार और मालिक सदस्या के बीच संबंध परस्पर द्वंद्वमूलक बने रहते हैं और ऐसे द्वन्द्व ही विरोध-प्रतिरोध का मौन और मुखर माहौल बनाए रखते है। दूसरी ओर, बहुत बड़ा प्रसंग यह उपलब्ध हुआ कि जिन परिवारों

में घरेलू महिला कामगार काम करती हैं, वे सुखी सम्पन्न होते हैं और उसके बीच उन सुख-समृद्धि को वे भी अपने मन-मस्तिष्क में डाउनलोड करती रहती हैं। 'डाउनलोड होते हैं सपने', 'मोह, माया ,मंडी', ''लौट आओ तुम !'' में ऐसे प्रसंग बने हैं। मध्यवर्गीय परिवार की इन सुविधाओं को जी पाने की चाहत में संबंध सदा तनावपूर्ण बना रहता है, जहां प्रतिरोध कभी-कभी प्रतिशोध के रूप में भी साकार होने लगता है। एक ओर घरेलू महिला कामगार आर्थिक कारणों से ऐसे काम करने को विवश है, तो दूसरी ओर मध्यवर्गीय परिवार सामाजिक प्रतिष्ठा बनाए रखने और घरेलू कार्य संस्कृति से विमुख होने के कारण इन कामगारों पर पूरी तरह से निर्भर है। इसी कारण घरेलू कामगारों से असंतुष्ट होने के वाबजूद भी मालिक सदस्यों के द्वारा प्रतिरोध संभव नहीं दिखता। 'बराबरी का खेल', 'रोशनी के अच्छे दिन', ''लौट आओ तुम !' में इसे विषय बनाया गया है। एक ओर घरेलू महिला कामगार अपने श्रम को प्रतिरोध का आधार बनाती है, लेकिन आर्थिक मजबूरी से उत्पन्न विवशता के कारण मालिक हो या मालकिन दोनों के साथ समझौते के स्तर पर भी आ रही है, जिसे विषय बना रचनाकार ने इनके अनर्मन में निहित प्रतिरोध जो विवशता में मौन रह जा रहा, उस पर कलम चलाई है। साथ ही रचना के स्तर पर ऐसे समझौतापरक आचरण का प्रतिरोध भी दर्ज किया है। इसके अतिरिक्त 'निश्चय' 'जीवट' जैसी कहानियों के माध्यम से मुखर प्रतिरोध को भी विषय बनाया है। दूसरी ओर, मालकिन सदस्य घरेलू कामगारों पर निर्भर रहने के कारण आज प्रतिरोध की स्थिति में दिखाई नहीं पड़ती, जिसे विषय बना घरेलू महिला कामगारों के शिकारी आचरण का मालिक वर्ग के हित में प्रतिरोध ''लौट आओ तुम !', 'बराबरी का खेल' कहानियों के माध्यम से दर्ज किया गया है। मुख्यधारा के बीच घरेलू महिला कामगारों के प्रतिरोध की दशा एवं दिशा को इन संदर्भों में द्वंद्वमूलक ही नहीं अंतर्विरोधी भी पाते हैं। वर्तमान समय में कोई भी समाज जो वैश्विक दिशा की ओर अग्रसर है, आर्थिक रूप से समृद्ध होने के कारण घर-परिवार से बाहर इस कदर व्यस्त होता है कि उसे घरेलू कामगारो पर निर्भर होना पड़ता है। वैश्वीकरण के दौर में महानगरीकरण की प्रक्रिया इतनी तेज हुई कि घरेलू कामगारों और उसमें विशेषकर महिला कामगारों की संख्या में सबसे अधिक वृद्धि हुई है। इस कारण इनके प्रतिरोध पर विचार 21वीं सदी के कथा साहित्य का मुख्य प्रतिरोधी स्वर बन पाया है। इसके वाबजूद रचनाएं हों या आलोचना हों, इनपर कम ही विचार हो पाया है और शोधकार्य में भी यह वर्ग उपेक्षित ही रहा है। ऐसे में शोध कार्य में इनके प्रतिरोध और इनके कारण उत्पन्न समस्या के प्रतिरोध के संदर्भ को रखना प्रस्तुत शोधकार्य के लिए अनिवार्य उपलब्धि के समान है। स्त्री विमर्श व प्रतिरोध के केंद्र में अधिकांश में मध्यवर्ग रहा है। ऐसे में मध्यवर्ग के बीच के हाशियाकृत वर्ग घरेलू महिला कामगार के प्रतिरोध को स्त्री-प्रतिरोध की दिशा में विषय बनाना प्रतिरोध को वर्गीय खांचे से बाहर निकाल समग्रता में देखने की मेरी ओर से बेहद जरूरी पहल है।

विकास के किसी भी फैसले में सत्तारूढ़ पाटियों का प्रत्यक्ष योगदान रहता है, ऐसे में महिलाओं के विकास के लिए जरूरी है कि स्त्रियाँ राजनीति में अधिक से अधिक हिस्सा लें और इसके लिए प्रयाप्त अवसर

उपलब्ध कराया जाए। 21वीं सदी के कथा साहित्य में 'राजनीति में आई' और 'राजनीति में लाई' दोनों तरह की स्त्रियों की यथास्थिति का प्रतिरोधमूलक यथार्थ विषय बनाया गया है। पश्चिम में नारीवादी आंदोलन का श्री गणेश स्त्री के राजनीतिक अधिकार की मांग के साथ हुआ। भारतीय परिप्रेक्ष्य में गांधी, टैगोर, स्त्री-राजनीति के पक्षधर रहे। इसके पीछे यह विचार रहा कि स्त्री की राजनीतिक भागीदारी न केवल उसकी सामाजिक स्थिति को बेहतर बनाएगी, बल्कि स्त्रियोचित्त गुण के कारण पूरे समाज एवं राष्ट्र के हित में उपयोगी होगी। इसी विचार के तहत संवैधानिक प्रक्रिया में आरक्षण की व्यवस्था की गई। आज पंचायत में स्त्रियों के लिए आरक्षण है, तो पार्टी स्तर पर विभिन्न पार्टियों ने आरक्षण दिया है। वास्तविक जगत में राजनीति में स्त्रियां आ भी रही हैं और लाई भी जा रही हैं, लेकिन कथा जगत के इन दो दशकों में राजनीति का चरित्र स्त्री के लिए प्रतिरोधी है। इतने प्रयास के बावजूद राजनीति में स्त्री आ रही है, तो पुरुष रणनीति के तहत और उनकी अपनी सत्ता के संचालन के निहितार्थ। राजनेता कलाजगत, पिछड़ेवर्ग से, महिलाओं को रबड़ स्टैंप की तरह अपनी राजनीति साधने के लिए लाते हैं और स्त्री, पुरुष-राजनेता की कठपुतली बन कर रह जाती है। यानि पद पर आसीन, सत्ता में गौण। मैत्रेयी पुष्पा का उपन्यास 'त्रिया हठ', ऋषिकेश सुलभ का उपन्यास 'अग्निलीक', नीलिमा सिन्हा की कहानी 'तैंतीस परसेंट' में अयोग्य होने के बाबजूद राजनीति में आने वाली स्त्रियों की जमात है, जिससे राजनीति का कोई भला नहीं हो रहा है, बल्कि दलगत राजनीति और सत्ता पक्ष का ही हित हो रहा है। अंतत: राजनीति ही होती रह जाती है, न कि कल्याणकारी कार्य। स्त्री-राजनीति में पुरुष राजनेता का नजरिया स्त्री राजनेता की अस्मिता को आहत करता है, उसका प्रतिरोध भी रचा गया है।

राजनीति के प्रति परिवार-समाज में स्वस्थ दृष्टिकोण का अभाव स्त्री-राजनीति के पक्ष में प्रतिरोधी वातावरण निर्मित करता है। रजनी गुप्त का उपन्यास 'ये आम रास्ता नहीं, किरण सिंह की 'यीशू की कीलें' में इसे विषय बनाया गया है। इन सबसे ऊपर दलीय प्रतिबद्धता के नाम पर, दल के हर गलत फैसले में भी चुप्पी साधे रहने की मजबूरी के तहत स्त्री राजनीति स्त्रियोचित्त गुणों से रहित पुरुष राजनीति से किसी भी स्तर पर भिन्न नहीं हो पाती। वास्तविक राजनीति के इस सच को कथा साहित्य ने 'दांव', 'यीशू की कीलें', 'ये आम रास्ता नहीं', 'अग्निलीक', 'तैंतीस परसेंट' में विषय बनाया है। सत्ता की बात आते ही, सत्ता की चाहत रखने वालों के लिए सेंटर में बने रह जाना लक्ष्य रह जाता है। परिणामस्वरूप हत्या, आत्महत्या जैसे सारे षड्यंत्र होते आए हैं। एक स्त्री राजनेता भी सत्ता में आने के लिए ऐसा करने से पीछे नहीं हटती। 'यीशू की कीलें' की दीदीजी, 'दांव' की पूनम यादव का चरित्र इसका प्रमाण है। इस दिशा में स्त्री राजनीति पुरुष राजनीति से किस प्रकार भिन्न है व राजनीति के माध्यम से समाज कल्याण कहां तक संभव हो पा रहा है? ऐसे संदर्भ भी प्रश्न के घेरे में है और इसीलिए के0 पी0 प्रेमिला पुरुष विनिर्माण की ज़्यादती को आपत्तिजनक और मृदुला गर्ग स्त्री-राजनीति से अपेक्षा को गफलत बतलाती हैं। इसके अतिरिक्त कथा साहित्य इस कटु सत्य का बयान कर रहा है कि राजनीति

में दैहिक शोषण को सहने को स्त्री राजनेता बाध्य होती है। चाहे कितना ही मजबूत बैकग्राउंड हो, कितने ही पुराने और बड़े पद पर ही क्यों ना हों, छुटभैया नेता से लेकर बड़े पदाधिकारी तक शोषण करते हैं। वास्तविक राजनीति की इस स्थिति को रमणिका गुप्ता ने आत्मकथा 'आपहुदरी' में व्यक्त किया है। 21वीं सदी के इन दो दशकों की तमाम रचनाएं 'हसीनाबाद','ये आम रास्ता नहीं','यीशू की कीलें','दांव' में इसे विषय बनाया गया है। राजनीति के ऐसे शोषण से घबराकर पलायन कर जाए स्त्री राजनेता जैसा कि मृदु, गोलमी, भारती करती हैं या फिर जन कल्याणकारी योजना को अंजाम देने के लिए अपराध-बोध रहित देह को युक्ति बनाने का संकल्प लें, जैसा कि रत्ना, पूनम यादव करती हैं। ये दोनों ही उपाय स्त्री-राजनीति के उद्देश्य को फलीभूत नहीं कर पाते है। ऐसे में एक तीसरे उपाय की ओर भी 21वीं सदी का कथा साहित्य संकेत कर रहा है, जिसे गीताश्री ने 'हसीनाबाद' की गोलमी और किरण सिंह ने 'यीशू की कीलें' की भारती के संकल्प के द्वारा रखा है। वे भले राजनीति छोड़ रही हैं, पर हमेशा के लिए नहीं। गोलमी राजनीति में आने वाली स्त्री के लिए स्वयं अपने बल पर राजनीति में आने का संकल्प करने पर जोर देती है। किरण सिंह की भारती राजनीति के स्त्री-विरोधी भ्रष्ट चरित्र के सुधार का संकल्प लेती है। जब तक स्त्री दूसरे के बल पर राजनीति में आती रहेगी, तब तक राजनीति के स्त्री विरोधी चरित्र का संस्कार नहीं होगा। ऐसे में स्त्री राजनीति दूर की कौड़ी बनी रहेगी। राजनीति हमेशा ही शोध का विषय बनती रही है। राजनीति में स्त्री के साथ घटित होने वाली विद्रूपत्ता और केंद्र में आने के लिए उनके द्वारा की जाने वाली विद्रूपता एवं सत्ता में आ जाने के बाद उनकी राजनीतिक रणनीति एवं कार्यप्रणाली को लेकर 21वीं सदी के दो दशकों के कथा साहित्य में भले ही रचनाएं कम आई हैं, लेकिन प्रतिरोध की भूमि तैयार की गई है। इसपर प्रस्तुत शोध में विचार किया गया है, ताकि स्त्री-राजनीति के मार्ग से अवरोध को दूर किया जा सके।

आज घर की चाहरदीवारी से बाहर निकलकर स्त्री अपना अस्तित्व गढ़ रही है। वास्तविक राजनीति में भी उनकी सक्रियता बढ़ी है। इतने के वाबजूद स्त्री-राजनीति के प्रति राजनीतिक माहौल प्रतिकूल है। उनके साथ और उनके द्वारा घटित प्रतिकूलता के परिवेश में जहाँ वास्तविक राजनीति में उनकी संख्या बढ़ती जा रही है, वहीं साहित्य में राजनीति से 'सकारण दूर होना' स्वयं में प्रतिरोध है। ऐसे में वास्तविक राजनीति और कथा साहित्य की राजनीति की परस्पर विरोधी स्थिति के प्रति एक मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रस्तुत है। राष्ट्रीय धरातल पर उनका जो अस्तित्व बन रहा है, वह राजनीति के स्त्री विरोधी चरित्र के खिलाफ है और अपनी जमीन बनने की दिशा में सक्रिय और संगठित, ताकि अपनी योजनाओं को अंजाम दे सके। स्त्री के प्रति राजनीतिक नजरिए का प्रतिरोध रचा गया है, तो साथ ही स्त्री के द्वारा की गई राजनीति का प्रतिरोध भी विषय बनाया गया है। इस अंतर्विरोध के प्रति संस्कारमूलक दृष्टिकोण प्रतिपादित किया गया है, ताकि स्त्री-राजनीति के बहुआयामी संदर्भों में सृजनात्मक दिशा में प्रतिरोध निर्मित हो।

नागार्जुन 'संकुचित स्व के आपाधापी के निषेधार्थ' समाज के हित में प्रतिबद्धता को महत्व देते हैं। स्त्री-प्रतिरोध भी आज संकुचित स्व से आगे पूरे समाज के प्रति प्रतिबद्ध है। भूमंडलीकरण के बाद भौतिक सभ्यता हम पर हावी हो रही है। इस भौतिक सभ्यता के दौर को हन्टिगटन ने 'सभ्यता के संघर्ष' का दौर कहा। पुरुषोत्तम अग्रवाल ने 'सभ्यता का संकट' के रूप में इसे चिह्नित किया। अल्विन टॉफलर ने इसके अनुरूप हमारे सबकुछ परिवार, समाज, जीने का ढब के 'ट्यून' होने की बात रखी है और पुष्पपाल सिंह ने नव-साम्राज्यवाद के बाद पनपी इस नई सभ्यता के बहाव में बहते चले जाने की हमारी बाध्यता को मुद्दा बनाया है। भूमंडलीकरण के बाद हम सभ्यता के संकट के दौर से गुजर रहे हैं। आर्थिक समृद्धि को इतना अधिक महत्व दे रहे हैं कि मनुष्य होने की संवेदना गैरजरूरी प्रतीत होती है। इस दिशा में आज बाजार केंद्रित हमारी पारिवारिक-सामाजिक संरचना चिंता का विषय बन रही है। आज घर से समाज नहीं बन रहा, बल्कि बाजार के मूल्य हमारे घर और समाज में आ रहे हैं। विकास का अर्थ पैसा कमाना हो रहा है, चाहे माध्यम जो भी हो। समाज झुंड में बदल रहा है। इसमें परिवार व समाज में बच्चे, युवा, बुजुर्ग या हाशिये का समाज आदिवासी, दलित, किन्नर सारे के सारे विकास के नाम पर भौतिक स्तर पर औपचारिक रूप से समृद्ध तो नजर आ रहे हैं, पर चेतना के स्तर पर संवेदनाशून्यता कायम है। आज परिवार में बच्चे अकेलापन, संबंधों में प्रतिस्पर्धात्मक माहौल को झेल रहे हैं। माता-पिता के स्टेटस सिंबल बन कर रह गए हैं। ऐसे में परिवार के मूल में अपनत्व, ममत्व व भावनात्मक जुड़ाव से दूर हो रहे हैं। 'पत्ताखोर', 'दाखिला', 'बड़ा पोस्टर', 'कोई बात नहीं' रचनाओं में इस संकट को विषय बनाया गया है। युवा वर्ग आर्थिक समृद्धि में 'कैरियर ओरिएंटेड' होकर परिवार से दूर हो रहा है, तनाव में जी रहा है। 'लेडी बॉस', 'लोड शेडिंग' रचनाएं इस दिशा में उल्लेखनीय हैं, तो बुजुर्ग अकेलेपन के संत्रास को झेलने को मजबूर हैं। ममता कालिया का 'दौड़', चित्रा मुद्गल का 'गिलिगडु' मृदुला गर्ग की कहानी 'बेंच पर बूढ़े' इस दिशा में प्रतिरोधमूलक उल्लेखनीय सृजनात्मक सरोकार लिए है। आज घरेलू स्त्री को आत्मनिर्भर होने के अवसर तो मिल रहे हैं, पर परिवार में यौनिक शोषण का प्रसंग भी बना हुआ है। ऐसे में विकृत पारिवारिक संरचना स्त्री-प्रतिरोध का विषय बनी है। सामाजिक धरातल पर अर्थ-संस्कृति इस तरह हावी हो रही है कि विकास के नाम पर विस्थापन व उससे उत्पन्न अकेलेपन, तनाव का संकट बना हुआ है। शिक्षण व सांस्कृतिक संस्थानओं में चेतना व मूल्य निर्माण की जगह व्यावसायिक प्रवृत्ति की सोच बढ़ रही है। धर्म के नाम पर शोषण, नैतिकता के निजीकरण से बदलते स्त्री-पुरुष संबंध और कामकाजी महिलाओं का दैहिक शोषण व शोषण में संभावना को अपने अनुरूप मोड़ने की विकृति पूंजीवादी अर्थ-संस्कृति की विरूपता को स्त्री लेखन ने 'दो पन्ने की औरत', कल्चर-वल्चर', 'सेज पर संस्कृति' में विषय बना प्रतिरोध दर्ज किया है। बाजार केंद्रित हमारा समाज विज्ञापन संस्कृति का गुलाम बन रहा है। सौंदर्य के नाम पर उसका विकृतिकरण हो रहा है। नशा, मानव तस्करी, देह व्यापार जैसे संकट की पहचान की गई है और इस संकट को 'अस्थि फूल', 'गुलाम मंडी' में विषय बनाकर

प्रतिरोध रचा गया है। अमर्त्य सेन ने भूमंडलीकरण के साथ हाशिये की मुख्यधारा में आने की बात को रखा और हम देख रहे हैं कि आज हाशिये का समाज आदिवासी, दलित, किन्नर मुख्यधारा की मुख्य चिंता बने हैं, लेकिन विकास और समृद्धि की चिंता में केंद्र में आने के बावजूद दलित जाति दंश को झेल रहे हैं, आदिवासी विकास के नाम पर विकास के भ्रम में अपनी जमीन से बेदखल किए जा रहे हैं, तो किन्नर मनुष्य के रूप में पहचान पाने की जद्दोजहद कर रहे हैं। इन संदर्भों को 'तुम्हें बदलना ही होगा', 'पोस्ट बॉक्स नंबर 203 नालासोपारा', 'सांझा', 'मरंग गौड़ा नीलकंठ हुआ', 'अस्थि फूल' में विषय बनाया गया है। ऐसे संकट विकास के नाम पर पूंजीवादी भौतिक समृद्धि के परिणाम हैं। जब संकट का कारण एक है, तो निवारण की दिशा में प्रयास भी एक ओर से होना चाहिए, इसलिए प्रो0 शंभुनाथ आज विमर्श को जोड़ने की बात करते हैं, तो मृदुला गर्ग स्त्री-विमर्श की जगह पर परिवार और समाज विमर्श की बात कर रही हैं अर्थात् नई सभ्यता के भौतिक विकास से जो नया संकट उत्पन्न हुआ है, उसका प्रतिरोध 21वीं सदी के कथा साहित्य में विषय बनाया गया है। आज अर्थ की चेतना ही हम पर कायम हो रही है। सभ्यता के संकट को उजागर करते हुए इस संकट को 'सम' करने की दिशा में स्त्री लेखन में जो प्रतिरोध दर्ज किया गया है, उसने स्त्री-प्रतिरोध के नए आयाम को जोड़ा है। स्त्री विमर्श को भी अपने संकुचित 'स्व' से आगे वैश्विक दिशा में मोड़ दिया है, जिसे इस शोध में प्रतिरोध की दिशा में अध्याय का रूप दिया गया है।

भाषा अभिव्यक्ति के साथ प्रतिरोध की अभिव्यक्ति का भी एक सशक्त माध्यम रही है। 21वीं सदी में स्त्री-संदर्भ को दो आयामों में विषय बनाया गया है। पहला, संदर्भगत एवं दूसरा, संरचनागत। 21वीं सदी के कथा साहित्य में स्त्री-प्रतिरोध की भाषा में स्पष्टवादिता आ गई है। आज प्रतिरोध की भाषा लक्षणा और व्यंजना से निकलकर साफ-साफ अविधा में आ गई है। अपनी अतृप्तियों को, अपने प्रतिरोध को साफ-साफ व्यक्त कर रही है। स्त्री का प्रतिरोध कुछ अंश में प्रतिक्रियावादी रहा, इसलिए प्रतिरोध की भाषा भी कहीं-कहीं प्रतिक्रियावादी हो गई है। पुरुष वर्चस्व को स्थापित करने वाली पुरुष भाषा को भी प्रतिरोध का माध्यम बनाया गया, जो वास्तव में स्त्री-प्रतिशोध का जरिया मात्र है। 'यीशू की कीलें' की भारती का 'एम सी' 'बी सी' जैसी भाषा का प्रयोग पुरुष वर्चस्व की भाषा का प्रमाण है। पुराने के साथ नए प्रतीक, बिम्ब का भी संदर्भनानुसार प्रयोग किया गया है। मिथकीय प्रसंग द्वारा, जिसका उपयोग अधिकांश में स्त्रियों को बांधने के लिए किया जाता रहा है, आज अपने प्रतिरोध को व्यक्त करने के लिए भी अपनाया गया है। 'ए अहिल्या', 'तुमने खजुराहो की मूर्तियाँ देखी है','औरत जो नदी है','एक रात' रचनाएं इस दिशा में उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त मुहावरे, लोकोक्तियों का प्रयोग भी हुआ है। जब कहना जरूरी हो और कह देने से अनैतिक करार दिए जाने की संभावना बनी रहे, तब डॉट्स के द्वारा अनकहे में बहुत कुछ कह जाना संभव हो जाता है। 21वीं सदी के कथा साहित्य में डॉट्स की भाषा का

प्रयोग अपने प्रतिरोध को व्यक्त करने के लिए स्त्रियों द्वारा बहुतायत में हुआ है, जो शब्द से अधिक प्रभावी हो उठे है। भाषा द्वारा प्रतिरोध में जीवंतता आ गई है।

उपलब्धियां

21वीं सदी के दो दशकों के परिप्रेक्ष्य में किया गया यह शोध कार्य अपने उद्देश्य के तहत चयनित शोध प्रविधियों की सहायता से स्त्री-प्रतिरोध के विभिन्न पक्षों का विश्लेषण करने में सक्षम है। बीसवीं शताब्दी में स्त्री-प्रश्न संवेदना तक सीमित रहा, इसलिए प्रतिरोध का स्वर भी एकांगी हो गया, वहीं 21वीं सदी में संवेदना के साथ विचार को भी स्थान मिला। इस शोध में प्रतिरोध की वैचारिक भूमि पर स्त्री-प्रतिरोध के विभिन्न पक्षों को विश्लेषित किया गया है। प्रेम-काम का द्वन्द्वमूलक प्रतिरोध, घरेलू महिला कामगारों का प्रतिरोध, स्त्री का राजनीतिक प्रतिरोध या सभ्यता के गहराते संकट पर उनके लेखन में किया गया प्रतिरोध और इन सबको लेकर भाषाई संदर्भ में प्रतिरोध की अभिव्यक्ति हुई है। शोध की उपलब्धि की पहली मांग उसकी सामाजिक उपयोगिता के परिप्रेक्ष्य में होती है। प्रस्तुत शोध कार्य द्वारा विमर्श के प्रतिरोधी सरोकार को पक्ष-प्रतिपक्ष से ऊपर मानवीय अस्मिता के परिप्रेक्ष्य में विषय बनाया गया है। जब पक्ष और प्रतिपक्ष से ऊपर उठकर मानवीय संदर्भ की बात करते हैं, तब शोध पढ़ते ही व्यक्ति सिर्फ अपने बारे में नहीं सोचेगा। जिससे उसका प्रतिरोध रहेगा, उसके बारे में भी सोचेगा। कहीं प्रतिरोध करते हुए हमारे प्रतिरोध के लिए भी मौका तो नहीं बन रहा है, इस पर भी विचार करेगा। प्रेम-काम का अध्याय स्त्री-विमर्श में पुरुष की स्त्री विरोधी अस्मिता के प्रति मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण को विकसित करने में सक्षम है। इस मामले में प्रतिरोध के नाम पर 'नैतिकता के निजीकरण' के कारण प्रतिशोध और मनमर्जीपन घटित हो रहा है, उसकी समझ बन रही है। प्रेम-काम का द्वन्द्व गतानुगतिक मामला है। पहले प्रेम या पहले काम। जैसे ही लक्ष्य-उपलक्ष्य के बारे में कोई भी पढ़ेगा, समझ जाएगा कि सामने वाले से जो उसकी उम्मीद है, वह उसके लिए भी महत्वपूर्ण है, लेकिन उसकी जरूरत के बाद। इसलिए थोड़ा धैर्य से काम लेगा। यही व्यावहारिक उपयोगिता है। इस प्रकार स्त्री-विमर्श के नाम पर पुरुष विरोध का जो चलन रहा, उसके पार स्त्री-विमर्श को समग्रता में देखने की चुनौती मिल रही है। प्रस्तुत शोध विमर्श के अछूते अध्याय के रूप में घोषित घरेलू महिला कामगार के प्रति, उनके शोषण के प्रति संवेदना एवं उसके द्वारा किए जा रहे शोषण के प्रति वैचारिक भूमि तैयार कर रहा है। अत: घरेलू महिला कामगारों को प्रतिरोध की दिशा में संवेदना से आगे विचार का विषय बनाया गया है। साथ ही मुख्यधारा के बीच हाशिया के रूप में केन्द्रीय प्रतिरोध के रूप में उभरता है। ऐसे में स्पष्ट है कि जहाँ भी घरेलू महिला कामगार है, तो जरूरी नहीं है कि उसके साथ अत्याचार ही हो रहा है, बल्कि वह भी अत्याचार कर सकती है। शोध को पढ़कर मध्यवर्ग के अंदर इनके प्रति चेतना जगेगी। साथ है यदि मेरे शोध के इस अध्याय पर चर्चा कामवालियों के बीच की जाए, तो कामवाली भी सोचेगी कि हमसे भी मालिक सदस्य परेशान हैं। शिकार भी शिकारी बन जाए, तब उसका भी प्रतिरोध जरूरी हो जाता है,

जो इस शोध में बखूबी विवेचित है। इसके साथ जो संस्थाएं इनके लिए काम कर रही हैं, उन्हें भी इनकी समस्याओं को समझने की एक भूमि मिलेगी और इनके अधिकार के साथ इनके कर्तव्य के बारे में भी सोचेगी। स्त्री के राजनीतिक प्रतिरोध का अध्याय व्यावहारिक स्त्री-राजनीति और कथा साहित्य की राजनीति के द्वन्द्वमूलक होने के कारण की पड़ताल कर रहा है। साहित्य में स्त्री का राजनीति से अधिकांश में पलायन एवं समाज में स्त्री की बढ़ती राजनीतिक भागीदारी स्वयं में विरोधाभाष रचता है, जिस पर समझ बन रही है। इस शोध को पढ़कर कोई भी स्त्री जो राजनीति में जाना चाहेगी, वह इसकी सारी चुनौतियों को पहले से जान लेगी और ऐसे में राजनीति में आ चुकी स्त्री समय-निर्माण के संकल्प के साथ नई आने वाली स्त्रियों के लिए मौन या मुखर प्रतिरोध करके रास्ता बनाएगी। स्त्री-प्रतिरोध व्यापक वैश्विक सरोकार से जुड़कर सभ्यता के संकट पर समझ बनाने में सहायक है। आज अधिकांश में भौतिक रूप में जो जितना समृद्ध है, विचार के स्तर पर उतना ही विपन्न है। प्रस्तुत शोध से इस विपन्नता के प्रति सतर्कता जन्म ले रही है। अत: इस शोध कार्य से भौतिक समृद्धि को जीने का आत्मबोध विकसित होगा। भाषा के स्तर पर आज मुखर तेवर के साथ स्त्रियाँ दिखाई पड़ती हैं, लेकिन हमारी उपलब्धि यह है कि वह भाषा उसी पितृसत्ता की है, जिससे उसे मुक्त होना है। उसी भाषा का इस्तेमाल करके वह कहीं न कहीं उसी पितृसता को समर्थन दे रही है। इसके प्रति गंभीरता अनिवार्य है। अत: इस शोध को पढ़कर किसी भी स्त्री को बोध होगा कि पुरुष के अनुकरण में गर्व नहीं पाले, बल्कि अपनी भाषा वह गढ़े। आज जब पूरी पारिवारिक-सामाजिक संरचना बाजार के संकट से गुजर रही है और जगह-जगह विमर्शों को जोड़ने की बात हो रही है, इस दिशा में स्त्री-विमर्श व स्त्री-लेखन को सीमित संकुचित दायरे से बाहर निकालकर देखना जरूरी हो गया है, ताकि विमर्श सच्चे अर्थ में प्रतिरोध का संस्कार कर पाए, यही विमर्श की प्रतिरोधमूलक उपलब्धि समान है।

प्रस्तावित शोध का उद्देश्य स्त्री-प्रतिरोध के स्वरूप एवं विभिन्न पक्षों की पहचान करते हुए उनका विश्लेषण करना और समस्या के कारक और निवारक तत्वों की छानबीन करना रहा। अपने उद्देश्य के तहत इस शोध में 21वीं सदी के कथा साहित्य में स्त्री-प्रतिरोध के स्वर, विभिन्न पक्षों की पहचान, विश्लेषण और विभिन्न पक्षों में समस्या के निराकरण बिंदुओं की पड़ताल की गई है। प्रेम-काम के मामले में 'फैन्टेसी निर्मित रूढ़ मन', घरेलू महिला कामगार के 'डाउनलोड होते सपने और उससे उत्पन्न स्वप्न और संघर्ष', स्त्री-राजनीति के प्रति 'दैहिक नजरिया व सुरक्षाकवच बनाम अपनी जमीन के निर्माण का संकल्प', सभ्यता के संकट में 'भौतिक समृद्धि में चेतनाशून्य जीवन प्रणाली' की पहचान प्रतिरोध की दिशा में की गई है, जो इस शोध का मौलिक प्रयास है।

सीमाएं एवं संभावनाएं

चूंकि यह शोध 21वीं सदी के दो दशकों के चयनित कथा साहित्य को लेकर किया गया है, इसलिए दूसरे दशक के बाद जिन रचनाओं में स्त्री-प्रतिरोध की दिशा उपलब्ध हुई है, जिसमें गीताश्री का'कामनाओं के मुंडेर पर', 'आम्रपाली', रजनी गुप्त की 'तिराहे पर तीन', सरिता निर्झरा की 'बड़ी उम्र की औरत', मधु कांकरिया की 'ढलती साँझ का सूरज', कविता वर्मा द्वारा संपादित उपन्यास 'देह की दहलीज', गीताश्री का 'कैद बाहर' आदि अनेक रचनाओं को शोध में शामिल नहीं किया जा सका हैं। इनपर आगे के शोधकर्ताओं द्वारा विचार की संभावनाएं बनती हैं। इसके अतिरिक्त इस शोध का प्रत्येक अध्याय अपने आप में शोध का स्वतंत्र विषय उपलब्ध करा रहा है। 'प्रेम-काम का द्वन्द्वमूलक प्रतिरोध' अध्याय में उपलब्ध वैवाहिक, विवाहेतर, लिव-इन, जिगोल, आत्मरति जैसे प्रसंग को उपशीर्षक बना कर स्वतंत्र शोध हो सकता है। 'घरेलू महिला कामगार' वाले अध्याय के भी कई आयाम पुरुष कामगार, प्रवासी कामगार, बालक कामगार जो इस शोध में अपनी सीमा के कारण अप्रस्तुत है, उसे विषय बना कर शोध कार्य किया जा सकता है।

संदर्भ-ग्रंथ सूची

आधार-ग्रंथ सूची

उपन्यास

अनामिका, *तिनका-तिनके पास*. वाणी प्रकाशन, 2008.

अहमद, अशफाक. *जूनियर जिगोलो*. ग्रडियस पब्लिशिंग हाउस, 2020.

कांकरिया, मधु. *पत्ता खोर*. राजकमल प्रकाशन, 2005

---, *सेज पर संस्कृति*. राजकमल प्रकाशन, 2008

कालिया, ममता. *कल्चर-वल्चर*. किताबघर प्रकाशन,2017.

---, दौड़. छब्बीसवाँ संस्करण, वाणी प्रकाशन, 2022.

गीताश्री. *बाहों के दरमियाँ. (ई-बुक)* जगरनॉट बुक, 2018.

---, *हसीनाबाद*.वाणी प्रकाशन, 2017.

गुप्त, रजनी. *ये आम रास्ता नहीं : राजनीति मे चक्रव्यूह में स्त्री*.वाणी प्रकाशन, 2013.

---, *एक न एक दिन*. किताबघर प्रकाशन, जनवरी 2008.

टाकभौरे, सुशीला. *तुम्हें बदलना ही होगा*. सामयिक प्रकाशन, 2015.

---, *नीला आकाश*. विश्व भारती प्रकाशन नागपुर, 2013.

पुष्पा, मैत्रेयी. *त्रिया हठ*, किताबघर प्रकाशन, 2020.

---, *विजन*. पेपरबैक चौथा संस्करण, वाणी प्रकाशन, 2020.

भुड़ारिया, निर्मला. *गुलाम मंडी*. सामयिक पेपरबैक्स, संस्करण 2021.

माजी, महुआ. *मै बोरिशाइल्ला*. राजकमल प्रकाशन, 2006.

---, *मरंग गौड़ा नीलकंठ हुआ*. राजकमल प्रकाशन, संस्करण 2012.

मिश्र, अल्पना. *अस्थि फूल*. राजकमल प्रकाशन, 2019.

मुद्गल, चित्रा. *गिलिगडु*. सामयिक प्रकाशन, 2007.

---, *पोस्ट बॉक्स नंबर 203 नाला सोपारा*. छठा संस्करण, सामयिक प्रकाशन, 2020.

राय. जयश्री, *औरत जो नदी है*. वाणी प्रकाशन, 2019

---, *दर्दजा (हव्वा की बेटियों की दास्तान)*. वाणी प्रकाशन, संस्करण 2016, आवृति 2018.

वैद, कृष्ण बलदेव. *एक नौकरानी की डायरी*. राजपाल प्रकाशन, 2009.

शर्मा, नासिरा. *कुइयांजान*. सामयिक प्रकाशन, 2009.

सरावगी, अलका. *एक ब्रेक के बाद*. राजकमल प्रकाशन, 2008.

---, *कोई बात नहीं*. राजकमल प्रकाशन, 2004.

---, *शेष कादंबरी*. राजकमल प्रकाशन, 2008.

सिंह, सुश्री शरद.*कस्बाई सिमोन*. द्वितीय संस्करण, सामयिक प्रकाशन,2017.

सिन्हा, अलका. *जी-मेल एक्सप्रेस*. किताबघर प्रकाशन, 2018.

सुलभ, ऋषिकेश. *अग्निलीक*. यश प्रिंटोग्राफिक्स, 2019.

कहानियाँ

ऋषिराज, गौतम."अनगिनत परिधियों वाला वृत." *कामुकता का उत्सव: प्रणय,वासना और आनंद की कहानी*, संपादक रंगनाथन, जयंती, वाणी प्रकाशन, 2020.

ओम, प्रियंका. "जट्टा और चिड़ैया." *रेखाएं बोलती हैं, भाग-2*, सम्पादक गीताश्री, शिवना प्रकाशन, मार्च 2019.

---,"विष्णु ही शिव है." *कामुकता का उत्सव:प्रणय,वासना और आनंद की कहानी,* संपादक रंगनाथन,जयंती, प्रथम संस्करण, वाणी प्रकाशन,2020.

कविता. "तुमने खजूराहों की मूर्तियाँ देखी हैं", *स्वप्न में वसंत*, संपादक बिहारी, राकेश, शिल्पायन,2014,

कांकरिया, मधु. "एक रुकी हुई स्त्री" *बीतते हुए* कहानी संग्रह, दूसरा संस्करण, राजकमल प्रकाशन, 2017.

---, "चूहे को चूहा रहने दो." *बीतते हुए*, दूसरा संस्करण, राजकमल प्रकाशन, 2017.

---, "दरअसल मम्मी." *बीतते हुए*, दूसरा संस्करण, राजकमल प्रकाशन, 2017.

---, "दाखिला" बीतते हुए कहानी संग्रह, राजकमल प्रकाशन, दूसरा संस्करण, 2017.

---, "नामर्द." *बीतते हुए*, दूसरा संस्करण, राजकमल प्रकाशन, 2017.

---, "बड़ा पोस्टर." *बीतते हुए*, दूसरा संस्करण, राजकमल प्रकाशन, 2017.

---, "बीतते हुए." *बीतते हुए*, दूसरा संस्करण, राजकमल प्रकाशन, 2017.

---, लेडी बॉस, बीतते हुए, दूसरा संस्करण, राजकमल प्रकाशन, 2017.

---, "लोड शेडिंग" बीतते हुए कहानी संग्रह, दूसरा संस्करण, राजकमल प्रकाशन, 2017.

कुमार, कमल. "सखी-सहेली." *कामुकता का उत्सव : प्रणय,वासना और आनंद की कहानी,* संपादक रंगनाथन, जयंती, वाणी प्रकाशन,2020.

कुमारी, ज्योति. अनझिप आँखें, दस्तक, 9 अक्टूबर 2012 http://dastakkhat.blogspot.com/2012/10/blog-post.html

कुलश्रेष्ठ ,मनीषा."एडोनिस का रक्त और लिलि के फूल." *कामुकता का उत्सव : प्रणय,वासना और आनंद की कहानी.* संपादक रंगनाथन,जयंती, वाणी प्रकाशन,2020.

खान, उषा किरण. "उमा-महेश." *उषा किरण खान की लोकप्रिय कहानियाँ*, प्रभात प्रकाशन, 2015.

गर्ग, मृदुला. बेंच पर बूढ़े, https://www.hindisamay.com/

गीताश्री, "एक रात जिंदगी", *प्रार्थना के बाहर और अन्य कहानियाँ*, वाणी प्रकाशन, 2013.

---, "गोरिल्ला प्यार." *स्वप्न में वसंत:स्त्री यौनिकता की कहानी*, संपादक बिहारी, राकेश, शिल्पायन प्रकाशन, 2014.

---, "डाउनलोड होते हैं सपने", हंस पत्रिका, वर्ष-30, अंक-8, वर्ष -मार्च 2016.

---, "ताप." *प्रार्थना के बाहर और अन्य कहानियाँ*, वाणी प्रकाशन, 2013.

---, दो पन्ने वाली औरत. *प्रार्थना के बाहर और अन्य कहानियाँ*, वाणी प्रकाशन,2013.

---, "माई री मैं टोना करिहों." *स्वप्न,साजिश और स्त्री मन*, सामयिक प्रकाशन, 2015.

जुबैरी, जाकिया. 'लौट आओ तुम !',
https://hindi.matrubharti.com/book/read/content/19883464/lout-aao-tum-1

झा, डॉ शिल्पी. "बराबरी का खेल". मन पाखी (मन के पंख न थकते हैं न डरते), 2 अक्टूबर 2015. https://mannpakhi.blogspot.com/2015/10/blog-post.html#more

द्विवेदी, भूमिका. "दांव". *खाली तमंचा (कहानी संग्रह),* हिन्द पॉकेट बुक्स, 2018.

पांडेय, मनीषा. "स्टारी – स्टारी नाइट्स." *स्वप्न में वसंत:स्त्री यौनिकता की कहानी*. संपादक बिहारी,राकेश, शिल्पायन प्रकाशन, 2014.

प्रकाश, सूरज. *लहरों के बाँसुरी*. प्रतिलिपि.कॉम.*2017* https://hindi.pratilipi.com/

प्रतिभा, लहूलुहान कौन?. प्रतिलिपि.कॉम. 5 मई 2016, https://hindi.pratilipi.com

प्रियंवरा, "ये हौसला", संसदीय मंजूषा, वर्ष-5, अंक-1, जुलाई 2016,

बेदी, सुषमा. काला लिबास., अभिव्यक्ति, 1 दिसंबर 2006 https://www.abhivyakti-hindi.org/

माजी, महुआ. "चन्द्रबिन्दु." *स्वप्न में वसंत:स्त्री यौनिकता की कहानी*. संपादक बिहारी,राकेश,शिल्पायन प्रकाशन, 2014.

मिश्र,अल्पना. "ए अहिल्या." *कब्र भी कैद औ' जंजीरें भी*. दूसरा संस्करण, राजकमल प्रकाशन.2015.

---, "कथा के गैर जरूरी प्रदेश में." *स्वप्न में वसंत:स्त्री यौनिकता की कहानी*. संपादक बिहारी, राकेश, शिल्पायन प्रकाशन, 2014.

रंगनाथन, जयंती. मोह, माया, मंडी, समाचार4मीडिया.कॉम, 5 जनवरी 2017,
https://www.samachar4media.com/

राग, वंदना.“छायायुध्द” *स्वप्न में वसंत:स्त्री यौनिकता की कहानी*. संपादक बिहारी, राकेश,शिल्पायन प्रकाशन, 2014

रानी, विभा.“महुआ मदन रस टपके रे” *स्वप्न में वसंत:स्त्री यौनिकता की कहानी*. संपादक बिहारी,राकेश, प्रथम संस्करण,शिल्पायन प्रकाशन, 2014.

राय, जयश्री, “एक रात” *कामुकता का उत्सव : प्रणय,वासना और आनंद की कहानी,* संपादक रंगनाथन,जयंती, प्रथम संस्करण, वाणी प्रकाशन,2020.

---, काली कलूटी, हिन्दी समय डॉट कॉम

---, “वर्जित सुख” *तुम्हें छू लूँ जरा*. सामयिक प्रकाशन, 2017.

वर्मा, कविता, “जीवट.” *परछाइयों के उजाले*. मानक संस्कृति प्रकाशन. 2014

---, “निश्चय.” *परछाइयों के उजाले*. मानक संस्कृति प्रकाशन. 2014.

विपिन, चौधरी, “सांप” *कामुकता का उत्सव : प्रणय,वासना और आनंद की कहानी.* संपादक रंगनाथन, जयंती, वाणी प्रकाशन,2020.

शर्मा चंद्र, यादवेन्द्र. “पिछला दरवाजा.” *वाह किन्नी वाह*. वाणी प्रकाशन, 2009..

---,“वाह किन्नी वाह”,*वाह किन्नी वाह*. प्रथम संस्करण, वाणी प्रकाशन, 2009

शर्मा. क्षमा, “रोशनी के अच्छे दिन” *पराँठा ब्रेकअप और अन्य कहानियाँ*,प्रथम संस्करण,वाणी प्रकाशन, 2022.

शिवमूर्ति. कुच्ची का कानून. gadhyakosh.com

शुक्ल, उर्मिला. तुम फिर मिलना कारी, प्रतिलिपि. कॉम. 28 अगस्त 2018. https://hindi.pratilipi.com\

सिंह, किरण. “यीशू की कीलें.” *यीशू की कीलें,* आधार प्रकाशन, 2016.

---, “सांझा”, *यीशू की कीलें*, आधार प्रकाशन, 2021.

सिंह, रूपा. “आई विल कॉल यूं”, कामुकता का उत्सव, सम्पादन जयंती रंगनाथन, वाणी प्रकाशन, 2020.

सिंह, शोभा. नाम में बहुत कुछ रखा है, जनसत्ता 3 मार्च 2019. https://www.jansatta.com/

सिन्हा, नीलिमा “तैंतीस परसेंट.” आधार पत्रिका, वर्ष 3, अंक 4, अक्टूबर-2004 जून-2005 (संयुकतांक)

सूर्यवाला, “सुनंदा छोकड़ी की डायरी.” *साँझवाती*, प्रथम संस्करण, प्रभात प्रकाशन, 2015.

सहायक-ग्रंथ सूची

अग्रवाल,रोहिणी. *साहित्य की जमीन और स्त्री मन के उच्छवास*.वाणी प्रकाशन,2014.

---, कविता में औरत, वाणी प्रकाशन, 2019

---, *स्वाधीनता का स्त्री पक्ष*. प्रथम संस्करण,राजकमल प्रकाशन, 2012.

---, *स्त्री विमर्श की उत्तर गाथा*. प्रथम संस्करण, सामयिक प्रकाशन, 2012.

---, *मन मांजने की जरूरत*. प्रथम संस्करण,सामयिक प्रकाशन,2008.

---, *मौसम बदलने की आहट*. सामयिक प्रकाशन, 2012.

उपाध्याय, डॉ दीपिका, सम्पादन, *स्त्री को स्त्री रहने दो, बस*!, भारत पुस्तक भंडार, संस्करण 2014.

उपाध्याय, रमेश. और उपाध्याय, संज्ञा. *परिवार में जनतंत्र*, शब्दसंधान प्रकाशन, 2004.

कटारिया, कमलेश. *नारी जीवन वैदिक काल से आज तक*. जयपुर यूनिक ट्रेडर्स, 2003.

कपूर, मस्तराम. *अस्तित्ववाद से गांधीवाद तक*. वाणी प्रकाशन, 2008.

कात्यायनी, *प्रेम,परंपरा और विद्रोह*. परिकल्पना प्रकाशन, 2008.

किशोर, कौशल. *प्रतिरोध की संस्कृति*.परिकल्पना प्रकाशन, 2018.

कुमार, जैनेन्द्र. *त्यागपत्र*. द्वितीय संस्करण, भारतीय ज्ञानपीठ, 2017.

कुमार, आर मनोज.और प्रेमचंद एम. कोराली, संपादक. *भारतीय दलित साहित्य*. दर्पण प्रकाशन, 2000.

कुशवाह, सुरेन्द्र सिंह. संपादन, *वसंत के हरकारे-कवि शैलेंद्र चौहान*, मोनिका प्रकाशन,2021.

कृष्णकांत, सुमन. इक्कीसवीं सदी की ओर, राजकमल प्रकाशन, 2001.

खेतान, प्रभा. *उपनिवेश में स्त्री*. राजकमल प्रकाशन, संस्करण 2022.

गर्ग, मृदुला. *उसके हिस्से की धूप*. नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 2002.

---, *कठगुलाब*. दूसरा पेपरबैक संस्करण, भारतीय ज्ञानपीठ, 2001.

---, *चित्तकोबरा*, सातवाँ संस्करण, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 2004.

---, *किस्सा आज का. संगति-विसंगति (संपूर्ण कहानियां, दो खंड)*. नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 2004.

---, "देशी फेमिनिस्ट". *चुकते नहीं सवाल*. सामयिक प्रकाशन, 2007.

---, *मेरे साक्षात्कार*, किताबघर प्रकाशन, 2012.

गीताश्री,*स्त्री आकांक्षा के मानचित्र*, प्रथम संस्करण,सामयिक प्रकाशन, 2008.

गुजराल, तरसेम. *समय संवाद और स्त्री प्रश्न*, भावना प्रकाशन, 2015.

गुप्त, गणपतिचंद्र.*भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र*. लोकभारती प्रकाशन, 2018.

गुप्ता, कमलेश कुमार. *महिला सशक्तिकरण*. बुक एनक्लेव जयपुर, 2007.

गुप्ता, रमणिका. *आपहुदरी*. द्वितीय संस्करण, सामयिक पेपरबैक्स, 2021.

गुरु, कामताप्रसाद. *हिन्दी व्याकरण*. प्रभात प्रकाशन, 2018

चतुर्वेदी, जगदीश्वर.एवं सुधा सिंह, *कामुकता, पॉर्नोग्रफी और स्त्रीवाद*. आनंद प्रकाशन, 2007.

---, *स्त्रीवादी साहित्य विमर्श*. मेधा पब्लिशिंग हाउस, जनवरी 2018.

चौबे, कृपाशंकर. *पत्रकारिता के उत्तर आधुनिक चरण*. वाणी प्रकाशन, 2003.
चौबे, देवेंद्र. *समकालीन कहानी का समाजशास्त्र,* प्रकाशन संस्थान नई-दिल्ली, 2001.
चौहान, डॉ संजय. उत्तर आधुनिकता और हिन्दी उपन्यास, आशा बुक्स, 2011
चौहान, नीलिमा. पतनशील पत्नियों के नोट्स. वाणी प्रकाशन,2017.
जैनेन्द्र, *समय और हम*, पूर्वोदय प्रकाशन 1961.
जैमिनी, अंजु दुवा. *मोर्चे पर स्त्री*. कल्याणी शिक्षा परिषद, 2008.
ठाकुर, समीक्षा, संकलन और सम्पादन, *बात बात में बात- नामवर सिंह*, वाणी प्रकाशन, 2013
डॉ अमरकांत, *हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली*. द्वितीय संस्करण, राजकमल प्रकाशन, 2012.
डॉक्टर शंभुनाथ. *धूपछाँही दिनकर*. भारतीय ज्ञानपीठ, 2008.
तिवारी, नित्यानंद. *आधुनिक साहित्य और इतिहास बोध*. वाणी प्रकाशन, 2009.
देशमुख, डॉ रमेश. *आठवें दशक की हिंदी कहानी में जीवन मूल्य*. विद्या प्रकाशन, 2016.
दुबे, श्यामाचारण. *समय और संस्कृति*, वाणी प्रकाशन, 2016.
नारायण, बद्री. *प्रतिरोध की संस्कृति.* वाणी प्रकाशन, 2012.
नगेन्द्र. *काव्य बिम्ब*, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, संस्करण 1990.
निर्झरा,सरिता. *चाँद,जमीन और औरते*. बोधि प्रकाशन, 2022.
तिवारी, उषा. *साठोत्तरी काव्य में पारिवारिक जीवन*. पंजाब बुक्स, 2008.
पचौरी, सुधीर. *नयी साहित्यिक सांस्कृतिक सिद्धांतिकियाँ.* वाणी प्रकाशन, 2022
द्विवेदी,हजारी प्रसाद."क्या निराश हुआ जाए", *वसंत-भाग-3*, एनसीईआरटी.
पाठक, सुप्रिया. *भारतीय स्त्रियों का अहिंसक प्रतिरोध*. प्राकृत भारती अकादमी जयपुर, 2020.
पाठक, ज्ञान. *नैतिकता के नए सवाल*. संपादक-राजकिशोर. वाणी प्रकाशन, 2009.
पांडेय, गोविंद चंद्र. *मूल्य मीमांसा.* राका प्रकाशन, 2005.
पांडेय, डॉ दर्शन. नारी अस्मिता की परख. संजय प्रकाशन, 2004.
पांडेय, मैनेजर. *भारतीय समाज में प्रतिरोध की परंपरा*. द्वितीय संस्करण, वाणी प्रकाशन, 2020.
---, *भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य*.प्रथम संस्करण,वाणी प्रकाशन दिल्ली, 1992
---, *साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका*, हरियाणा ग्रंथ अकादमी पंचकुला, संस्करण,
पांडे, मृणाल. *देह की राजनीति से देश की राजनीति तक*. तृतीय संस्करण,राधाकृष्ण, 2011.
पालीवाल, कृष्णदत्त. उत्तर आधुनिकतावाद और दलित साहित्य.प्रथम संस्करण,वाणी प्रकाशन, 2008.
---, उत्तर आधुनिकता की ओर, आर्य प्रकाशन मण्डल, संस्करण 2007.

पुष्पा, मैत्रेयी. *चर्चा हमारा*. प्रथम संस्करण,सामयिक प्रकाशन, 2009.

प्रणय, डॉoकृष्ण. *उत्तर-औपनिवेशिकता के स्त्रोत और हिन्दी साहित्य*. हिन्दी परिषद् प्रकाशन, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, 2008.

प्रेमिला, के0 पी0. *स्त्री : यौनिकता बनाम आध्यात्मिकता*. राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 2010.

प्रेमचंद, मुंशी. *सेवासदन*. प्रभात प्रकाशन दिल्ली, 2016.

बाई, मीरा. मीरा मुक्तावली, संकलन कर्ता स्वामी, नरोत्तम. राजस्थानी ग्रंथाकर जोधपुर, संस्करण 2022.

---, मीरा वृहदपदावली, संकलनकर्ता राजस्थान पुरातन ग्रंथमाला, प्रकाशन- राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, 1998.

बिसारिया, पुनीत. *वेदबुक से फेसबुक तक*. अटलांटिक पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लि., 2015

बिहारी, राकेश. संपादक, *स्वप्न में वसंत:स्त्री यौनिकता की कहानी*. शिल्पायन प्रकाशन, 2014.

भण्डारी,मन्नू. *"ऊंचाई", एक प्लेट सैलाब*. राधाकृष्ण प्रकाशन, 2001.

मिश्र, सत्यदेव. *पाश्चात्य काव्यशास्त्र आधुनातन संदर्भ*. लोकभारती प्रकाशन, 2008.

मुद्गल, चित्रा. *जिनावर कहानी संग्रह,* किताबघर प्रकाशन,1996.

मेहरोत्रा, सुरभि टंडन. *घरेलू कामगार: परिस्थितियाँ,हक और जिम्मेदारियाँ*. अनुवाद श्रीवास्तव, सीमा, जागोरी, 2010.

यादव, राजेन्द्र. आदमी की निगाह में औरत, राजकमल प्रकाशन, 2006.

राजकिशोर. *नैतिकता के नए सवाल*. वाणी प्रकाशन, 2009,

---, *स्त्री-पुरुष: कुछ विचार*, वाणी प्रकाशन, 2000.

वर्मा, अर्चना. *अस्मिता विमर्श का स्त्री-स्वर*. मेधा बुक्स, 2008.

वर्मा, महादेवी. *शृंखला की कड़ियाँ*. लोकभारती प्रकाशन, 2008.

शर्मा, डॉ हरिचरण. *बिहारी सतसई*. श्याम प्रकाशन, 2007.

साव, अजय कुमार. *प्रतिरोध के प्रतिमान घरेलू महिला कामगार (विमर्श का अछूता अध्याय)*. शब्द. इन, 2023

सिंह, अनुराधा. *ल्हासा का लहू, निर्वासित तिब्बती कविता का प्रतिरोध*. वाणी प्रकाशन, 2021.

सिंह, काशीनाथ. काशी का अस्सी, राजकमल प्रकाशन, 2016.

---, रेहन पर रग्घू. राजकमल प्रकाशन, 2010.

सिंह, खुशवंत. *औरतें, सेक्स लव और लस्ट*. हिन्दी रूपांतरण, हिन्दी पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड द्वारा सुरक्षित, 2016.

सिंह, डॉ पुष्पलता. *समकालीन कहानी: युगबोध का संदर्भ*. नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली,1977.

सिंह, पुष्पपाल. *भूमंडलीकरण और हिन्दी उपन्यास*, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2012.

सिंह, डॉ सुधा. *ज्ञान का स्त्रीवादी पाठ. ग्रंथ शिल्पी, 2008.*

सिंह, बच्चन. *बिहारी का नया मूल्यांकन.* लोकभारती प्रकाशन, 1999.

सिन्हा, प्रो0 सच्चिदानंद. *भूमंडलीकरण की चुनौतियाँ*, वाणी प्रकाशन, 2009.

सुजाता. *आलोचना का स्त्री पक्ष (पद्धति, परंपरा और पाठ)*. राजकमल प्रकाशन, 2021.

सोबती, कृष्णा. *मित्रो मरजानी*, नवां संस्करण, राजकमल प्रकाशन, 2018.

सेन, अमर्त्य. *हिंसा और अस्मिता का संकट*. अनुवाद- कुलश्रेष्ठ, महेंद्र. राजपाल एंड संस, 2011.

हॉलोवे, जॉन. *चीख: आज की क्रांतियों का अर्थ*. अनुवाद- बहादुर, लाल. संवाद प्रकाशन, 2009.

त्रिपाठी, रमेश कुमार. *समकालीन हिन्दी पत्रकारिता में नारी संदर्भ*. नमन प्रकाशन, 2007.

पत्रिकाएँ

अंजु, डॉ.“शोध: साठोत्तरी महिला कथाकारों की कहानियों में स्त्री-विमर्श” अपनी माटी, वर्ष -2, अंक-16, अक्टूबर-दिसंबर 2014.

कुमार, डॉ प्रवीण. “प्रतिरोध की संस्कृति की भाषिक बनावट”Creative Space: International Journal, Vol 3, Issue 06, नंवबर-दिसंबर 2015.पेज 191-200

कुमार, आशुतोष. संपादक, ”प्रेम का स्त्री अर्थ” आशय पत्रिका,वर्ष-4,अंक 5-6 (संयुक्तांक),सितम्बर 2005-2006. पेज 1-13.

गर्ग, मृदुला.“प्रेम जितना सहज है, उतना जटिल.” आशय पत्रिका, संपादक कुमार.आशुतोष, वर्ष-4,अंक-5-6 (संयुक्तांक),सितम्बर 2005-2006. पेज 40-47.

जोशी, प्रज्ञा.“देह (व्यापार)और प्रेम : कुछ नोट्स” आशय पत्रिका, संपादक कुमार,आशुतोष,वर्ष-4,अंक,5-6,(संयुक्तांक),सितम्बर 2005-2006. पेज 186-191.

तलवार, वीर भारत. “सभी सत्ताधारी आदिवासियों के आदिवासीपन से डरते हैं,आदिवासी समाज और साहित्य” कथाक्रम, अक्टूबर दिसंबर 2011.

पवार, डॉ तारु एस. “समकालीन हिन्दी कहानियों में स्त्री प्रतिरोध’’ साहित्य सेतु . Year 7 Issue 3 May-June 2019.

प्रणय, कृष्ण. “द्विखंडित आत्म: द्विखंडित प्रेम” आशय पत्रिका, संपादक कुमार.आशुतोष, वर्ष-4,अंक-5-6 (संयुक्तांक),सितम्बर 2005-2006. पेज 76-90 .

पाण्डेय, मैनेजर. “जिस समाज में स्त्री की अस्मिता नहीं, वहाँ प्रेम कैसे होगा?” आशय पत्रिका, संपादक कुमार.आशुतोष, वर्ष-4,अंक-5-6 (संयुक्तांक),सितम्बर 2005-2006. पेज 20-24.

बनवारी, "भारतीय सभ्यता का संघर्ष", यथावत पत्रिका, 3 सितंबर 2020 https://yathavat.com

मियां, रहीम. "भूमंडलीकरण के दौर में नए समाज की अवधारणा" अपनी माटी, वर्ष-2 अंक-22 (संयुकतांक), अगस्त 2016. https://www.apnimaati.com/2016/08/blog-post_54.html

मिश्र,गिरीश, "भूमंडलीकरण का वैचारिक आधार", परस्पर पत्रिका,अंक- 12, फरवरी -2010. पेज- 31-34.

यादव, सुनील कुमार और सूरज कुमार. "स्त्री एवं स्त्रीवादी साहित्य की भाषा" international journal of innovative knowledge concepts.vol 6, issue 5, May 2018.

विश्वनाथन, टी . के. "संसद भवन के केन्द्रीय कक्ष में 3 अक्टूबर 2012 को महिला संवेदी सांसदों की महिला अध्यक्षों की सातवीं बैठक के उदघाटन समारोह के अवसर पर दिए गए भाषण" संसदीय पत्रिका, खंड59, अंक 1, मार्च 2013. पृष्ठ 1-9

शंकर, रवि "सभ्यतागत संघर्ष और संचार माध्यम, सभ्यता संवाद पत्रिका, वर्ष 2, अंक 2,अप्रैल-मई-जून 2020 ई पृष्ट 8-16

सिंह, अंजना. "राजेन्द्र यादव के कथा-साहित्य में नारी -दर्शन" international journal of Hindi Research, Issn 2455-2232, Vol 6, Issue 6, 2020 www.hindijournal.com

वेबसाइट

हिन्दी समय. कॉम https://www.hindisamay.com/

कात्यायनी. "प्रतिरोध का साहित्य" समालोचन.12 मार्च 2008. https://samalochan.blogspot.com/2018/03/blog-post_12.html

कुमारी,ममता. घरेलू महिला कामगार के बहाने कुछ बाते, https://www.hindisamay.com/

कुमार,विमल. छायावाद का सौंदर्यशास्त्रीय अध्यन्न, राजकमल प्रकाशन 1970, https://archive.org/details/in.ernet.dli.2015.480034/page/n1/mode/1up?view=theater

कोलाख्यान, प्रफुल्ल. दलित राजनीति की समस्याएँ, https://archive.org/details/PrafullaKolkhyanDALITRAJNITIKISAMASYAEN/page/n1/mode/2up पृष्ठ 1-33

दिनकर ,लोहे के पेड़ हरे होंगे, kavitakosh.org

नेगी,स्नेह लता."थेरिगाथाओं में अभिव्यक्त मुक्तिकामी स्वर" स्त्रीकाल, 15 अप्रेल 2017. http://streekaal.com.

प्रतिरोधी आंदोलन, https://www.hmoob.in/wiki/Resistance_movement

मीणा, कैलाश. "सभ्यता का अर्थ, परिभाषा,विशेषताएं/लक्षण" 26/3/2022. https://www.kailasheducation.com/2022/03/sabhyata-arth-paribhasha-visheshta.html

मुद्गल, चित्रा. वाइफ स्वैपी, https://www.rachanakar.org/2005/08/blog-post_27.html

विकिपीडिया https://www.wikipedia.org/

"सभ्यता एवं संस्कृति में अंतर", भारतकोश, ज्ञान का हिन्द महासागर, https://bharatdiscovery.org/

सक्सेना, प्रगति. "पूर्वजों ने भी उठाई थी साहित्य में प्रतिरोध की आवाज" समतामार्ग,26 दिसंबर 2021. https://samtamarg.in/2021/12/26/ancestors-also-raised-the-voice-of-resistance-in-literature/

सिंह, कंचन. "लिव इन रिलेशन--रिश्तों की नई परिभाषा",मेरी सहेली https://www.merisaheli.com/live-in-relationship/

सिंह,किरण और मिश्रा, शोभा. प्रस्तुति "राजनीति में महिलाओं की भागीदारी कम क्यों हैं?" फरगुदिया (साहिय और सरोकार का समन्वय) , 9 मार्च 2017, http://fargudiya.blogspot.com/2017/03/blog-post_9.html

सिंह, मनोरमा. महिला विरोधी बयान और मर्दवादी राजनीति, स्त्रीकाल, 19 अप्रेल 2019, https://streekaal.com/2019/04/male-politicians-hurl-gendered-comments-on-women-counterparts/

हिन्दी साहित्य का इतिहास भाग दो, अस्मिता विमर्श : स्त्री, दलित, आदिवासी, ओडिसा स्टेट ओपन यूनिवर्सिटी. egyanagar.osou.ac.in was first indexed by Google in June 2017

दस्तक ब्लॉग पोस्ट http://dastakkhat.blogspot.com/2012/10/blog-post.html

मातृभर्ती. कॉम https://hindi.matrubharti.com

प्रतिलिपि.कॉम. https://hindi.pratilipi.com/

भारतकोश https://bharatdiscovery.org/

कोश

इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका, वॉल्यूम 22. 2007.

कुमार, सुरेश, और रामनाथ सहाई. *ऑक्सफोर्ड हिन्दी-हिन्दी इंग्लिश डिक्शनरी*. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2014.

JASS. "नारीवादी आंदोलन के कार्यकर्ताओं के लिए शब्दकोश" अनुवाद CREA. द्वित्तीय संस्करण 2013.

पाठक, प्रोफ़ेसर रामचंद्र. *आदर्श हिंदी शब्दकोश*. भार्गव बुक डिपो, 2011.

बाहरी, डॉ हरदेव. *राजपाल हिंदी शब्दकोश हिन्दी-हिन्दी डिक्शनेरी*. राजपाल प्रकाशन, 2012

वर्मा, अचार्य रामचंद्र. *लोकभारती प्रमाणिक हिंदी कोश*. लोकभारती प्रकाशन, 2014.

शर्मा, एस पी और शर्मा एस.एन. *Standard illustrated advanced Dictionary मानक हिंदी कोश, अंग्रेजी शब्दकोश*. अशोक प्रकाशन, 2002.

सहाय, आर एन, और एस के वर्मा. *ऑक्सफोर्ड स्टूडेंट्स इंग्लिश हिन्दी डिक्शनेरी*. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2014.

परिशिष्ट

प्रकाशित शोध-आलेख

1.श्रीवास्तव, प्रियंका और सिंह, रीता. "राजनीति के सामंती चेहरे का प्रतिरोधी स्वर, संदर्भ : हसीनाबाद", शोध भारती (त्रैमासिक पत्रिका), vol 16, issue 5, May-July 2022. Impact factor 2.41. ISSN 2760-X790.

2. श्रीवास्तव, प्रियंका. और सिंह, रीता. "स्त्री का राजनीतिक प्रतिरोध : स्वरूप एवं संभावनाएं", आधुनिक साहित्य, वर्ष 11, अंक 44, अक्टूबर-दिसंबर 2022, आईएसएसएन 2277-7083.

3. श्रीवास्तव, प्रियंका. और सिंह, रीता. "21वीं सदी के कथा-साहित्य में स्त्री-प्रतिरोध का यौनिक संदर्भ." शिवना साहित्यिकी, वर्ष 8, अंक 29, अप्रैल-जून 2023, आईएसएसएन 2455-9717.

4. श्रीवास्तव, प्रियंका."स्त्री, धर्म और प्रतिरोध", साहित्य में धर्म, दर्शन एवं विज्ञान, संपादक डॉ रामप्रवेश सिंह, प्रकाशक विलक्षण एक सार्थक पहल समिति, वर्ष 2023, आईएसबीएन 978-93-93010-32-2.

5. श्रीवास्तव, प्रियंका. "स्त्री-सशक्तीकरण और प्रतिरोध के विविध आयाम" महिला सशक्तिकरण में हिन्दी साहित्य का योगदान, संपादक डॉo माया सगरे – लक्का, विकास प्रकाशन, कानपुर, 2023. आईएसबीएन 978-93-95922-18-0.

6. श्रीवास्तव, प्रियंका. और सिंह, रीता. "दांपत्य के अनंत आतंक में प्रतिरोधी स्त्री-पुरुष मन." अनहद लोक, वर्ष 9, अंक 18, जुलाई-दिसंबर 2023, आईएसएसएन 2349-137X.

संगोष्ठी

1. हरियाणा ग्रंथ अकादमी, पंचकूला व गुरु फाउंडेशन, रोहतक के संयुक्त तत्वाधान में 8 जनवरी 2023 को आयोजित एक दिवसीय अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी 'साहित्य में धर्म, दर्शन एवं विज्ञान' में शोध-पत्र "स्त्री, धर्म और प्रतिरोध" प्रस्तुत किया गया।

2. रेवा विश्वविद्यालय में कला, मानविकी एवं सामाजिक विज्ञान विभाग हिन्दी विभाग तथा अखिल भारतीय हिन्दी महासभा, बैंगलूरु के संयुक्त तत्वाधान में दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी 'महिला सशक्तीकरण में हिन्दी साहित्य का योगदान' विषय पर शोध–पत्र "स्त्री-सशक्तीकरण और प्रतिरोध के विविध आयाम" प्रस्तुत किया गया।

****